फरवरी १९७० वर्ष १०—अंक २ रजि० क्र० ६६८६/६०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥

ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

कुछ विशेष प्रकाशन
जो प्रत्येक को पढ़ने चाहिएँ

हिन्दू पद पादशाही	वीर सावरकर	६.५०
मोपला (उपन्यास)	,,	४.००
गोमान्तक ,,	,,	४.००
मोपला-गोमान्तक (संयुक्त सम्पूर्ण संस्करण)	,,	३.००
शस्त्र और शास्त्र (नाटक)	,,	४ ५०
क्रान्ति का नाद (प्रेरणादायक लेख)	,,	४.५०
प्रतिशोध (नाटक)	,,	४.००
अमर सेनानी सावरकर (जीवन झांकी)	शिवकुमार गोयल	२.५०
शक्तिपुत्र शिवाजी	सीताराम गोयल	१.५०
हिमालय पर लाल छाया	शान्ताकुमार	३.००
धरती है बलिदान की (क्रान्तिकारी कहानियां)	,,	१.००
मेरे अन्त समय का आश्रय	देवतास्वरूप भाई परमानन्द	५.००
अन्तिम यात्रा (डा० मुखर्जी की कश्मीर यात्रा)	गुरुदत्त	१.००
धर्म संस्कृति तथा राज्य	,,	८.००
धर्म तथा समाजवाद	,,	६.००
देश की हत्या (उपन्यास)	,,	३.००
जमाना बदल गया (नौ भागों में)	,,	२०.००
दासता के नये रूप	,,	३.००
भारत में राष्ट्र		१.००
समाजवाद एक विवेचन		१.००
गाँधी और स्वराज्य		१.००
भारत गान्धी नेहरू की छाया में		३.००
श्रीमद्भगवद्गीता एक विवेचन		१५.००
वीर पूजा (उपन्यास)		१.००
भारत के मुस्लिम सुल्तान	पुरुषोत्तम नागेश ओक	१०.००
भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें	,, ,, ,,	१०.००
दीनदयाल उपाध्याय महाप्रस्थान		२.२५

In English

India in the Shadow of Gandhi and Nehru	20.00
In Defence of Comrade Krishna Menon	15.00

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥

ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

●

परामर्शदाता
प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

●

सम्पादक
अशोक कौशिक

●

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१
फोन : ४७२६७

●

मूल्य
एक अङ्क रु. ०.५०
वार्षिक रु. ५.००

सम्पादकीय

वर्तमान प्रजातन्त्र और वैदिक समाजतन्त्र में अन्तर

ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट सृष्टि मनुष्य में जिस सिद्धान्त के अनुसार कार्य होता है, वैसे ही सिद्धान्तों से भूमण्डल में और फिर अन्तरिक्ष और ब्रह्माण्ड में कार्य हो रहा है । वेदों के अध्ययन से भी यही प्रकट होता है । इसी से विदित होता है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान के ग्रन्थ हैं ।

हमसे अपने पिछले मास के अग्र लेख में बताया था कि वैदिक समाजतन्त्र मनुष्य के शरीर के तन्त्र के अनुसार ही निर्माण किया गया है । जैसे स्वस्थ मनुष्य शरीर का कार्य सहज ही सुचारू रूप में करता चला जाता है, वैसे ही यदि समाजतन्त्र उन्हीं सिद्धान्तों पर काम करे तो यह भी सहज ही चलता जायेगा ।

शरीर में मस्तिष्क शरीर की दसों इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखता है । यह नियन्त्रण वात-तन्तुओं द्वारा चलता है । इसी प्रकार समाज में ब्राह्मण वर्ग पूर्ण समाज का नियन्त्रण करता है । यह नियन्त्रण राज्य द्वारा सम्पन्न होता है ।

शरीर में वात-तन्तु बिना मस्तिष्क के आदेश के कार्य नहीं करते । इसी प्रकार समाज

तन्त्र में राज्य को ब्राह्मण (विद्वान्) वर्ग के निदेश के बिना कार्य नहीं करना चाहिये।

जब समाज पर ब्राह्मण वर्ग का नियन्त्रण नहीं रहता तो समाज की अवस्था उस पागल व्यक्ति के तुल्य हो जाती है, जिसके मस्तिष्क का नियन्त्रण उसके शरीर पर न रहे।

भिन्न भिन्न इन्द्रियों और शरीर के अंगों के संचालन के लिये मस्तिष्क में भिन्न भिन्न भाग होते हैं। अतएव समाज में भी, समाज के भिन्न भिन्न वर्गों के संचालन के लिये, ब्राह्मण वर्ग के भिन्न भिन्न भाग होने चाहियें। शरीर में पूर्ण मस्तिष्क के कार्यों का समन्वय मन और आत्मा द्वारा होता है। इसी प्रकार समाज में ब्राह्मण वर्ग के भिन्न भिन्न कार्यों में समन्वय के लिये राष्ट्रपति, राजा तथा कोई मुख्य नियन्त्रणकारी अधिकारी होना चाहिये।

वर्तमान प्रजातन्त्र पद्धति में भी एक राष्ट्रपति है, परन्तु भारत के संविधान के अनुसार राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री की सम्मति के बिना कार्य नहीं कर सकता। संविधान के अनुसार वह सेनाओं का मुख्य अधिकारी माना जाता है, परन्तु वह बिना सुरक्षा मन्त्री की अनुमति के सेना में सैनिक तो क्या एक चपरासी भी नियुक्त नहीं कर सकता।

वर्तमान प्रजातन्त्रात्मक संविधान में प्रधानमन्त्री राज्य के सब विभागों में समन्वय करना है। परन्तु इसमें मूल यह है कि जहां प्रधानमन्त्री राज्य में प्रबन्ध कार्य करता है, वहां वह कानून का निर्माण भी करता है। संसद में विधान निर्माण तथा विधान में संशोधन पर भी उसका अधिकार रहता है।

दूसरे शब्दों में संसद न केवल एक विधान सभा है, वरंच यह शासक संस्था भी है। यह कभी कभी न्यायालयों के कार्यों पर आलोचना और हस्तक्षेप भी करती है। संसद पर नियन्त्रण उस दल का होता है, जिसके सदस्य बहुसंख्या में होते हैं। दल का प्रातिनिध्य प्रधानमन्त्री करता है।

केवल इतना ही नहीं, वरंच आज की स्थिति में अर्थ व्यवस्था और शिक्षा का प्रबन्ध भी प्रधानमन्त्री के अधीन है।

इसके विपरीत वर्णाश्रम व्यवस्था में समाज के निम्न विभाग अपेक्षित हैं :

(१) शिक्षा, (२) न्याय अर्थात् दण्ड व्यवस्था, (२) धर्म-व्यवस्था, (४) शान्ति व्यवस्था, (५) शासन, (६) अर्थ-व्यवस्था, (७) अन्वेषण अर्थात् विचार विभाग।

ये सब विभाग एक दूसरे से स्वतन्त्र रूप में कार्य करने चाहियें। इस पर भी इनका समन्वय होना चाहिये। समन्वय का अर्थ नियन्त्रण अथवा संचालन नहीं। इस समन्वय करने के लिये राष्ट्रपति होना चाहिये, प्रधानमन्त्री नहीं

जो शासन के लिये उत्तरदायी भी है।

समाज में राष्ट्रपति का स्थान वही होना चाहिये जो स्थान शरीर में आत्मा को प्राप्त है। शरीर में आत्मा के साथ मन सम्बन्धित होता है। मन केवल संस्कार संचय करने का यन्त्र है। इसी प्रकार राष्ट्रपति का कार्यालय होना चाहिये जो सब देश-विदेश की सूचनाओं का संग्रह करता रहता है। इन सूचनाओं के अध्ययन पर और देश की धर्म-व्यवस्था के अनुसार राष्ट्रपति उचित विभाग को कार्य करने का सुझाव दे।

प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रधानमन्त्री का क्या स्थान हो? वैदिक समाजतन्त्र में प्रधानमन्त्री का वैसा कोई स्थान नहीं जैसा संसदीय प्रजातन्त्र में है।

राष्ट्रपति भी वर्तमान पद्धति के प्रधानमन्त्री का स्थानापन्न का नहीं। राष्ट्रपति किसी भी विभाग का संचालक नहीं, वरंच वह सब विभागों में समन्वय करने वाला हो। यदि कहीं एक विभाग का दूसरे विभाग से विरोध अथवा सह-चारिता न हो तो राष्ट्रपति हस्तक्षेप कर दोनों को एक दूसरे से समन्वय करने में सहायता अथवा आदेश दे सकता है।

वर्तमान संसदीय प्रजातन्त्र में जब तक प्रधानमन्त्री का दल उसके साथ है, तब तक वह विभागों पर शासन कर सकता है। जो विभाग संविधान से भी उसके अधीन नहीं हैं, उन पर भी वह शासन करने की सामर्थ्य रखता है।

उदाहरण के रूप में न्यायालय और न्यायाधीश प्रधानमन्त्री के अधीन नहीं हैं, परन्तु प्रधानमन्त्री संसद के बहुमत के बल पर ऐसा कानून बनवा सकता है जो न्यायालयों के हाथ काट दे।

यह श्री जवाहरलाल नेहरू के काल में अनेक बार हुआ। न्यायालयों के निर्णयों को रद्द करने के लिये केवल कानून ही नहीं बदले गये, वरंच संविधान में भी परिवर्तन किये गये।

यह वैदिक समाज तन्त्र की पद्धति नहीं। वैदिक समाजतन्त्र में कोई ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर यह होता कि शासन राष्ट्रपति को कहता कि न्यायालय के अमुक निर्णय से शासन का अमुक कार्य चल नहीं सकता।

राष्ट्रपति शासन को नहीं, वरंच धर्म-व्यवस्था के विभाग को कहता कि वह देखे कि न्यायालय के निर्णय बदलने की आवश्यकता है अथवा नहीं? धर्म-व्यवस्था विभाग शासन अथवा शासक के अधीन न होने से, स्वतन्त्र रूप में देखता कि शासन को अधिकार मिलना चाहिये अथवा न्याय-व्यवस्था को मान्यता मिलनी चाहिये। जो कुछ धर्म-व्यवस्था निर्णय दे, वह न्यायालय अथवा शासन को मान्य होना चाहिये।

परन्तु वर्तमान प्रजातन्त्र में व्यवस्था इसके विपरीत है। बिहार सरकार ने ज़मींदारियां ज़प्त करने का कानून पास किया। एक ज़मीदार ने सुप्रीम-कोर्ट में याचिका उपस्थित की कि सम्पत्ति रखने का अधिकार नागरिकों के मूलाधिकारों में है। न्यायालय ने याचिका स्वीकार कर ली। उन दिनों प्रधानमन्त्री का दल भारी बहुमत में था। अतः संविधान में संशोधन कर दिया गया।

ऐसा अनेक बार हुआ। कहने का अभिप्राय यह है कि जो संस्था शासन करने वाली है, वही कानून बनाने वाली होने से न्यायालय के निर्णय पर निष्पक्षता से निर्णय नहीं कर सकती।

अर्थ-व्यवस्था में शासक का हस्तक्षेप तो और भी भयंकर है। शासन को रुपया चाहिये। इसने व्यवस्था दे दी कि बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर लिया जाये। संसद ने बैंकों के राष्ट्रीयकरण को स्वीकार किया है। इस राष्ट्रीयकर की सुप्रीम कोर्ट में जांच हो रही है, परन्तु शासन ने ही संविधान में ऐसे संशोधन करा रखे हैं जिनकी उपस्थिति में वर्तमान राष्ट्रीयकरण पर न्यायालय स्वतन्त्रतापूर्वक से विचार करेगा, संदिग्ध है।

यह नहीं कि उच्च न्यायालय बैंकों के राष्ट्रीयकरण को ठीक ससझता है अथवा ग़लत समझता है। हमारे कहने का अर्थ यह है कि शासन ने न्यायालय के विचार करने के अधिकार को भी छीनने का प्रबन्ध कर रखा है।

यह राष्ट्रीयकरण जनता के हित में किया गया अथवा अहित में, इस पर न्यायालय विचार भी न कर सके, ऐसा हमारा संविधान है। इसी प्रकार किसी उद्योग के राष्ट्रीयकरण में मालिक को क्या दिया जाये अथवा क्या न दिया जाये, इस विषय पर भी न्यायालय के हाथ बांधे गये हैं। यह सब शासन को मनमानी करने में सुविधा प्रदान करने के लिये है।

यह व्यवस्था वैदिक समाजतन्त्र में नहीं हो सकती। शासन, शिक्षा, दण्ड विभाग, धर्म-व्यवस्था विभाग, न्यायाधिकरण सब स्वतन्त्र रूप से कार्य करते हैं। राष्ट्रपति किसी के कार्य में बाधा नहीं डाल सकता। वह उन सब विभागों में सरलता से समन्वय ही कर सकता है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि वैदिक समाजतन्त्र में जनता का सम्बन्ध समाज के विभिन्न विभागों से किस प्रकार हो सकता है?

वर्तमान प्रजातन्त्र में संसद अथवा विधान सभाओं के सदस्य जनता से निर्वाचित होते हैं। जनता कितनी भी पढ़ी-लिखी क्यों न हो, सब बातों में विद्वान नहीं कही जा सकती। इस कारण जनता से निर्वाचित सदस्य सब विषयों के जानकार होंगे, सम्भव नहीं। कम से कम यह तो कहा ही जा

सकता है कि विधान सभाओं के सदस्य सर्व गुण सम्पन्न नहीं हो सकते । न संसद इत्यादि अधिराट संस्था (Sovereign body) हो सकती है ।

एक समय था जब भारत के प्रधानमन्त्री ने सैनिक तैयारी करने में अपनी अकर्मण्यता छुपायी थी । जब युद्ध हुआ तो पराजय होने लगी । तब प्रधानमन्त्री हाय-तोबा मचा अन्य देशों से सहायता माँगने लगे । जिन देशों ने सहायता की उनका धन्यवाद भी नहीं किया, वरंच कह दिया कि उसने न तो यह सहायता मांगी थी और न ली है ।

यह इस कारण ही हो सका, क्योंकि अल्पज्ञानी जनता ने अज्ञानी संसद सदस्य निर्वाचित कर भेजे थे और उन अज्ञानियों से बनी संसद के अज्ञानी प्रधानमन्त्री सैनिक कार्य की ए-बी-सी न जानते हुए, सेना की तैयारी में बाधायें डालते रहे ।

होना यह चाहिये कि समाज का प्रत्येक विभाग अपने कार्य में अधिराट (sovereign) हो । वह एक दूसरे के कार्य में बाधा न डाले । देश के सामूहिक हित में एक दूसरे से समन्वय को सम्पन्न करने वाला सब विभागों से ऊपर एक निष्पक्ष व्यक्ति राष्ट्रपति अथवा प्रधानमन्त्री हो ।

जनता का सम्बन्ध समाज के सब विभागों से दो प्रकार हो सकता है । प्रत्येक विभाग में उस कार्य की योग्यता रखने वाले नागरिक उस विभागों के कार्यकर्त्ताओं का निर्वाचन करें । केवल मात्र राष्ट्रपति अथवा राजा का निर्वाचन सर्व मतदान से हो सकता है ।

उदाहरण के रूप में वैदिक परम्परा में पूर्ण समाज के चार विभाग हैं, जिन्हें वर्ण कहा है । चारों वर्णों के अपने काम हैं । अतः उन वर्णों के काम के विभाग के प्रतिनिधि उस वर्ण के लोग ही निर्वाचित कर भेजें ।

सेना में भरती, सैनिक कार्य करने योग्य लोगों में से की जाये । सेना ही अपने अपने नायक तथा सेनानायक अथवा उनके सलाहकार निर्वाचित करे । एक सेनाध्यक्ष हो और वह सेना के कार्य में अधिकार रखे तथा उस कार्य का उत्तरदायी हो । इसी प्रकार व्यापार विभाग है । इसे वैश्य कर्म भी कहा जा सकता है । वे लोग जो सफलतापूर्वक वैश्य कार्य कर रहे हैं, वे ही राज्य में अर्थ-व्यवस्था के संचालक हों । उनमें भी एक सर्वोच्च अधिकारी हो जो निर्वाचित हो और देश की अर्थ व्यवस्था के लिये उत्तरदायी हो । इस प्रकार शासन व्यवस्था न्याय व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था इत्यादि अपने अपने कार्य करने वाले नागरिकों द्वारा ही निर्वाचित होने चाहियें ।

राष्ट्रपति देश की पूर्ण वयस्क जनता का प्रतिनिधि हो और वह सब

विभागों में समन्वय और उनके सरलता से परस्पर काम करने का प्रबन्ध करने वाला हो ।

समाजतन्त्र को चलाने वाला एक संविधान होना चाहिये । इसे शास्त्रीय भाषा में स्मृति कहते हैं । स्मृति में एक भाग ऐसा होता है जो समय समय पर बदलती परिस्थिति के अनुसार बदला जा सकता है । इस प्रकार के परिवर्तन के लिये राष्ट्रपति आवश्यकता पड़ने पर संविधान सभा का आह्वान कर सकता है ।

इस समाजतन्त्र में और भारत के वर्तमान राज्यतन्त्र में आकाश-पाताल का अन्तर है । हमारा यह सुनिश्चित मत है कि देश में तथा अन्य प्रजातन्त्रात्मक देशों में नैतिक पतन और अव्यवस्था इस दूषित राज्य पद्धति के कारण ही है । सब प्रजातन्त्रात्मक राज्यों में घोर पतन और अव्यवस्था का चलन हो रहा है । इसमें कारण स्पष्ट है । प्रजातन्त्रात्मक कहे जाने वाले राज्य वास्तव में प्रजा नियन्त्रित राज्य हैं । परन्तु प्रजातन्त्र का अर्थ न प्रजा का नियन्त्रण है और न ही होना चाहिये । वर्तमान प्रजातन्त्रात्मक पद्धति में अधिकारों के विषय में यह कहावत सिद्ध होती है—

अन्धेर नगरी गबरगंड राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा ॥

इसके विपरीत वर्णाश्रम व्यवस्था में 'जैसा करो वैसा भरो' की व्यवस्था होती है ।

× × ×

'शाश्वत वाणी' के जनवरी अंक में हमने हिन्दू की परिभाषा देने का यत्न किया था । हमने हिन्दू संस्कृति एवं धर्म के दस लक्षण लिखे थे ।

उसी के सन्दर्भ में हम विश्व हिन्दू परिषद् द्वारा घोषित हिन्दू के लक्षण लिख देना चाहते हैं । उन्होंने ये लक्षण इस प्रकार कहे हैं —

ओंकारमूलमन्त्राढ्यः पुनर्जन्मदृढाशयः ।
गोभक्तो भारतगुरु हिन्दुर्हीनत्वदूषकः ॥

इसका अर्थ है... (१) ओंकार जिसका मूल मन्त्र है; (२) पुनर्जन्म में जिसका दृढ़ विश्वास है; (३) जो गोभक्त है; (४) जिसका गुरु भारत में है; (५) हिन्दुत्व से हीन दूषित है ।

हम इस लक्षण में तथा जो लक्षण हमने पिछले अंक में वर्णित किये थे, यहां तुलना करना नहीं चाहते । दोनों की विवेचना हम अपने किसी अगले अंक में करने का यत्न करेंगे ।

इस पर भी यह अभी लिख देना चाहते हैं कि उक्त पांच लक्षण सर्वांग सुन्दर नहीं हैं । ●●

वेदान्त दर्शन में त्रैतवाद

श्री गुरुदत्त

त्रैतवाद का अर्थ है कि सृष्टि के मूल कारण तीन पदार्थ हैं। मूल कारण उनको कहते हैं जिनका अपना कोई कारण न हो। जो स्वयं में अनादि और अक्षर हों।

तीन मूल पदार्थों से इस जगत् की रचना हुई है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥
(ऋ०—१-१६४-२०)

दो सुपर्ण (सुन्दर पंखों वाले अर्थात् चलने फिरने की शक्ति वाले) सयुजा (सह स्वभाव वाले) सखाया (सखा भाव रखने वाले पक्षी) एक ही वृक्ष (प्रकृति) पर बैठे हुए परस्पर हेल-मेल कर रहे हैं। उस पेड़ के फल एक स्वाद लेता हुआ ग्रहण करता है और दूसरा ग्रहण नहीं करता। वह देखता मात्र है।

एक अन्य मन्त्र है —

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम्॥
(ऋ०—१-१६४-३८)

वह (जीवात्मा) प्रकृति से संयुक्त जन्म लेता है अर्थात् निकृष्ट योनियों अथवा उच्च योनियों में कर्म फल के अधीन आता है। वह अजन्मा तथा अक्षर (जीवात्मा) मर्त्य योनियों में जाता है और शाश्वत अर्थात् आत्मा तथा नाशवान् अर्थात् देह इकट्ठे हो जाते हैं। इनमें लोग एक (देह) को जान लेते हैं और दूसरे (जीवात्मा) को नहीं जान पाते।

यह सिद्धान्त कि परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति, ये तीन अनादि एवं अक्षर पदार्थ हैं, जिनके कारण जगत् की रचना होती है, त्रैतवाद है।

यही बात वेदान्त दर्शन में भी स्वीकार की गई है अ हां इसको सिद्ध

किया गया है। यह होना भी चाहिए। वेदान्त दर्शन वैदिक मान्यताओं को स्वीकार और सिद्ध करने के लिए लिखे गये हैं।

वेदान्त दर्शन के प्रथम अध्याय के दूसरे पाद में यह सिद्ध किया गया है कि जगत् रचना में तीन पदार्थ कारण हैं। हम यहाँ इस पाद के कुछ एक सूत्रों को उपस्थित करते हैं। इनमें परमात्मा के अतिरिक्त जीवात्मा और प्रकृति की उपस्थिति को सिद्ध किया गया है।

सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् ॥ वे० द०—१-२-१

इसका अर्थ है कि जो सर्वत्र प्रसिद्ध है, उसके उपदेश से। इसका अर्थ इस प्रकार भी किया जाता है 'ऐसे प्रसिद्ध उपदेश से जो सब स्थान पर (दृष्टि-गोचर होता) है।

वह प्रसिद्ध पदार्थ है, यह दृश्य जगत् जिसे कार्य जगत् कहा गया है। यदि दूसरे अर्थों को लें तब भी वही बात समझ में आती है। वह प्रसिद्ध उपदेश किस विषय में है, जो सर्वत्र किया जाता है। यह भी जगत् का वर्णन है। कारण यह कि जगत् ही एक ऐसा कार्य है जो सबकी चर्चा का विषय है।

अब इसके अगले सूत्र में कहा है—

विवक्षितगुणोपपत्तेश्च ॥ वे० द०—१-२-२

अर्थ है— (विवक्षित) स्पष्टता से कहे गये गुणों के उपस्थित होने से। इसका अभिप्राय है कि उक्त (१-२-१) सूत्र में सर्वत्र प्रसिद्ध पदार्थ अर्थात् जगत् में स्पष्ट गुणों के देखे जाने से पता चलता है कि जगत् में एक पदार्थ नहीं है। कुछ हैं जो जड़ हैं। वह अपने आप ईक्षण अर्थात् किसी कार्य को आरम्भ नहीं कर सकते। अर्थात् कार्य का काल और दिशा निश्चय नहीं कर सकते। कुछ ऐसा कर सकते हैं। इन्हें चेतन कहते हैं। चेतन भी दो प्रकार के हैं। एक सर्वज्ञसर्वशक्तिमान तत्त्व है और दूसरा अल्पज्ञ और अल्प सामर्थ्य रखने वाला है।

अनुपपत्तेस्तु न शारीरः ॥ वे० द०—१-२-३

(कुछ गुण) अनुपस्थित होने से वह शरीर और शरीरी (जीवात्मा) नहीं हैं।

अर्थात् जगत् में कुछ पदार्थ ऐसे हैं, जिनमें कुछ गुण अयुक्त अनुपस्थित होने से वह शरीरी (जीवात्मा) नहीं है। न ही शरीर है। दूसरे शब्दों में जीवात्मा एवं शरीर के अतिरिक्त कुछ है। वह परमात्मा है।

भगवद्गीता में भी इसी भाव को प्रकट किया है—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षरः उच्यते ।।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ।।
यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ।।
(भ० गी० १५—१६, १७, १८)

अब परमात्मा को प्रकृति से भिन्न बताने के लिए लिखा है :—

कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च ।। वे० द०—१-२-४

जगत् कर्म है अतः इसके करने वाले का उपदेश है ।

कर्म की व्याख्या भगवद्गीता में की है । वहां लिखा है कि :—

भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ।। भ० गी०—८-३

प्राणियों के साथ जगत् का निर्माण । पालन और प्रलय करना कर्म है ।

इस दर्शन में बताया है कि वह प्रसिद्ध कार्य जगत् बनाना है और वह करने वाला शरीर जड़ पदार्थ शरीरी जीवात्मा से पृथक् है ।

सूत्रकार अगले दो सूत्रों में यह कहता है कि ऊपर जगत् और इसमें शरीर (प्रकृति) शरीरी (जीवात्मा) और जगत् के रचने वाला (परमात्मा) का वर्णन किया है । वह वेदों में और स्मृति शास्त्रों में भी लिखा है । (वे०-द०—१-२-५, ६)

इसके उपरान्त सूत्रकार कहता है कि एक छोटा सा स्थान मनुष्य शरीर में है, जहां मनुष्य का आत्मा परमात्मा के साथ साथ रहता है और परमात्मा के दर्शन हो सकते हैं ।

गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् ।। वे० द०—१-२-११

गुहा में प्रविष्ट हुए दो आत्म तत्त्व देखे जाते हैं । अतः यह निर्विवाद है कि दर्शन शास्त्र में तीन मूल पदार्थों का वर्णन है ।

इसी प्रसंग को सूत्रकार ने दूसरे अध्याय के प्रथम पाद में एक अन्य ढंग से उठाया है । वहां इसका इस प्रकार वर्णन किया है ।

कई स्थलों पर केवल परमात्मा का ही वर्णन है और कहीं केवल प्रकृति का ही । इससे शास्त्र में अनवकाश दोष नहीं आता । सूत्र इस प्रकार है—

स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग इति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात ।।
(वे०-द०—२-१-१)

स्मृति में अनवकाश दोष का प्रसंग है । यदि यह कहो कि ठीक नहीं;

क्योंकि अन्य स्मृतियों में (उसका) अनवकाश प्रसंग होने से ।

अनवकाश का अर्थ है वर्णन न होना । कई स्मृतियों में किसी एक ही मूल तत्त्व का वर्णन है तो यह दोष नहीं । क्योंकि अन्य स्मृतियों में प्रथम विषय का वर्णन नहीं हो सकता ।

अभिप्राय यह है कि प्रत्येक पुस्तक में अपने अपने विषय का ही वर्णन होता है । किसी दूसरे विषय का नहीं । इससे यह नहीं समझना चाहिए कि दूसरे पदार्थ हैं ही नहीं । जब तक किसी पदार्थ अर्थात् विषय का विरोध न हो तब तक उसका वर्णन न होने मात्र से उसका विरोध नहीं समझ लेना चाहिए ।

इतना कह कर सूत्रकार कहता है :—

इतरेषां चानुपलब्धेः ।। (वे० द०—२-१-२)

दूसरे पदार्थों के (कहीं) न लिखे जाने से भी (उनका वर्णन है) । अर्थात् यदि किसी उपनिषद् ग्रन्थ में प्रकृति अथवा जीवात्मा का उल्लेख नहीं तो मत समझें कि वे हैं ही नहीं । कारण यह कि किसी विषयान्तर बात का उल्लेख न होने से वह पदार्थ अथवा विषय है ही नहीं, ऐसा मानना ठीक नहीं ।

वेदान्त दर्शन में एक सूत्र इस प्रकार है :—

न विलक्षणत्वादस्य तथात्वं च शब्दात् ।। (वे०–द०—२-१-४)

(अस्य) इस कार्य जगत् के । (न विलक्षणत्वात्) विलक्षण न होने से (तथात्व) वैसा ही होने से और वेद प्रमाण से । यही सिद्ध होता है कि (जड़त्व प्रकृति से है) । जड़त्व को अंग्रेजी में inertia' कहते हैं ।

कार्य जगत् में प्रकृति के गुणों से विलक्षणता न होने से यह सिद्ध होता है कि प्रकृति जगत् का उपादान कारण है । उपादान कारण के गुण कार्य में होते हैं । जैसे मिट्टी के गुण घड़े में पाये जाते हैं । प्रकृति जड़ है और जड़ जगत् में भी जड़त्व उपस्थित है । इस कारण प्रकृति जड़ जगत् का कारण है ।

कार्य और कारण में सैद्धान्तिक समानता रहती है । कारण है प्रकृति । इसके जड़त्व गुण को कार्य जगत् में उपस्थित होने से प्रकृति इसका कारण है । प्रकृति से यह विलक्षण नहीं । इस कारण इसका उपादान प्रकृति है ।

कार्य जगत् में भी कार्य तो होता है, परन्तु वह कार्य चेतन तत्त्व की भांति नहीं होता । चेतन तत्त्व में ईक्षण गुण माना है । ईक्षण गुण का अभिप्राय है कर्म के काल, देश और दिशा (direction and discretion) का निश्चय करने वाला । उदाहरण के रूप में, प्राणी में जीव चेतन तत्त्व है । अतः

जीव प्राणी के किसी भी ऐसे कार्य का देश, काल और दिशा निश्चय करता है जो कार्य करने की सामर्थ्य उसमें है । एक मनुष्य के सामने भोजन रखा है । प्राणी वह भोजन कब खायेगा, कहाँ बैठ कर खायेगा और उसमें से कौन से पदार्थ खायेगा, यह निश्चय जीव करता है । इसी कारण जीव में ईक्षण शक्ति मानी जाती है ।

कार्य जगत् में भी कार्य तो होते हैं, परन्तु उनके कार्य का काल, देश और दिशा जगत् स्वयं निश्चय नहीं करता । इस कारण कार्य जगत् चेतन तत्त्व नहीं है । यह जड़ है ।

सूत्रकार ने इसे इस प्रकार प्रकट किया है :—

अभिमानिव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम् ॥ वे० द०—२-१-५

(अभिमानव्यपदेशस्तु) अभिनय करने वाले की भांति इसके कार्य हैं। (विशेषानुगतिभ्याम्) विशेष गति में कार्य करने में ।

कार्य जगत् में प्रत्येक पदार्थ की एक विशेष गति होती है । वह पदार्थ उस गति को ऐसे करता जाता है कि जैसे मंच पर नाटककार सूत्रधार के आदेशाधीन करता है । वह उसमें देश, काल और दिशा का निश्चय नहीं करता । यह निश्चय करने वाला परमात्मा है ।

अतः यह स्पष्ट है कि वेदान्त दर्शन में भी जगत् को तीन मूल पदार्थों की उपज माना गया है । इन सबको एक मानने वाले भी इस देश में उपस्थित हैं। वे अपने को अद्वैतवादी कहते हैं। अद्वैतवादियों में प्रमुख माने जाते हैं आदि शंकराचार्य । वे अपने मत को वेदान्त दर्शन में प्रतिपादित कहते हैं। परन्तु हमने यह प्रकट करने का यत्न किया है कि वेदान्त दर्शन, जिसे अद्वैतवादी अपने मत का एक महान् ग्रन्थ मानते हैं, उसमें भी केवल परमात्मा को ही इस जगत् का मूल कारण नहीं माना गया। परमात्मा को निमित्त कारण माना है । प्रकृति को उपादान कारण और जीवात्मा को इस जगत् का भोक्ता कहा है ।

श्री स्वामी शंकराचार्य जी इन सूत्रों के अर्थ का अनर्थ कर अपना पक्ष सिद्ध करते रहते थे । प्रायः सब स्थानों पर यह सिद्ध किया जा सकता है कि आपने अशुद्ध अर्थ और उस पर मिथ्या विवेचना की है । लेख में स्थानाभाव के कारण केवल एक उदाहरण यहां देते हैं ।

एक सूत्र है—

इतरव्यपदेशाद्धिताकरणादिदोषप्रसक्तिः ॥ (वे० द०—२-१-२१)

(इतर) दूसरे अर्थात् परमात्मा से अन्य । (व्यपदेशात्) परमात्मा कहने से

(हिताकरणादि) हित इत्यादि न करने का (दोष प्रसक्तिः) दोष प्रसक्त अर्थात् दोष का आरोप होता ।

अभिप्राय यह है कि जगत् के उपादान कारण और जीव को भी परमात्मा मान लेने से दोष यह आ जायेगा कि परमात्मा अहित करने वाला हो जाएगा।

स्वामी शंकराचार्य जी ने इस सूत्र को पूर्व पक्ष में कहा है। आप कहते हैं :—

अन्यथा पुनश्चेतनकारणवाद आक्षिप्यते। चेतनाद्धि जगत्प्रक्रियायामाश्रीयमाणायां हिताकरणादयो दोषाः प्रसज्यन्ते।

(श० भाष्य—सूत्र० २-१-२१)

इसका अर्थ है—चेतनवाद (परमात्मा से ही सब जगत् बना है) पर प्रकरणान्तर से पुनः आक्षेप किया है। चेतन ही जगत् की सृष्टि को आश्रयण करने पर हित न करने का दोष आरोपित होता है।

वास्तव में यह सूत्र आक्षेप नहीं। यह वस्तु स्थिति का वर्णन है।

स्वामी जी कहते हैं कि इस आक्षेप का उत्तर अगले सूत्र में है। अगला सूत्र है :—

अधिकं तु भेदनिर्देशात् ॥ (वे० द०—२-१-२२)

(भेद निर्देशात्) भेद दिखाने से (इतर से), (अधिक तु) परमात्मा तो बड़ा है।

अर्थ यह है कि इतर जो पूर्व के सूत्र में कहे हैं, वे परमात्मा से भिन्न हैं। दोंनों में स्पष्ट भेद दिखाई देता है। कर्म इतर (जीवात्मा) करता है। हित-अहित उसके करने का फल है। परमात्मा तो महान् है। वह कर्म नहीं करता।

परन्तु स्वामी जी पूर्व (२-१-२१) को पूर्व पक्ष मान कर उसके उत्तर में कहे सूत्र का अर्थ इस प्रकार करते हैं :—

तुशब्दः पक्षं व्यावर्तयति। यत्सर्वज्ञं सर्वशक्ति ब्रह्म नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावं शारीरादधिकमन्यत्, तद्वयं जगतः स्रष्टृ ब्रूमः। न तस्मिन्हिताकरणादयो दोषाः प्रसज्यन्ते। (श०-भाष्य—सूत्र—२-१-२२)

अर्थात्—'तु' शब्द पूर्व पक्ष की व्यावृत्ति करता है। इसे जो सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, नित्य, शुद्ध, बुद्ध और युक्त स्वभाव ब्रह्म शरीरी (जीव) से अधिक माना जाता है, उसे हम जगत् का स्रष्टा कहते हैं। उसमें हित न करने का दोष नहीं लगता। (शेष पृष्ठ २२ पर)

अस्तित्व की रक्षा

स्वामी विद्यानन्द 'विदेह'

सनातनधर्म के महान् विद्वान् संन्यासी, श्री स्वामी गुरु चरणदास जी ने गत ६ नवम्बर को रामलीला मैदान, नयी दिल्ली में महर्षि दयानन्द को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये बड़े दर्द-भरे शब्दों में कहा था—दिल्ली में परमात्मा के नौ [६] अवतार हैं। एक माता जी मत चला है जिसके अनुयायी शराब पी-पीकर माता की आरती करते हैं। अन्य अनेक नये अवतार और सम्प्रदाय हिन्दू जाति की प्रतिष्ठा को नष्ट कर रहे हैं। आर्यसमाज ही इस अभिशाप से हिन्दू-जाति को मुक्त कर सकेगा, ऐसी श्री स्वामी जी की ध्वनि थी। स्वामी जी ने आगे चलकर कहा था, 'अकेला आर्यसमाज वा अकेला सनातन धर्म हिन्दू जाति को रोग मुक्त करने में सफल न होगा। दोनों को मिलकर कार्य करना होगा।' कौन है जो श्री स्वामी जी से इस विषय में असहमत होने की मूर्खता करेगा?

हिन्दू-जाति की रक्षा के अनेक कार्य हैं जिनका क्रियान्वयन आर्यसमाज तथा सनातनधर्म के सम्मिलित रूप से और समान प्लेटफॉर्म से, बिना किसी आपत्ति के हो सकता है। स्वामी जी के इस कथन से मैं सर्वथा सहमत हूं कि आर्यसमाज तथा सनातन धर्म के प्लेटफॉर्मों [मंचों] की विलगता समाप्त होनी चाहिये। शास्त्रार्थ आर्यसमाज के प्रचार कार्य का एक प्रमुख अंग है। वर्तमान युग की पुकार है कि शास्त्रार्थों का प्रयोग अब हिन्दू-भिन्न वर्गों के साथ ही हो। सनातनधर्म के विद्वान प्रायः आर्यसमाज की वेदी से बोलते हैं और वे ध्यान रखते हैं कि वे कोई ऐसी बात न कहें जिससे आर्यसमाज की मान्यताओं से विरोध होता हो। वैसे ही सनातन धर्म-मन्दिरों में आर्यसमाज के सभ्य-सभ्या बोलते हैं और वे इस बात की सावधानी बरतते हैं कि वहां वेद का सन्देश देते हुये कटाक्षपूर्ण तथा हृदयहीन कोई वचन न बोले जायें। दोनों की मान्यताओं में कतिपय विषयों में विचार-भिन्नता है, जिसका समाधान स्नेहपूर्ण मंडनात्मक ढंग से होता रह सकता है। विदेशी सम्प्रदायों के साथ बेशक

आर्यसमाज को घनघोरता के साथ पं० रामचन्द्र देहलवी की-सी शैली से शास्त्रार्थ करने ही चाहियें। हिन्दुओं में जितने सम्प्रदाय हैं, उन सभी को, आर्यसमाज तथा सनातनधर्म के संयुक्त प्रयास से एकत्व के सूत्र में पिरोने का लक्ष्य दोनों के ध्यान में जमा रहना है। भेद बहुत थोड़े हैं और समानतायें सुपर्याप्त से भी कहीं अधिक हैं।

सनातनधर्म और आर्यसमाज—दोनों एक ही हैं। दोनों के पूर्वज समान हैं। दोनों का इतिहास अभिन्न हैं। परम्परा, संस्कृति तथा सभ्यता के स्रोत समान हैं। जाति समान [**आर्य** जाति] है। राम आर्य थे। कृष्ण आर्य थे। हिन्दुस्थान पाकिस्तान के सभी निवासी, इतिहास और रक्त के नाते से, आर्य हैं। खान अब्दुल गफ्फार खां डँके की चोट कह रहे हैं कि पखतून तथा अफगान सभी आर्य जाति के वंशों में से हैं। फिर भी सम्प्रदाय-परिवर्तन के कारण अन्य कोई अपने को आर्य न मानें तो न मानें, भारत के सनातनधर्मी तो अपने को आर्य मानते हैं और मानेंगे। आर्यसमाज का तो वैदिक लक्ष्य ही है **कृण्वन्तो विश्वमार्यम्**—विश्व को आर्य बनाना।

हिन्दू-जाति के इन दोनों वर्गों को अभिन्नता के साथ संयुक्त करके ही भारत का आर्यकरण सम्भव होगा। दोनों की अभिन्न साधना से ही भारत में धर्म-राज्य की प्रस्थापना और आर्य राष्ट्रीयता की प्रसाधना की जा सकेगी। सनातनधर्म के सभी उदार विद्वान् तथा नेता मुक्तकण्ठ से आर्यसमाज की कर्मक्षमता का लोहा मानते हैं। उनके धर्मस्थानों की रक्षा तक आर्यसमाज ने की है। कर्मक्षमता आर्यसमाज की अमित है तो सनातनधर्म के साधन अनन्त हैं। साधनों के बिना अनेक साधनीय साधनायें असिद्ध पड़ी हुई हैं। दोनों की विलगता को सलगता में किस प्रकार परिणत किया जाये, इस पर प्रकाश डाला जाना अनिवार्यतः आवश्यक है। **

वेद में मरुत का स्वरूप

श्री रामशरण वसिष्ठ

वेदों में कई मन्त्रों में मरुत का वर्णन आता है, जो बहुत अद्भुत है। इस शब्द के कई अर्थ हैं। कई मन्त्रों में यह परमात्मा का वाचक है। किसी मन्त्र में यह एक दैविक शक्ति का वाचक है और किसी स्थान पर यह योद्धा के अर्थ वाला है। स्वामी दयानन्द जी ने मरुत के अर्थ मनुष्य भी किये हैं। इस कारण वेद के पाठकों को इसका यथार्थ ज्ञान आवश्यक है। नहीं तो वह भूल में पड़ जायेगा। कारण यह है कि वेद में शब्दों के अर्थ धातु के अनुसार होते हैं। अब हम कुछ मन्त्रों का उदाहरण देकर इस पर प्रकाश डालने का यत्न करेंगे, जिससे यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

मरुत के अर्थ हैं वायु अथवा मनुष्य। यह मृ धातु और उत् प्रत्यय से बना है। मरने वाला, मारने वाला और वेग वाला----ये गुणों में होते हैं। कई मन्त्रों में ईश्वरवाचक है और कही कहीं चुम्बक का।

यास्काचार्य अपनी पुस्तक निरुक्त में (११-१३) लिखता है कि जब मरुत चलते हैं तो वह शब्द करते हैं। वह शीघ्रगामी हैं। मरुत लोहे की चीजों को अपनी ओर खींचते हैं। (ऋ०-१-८८-५)

मरुत के अर्थ तूफान के भी हैं। वह बादलों को घेर घार कर लाते हैं। बादलों में चमक करते हैं। वर्षा उनके कारण होती है। वर्षा कराने में वह इन्द्र के सहायक हैं जैसे निम्नलिखित मन्त्रों में है। (ऋ०—१-१६४-४७) सूर्य की तपस से जलों की भाप बनती है, वायु और सूर्य की किरणें भाप को ऊपर ले जाती हैं। मरुत उनको मेघ बनाते हैं। मरुत मेघों में गरज़ और चमक उत्पन्न करते हैं और वर्षा करते हैं। (ऋ०--१-८७-२)

कई मन्त्रों में उसकी उपमा योद्धाओं से की है। वह अस्त्रों से सुसज्जित होकर चलते हैं। (ऋ०--१-८५-७) उससे पृथिवी कांपती है। उसकी गति बहुत शीघ्र है। वह शब्द करते हैं। अलंकारिक रूप से उनके रथ सुनहरी कहे हैं। मरुत के अर्थ कई मन्त्रों में योद्धा के किये जाते हैं, जैसे सेना के तुल्य चलने का वर्णन (ऋ०—५-५७-६, ५-५२ में) भली प्रकार आता है।

जब इन्द्र ने वृत्र को मारा जो वर्षा को रोके हुए था, उस समय मरुत उसके सहायक थे। वास्तव में यह मेघों में बिजली का असर और तूफ़ान

है जो वर्षा करते हैं। मरुतों से पृथिवी के भूकम्प भी आते हैं। ऋ—१–३७–८, १–८५–१ व २–३३–१ में आया है कि—

मरुतों को रुद्र व अग्नि का पुत्र बताया है और पृथिवी को माता कहा है। जिसका भाव है कि मरुत एक दैविक शक्ति है जो अग्नि के परमाणुओं से बनी है और जो सृष्टि के आरम्भ से कार्य कर रही है। उसको मकनातीसी शक्ति भी कहते हैं। उसका केन्द्र ध्रुव है जो मकनातीस का केन्द्र है जहां से उसकी लहरें चलती हैं। यह लहरें बड़े वेग से चलती हैं। ध्वनि करती हैं। वह पृथिवी से द्यु लोक तक चलती हैं। उनका अस्तित्व बहुत लाभदायक है। यह संसार में अपना कार्य करती रहती हैं। इस शक्ति का वर्णन पं० भगवद्दत जी ने अपनी पुस्तक "Creation of the universe" में विस्तारपूर्वक किया हैं। उनको अन्तरिक्ष के पुरुष भी कहा है। (ऋ०—१–११०–६)। उनकी लहरें वायु मण्डल में चक्कर काटती रहती हैं। मरुतों की अपनी किरणें हैं। ये सात प्रकार की हैं। हर एक प्रकार की सात सात शाखायें हैं। (ऋ०–६–४७–८) इनकी किरणें सीधी नहीं चलतीं। (ऋ०—४–१४–४) सृष्टि के उत्पति काल में मरुतों ने पृथिवी को फैलाने का काम किया (ऋ०—१०–६०–९)। मनुष्य मकनातीस शक्ति से कई। काम ले सकता है। वह बड़ी लाभदायक भी है।

गीता (१०–२१) में कहा है कि मैं मरुतों में मरीची के तुल्य हूँ। इसका तात्पर्य है कि मरुतों में सबसे उतम मरीची मरुत है। मरुत जल और वायु के परमाणुओं से मिलकर कई काम करते हैं। (ऋ०—१–३१–१)

मरुतों के रथ सुनहरी हैं (ऋ०—१–६४–११)। जब बादलों में बिजली चमकती है, एक प्रकाश की लकीर सी बनती है। वायु को मरुतों का रथी कहा गया है। (ऋ०—५–५८–७)। मरुतों का लाभ यजु० ३३–४५ में और ऋ०—५–५३–१० में बताया है। मरुत प्रकाश करते हैं (ऋ०–१–१९–८)। यह पावका अग्नि के गुण रखते हैं।

यह सूर्य के प्रकाश में भी सहायक हैं। (ऋ०—१–८७–६) उनकी विचित्र लीला है। (ऋ०—१–१६८–२) वह सब दूर दूर तक जाते हैं। (५–५७–३)। नारा नाम के मरुत सूर्य तक जाते हैं। इनका प्रकाश स्वतः ही है। इनके कारण मकनातीसी सुई उत्तर की ओर रहती है। उनके गुणों को जानकर मनुष्य बहुत लाभ उठा सकता है। वेद के पाठकों को मरुत के अर्थो का ध्यान रखना चाहिये।

●●

अन्तर्राष्ट्रीय हलचल

श्री आदित्य

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत की स्थिति अति विचित्र है। इसकी स्थिति 'न तीतर न बटेर' वाली है। भारत की जो दुर्दशा रबात में हुई है वह सर्व विदित है। भारत को रबात सम्मेलन का निमन्त्रण मिला ही नहीं था। इसका अर्थ यह है कि इस सम्मेलन के संयोजक भारत को उसमें बुलाना नहीं चाहते थे; परन्तु भारत ने सम्मेलन में उपस्थित होने की मांग की। यह स्वीकृति तो मिल गयी, परन्तु जब भारत का प्रतिनिधि वहां पहुंचा तो उसे इस सम्मेलन में भाग लेने नहीं दिया गया। यहां तक कि भारत के प्रतिनिधि को उस नगर में अतिथि के रूप में भी स्वीकार नहीं किया गया। उसे वहां होटल में पीने का पानी तक नहीं मिला। अतः अपमानित हो प्रतिनिधि महोदय वहां से लौट आये।

ऐसा व्यवहार उचित ही था। कारण यह कि वह सम्मेलन मुसलमान देशों का था और भारत किसी भी दृष्टि से एक मुसलमान देश नहीं है। दूसरा कारण यह कि भारत सरकार स्वयं अनुभव करती थी कि यह सम्मेलन मुसलमानों का है। अतः भारत सरकार ने अपना प्रतिनिधि भी एक मुसलमान भेजा था। वह किसी हिन्दू को वहां भेजने का साहस नहीं कर सकी थी। तीसरी बात यह कि सम्मेलन के अजेण्डा पर एक विषय यह भी था कि मुसलमान देशों का एक अन्तर्राष्टीय संगठन बनाया जाये।

अतः भारत सरकार को न तो उस सम्मेलन में बैठने का निमन्त्रण मिलना चाहिये था और न ही भारत सरकार को वहाँ जाने की इच्छा प्रकट करनी चाहिये थी।

भारत सरकार अपने को गुट निर्पेक्ष मानती है। निर्पेक्ष होते हुए भी भारत के प्रधानमन्त्री श्री जवाहर लाल ने एक गुट निर्माण करने का यत्न किया था। इसका प्रथम सम्मेलन बाण्डुंग में सम्पन्न हुआ था। उसमें दल को संगठन का रूप देने के लये इसका एक सिद्धान्त निश्चय किया गया था। यह

सिद्धान्त पंचशील था।

यह गुट निर्दलीय सदस्यों का होने से एक अस्तित्वहीन अस्तित्व (non-existant existance) ही हो सकता था। इसका अन्त भी इसी प्रकार हुआ, जैसे किसी अस्तित्वहीन अस्तित्व का हो सकता था।

निर्दलीय दल के एक सदस्य चीन ने एक अन्य निर्दलीय दल के सदस्य भारत पर आक्रमण कर दिया और निर्दलीय भारत ने दलीय लोगों से सहायता माँग ली। उन दलीय राज्यों में से इंगलैण्ड और अमेरिका ने सहायता देनी स्वीकार कर शस्त्रास्त्र देने आरम्भ कर दिये। अमेरिका ने अपने सातवें बेड़े को सहायतार्थ बंगाल की खाड़ी की ओर भेज भी दिया। इस समय चीन ने हिमालय लांघ कर वहां के दर्रों के भारत की ओर के द्वारों पर अधिकार कर युद्ध बन्दी की घोषणा कर दी।

निर्दलीय भारत ने उस घोषणा को स्वीकार कर युद बन्दी पर शुक्र किया और शस्त्रास्त्र तो लिये, परन्तु कह दिया कि अमेरिका से सक्रिय सहयोग मांगा नहीं गया था और न ही सातवां बेड़ा बंगाल की खाड़ी में आना चाहिये।

परिणाम यह हुआ कि अमेरिका नाराज हो गया। हम रूस की ओर झुक गये। निर्दलियों में से लंका और मिश्र ने चीन और भारत में सुलह कराने का यत्न किया। दोनों पक्षों को युद्ध पूर्व के स्थान पर जाने की सम्मति दी। चीन ने सम्मति नहीं मानी। भारत मुख देखता रहा।

पुनः सन १९६५ में पाकिस्तान ने कश्मीर और भारत पर आक्रमण कर दिया। यू० एन० ओ० ने युद्ध बन्दी करा दी और रूस ने ताशकन्द का समझौता करा दिया। यह समझौता भारत मानने के लिये तैयार हो गया, परन्तु पाकिस्तान इसके लिये तैयार नहीं था।

इस पर भी हम निर्दलीय हैं। हमारा विचार है कि यह नीति मिथ्या है।

१९६२ से पूर्व भूमण्डल के राज्यों में दो बड़े दल थे। एक पश्चिमी यूरोप और अमेरिका का दल था। यह नाटो कहलाता था। दूसरा 'वारसा' संधि वाला दल था। इसमें पूर्वी यूरोप के कम्युनिस्ट देश थे। चीन यद्यपि वारसा संधि में नहीं था, तो भी यह कम्युनिस्ट गुट्ट के साथ था। सोवियत रूस चीन की सब प्रकार से सहायता करता था। चीन भी वही कुछ करना चाहता था जो रूस चाहता था। कुछ छोटे छोटे राज्य थे जो अपने को निर्दलीय कहते थे, परन्तु चीन के दुमछल्ले थे।

निर्दलीय भारत ने एक अन्य दल बनाने का यत्न भी किया। यह एफ्रो-एशिय

दल था। यह दल भी चल नहीं सका। इसके असफल होने में कारण बना रूसी चीनी प्रतिस्पर्धा। कुछ इसमें रूस को सम्मिलित करना चाहते थे और कुछ उसके विरोधी थे। इस पर झगड़ा हो गया और दल टूट गया।

इस सब के लिखने का प्रयोजन यह है कि निर्दलीय भारत दल बनाने का यत्न करता रहा है। अन्तर केवल यह कि यह दल बनाना चाहता है बिना सैन्य शक्ति के। यह सम्भव नहीं।

भारत के अपने पास दल संगठित करने की सैन्य शक्ति नहीं थी। न ही इसने सैन्य शक्ति संग्रह करने का यत्न किया। परिणाम यह हुआ कि न तो दल बना और न ही हम किसी दल से सैन्य शक्ति प्राप्त करने की अवस्था में हुए।

यह बात अभी तक विवादस्पद बनी हुई है कि किसी देश के साथ सैन्य संधि की जाये अथवा न? भूमण्डल में बलशाली से बलशाली राज्य भी अपने साथ अन्य राष्ट्रों को लिये बिना अपना अस्तित्व भय से रहित नहीं मानते। इस समय बलशाली राज्य है अमरीका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस और चीन। ये भी अपने साथी बनाये हुए हैं। फ्रांस ने अमरीका से नाराज हो अपने को नाटो से पृथक् कर लिया है। इस पर भी यह सर्वथा अश्वस्त नहीं और नाटो संधि के दूसरे देशों से सम्बन्ध बनाये हुए है। फ्रांस यह भी यत्न करता रहता है कि पश्चिमी यूरोप का अमरीका से स्वतन्त्र गुट्ट बन जाये। इसमें वह अभी सफल नहीं हुआ। हमारा विचार है कि वह तब तक सफल नहीं होगा जब तक कि फ्रांस की सैन्य शक्ति रूस अथवा अमरीका के बराबर नहीं हो जाती और यह कभी भी नहीं होगी। अमरीका और रूस बहुत बड़े देश हैं। उनके साधन बहुत अधिक हैं। फ्रांस उतने बड़े देश और साधनों का स्वामी नहीं हो सकता।

जर्मनी यदि द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व के समान संगठित हो जाये तो यह एक दल अपना बना सकता है जो रूस, चीन अथवा अमेरिका के बराबर हो सकता है।

भारत मुख से तो कहता है कि यह निर्दलीय देश है, परन्तु यह जब रूस और अरब देशों के सैनिक अभियानों को पसन्द करता है तो मानना पड़ेगा कि यह इन देशों के गुट्ट में सम्मिलित होना चाहता है। भारत अरब देशों का आरम्भ से पक्ष लेता रहा है। इसराईल के साथ भारत की बोलचाल भी नहीं है। रूस के तो भारत चरण-चुम्बन करता रहता है। जब रूस ने चैकोस्लोवाकिया पर आक्रमण किया था तो भारत मौन रहा। इसने रूस की निन्दा करने का साहस नहीं किया। इसके विपरीत वियतनाम में

अमरीका के व्यवहार की यह सदा निन्दा करता रहा है।

भारत की यह नीति अमरीका तथा इंग्लैण्ड को तो पसन्द है ही नहीं, साथ ही यह अरब, रूस और उत्तरी वियतनाम को भी पसन्द नहीं। किसी सम्भावित भीर के समय संसार में कोई भी देश सहायता तो दूर रहो, इसके साथ सहानुभूति भी नहीं रखेगा।

यह कही जाने वाली तटस्थता की नीति अव्यवहारिक और अधर्मयुक्त भी है।

भारत अपना एक पृथक गुट्ट भी बना सकता है और यदि यह गुट्ट स्वहित के स्थान न्याय और सत्य पर आधारित हो तो सर्वश्रेष्ठ है। हमारा अभिप्राय है कि स्वहित न्याय-संगत और धर्मयुक्त होना चाहिये और इसी के आधार पर हमें मित्र संग्रह करने का यत्न करना चाहिये। परन्तु सत्य, धर्म और न्याय भी शक्ति के बिना नहीं चल सकते। अतः दल बनाने से पूर्व एक सुदृढ़ सैनिक शक्ति बनानी चाहिये।

भारत ऐसा कर सकता है। इसके पास प्राकृतिक साधन और जन शक्ति इतनी है कि यह इन बीस वर्षों में प्रथम श्रेणी का सैन्य शक्ति वाला राज्य बन सकता था।

यह नहीं हो सका। इसका कारण यह है कि भारत की (देश और विदेश) नीति अयोग्य और इतिहास से अनभिज्ञ लोगों दारा निर्माण की हुई है।

(पृष्ठ १४ का शेष)

एक स्वर में स्वामी जी मानते हैं कि परमात्मा जीव से बड़ा है। तो फिर दोनों में भेद हो गया? अर्थात् जीव परमात्मा नहीं। परमात्मा जगत् का स्रष्टा भी है और जीव नहीं है। यदि यह है तो फिर पूर्व पक्ष सिद्ध हो गया।

परन्तु इस सूत्र में जो (भेद निर्देशात्) लिखा है और जिसका अर्थ है कि दोनों में भेद देखा जाता है, इस का अर्थ करते हुए स्वामी जी कहते हैं कि यह कल्पित है।

अतः यह सिद्ध है कि वेदान्त दर्शन में जीवात्मा और प्रकृति का अस्तित्व भी स्वीकार किया गया है। स्वामी जी कल्पित शब्द अपने पास से लगा रहे हैं। सूत्र में ऐसा नहीं है।

अद्वैतवादियों का मत शास्त्र में अनवकाश मात्र है। अर्थात् प्रकृति और जीवात्मा के होने का विरोध नहीं है।

देश की बदलती राजनीति

श्री प्रणव प्रसाद

जब से कांग्रेस दल में फूट पड़ी है, देश की राजनीति ने एक नयी करवट ली है।

यह फूट कांग्रेस के दुर्बल होने पर ही पड़ी है। सन् १९६७ के सामान्य निर्वाचनों के परिणामों से यह दुर्बलता प्रकट होने लगी थी। देश के कई राज्यों में कांग्रेस का बहुमत नहीं रहा था। इस पर भी कांग्रेस के अतिरिक्त कोई अन्य दल इतना सुदृढ़ नहीं हुआ था जो अपनी सरकार बना सकता। केवल दो राज्यों (तमिलनाड और दिल्ली) में विपक्षी दल पूर्ण बहुमत में चुने गए थे और वहां अभी तक भी वे बहुमत में हैं; परन्तु अन्य राज्यों में संयुक्त मोर्चे बने और वे गिरे। वे पुनः सगठित हुए और फिर गिरे।

केन्द्र में कांग्रेस बहुमत में थी। इस पर भी बहुमत पूर्व के बहुमत से क्षीण हो चुका था। सन् १९६७ के उपरान्त कांग्रेस एक बार भी संविधान में संशोधन नहीं करा सकी। कारण यह कि संविधान संशोधन के लिए कांग्रेस के पास पर्याप्त बहुमत नहीं था। इसे दूसरे दलों से सहायता की आवश्यकता थी। यही कारण है कि लगभग तीन वर्ष पूर्व न्यायाधीश सुब्बाराव द्वारा नागरिकों के मूलाधिकारों में परिवर्तन करने पर लगा प्रतिबन्ध सरकार हटवा नहीं सकी। कांग्रेस सरकार ने एक विपक्षी दल के सदस्य श्री नाथ पाई से इस विषय में संशोधन कराना चाहा था, परन्तु इस पर बहुमत प्राप्त न हो सकने के कारण यह संशोधन हो नहीं सका।

अब केन्द्र के कांग्रेस दल में भी फूट पड़ गयी है और सत्ताधीश कांग्रेस का संसद में बहुमत नहीं रहा। कांग्रेस के इस धड़े को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए विरोधी धड़ों में से कम्युनिस्टों, डी० एम० के० तथा अकाली और कई निर्दलियों से सहायता लेनी पड़ी है।

रबात सम्मेलन में सरकार द्वारा भाग लेने पर प्रस्तुत एक विरोधी प्रस्ताव पर सरकार इन सब दलों को साथ लेकर ही अपना अस्तित्व बचाने में सफल हुई थी।

इसके उपरान्त कांग्रेस के दोनों धड़ों के पृथक् पृथक् सम्मेलन हुए हैं।

कांग्रेस संगठन का सम्मेलन अहमदाबाद में हुआ और कांग्रेस सत्ताधीशों का बम्बई में। यह कहा जाता है कि अधिक प्रतिनिधि बम्बई में गए थे।

हमें प्रधानमन्त्री के धड़े के इस दावे पर कि उनके पक्ष में कांग्रेस के अथिक प्रतिनिधि पहुंचे, विस्मय नहीं हुआ। यह सर्वथा आशा के अनुकूल ही था। बेईमानों के टोले में से बेईमानी के पक्ष में अधिक सदस्य आने स्वाभाविक ही हैं।

यह ठीक है कि प्रधानमन्त्री अपने को प्रगतिशील और घोर समाजवादी सिद्ध कर रही हैं। उन्होंने देश के आर्थिक प्रपंच कर अधिक और अधिक राज्याधिकार जमाने का आश्वासन भी दिया है। यों तो दूसरा धड़ा भी अपने को समाजवादी और यथा सम्भव राज्याधिकार बढ़ाने की बातें करता है, परन्तु प्रधानमन्त्री का धड़ा बाज़ी मार गया है।

यह सब कुछ स्वाभाविक है। दोनों धड़े जब एक थे, तब अपने को समाज़वादी कहते थे। वे यह भी मानते थे कि सरकार द्वारा देश की पूर्ण अर्थ-व्यवस्था और जीवन-चर्या पर राज्याधिकार ही समाजवाद है। अब दो धड़े हो जाने पर भी उद्देश्य तो दोनों का एक ही है। अन्तर केवल दौड़ में आगे और पीछे का है।

सत्तारूढ़ धड़ा अब प्रदेश राज्यों में अपने धड़े को प्रबल बनाने का यत्न कर रहा है। इसके लिए वह अपनी पूर्ण सत्ता और शक्ति का प्रयोग कर रहा है। अभी तक तमिलनाड, मैसूर और गुजरात में विपक्षी संगठन धड़े का बहुमत है। बंगाल में भी कांग्रेस के इस धड़े के अधिक सदस्य प्रतीत होते हैं। अन्य राज्यों में यह धड़ा दुर्बल प्रतीत होता है।

यह स्थिति तो कांग्रेस की है; परन्तु देश की स्थिति यह है कि सत्तारूढ़ धड़ा कम्युनिस्टों की सहायता के आश्रित होने से समाजवाद और कम्युनिज़्म में अन्तर को कम करने का यत्न करने लगा है। जहां तक आर्थिक व्यवस्था का सम्बन्ध है, दोनों में अन्तर कुछ भी नहीं है। दोनों देश की पूर्ण अर्थ-व्यवस्था पर राज्याधिकार स्थापित करना चाहते हैं। परंतु कम्युनिस्ट तो अर्थ-व्यवस्था के साथ-२ व्यक्ति के दैनिक और व्यक्तिगत व्यवहारों पर भी राज्य का नियन्त्रण चाहते हैं। वर्तमान परिस्थिति से यह समझ में आने लगा है कि सत्तारूढ़ धड़ा भी ऐसा करना चाहेगा। अन्यथा उसकी कम्युनिस्टों के सहयोग और सहायता की आशा चिरकाल तक नहीं चल सकेगी।

इन सब परिवर्तनों का प्रभाव अन्य राजनीतिक दलों पर भी हुआ है। वे राजनीतिक दल जिन्होंने सत्तारूढ़ कांग्रेसी धड़े को सहयोग दिया है, वे उस

सहयोग की कीमत मांगने लगे हैं। पंजाब ने चण्डीगढ़ की मांग पर बल देना आरम्भ कर दिया है। हरियाणा ने भी इस धड़े को सहयोग दिया है; अतः वह भी चण्डीगढ़ पर हठ कर रहा है।

महाराष्ट्र ने सहयोग दिया है और प्रधानमन्त्री महाराष्ट्र और मैसूर के भीतर विवाद का निर्णय नहीं कर सकीं। आन्ध्र ने प्रधानमन्त्री का पक्ष लिया है तो तैलंगाना का मामला ठण्डा पड़ गया है।

इन राज्यों के अतिरिक्त वे निर्दलीय भी, जिन्होंने कांग्रेस के सत्तारूढ़ धड़े की सहायता की है, कई प्रकार की रियायतें चाहते हैं। और ऐसा कहा जा रहा है कि प्रधानमन्त्री उनको भी प्रसन्न करने का यत्न कर रही हैं।

इस सब पद, अर्थ और सत्ता के लोभियों की भाग-दौड़ के अतिरिक्त कम से कम तीन विपक्षी दलों में भी हलचल मची है। ये दल हैं जनसंघ, स्वतन्त्र दल और संसोपा। इन तीनों दलों ने निर्णय किया है कि वे प्रधानमंत्री के धड़े की सहायता नहीं करेंगे, वरंच उसे गिराने का यत्न करेंगे। इसमें कारण यह है कि ये तीनों धड़े कम्युनिज्म के विरोधी हैं। जनसंघ और संसोपा के विरोध का कारण है प्रधानमन्त्री का कम्युनिज्म के साथ सहयोग और स्वतन्त्र दल का विरोध कुछ अंशों में तो इसका कम्युनिस्टों से सहयोग है और कुछ अंशों में समाजवादी अर्थ-व्यवस्था है।

यह एक हर्ष की बात है कि जनसंघ ने इस वर्ष अपने पटना अधिवेशन में अपने समाजवाद के घोष में राज्य-नियन्त्रण को अनुचित बताने का यत्न किया है। यह अभी संकेत मात्र ही है, परन्तु यदि सद्बुद्धि का प्रवाह चलता रहा तो शीघ्र ही समाजवाद और लोक कल्याण में अन्तर इन को पता चलने लगेगा।

एक बात जनसंघ के इस अधिवेशन में और हुई है। वह यह कि इसके प्रवक्ताओं ने भारतीयकरण मुसलमानों के लिए ही न रख कर सब अभारतीयों के लिए स्वीकार कर लिया है। यह भी विरोधी कांग्रेसी धड़े से सहयोग की आशा में किया गया है। अन्यथा जब भारतीयकरण साम्प्रदायिक स्थिति के सन्दर्भ में कहा जाता है तो वह केवल मुसलमानों के लिए ही कहा जा सकता है। साम्प्रदायिक दंगे वही करते हैं और उन दंगों में जब उनकी पिटाई अधिक होती है, तब फिर चीख-पुकार भी वे ही करते हैं। पहले पाकिस्तान ज़िदाबाद के नारे लगाते हैं और पीछे रो-धोकर अपने को निरीह सिद्ध करने का यत्न करते हैं। यह तो कोई भी इन्कार नहीं कर सकता कि मुसलमानों में

भी इस प्रकार के लोग कम संख्या में ही हैं, परन्तु वे अपने को मुसलमान घोषित करते हैं और कोई ज़िम्मेदार मुसलमान उनकी निन्दा अथवा उनको पकड़वाने का यत्न नहीं करता। इस कारण जब भारतीयकरण का प्रश्न उपस्थित होता है तो मुसलमानों का नाम लो अथवा न लो, वे समझ लिए जाते हैं।

भला किसी हिन्दू को नेपाल ज़िन्दाबाद कहते भी किसी ने सुना है ? यहां तक कि खुले आम कम्युनिस्ट भी रूस ज़िन्दाबाद नहीं कहते। चीन पक्ष के कम्युनिस्ट "माऊ" के गुण तो गाते हैं, पर नारा चीन जिन्दाबाद का नहीं लगाते।

यह वस्तु स्थिति है, परन्तु हम प्रसन्न हैं कि जनसंघ ने अपने विचारों को इस विषय में भी स्पष्ट करने का यत्न किया है। सब अराष्ट्रीय तत्त्वों के राष्ट्रीयकरण का आयोजन है। इसमें कुछ नये विचार के अकालियों को भी सम्मिलित किया जा सकेगा।

स्वतन्त्र दल के प्रधान श्री मसानी ने जनसंघ के भारतीयकरण के विषय में संशय प्रकट किया है। इससे यह पता चलता है कि मसानी साहब अभारतीयों को भारत में सहन करने के लिए तैयार हैं।

कुछ भी हो, सब दलों में एक अन्य प्रवृत्ति उत्पन्न हुई है। वह यह कि देश में सब दलों का ध्रुवीकरण की ओर ध्यान गया है।

यह ठीक है कि अभी समीप भविष्य में देश में दो दल बनने की आशा नहीं है। यह इस कारण कि देश के राजनीतिक नेताओं के मस्तिष्क अभी तक निर्मल नहीं हुए। उदाहरण के रूप में मसानी साहब ने भारतीयकरण का यह अर्थ लगाया है कि यह (Modernism) आधुनिकता के विपरीत हैं अर्थात् उन्होंने इसे नैकटाई, कॉलर पहनने, मेज-कुर्सी पर बैठने अथवा आधुनिक विज्ञान पढ़ने तथा प्रयोग करने के विपरीत माना है।

हम क्षमा मांग कर यही कहेंगे कि यह गदले मस्तिष्क का ही परिणाम है। श्री मुरार जी देसाई ने भी ध्रुवीकरण को अस्वीकार करते हुए कहा है कि यह मानव प्रकृति के विपरीत है

हमारा मत इसमें यह है कि यह भी मस्तिष्क में विभ्रम (confusion) के कारण ही है। ध्रुवीकरण का अभिप्राय यह कदापि नहीं कि सब एक मत हो जायें।

प्रत्येक दल अथवा व्यक्ति अपने सिद्धांत और अपनी नीतियां, सीमित

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

योगीराज श्रीकृष्ण

श्री सचदेव

जरासंध से युद्ध :

कृष्ण की प्रथम समर जरासंध के साथ ही हुई थी। जरासंध कंस का श्वसुर था। उसकी दोनों लड़कियों से कंस का विवाह हुआ था। अतः जब कंस मारा गया तो दोनों लड़कियां अपने पिता को कहने लगीं कि मथुरा को विजय कर वहाँ कंस के हत्यारे कृष्ण को मार कर मथुरा पर कंस के पुत्र का राज्य स्थापित कर दे।

जरासंध ने मथुरा पर इक्कीस अक्षौहिणी सेना के साथ आक्रमण कर दिया। श्रीकृष्ण और बलराम दोनों ने मिलकर इस सागर तुल्य उमड़ती सेना को मार मार भगा दिया।

जरासंध को पराजित करना सुगम नहीं था। वह बहुत ही बलशाली और क्रूर राजा था। उसका राज्य मगध देश में था और वह सम्पूर्ण पूर्व दक्षिण और मध्य भारत पर अपना राज्य स्थापित कर चुका था। उस समय जरासंध की कितनी शक्ति थी, इसका उल्लेख महाभारत में भली भान्ति दिया है।

यादवों का जरासंध से सत्रह बार युद्ध हुआ। प्रत्येक बार बहुत क्षति उठाकर जरासंध लौट जाता था, परन्तु वह पुनः कुछ ही मास उपरान्त उतनी ही बड़ी सेना को लेकर लौट आता था।

इस पर भी प्रत्येक बार यदुवंशी दुर्बल होते जाते थे। अतः जब अठारहवीं बार जरासंध ने मथुरा पर आक्रमण किया तो यदुवंशियों ने नित्य की खच-खच से बचने के लिये मथुरा को सदैव के लिये छोड़ दिया। इसे पराजय तो नहीं कह सकते, परन्तु एक अति बलशाली और बहुत बड़े भू-भाग के स्वामी के सत्रह बार दांत खट्टे करने पर उसके सामने से हट जाना ही कहा जा सकता है। इसे पलायन कहा जा सकता है।

श्री कृष्ण ने स्वयं अपने मथुरा छोड़ने की कहानी युधिष्ठिर को सुनायी थी। युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करना चाहता था। यज्ञ की योजना बनाने के लिये युधिष्ठिर ने कृष्ण से सम्मति ली थी। उस सम्मति में कृष्ण

ने यह सब बताया था।

राजसूय यज्ञ जिस उद्देश्य से किया जाता है, उसको पूर्ण करने के लिये भूमण्डल के समस्त राजाओं को अनुकूल बनाने की आवश्यकता रहती है। सब प्रतिकूल राजाओं का अग्रणी जरासंध था।

इस संदर्भ में श्री कृष्ण ने जरासंध की शक्ति का वर्णन किया। वह इस प्रकार है :—

ऐलवंश्याश्च ये राजंस्तथैवेक्ष्वाकवो नृपा:।
तानि चैकशतं विद्धि कुलानि भरतर्षभ ॥

(महा भा० सभा०-१४-५)

इला तथा इक्ष्वाकु वंश में राजाओं के एक सौ से अधिक कुल विद्यमान हैं। इन कुलों में इस समय ययाति वंश के भोजवंशियों का बहुत विस्तार है। वे बढ़ते बढ़ते चारों दिशाओं में फैल गये हैं। सभी क्षत्रिय उनके आश्रय हो गये हैं। इन भोजवंशियों पर भी जरासंध ने अपना प्रभाव जमा कर स्वयं सम्राट पद ले लिया है और सबका सिरमौर बन गया है। जरासंध बलशाली तो है ही; साथ ही वह –

सोऽवनिं मध्यमां भुक्त्वा मिथोभेदममन्यत।
प्रभुर्यस्तु परो राजा यस्मिन्नेकवशे जगत् ॥
स साम्राज्यं महाराज प्राप्तो भवति योगत:।
तं स राजा जरासंधं संश्रित्य किल सर्वश:।
राजन् सेनापतिर्जात: शिशुपाल: प्रतापवान्।
तमेव च महाराज शिष्यवत् समुपस्थित: ॥
वक्र: करूषाधिपतिर्मायायोधी महाबल:।
अपरौ च महावीर्यौ महत्मानौ समाश्रितौ ॥
जरासंधं महावीर्यं तौ हंसडिम्भकावुभौ ॥

(महा भा० सभा० १४-६, १०, ११, १२)

जरासंध मगध देश का राजा होने के कारण इस स्थिति में है कि आस-पास के राजाओं में फूट डालने की नीति से उन पर शासन करता है। इस प्रकार पूर्ण क्षेत्र को अपने वश में किये हुए है।

वह अपनी राजनीतिक चालों से सम्राट बन बैठा है और प्रतापी राजा शिशुपाल उसका सेनापति बन गया है और वह जरासंध के शिष्य के समान कार्य कर रहा है।

इसी प्रकार माया युद्ध करने वाला करुण राज दंत-वक्र जरासंध के

सामने हाथ जोड़ खड़ा रहता है। हंस और डिम्मक दो महापराक्रमी योद्धा थे। उन्होंने भी उसके सम्मुख आत्म समर्पण कर दिया।

राजा भगदत्त जो पुर और नरक नाम के राज्यों का राजा है और जिनके पास अनन्त सेना है, वह यद्यपि महाराज पाण्डु के मित्र थे, अब जरासंध के अधीन हैं। वह उसके मामने नत मस्तक रहते हैं।

एक राजा पौण्ड्रक हैं। वह मेरी नक्ल कर शंख, चक्र और गदा धारण किये रहते हैं। वह अपना नाम भी वासुदेव रखे हुए हैं। वह भी जरासंध के शिष्यों में ही हैं।

चौथाई भूमण्डल के स्वामी मेरे श्वसुर भीष्मक भी अपनी अपार सेना के साथ जरासंध के सखा हैं। मेरे श्वसुर होते हुए भी सहायता जरासंध की करते रहे हैं। ये अपने कुल की ओर ध्यान न दे जरासंघ को बलशाली जान उसी का पक्ष लेते हैं।

इस प्रकार श्री कृष्ण ने जरासंध की शक्ति का संक्षिप्त वर्णन किया। इस सबका यहां वर्णन करने का हमारा अभिप्राय यह है कि इतने बलशाली विस्तृत राज्य का स्वामी इतनी अधिक संख्या में तथा बलशाली राजाओं के साथ मथुरा जैसे छोटे से राज्य पर बार बार आक्रमण करता रहा और प्रत्येक बार भारी हानि उठा लौट जाता रहा। यह चमत्कार श्री कृष्ण और बलराम के शौर्य, सेना गठन की चतुराई और उन दिव्य अस्त्र-शस्त्रों के आश्रय ही होता रहा था, जो कृष्ण के पास थे।

अठारहवीं बार एक अन्य कठिनाई उपस्थित हो गयी थी। जरासंध की सहायता के लिये यवनराज काल पवन भी अपनी असंख्य सेना लेकर मथुरा पर चढ़ आया था।

अत: जन संख्या और सेना की संख्या अपार होने के कारण मथुरावासी विवश हो मथुरा को छोड़ भाग खड़े हुए। सब यदुवंशियों ने गुप्त मन्त्रणा की और उसमें निश्चय किया। यह श्री कृष्ण के अपने शब्दों में इस प्रकार है :—

ततो वयं महाराज तं मन्त्रं पूर्वमन्त्रितम्।
संस्मरन्तो विमनसो व्यपयाता नराधिप ॥
पृथक्त्वेन महाराज संक्षिप्य महतीं श्रियम्।
पलायामो भयात् तस्य ससुतज्ञातिबान्धवा ॥
इति संचिन्त्य सर्वे स्म प्रतीचीं दिशमाश्रिता:।
कुशस्थलीं पुरीं रम्यां रैवतेनोपशोभिताम् ॥

ततो निवेशं तस्यां च कृतवन्तो वयं नृप ॥
(महा भा० सभा० १४—४७ से ५०)

अर्थात्-- जब हमने देखा कि जरासंध को समाप्त करना सम्भव नहीं और हमने अपनी शक्ति क्षीण होती देखी तो हमने सम्मति की और उसके अनुसार सब धन-सम्पद उठाकर मथुरा से चले गये और कुश स्थली में रैवत पर्वत से सुशोभित पुरी में जाकर अपना निवास स्थान बना लिया ।

इस प्रकार मथुरा कंस वंशजों को मिल गयी ।

इन युद्धों से श्री कृष्ण की महिमा बहुत बढ़ गयी थी और इस महिमा को देखकर ही पौण्ड्रक कृष्ण की नक्ल कर रहने लगा था ।

श्री कृष्ण का विवाह

यह ठीक है कि कृष्ण और यादव मथुरा को बचा नहीं सके, परन्तु उनकी पराजय नहीं हुई थी । इस बात की ख्याति भूमण्डल भर में फैली हुई थी । यहां तक कि देव लोक तक कृष्ण की महिमा पहुंच गयी थी ।

भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी का स्वयंवर हो रहा था । उस स्वयंवर में भारत भर के नरेश आये हुए थे । श्री कृष्ण की इच्छा इस स्वयंवर में जाने की नहीं थी, परन्तु रुक्मिणी ने श्री कृष्ण के शौर्य की गाथायें सुनीं तो उनसे विवाह की लालसा करने लगी । उसने श्री कृष्ण को सन्देश भेज दिया कि मैं आपको वरना चाहती हूँ, आप स्वयंवर में आइये ।

भीष्मक जरासंध का मित्र था । इस कारण कृष्ण के सामने समस्या उत्पन्न हो गयी कि वह रुक्मिणी के आह्वान का तिरस्कार करे अथवा उससे विवाह करे । प्रत्यक्ष में जाकर वह भीष्मक की सभा में बैठ नहीं सकता था । उसे वहां कोई बैठने भी न देता । अतः कृष्ण ने रुक्मिणी-हरण का निश्चय किया । वह छुपे छुपे भीष्मक की राजधानी में पहुंचा और जब रुक्मिणी जयमाला पहनाने के लिये सभा में जा रही थी तो वह उसे अपने रथ पर बैठा चला आया । रुक्मिणी का भाई रुक्मी सेना ले कृष्ण के पीछे भागा, परन्तु युद्ध में अकेला ही कृष्ण रुक्मी को परास्त कर द्वारिका में ले आया । वहां उससे विवाह कर सुखपूर्वक रहने लगा ।

उस काल में क्षत्रियों के लिए विवाह की इच्छा करने वाली लड़की के अपहरण करने की प्रथा थी । यह तब होता था, जब स्वयंवर में लड़की के वरने में उसके सम्बन्धी बाधा डालते थे । इसके अतिरिक्त पुरुषों के एक से अधिक विवाह की भी प्रथा थी । कृष्ण ने भी दो विवाह किये थे । श्रीकृष्ण की दूसरी पत्नी का नाम सत्यभामा था ।

राजा दम घोष के पुत्र शिशुपाल से रुक्मिणी के विवाह की योजना थी। लड़की और लड़के के परिवार वालों में निश्चय था, परन्तु रुक्मिणी के कृष्ण को पत्र भेज बुला लेने से योजना विफल हो गयी। परिणाम स्वरूप भीष्मक, रुक्म और शिशुपाल सब कृष्ण के शत्रु हो गये। इस पर भी वे कृष्ण का कुछ बिगाड़ नहीं सके।

इन्द्र की सहायता

इन्द्र देव लोक का राजा था। हिमालय से उत्तर की ओर किरात देश था और उससे उत्तर की ओर देवलोक। देवलोक के राजा का पद इन्द्र था। देवलोक का मुख्य पुरोहित ब्रह्मा कहा जाता था। त्रेतायुग तथा उससे पूर्व देवताओं का राज्य बहुत बलशाली था। अपने दिव्य अस्त्रशस्त्रों के कारण और ज्ञान-विज्ञान के कारण ये भूमण्डल पर राज्य करते थे। त्रेतायुग में इनका ह्रास आरम्भ हुआ। ये दुर्बल पड़ने लगे थे। त्रेता के अन्त और द्वापर के आरम्भ तक देवलोक एक बहुत ही दुर्बल देश रह गया था। यद्यपि ये इस समय भी ज्ञान-विज्ञान के ज्ञाता थे, परन्तु शक्ति से ये बहुत हीन हो गये थे। द्वापर युग में इनका और भी ह्रास हुआ और कृष्ण के काल में अर्थात् द्वापर के अन्त तक यह एक भले, परन्तु दुर्बल लोगों का राज्य रह गया था।

देवेन्द्र मनुवंशीय राज-महाराजों के कर्मों में अपनी कूट नीति से हस्तक्षेप करने की योग्यता नहीं रखते थे।

जिन दिनों कृष्ण की योद्धा के रूप में ख्याति भूमण्डल में फैली हुई थी, हिमालय के पार्श्व में एक भौमासुर नाम का राजा राज्य करता था। उसने अपना राज्य किरात देश पर भी जमा रखा था। यह देवताओं को भी कष्ट दिया करता था। एक बार भौमासुर ने देवेन्द्र की माता अदिति के कुण्डल चुरा लिये। इन्द्र ने उन कुण्डलों को वापिस माँगा, परन्तु भौमासुर ने वे नहीं लौटाये। जब इन्द्र स्वयं उससे लड़कर कुण्डल ले नहीं सका तब इन्द्र को कृष्ण का पता चला। अतः एक दिन वह अपने विमान पर बैठ द्वारिकापुरी में जा पहुँचा। द्वारिकानिवासियों को जब पता चला कि इन्द्र आया है तो बहुत धूम धाम से उसका स्वागत किया गया।

इन्द्र ने अपने आने का कारण कृष्ण को बताया। उसने कहा, "हमारे पड़ोस में एक अति बलशाली और विशाल सेना का स्वामी भौमासुर रहता है। वह समय समय पर देवलोक में भी घुस आता है और हमारी मूल्यवान वस्तुयें और देव कन्याओं को उठाकर ले जाता है। अब वह माता अदिति के कुण्डल ले गया है। देवताओं की संख्या कम है, अतः हम उससे युद्ध करने की

सामर्थ्य नहीं रखते ।

हमने सुना है कि तुमने जरासंध की विशाल सेना को सत्रह बार पराजित किया है, अतः मैं तुमसे इस काम के लिए सहायता लेने आया हूं ।

कृष्ण ने विचार कर कहा, मैं भौमासुर के विषय में जानता हूं । वह अति दुष्ट व्यक्ति है । वह माँगने से तो कुण्डल देगा नहीं । इस कारण उससे युद्ध करना पड़ेगा । उसका देश पहाड़ी क्षेत्र है । वहां किसी बड़ी सेना को ले जा सकना सम्भव नहीं । अतः यदि आप चाहते हैं कि मैं उसको पराजित कर उससे कुण्डल ला सकूँ तो दो बातें करिये । एक तो मुझे सुदर्शन चक्र युद्ध में प्रयोग करने के लिये मिल जाये और दूसरा गरूड़ विमान मिल जाये, जिससे मैं वायु मार्ग से उसके देश पर आक्रमण कर सकूँ ।

इन्द्र मान गया और ये दोनों वस्तुयें कृष्ण को मिल गयीं । कृष्ण ने भौमासुर के देश पर आक्रमण कर दिया । कृष्ण अकेला ही था और वह गरूड़ पर सवार हो सुदर्शन चक्र लेकर युद्ध करने निकल पड़ा ।

(पृष्ठ २६ का शेष)

विषयों पर निश्चय कर अन्य विषयों पर अपने घटकों को स्वतन्त्र मत रखने की स्वीकृति ध्रुवीकरण के अन्तर्गत सम्भव है । दलों को यह बताना पड़ेगा कि वे सीमित सिद्धान्त और नीतियां ही वास्तविक बात है और शेष बातों में अवसर पड़ने पर नीति निश्चय की जा सकती है ।

इसके साथ यह भी होगा कि जब एक पक्ष की सरकार होगी तो वह सरकार देश को भी उन सीमित सिद्धान्त और नीतियों पर ही बांधेगी और शेष बातों के लिए नागरिकों को स्वतन्त्र विचार रखने की स्वीकृति देगी ।

राजनीति राज्य सम्बन्धी कामों के लिए है और राज्य समाज के बहुत ही सीमित क्षेत्र का स्वामी होता है । जहां राज्य ने नागरिकों के पूर्ण जीवन पर छाने का यत्न किया, वहां वह तानाशाही राज्य हो जायगा ।

जब कोई राजनीतिक दल व्यापक क्षेत्र पर, सब नागरिकों को उस व्यापक क्षेत्र में बाध्य करना चाहता है तो वह दल तानाशाही चलाना चाहता है ।

षड्यन्त्र ! प्रधानमन्त्री की हत्या का नहीं— संघ की हत्या का

श्री शिवकुमार गोयल

देश के कुछ समाचार पत्र सनसनीखेज, रोमाँचक तथा रोमांटिक समाचार छापकर सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करना लक्ष्य समझते हैं, तो कुछ पत्रों ने अपनी विचारधारा से विरोध रखने वाले नेताओं व दलों के विरुद्ध निराधार, भ्रामक व सनसनीखेज आरोपों से युक्त समाचार प्रकाशित करना अपना लक्ष्य बनाया हुआ है। उनकी यह धारणा बन चुकी है कि बार बार किसी दल विशेष पर झूंठे आरोप लगाने से गोबिल्स का 'झूंठ को १०० बार दोहराने से वह सत्य बन जाता है' फार्मूला सत्य हो जायेगा।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ देश का अग्रणी सांस्कृतिक व राष्ट्रीय संगठन है। राष्ट्रीयता की भावना को दृढ़ करके अराष्ट्रीय तत्वों से देश की सुरक्षा उसका प्रमुख लक्ष्य है। अतः रूस, चीन, अमेरिका व पाकिस्तान आदि देशों से प्रेरणा प्राप्त करने वाले, 'माओत्से तुंग ज़िन्दाबाद' व 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' का नारा लगाकर चीनी सेना को मुक्ति सेना की संज्ञा देने वाले तत्वों के षड्यन्त्र में संघ एक बहुत बड़ी बाधा है। इसलिये ऐसे तत्वों का संघ पर कुपित होना तथा उसे किसी भी प्रकार के षड्यन्त्र द्वारा हानि पहुंचाने व समाप्त कर देने का प्रयत्न करना स्वाभाविक ही है।

गाँधी हत्याकांड की आड़ में

अपने जन्मकाल से ही राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ अराष्ट्रीय तत्वों के लिये सिर दर्द बना रहा है। जिस समय भारत विभाजन के फलस्वरूप देश के विभिन्न भागों में मुस्लिम लीग की प्रेरणा से हिन्दुओं पर अत्याचार किये गये,

हिन्दुओं को मौत के घाट उतारा गया, उनकी सम्पत्ति को लूटा गया, ऐसे समय में संघ के स्वयं सेवकों ने शक्तिभर आक्रान्ताओं से संघर्ष करके लोगों के जान-माल की रक्षा की। कश्मीर पर कबाइलियों के आक्रमण के समय प्रो० बलराज मधोक के नेतृत्व में संघ के स्वयं सेवकों ने जान हथेली पर रखकर जो कार्य किया वह सर्वविदित है। उन्होंने जान खतरे में डालकर व वेश बदलकर पाकिस्तान के अनेक षड्यन्त्रों का भण्डाफोड़ कराया, जिससे कश्मीर की रक्षा में बहुत योग मिला।

दिल्ली में पाकिस्तानियों के गुप्त षड्यन्त्र को, जान खतरे में डालकर संघ के स्वयं सेवकों ने न केवल खोज निकाला, वरन् समय पर तत्कालीन गृहमन्त्री सरदार पटेल को अवगत कराया। इसीलिये सुप्रसिद्ध गाँधीवादी डा० भगवान दास ने कहा "यदि संघ के स्वयं सेवक समय पर इस षड्यन्त्र का पता न लगाते तो अनेक नेताओं की हत्या कर दिल्ली में पाकिस्तानी परचम फहराने की मुस्लिम लीगी चाल सफल हो गई होती।"

यद्यपि राष्ट्रीय स्वय सेवक संघ के स्वयं सेवकों ने निस्वार्थ भाव से ही यह कार्य किये किन्तु देश की जनता ने संघ का बड़ा आभार माना। संघ की लोकप्रियता बढ़ती गई, किन्तु कम्युनिस्टों को संघ की लोकप्रियता आंख में कांटा जैसी खटकती रही। कम्युनिस्ट समाचार पत्र संघ पर ऊल-जलूल आरोप लगाते रहे, किन्तु जनता संघ के साथ थी।

फिर अकस्मात ३० जनवरी १९४८ का वह दिन आया, जब महात्मा गाँधी की हत्या हो गई। कम्युनिस्टों के लिये यह एक मनचाहा अवसर था। उन्होंने सत्ताधारी स्थानीय कांग्रेसियों से सांठगांठ कर संघ की लोकप्रियता को समाप्त करने के लिये एक कुटिल षड्यन्त्र रचा। भारत में गृहयुद्ध फैलाने के इच्छुक कम्युनिस्टों ने संघ की हिन्दू शक्ति पर अनेक मोर्चों से हमले करवाये।

किन्तु शुद्ध हिन्दू तत्त्वज्ञान और समाज के प्रति असीम प्रेम की भावना से संघ के स्वय सेवकों ने उस आपत्ति को न केवल सहा, वरन वे कार्य करते हुये आगे बढ़ते रहे और आज पुनः सम्पूर्ण देश में केवल राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ही ऐसी संस्था है जो राष्ट्रीय एकता तथा शक्ति का मुख्य आधार है। अब यह तो स्पष्ट ही है कि कम्युनिस्ट संघ की बढ़ती शक्ति से परेशान हैं। वे हर हालत में संघ को बदनाम करने का जी तोड़ प्रयत्न कर रहे हैं। गोविन्दसहाय जन्म भर संघ को गालियां देते रहे।

सुभद्रा जोशी एण्ड कम्पनी

गोविन्दसहाय तो अब नहीं रहे किन्तु प्रख्यात कम्युनिस्ट नेतृ व रूस के संकेतों पर चलने वाली तथा काँग्रेस में घुसी श्रीमती सुभद्रा जोशी ने संघ व हिन्दुत्व को जड़मूल से मिटा डालने की जिम्मेवारी अपने कन्धों पर ली। सुभद्रा जी ने 'साम्प्रदायिकता विरोधी मोर्चा' खोला और 'सेकुलर डेमोक्रेसी फोरम' की स्थापना कर संघ, हिन्दू महासभा तथा हिन्दुत्व के विरोध का अभियान चलाया। मुस्लिम लीग, मुस्लिम मजलित से मशवरात तथा 'जमायते इस्लामी' जैसी प्रत्यक्ष साम्प्रदायिक संस्थाओं के विरुद्ध एक भी शब्द न निकालकर उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि उनका उद्देश्य साम्प्रदायिकता की आड़ में कम्युनिस्टों के लिये सिर दर्द संघ के विरुद्ध कार्य करना ही है। सुभद्राजी को इस षड्यन्त्र में प्रख्यात कम्युनिस्ट विचारधारा की नेतृ श्रीमती अरुणा आसफ़अली, श्री के० डी० मालवीय, प्रख्यात रूस समर्थक पत्र 'ब्लिट्ज' आदि का भी सहयोग प्राप्त हो गया।

सुभद्रा जोशी की ऐसी संस्थाओं ने पूरी शक्ति लगाकर संघ विरोधी ट्रैक्ट प्रकाशित किए हैं, जिनमें संघ पर निराधार व भ्रामक आरोप लगाये गए हैं। श्रीमती अरुणा आसफअली के पैट्रीयाट व लिंक ने तो झूठे व भ्रामक समाचार छापने में कुछ हद तक 'ब्लिट्ज को को भी मात कर दिया है। ये रूस समर्थक कम्युनिस्ट पत्र आये दिन कोई न कोई झूठे व भ्रामक समाचारों को छापकर रूस को प्रसन्न करते रहते हैं। उनका उद्देश्य यही रहता है कि वे रूस के नेताओं के हृदय में यह भावना उत्पन्न कर दें कि कम्युनिस्ट के मार्ग में बाधक तत्वों को हटाने के लिए हम गोबिल्स के पथ का अनुगमन करने में पूरी शक्ति से संलग्न हैं।

एक तीर से दो शिकार

२० दिसम्बर को 'पैट्रीयाट' व इन्दिराजी के पत्र दैनिक 'नेशनल हैरल्ड' ने इसी प्रकार का एक भ्रामक समाचार 'प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी की हत्या का षड्यन्त्र' शीर्षक से प्रकाशित कर भ्रम फैलाने का प्रयास किया। गोबिल्स के पंथानुगामी इन पत्रों ने हत्या के षड्यन्त्र का आरोप लगाया राष्ट्रीय स्वय सेवक संघ पर और हथियार बनाया एक पुराने क्रान्तिकारियों के संगठन को। उसमें लिखा कि पुराने क्रान्तिकारियों ने अपनी बैठक में इस प्रकार के षड्यन्त्र पर चिन्ता व्यक्त की है।

उक्त क्रान्तिकारी संगठन के एक सदस्य तथा काकोरी षड्यन्त्र के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री मन्मथनाथ गुप्ता ने एक वक्तव्य प्रसारित कर इस प्रकार के

समाचार को भ्रामक व निराधार बताकर खेद प्रकट किया है। अनेक संसद सदस्यों ने गृहमंत्री से इस तथाकथित षड्यन्त्र की जांच की भी मांग की है तथा असत्य पाये जाने पर कुछ पत्रों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही का सुझाव दिया है। कुछ लोगों को यह अशका मालूम पड़ती है कि कहीं इस समाचार के प्रकाशन के उद्देश्य में कोई गंभीर व भयानक षड्यन्त्र तो नहीं है। कहीं कम्युनिस्ट एक तीर से दो शिकार वाली नीति अपनाकर प्रधानमंत्री व संघ दोनों के खात्मे का षड्यन्त्र तो नहीं रच रहे हैं ? कहीं उन्होंने ही स्वयं प्रधानमंत्री के लिए कोई षड्यन्त्र रचकर सत्ता पर कब्जा करने का प्लाट तो बनाया है ? यह प्रश्न दिमाग को बार-बार झकझोर रहा है। यदि ऐसा है तो इस षड्यन्त्र के कार्यान्वयन से पूर्व ही उस पर से पर्दा हटा दिया जाना ही आवश्यक है।

संघ का लक्ष्य

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ स्वप्न में भी इस प्रकार के किसी षड्यन्त्र पर सोच नहीं सकता। सरसंघचालक परमपूजनीय श्री गुरु जी अनेक बार स्पष्ट कर चुके हैं कि "संघ का ध्येय राष्ट्र की सुरक्षा व समृद्धि है, हिंसा व विरोध का उसमें कोई स्थान नहीं है।" संघ की राष्ट्रनिष्ठा १९६२ के चीनी आक्रमण व १९६५ के पाक आक्रमण के समय सबके सम्मुख प्रकट हो चुकी है। अनेक प्रमुख कांग्रेसी नेता भी संघ की राष्ट्रभक्ति की प्रशंसा कर चुके हैं। फिर भी उस पर लाँछन लगाना व निराधार आरोप लगाना किसी बिदेशी शक्ति को प्रसन्न करने व उसके संकेत पर यह सब कार्य करने का परिचायक है।

ऐसी स्थिति में कम्युनिस्टों व मुस्लिम फिरकापरस्तों के गठबन्धन के फलस्वरूप किसी भी संभावित षड्यन्त्र से सावधान रहने की आवश्यकता है।

समाचार समीक्षा

प्रयाग उच्च न्यायालय का सराहनीय पग :

हिन्दुओं के इस देश में, जो कि बाईस वर्ष पूर्व अंग्रेजों के चुंगुल से मुक्त होकर स्वराज्य का सुखोपभोग कर रहा है, जब कोई उचित कार्य होता सा दृष्टिगोचर होता है तो मन को ढाढस बंधता है और मन प्रफुल्लित हो जाता है। ऐसा ही एक करणीय कर्त्तव्य पिछले मास प्रयाग उच्च न्यायालय ने किया। प्रयाग उच्च न्यायालय ने प्रथम बार हिन्दी में निवेदित याचिका को स्वीकार किया। परिणाम स्वरूप केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल को अपनी जनवरी के सप्ताहान्त की बैठक में राज्य सरकारों को उच्च न्यायालय में क्षेत्रीय भाषाओं के प्रयोग की छूट देने का निर्णय करना पड़ा है।

मन्त्रिमण्डल ने सरकारी भाषा अधिनियम के खण्ड ७ पर अमल में हुई प्रगति पर विचार करते हुए यह निर्णय किया। मन्त्रिमण्डल में आम राय यह थी कि केन्द्र को इस मामले में किसी भी रूप में नहीं पड़ना चाहिये। राज्य सरकारों पर यह फैसला छोड़ दिया जाना चाहिये कि उनके अधिकार क्षेत्रों में स्थित उच्च न्यायालय कब से क्षेत्रीय भाषाओं में अपने फैसले देना शुरू करेंगे। ऐसी स्थिति में अंग्रेजी या हिन्दी में फैसले की प्रति मुहैया करनी पड़ेगी।

देवी इन्दिरा के मुसाहिबों और जगजीवनराम के शिष्यों से इससे अधिक की अपेक्षा करना आकाश कुसुम तोड़ने के समान है। पाठकों को स्मरण होगा कि गांधी शताब्दि वर्ष के उपलक्ष्य में राजधानी में आयोजित सर्वदलीय सभा में जब एक हिन्दी प्रेमी संसद सदस्य ने गांधी स्मृति के प्रसंग में श्रोताओं को स्मरण कराते हुए कहा कि गांधी को जब हम स्मरण करते हैं तो हमें उसके राम को तथा गांधी द्वारा प्रतिपादित हिन्दी को नहीं भूलना चाहिये तो प्रधानमन्त्री देवी इन्दिरा ने तुरन्त अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए रोषपूर्ण शब्दों में कह दिया कि गांधी की भाषा हिन्दी नहीं हिन्दुस्तानी थी। ऐसे दुःशासनों के शासनकाल में जब कोई उचित पग उठाता है तो उसकी सराहना ही करनी चाहिये। प्रयाग उच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीश श्री काटजू के इस पग की जितनी भी सराहना की जाय वह अल्प है। जब तक लोगों को

उनकी भाषा में न्याय सुलभ नहीं होगा तब तक वह न्यायोचित नहीं कहलायेगा। स्वतन्त्रता के २३ वर्ष पूर्ण होने को आ रहे हैं और स्थिति यह है कि न्याय की भाषा तो अंग्रेजी है ही, वादी प्रतिवादियों को अपने आवेदन, याचिकायें आदि कागजपत्र भी अपनी भाषा में देने की छूट नहीं। उत्तर प्रदेश ने इस दिशा में मार्ग-दर्शन किया है। आशा है अन्य हिन्दी राज्यों के न्यायालयों में भी इसका अनुकरण किया जाएगा।

माननीय न्यायाधीश श्री काटजू ने हिन्दी में याचिका स्वीकार करते हुए जो टिप्पणी दी है वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनका कहना था कि जहां न्यायाधीश प्रार्थियों की मातृभाषा नहीं समझते वहां उन्हें दुभाषिये से काम लेना चाहिये। जनता को अपनी मातृभाषा में अपनी बात कहने के अधिकार से कैसे वंचित किया जा सकता है? यदि सभी प्रदेशों के न्यायाधीश इसी दृष्टिकोण से इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करें तो समस्या का समाधान तुरन्त निकल सकता है। किन्तु दुःख इस बात का है कि भारत के अधिकांश न्यायकर्ता अभी भी अंग्रेजी के व्यामोह में ही पड़े हुए हैं। अंग्रेजी की अनेक कानूनी किताबों का हिन्दी में अनुवाद किया जा चुका है किन्तु उन्हें कोई अधिकारी देखने का कष्ट नहीं करता। मुट्ठी भर न्यायाधीश अपने कष्ट से बचने के लिये कोटि कोटि जनता को कष्ट में डालने से नहीं हिचकते। न्यायालयों में मातृभाषा का प्रयोग भाषा की ही नहीं न्याय की भी समस्या है। न्यायालयों का सारा काम अंग्रेजी में होने के कारण न्याय न केवल महंगा अपितु दुर्लभ भी हो रहा है। वकील और जज परस्पर क्या कह रहे हैं यह बेचारे वादी प्रतिवादी जान ही नहीं पाते। ऐसी स्थिति में वह बहस और बचाव कैसे कर सकते हैं? आशा है भारत की सम्मानित न्यायपालिका इस प्रश्न पर जन कल्याण की दृष्टि से विचार कर न्यायालयों में मातृभाषाओं का चलन प्रारम्भ करेगी।

राष्ट्र-ध्वज का अपमान— राष्ट्र का अपमान :

गणतन्त्र दिवस का उल्लास अभी मनों में ही था कि २८ जनवरी को सहसा जो भी समाचार पत्र हाथ में लिया उसके मुख पृष्ठ पर राष्ट्र-ध्वज के अपमान की घटना अंकित मिली। कौन उत्तरदायी है इस अक्षम्य अपराध के लिये? प्रत्यक्ष रूप से वे व्यक्ति हो सकते हैं, जिन्होंने यह कुकृत्य किया। वे व्यक्ति भी इसके लिये उत्तरदायी हैं जो इन का आयोजन और नेतृत्व कर रहे हैं। आत्मदाह के लिये सन्नद्ध सन्त फतेहसिंह भी इस दोष से अपने को मुक्त नहीं कर सकते। प्रादेशिक प्रशासन इसके लिये पूर्णतया उत्तरदायी है।

इससे बढ़ कर देश तथा देशवासियों की क्या विडम्बना हो सकती है कि

ये सब उत्तरदायी एवं अपराधी तथा दोषी व्यक्ति नेता, आत्मदाही और प्रशासन सभी एक स्वर से इस कृत्य की निन्दा का नाटक कर रहे हैं । हम इसे नाटक के अतिरिक्त और कुछ नहीं कह सकते । राष्ट्रीय ध्वज का अपमान और राष्ट्रीय सम्पत्ति की हानि का यह अक्षम्य अपराध उन सभी पर लगा कर उनकी भर्त्सना करना सभी निष्पक्ष विचारकों का पुनीत कर्तव्य है । पश्चिमी बंगाल में फैली अराजकता देश के कोने-कोने में फैलती जा रही है । इसका निराकरण करना ही होगा ।

गणराज्य दिवस राष्ट्र का महानतम पर्व है और राष्ट्रध्वज भारतीय राष्ट्र की स्वतन्त्रता, प्रभुता, शक्ति तथा गौरव का प्रतीक । यह सभी दलों, सभी जातियों, सभी वर्गों तथा समस्त धर्मावलम्बियों के लिये समानरूपेण सम्मान-नीय, अभिनन्दनीय और वन्दनीय है । इसका असम्मान राष्ट्र का असम्मान है अक्षम्य अपराध है । २६ जनवरी १९७० को अमृतसर, लुधियाना तथा पंजाब के अन्य अनेकों भागों में तथा इम्फाल में कुछ ऐसी घटनायें हुईं जो अत्यन्त खेद पूर्ण, लज्जाजनक, निन्दीय तथा चिन्ताप्रद थीं । समाचार था कि पंजाब के दो नगरों में कतिपय अकालियों ने राष्ट्रध्वज को फाड़ा और कुचला । कुछ अन्य नगरों में अकाली प्रदर्शनकारियों ने गणराज्य दिवस समारोह में नारे लगा कर बाधा डालने की दुश्चेष्टा की । चण्डीगढ़ में पंजाब के मन्त्रियों ने सरकारी तौर पर आयोजित गणराज्य दिवस समारोह का बहिष्कार किया और जिला मुख्यालयों में, जहां मन्त्रियों को झंडे फहराने थे, उपायुक्तों ने झण्डे फहराये । यद्यपि इन पंक्तियों के लिखे जाने तक इन समाचारों का कुछ क्षेत्रों में प्रतिवाद किया गया है और कहा गया है कि कुछ 'अप्रिय घटना' शब्द का प्रयोग प्रतिवादकर्त्ता भी करते हैं, तो स्पष्ट है कि घटना घटित हुई है । और दूसरी ओर न केवल नेताओं और अभिनेताओं ने उक्त घटनाओं पर खेद व्यक्त किया है अपितु आत्मदाही सरदार फतेहसिंह और उनके द्वारा नियुक्त डिक्टेटर सरदार चाननसिंह ने भी इनकी निन्दा की है । अतः सरकारी क्षेत्रों में इनकी लीपापोती का कोई अर्थ नहीं ।

उधर देश के पूर्वांचल में इम्फाल में गणराज्य दिवस समारोह का बहिष्कार करने के लिये हड़ताल आयोजित की गई । मणिपुर को पूर्ण राज्य का दर्जा न देने पर इस प्रकार का रोष व्यक्त किया गया । यद्यपि यह ठीक है कि मणिपुर की जनता में इस बात पर बहुत क्षोभ है कि उनके प्रदेश को अभी तक पूर्ण राज्य का दर्जा नहीं दिया गया है । लेकिन रोष तथा क्षोभ के प्रदर्शन के लिये किसी को ऐसे समारोह तथा राष्ट्र-ध्वज के प्रति असम्मान

व्यक्त करना शोभनीय नहीं और न ही इस प्रकार का कोई अधिकार उनको प्राप्त है। यदि पूर्ण राज्य के दर्जे की प्राप्ति के लिये हड़ताल करना उपयुक्त एवं आवश्यक था तो वह किसी अन्य दिन हो सकती थी।

पंजाब के मन्त्रियों ने गणराज्य दिवस समारोह का बहिष्कार कर जो कर्तव्यच्युति प्रदर्शित की है उसे कोई क्षमा नहीं कर सकेगा। जिन लोगों ने राष्ट्रध्वज का अपमान किया है उचित दण्ड मिलना ही चाहिये। इस प्रकार की प्रवृत्तियां राष्ट्रनिष्ठा को आघात पहुंचाती हैं। भविष्य में इनकी पुनरावृत्ति न हो इसके लिये लोकभावना का जागरण भी अत्यन्त आवश्यक है।

१९६९ की महत्वपूर्ण घटनाएं

डा० जाकिर हुसेन के देहावसान के अनन्तर राष्ट्रपति पद के चुनाव में श्री वराह गिरि वेंकट गिरि की सफलता और उनके साथ कड़े संघर्ष में श्री नीलम संजीव रैड्डी की विफलता स्वयं में महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ कांग्रेस विघटन का आधार भी यही घटना बनती और देश का प्रमुख राजनीतिक दल कांग्रेस दो भागों में विभक्त हो गया। फलस्वरूप शासक कांग्रेस पार्टी आज लोक सभा में अल्पमत में है और विपक्ष "कांग्रेस विरोध" के सिद्धान्त व उसकी व्यावहारिकता पर बहुत गम्भीरतापूर्वक विचार विमर्श कर रहा है। शासक काँग्रेस पार्टी दावा कर रही है कि उसका परिवर्तन करने वाले दल के रूप में पुनर्जन्म हुआ है जबकि विपक्षी नेता केन्द्र में मिली जुली सरकारों के युग की भविष्यवाणी कर रहे हैं।

यद्यपि कांग्रेस विघटन का बीज दल के फरीदाबाद अधिवेशन में ही बोया जा चुका था। उसमें कांग्रेस के अध्यक्ष निजलिंगप्पा और प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी ने परस्पर विरोधी बातें कहीं। मामला गत जुलाई में बंगलौर में काफी बढ़ गया। वहां श्रीमती गांधी के उग्र कार्यक्रम को स्वीकार करने के कुछ घंटे बाद ही कांग्रेस संसदीय बोर्ड में श्रीमती गाँधी द्वारा राष्ट्रपति पद के लिए मनोनीत उम्मीदवार को अस्वीकार कर दिया गया। उसके तुरन्त बाद ही श्रीमती गांधी ने मोरारजी भाई से वित्त मन्त्रालय ले लिया। फलस्वरूप उन्होंने मन्त्रिमण्डल से ही त्यागपत्र दे दिया। श्रीमती गाँधी ने उनका त्यागपत्र स्वीकार कर लिया और साथ ही देश के प्रमुख बैंकों के राष्ट्रीकरण की घोषणा कर दी।

श्रीमती गांधी ने पहले राष्ट्रपति पद के लिए कांग्रेस दल के उम्मीदवार का समर्थन किया, परन्तु कुछ ही दिन बाद उन्होंने अपील प्रसारित कर दी कि मतदान में आत्मा की आवाज का अनुसरण किया जाय। आत्मा की पुकार ने गिरि को शिखर पर चढ़ा दिया। कांग्रेसाध्यक्ष ने श्रीमती गांधी पर अनुशासनहीनता का आरोप लगाया। चह्वाण साहब ने पहल की और कुछ

क्षणों के लिए विवाद टल गया किन्तु तुरन्त ही कांग्रेस के नए अध्यक्ष के चुनाव की मांग ने जोर पकड़ा। सदस्यों ने आवेदित बैठक बुलाने का आग्रह किया। कांग्रेसाध्यक्ष ने प्रधानमन्त्री को दल से निकालने का साहसिक निर्णय लिया। परिणाम स्वरूप तथाकथित आवेदित अधिवेशन हुआ और उसमें श्रीमती गाँधी ने अश्रुपात किया और फलस्वरूप कांग्रेस का विघटन परिपूर्ण हुआ। दिसम्बर में दोनों दलों के पृथक्-पृथक् अधिवेषन हुए और अब चुनाव चिन्ह को हथियाने का संघर्ष चल रहा है।

कुछ अन्य घटनायें भी विगत वर्ष में घटी हैं। वर्ष के प्रारम्भ में मध्यावधि चुनावों के अनन्तर पंजाब और पश्चिमी बंगाल में संयुक्त मोर्चे की दो तरह की सरकारें स्थापित हुईं। बिहार में दो सरकारें बनने और गिरने के बाद राष्ट्रपति का शासन है। मणिपुर में दल बदल के कारण कांग्रेस सरकार गिर गई और आज वहां भी राष्ट्रपति का शासन है। नागालैंड में द्वितीय आम चुनाव हुआ। केरल मार्क्सवादी मुख्यमन्त्री नम्बूदिरीपाद ने भ्रष्टाचार की जांच के लिये विधान सभा में प्रस्ताव पास हो जाने पर त्यागपत्र दे दिया और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के नेता अच्युत मेनन के नेतृत्व में नई सरकार बनी जिसने जनवरी में विधान सभा का सामना कर कुछ समय के लिये स्थायित्व प्राप्त कर लिया है।

पश्चिमी बंगाल के मुख्यमन्त्री को संयुक्त मोर्चे के दलों के बीच में अराजकता के प्रश्न पर दो बार अनशन करना पड़ा है। उन्होंने उपमुख्यमन्त्री ज्योति बसु की खुली आलोचना भी की। परिणामस्वरूप अजय मुखर्जी को अब जान के लाले पड़ने लगे हैं। विधान सभा में जाते हुए उनका घेराव हो गया है धक्कामुक्की की नौबत आ गई। मुख्यमन्त्री को स्वयं अपनी रक्षा का भार लेना पड़ा, किन्तु ज्योति बसु की मौके पर तैनात पुलिस ने मुख्यमन्त्री की सहायता करने से मूक इन्कार कर दिया।

मध्यप्रदेश में दल बदल के कारण कांग्रेस को पुनः सत्ता प्राप्त हो गई है। किन्तु प्रचलित वर्ष प्रारम्भ होते होते वहां 'कीलर काण्ड' जैसा कोई काण्ड हो जाने से सरकार डगमगाने की स्थिति बनती जा रही है।

कांग्रेस में विभाजन के कारण उत्तर प्रदेश में गुप्त मन्त्रिमण्डल का भाग्य अधर से लटका हुआ है। एक बार तो स्वयं गुप्त स्वीकार कर चुके हैं कि उनकी सरकार अल्पमत में है।

पाण्डिचेरी में द्रविड़ मुन्नेत्र कड़घम और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के संयुक्त मोर्चे ने मध्यावधि चुनाव में कांग्रेस से सत्ता हथिया ली है।

असम राज्य के भीतर एक नया राज्य मेघालय बनाने के लिये कदम उठाये गए और जनवरी के प्रारम्भ में उसकी स्थापना की घोषणा भी कर दी गई।

इस प्रकार विगत वर्ष स्वयं में संघर्षों का वर्ष तो रहा ही। वह प्रचलित वर्ष के लिये अनेक समस्यायें भी छोड गया है।

भारत के त्रिदोष (गांधी, सरहदी गांधी और इंदिरा गांधी)

शाश्तवाणी के नवम्बर अंक में हमने इन्हीं पंक्तियों द्वारा अपने पाठकों को बादशाह खान की साम्प्रदायिक तथा देश के लिये अहितकारी गतिविधियों से अवगत कराने का यत्न किया था। हम समझते थे कि सम्भवतया समय रहते खान सम्भल जावेंगे किन्तु 'श्याम रंग राती मीरा'' की भांति कांग्रेस एवं गांधी रंग राती श्रीमती तारकेश्वरी सिनहा को जब यह कहना पड़ जाय कि—"खान साहब जब भारत में आये थे तो गांधी की भाषा बोलते थे किन्तु अब वे मुसलमानों की भाषा बोलने लगे हैं'' तो हमें भी पुनः अपनी लेखनी उठाने के लिये विवश होना पड़ रहा है। खान अब्दुल गफ्फार खां के ये शब्द विशेष उद्धरणीय हैं :—

जब हम आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे तब दुनियां के मुल्कों की नजर में हमारी इज्जत थी। अब तुम्हारे लिये नफरत है, हकारत है। तुम भिखमंगे हो,, तुम आपस में लड़ते हो। तुम हैवान हो हैवान। तुम लोग हिन्दुस्तान के मुसलमानों को खत्म करना चाहते हो। हिन्दुस्तान से निकालना चाहते हो। कहते हो यह हिन्दुस्तान का सियासी और आर्थिक मसला है। लेकिन यह कौन सी सियासत है? यह कौन सी आर्थिक पालिसी है? अब भी एक करोड हिन्दू पाकिस्तान में बैठा है, वो हिन्दुस्तानी मुसलमानों के मुकाबले अच्छी हालत में हैं। पाकिस्तान के अलावा मलेशिया, अफगानिस्तान, ईरान में भी और बहुत से मुल्कों में हिन्दू रहते हैं, अमन चैन से रहते हैं। तिजारत करते हैं। तुम हिन्दुस्तान के मुसलमानों को निकालोगे तो इन मुल्कों से हिन्दू भी निकाले जावेंगे। लोग कहते हैं कि रबात में हकूमत की गलत पालिसी की वजह से हिन्दुस्तान की बेइज्जती हुई। नहीं, अहमदाबाद के फसाद की वजह से हिन्दुस्तान की बेइज्जती हुई। भारत की मुस्लिम मुल्कों से करोड़ों रुपयों की तिजारत है। यह तिजारत बढ़ रही है। हिन्दुस्तानी मुसलमानों पर अगर ज्यादती की गई तो हिन्दुओं की मुस्लिम मुल्कों से तिजारत खत्म हो जायेगी।

खान अब्दुल गफ्फार खां जब से भारत आये हैं तभी से भारत में होने वाले साम्प्रदायिक दंगों के लिये हिन्दुओं को दोषी सिद्ध करने में अपनी समस्त शक्ति का दुरुपयोग कर रहे हैं। उन्होंने भारत सरकार के उस प्रतिवेदन की भी अवज्ञा कर दी है जिसमें कहा गया है कि साम्प्रदायिक दंगों की शुरुआत मुसलमानों की ओर से की जाती है।

* *

संरक्षक सदस्य

१ केवल एक सौ रुपये भेजकर परिषद् के संरक्षक सदस्य बनिये। यह रुपया परिषद् के पास आपकी धरोहर बनकर रहेगा।

संरक्षक सदस्यों को सुविधाएँ—

१ परिषद् के आगामी सभी प्रकाशन आप बिना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। आगामी वर्ष ये पुस्तकें प्रकाशित होंगी—इतिहास में भारतीय परम्पराएँ (मार्च १६७० में); वर्ण व्यवस्था अथवा प्रजातन्त्र (अप्रैल १६७०), राष्ट्रीयकरण (अप्रैल १६७०); ब्रह्म-सूत्र हिन्दी विवेचना (मूल्य २५ ००) अगस्त १६७० एवं कुछ अन्य

२ परिषद् की पत्रिका 'शाश्वत वाणी' आप जब तक सदस्य रहेंगे निःशुल्क प्राप्त कर सकेंगे।

३ परिषद् के पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ आप २५ प्र० श० छूट पर प्राप्त कर सकेंगे। सूची इस अंक में अन्यत्र देखें।

४ जब भी आप चाहेंगे अपनी धरोहर वापिस ले सकेंगे। धन मनी-आर्डर द्वारा भेज सकते हैं।

सदस्यों को परिषद् के पिछले निम्न तीन प्रकाशन बिना मूल्य भेजे जाएंगे।

१ समाजवाद एक विवेचन—ले० श्री गुरुदत्त मू० १.००

२ गांधी और स्वराज्य—ले० श्री गुरुदत्त मू० १.००

३ भारत में राष्ट्र—ले० श्री गुरुदत्त मू० १.००

भारतीय संस्कृति परिषद् के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं शक्तिपुत्र मुद्रणालय दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९० कनाट सरकस नई दिल्ली से प्रकाशित।

मार्च. १६७० वर्ष १०–अंक ३ रजि० क्र० ६६८६/६०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।
ऋ०-१०-१२३·३

विषय-सूची

भारतीय संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता
प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

सम्पादक
अशोक कौशिक

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/६०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१
फोन : ४७२६७

मूल्य
एक अङ्क रु. ०.५०
वार्षिक रु. ५.००

सम्पादकीय

वर्णाश्रम धर्म का व्यावहारिक रूप

इस श्रृंखला में प्रकाशित पूर्व लेखों में, हमने अभी तक यही बताया है कि भारत में व्यापक रूप में अराजकता विराजमान है। हमने अपना मत व्यक्त किया है कि इस अराजकता का मूल कारण राज्य और समाज में प्रजातन्त्रात्मक (डेमोक्रेटिक) विचार पद्धति है।

प्रजातन्त्रात्मक राज्य पद्धति तो अन्य देशों में भी प्रचलित है। इस विषय में हमारा यह मत है कि उक्त पद्धति से उन देशों में भी न्यूनाधिक मात्रा में अराजकता उत्पन्न हो रही है। न्यून अथवा अधिक का कारण वहां की परम्परायें हैं। तदपि उन सब देशों में जनता की प्रवृत्ति अराजकता की ओर है, इसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

हमने अपने पूर्व प्रकाशित लेखों में प्रजातन्त्रात्मक पद्धति का विकल्प वैदिक वर्णाश्रम पद्धति बतायी है। प्रजातन्त्रात्मक और वर्णाश्रम व्यवस्थाओं में यह अन्तर है कि एक में प्रजा प्रत्येक काम में पूर्ण सत्तात्मक अधिकारी है और दूसरी पद्धति में यथायोग्य कार्य और अधिकारों की व्यवस्था है।

हमने एक लेख में तो वर्ण व्यवस्था को समाज शास्त्र का नाम भी दिया था। इसका कारण यह है कि यह पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को प्रस्तुत करती है। यह केवल राज्य प्रपंच से ही सम्बन्धित नहीं, अपितु इसका समस्त समाज के सब कामों से सम्बन्ध है।

वैदिक वर्ण-व्यवस्था में समाज के प्रत्येक अंग और प्रत्येक व्यक्ति के कर्त्तव्यों की व्याख्या है। उन कर्त्तव्यों का पालन करने और कराने वालों को प्रतिफल दिलाना राज्य का कर्त्तव्य है। राज्य पूर्ण समाज में व्यापक होता हुआ भी केवल भिन्न भिन्न अंगों में समन्वय और न्याय-व्यस्वथा रखने के लिये है। यह सम्पूर्ण समाज नहीं। न ही यह पूर्ण समाज पर अधिकार रखता है। सम्पूर्ण समाज पर अधिकार रखता है ब्राह्मण (विद्वत्) वर्ण और इसी वर्ग के आदेशों को राज्य संचालित करता है।

यह किस प्रकार सम्भव है? अर्थात् वर्णाश्रम व्यवस्था का व्यावहारिक रूप क्या होगा? यही इस लेख का विषय है।

आश्रम व्यवस्था का सम्बन्ध व्यक्ति के जीवन के साथ है। व्यक्ति का निर्माण होता है मां के पेट में, माता-पिता के घर में और पाठशालाओं तथा विद्यालयों में। अतः इन संस्थानों का संचालन निर्माण कला के ज्ञाता व्यक्तियों के हाथ में होना चाहिये। माताओं को तैयार करना भी इसी व्यवस्था का एक अंग है। यह कार्य राज्य का नहीं हो सकता। राज्य को शान्ति व्यवस्था स्थापित करने के लिये निर्माण किया गया है। वह यदि सन्तान निर्माण का काम करने लग जाये तो यह परिवार नियोजन, गर्भपात और भ्रूण हत्या तथा शिशु हत्यायें करने लगेगा।

इसी प्रकार यदि माता-पिता के घर में राज्य का हस्तक्षेप होगा तो माता-पिता फैक्टरियों, खेतों और दुकानों पर काम करेंगे और बच्चे पाले जायेंगे 'नर्सरीज़' में। यह व्यक्ति के निर्माण में बाधक होगा।

यदि पाठशालाओं और विद्यालयों पर राज्य का अधिकार होगा तो शिक्षा राज्य कर्मचारी निर्माण करने का यत्न करने लगेगी। विद्यालयों में मनुष्य का निर्माण न होकर राज्य-सेवकों का निर्माण होने लगेगा।

इसी प्रकार गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम की बात है। आश्रम व्यवस्था पूर्ण रूप से (सरकार से मुक्त) विद्वानों के हाथ में होनी चाहिये। दूसरे शब्दों में व्यक्ति के जीवन का निर्माण, उसका व्यवसाय और उसकी समाज सेवायें, विद्वानों की प्रेरणा के अधीन चलनी चाहियें। राज्य के डण्डे से न तो यह चल सकती है और न चलनी चाहियें। राज्य का कार्य चारों आश्रमों में समन्वय और उनमें न्याय संगत व्यवहार चलाना है। जब एक

आश्रम दूसरे के कार्य में बाधक हो अथवा उससे असहयोग करे तो राज्य हस्तक्षेप कर उनमें समन्वय कर सकता है।

उदाहरण के रूप में गृहस्थी यदि यह व्यवस्था दे कि विद्यार्थी सोलहवें वर्ष की आयु में अनिवार्य रूप में शिक्षा समाप्त कर परिवार की आय में सहयोग दे तो राज्य इसमें हस्तक्षेप कर योग्य विद्यार्थी के विद्यार्जन की बाधा को दूर करे। इसके विपरीत भी हो सकता है। जैसे, यदि किसी सम्पन्न परिवार का बालक निर्बुद्धि और उच्च शिक्षा के अयोग्य हो और उसके लिये उसका परिवार उच्च शिक्षा दिलवाने का हठ करे तो राज्य इसमें हस्तक्षेप कर सकता है।

यही बात व्यवसाय की है। कहने का अभिप्राय यह है कि आश्रम-व्यवस्था व्यक्ति को श्रेष्ठ और समाज की सेवा के योग्य बनाने के लिये है। यदि व्यक्ति अपनी योग्यता और स्वभावानुसार आश्रम धर्म का पालन करता रहे तो उसे ऐसा अनुभव करना चाहिये कि मानो राज्य नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। राज्य तो वहीं हस्तक्षेप करे, जहां आश्रम-धर्म के विपरीत कोई व्यक्ति धन, बल अथवा छल से कार्य करने लगे।

आश्रम धर्म का सम्बन्ध वर्ण धर्म से भी है। क्योंकि निर्माण होने के उपरान्त व्यक्ति समाज का अंग बनेगा ही, अतः आश्रम में ही वर्णों का निर्माण किया जाता है। अर्थात् वर्णों का मूल आश्रम में ही है।

कुछ लोग इसके विपरीत यह कहते हैं कि वर्णों में आश्रम का मूल है। अर्थात् शिक्षा बालक के माता-पिता का वर्ण देख कर देनी चाहिये। उदाहरण के रूप में मनुस्मृति के इस श्लोक से वे अपने आशय की पुष्टि करते हैं—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनयनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः॥ (मनु०-२-३६)

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बालक का यज्ञोपवीत संस्कार क्रमशः आठवें, ग्यारहवें और बारहवें वर्ष में हो जाना चाहिये।

शिक्षारम्भ के विषय में अगले दो श्लोकों में बताया है:

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे॥
राज्ञो बलार्थिन; षष्ठ वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे।
अशोडशाद्ब्राह्मस्य सावित्री नातिवर्तते।
आद्वाविंशात्क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः॥ (मनु०-२-३७,३८)

जो ब्राह्मणत्वकर्म की योग्यता प्राप्त करना चाहते हैं उनकी पांचवें वर्ष में, क्षत्रिय कर्म की योग्यता प्राप्ति के लिये छटे वर्ष में और वैश्य बनने की इच्छा

करने वाले की प्रारम्भिक शिक्षा आठवें वर्ष में आरम्भ कर देनी चाहिये ।

यह भी लिखा है कि ब्राह्मण कर्म वालों का यज्ञोपवीत सोलह वर्ष के उपरान्त नहीं होना चाहिये । और क्षत्रिय तथा तथा वैश्य का यज्ञोपवीत भी बाईस और चौबीस वर्ष के पूर्व हो जाना चाहिये ।

यदि इस आयु तक भी इनका यज्ञोपवीत न हो सके तो वे व्रात्य कहलायेंगे । तब वे भ्रष्ट हो जाते हैं और निन्दनीय होते हैं ।

इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि ब्राह्मण कर्म की इच्छा वाले की प्रारम्भिक शिक्षा पांच वर्ष की आयु में, क्षत्रिय बल की प्राप्ति की इच्छा वाले की आठवें वर्ष में आरम्भ हो जानी चाहिये । तत्पश्चात् यज्ञोपवीत की न्यूनतम आयु ब्राह्मण की आठवें, क्षत्रिय की ग्यारहवें और वैश्य की बारहवें वर्ष लिखी है ।

इससे तो यही सिद्ध होता है कि ब्राह्मण बनने की इच्छा वाला यदि क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का पुत्र भी हो तो वह प्रारम्भिक शिक्षा उपरि निर्दिष्ट आयु में आरम्भ कर दे । इससे यह सिद्ध होता है कि उपनयन संस्कार एक प्रकार की परीक्षा है और उस परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले को यज्ञोपवीत अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के योग्य शिक्षा का प्रमाणपत्र दिया जाता है।

वहीं यह भी लिखा है कि यदि ब्राह्मण का पुत्र सोलह वर्ष की आयु तक और क्षत्रिय बाईस वर्ष और वैश्य चौबीस वर्ष तक भी यज्ञोपवीत प्राप्त न कर सके तो वे भी वर्णच्युत हो जाते हैं और निन्दनीय हैं । अर्थात् उन्हें शूद्र-पद प्राप्त होता है । इससे यह बात तो सिद्ध ही है कि आश्रम व्यवस्था से वर्ण व्यवस्था बनती है । संक्षेप में इतना बताना पर्याप्त है ।

जब विद्यार्थी शिक्षा समाप्त कर जीवन में प्रवेश करे तो उसके लिये यह आवश्यक हो जाता है कि इच्छित व्यवसाय में प्रवेश पाने के लिये वह उस व्यवसाय की विशेष शिक्षा प्राप्त करे ।

जब हम शिक्षा प्रणाली को स्वतन्त्र विद्वानों द्वारा संचालन योग्य मानते हैं तो हमें यह भी मानना होगा कि व्यवसायिक शिक्षा भी तत्तद् व्यवसाय के विशेषज्ञों द्वारा ही दी जानी चाहिये ।

आजकल के सामाजिक तन्त्र में दो प्रकार के व्यावसायिक कार्य हैं । एक व्यक्ति के अकेले करने वाले और दूसरे किसी संस्थान में बहुत से कर्मचारियों के साथ मिलकर । सरकारी नौकरियां इस दूसरे प्रकार के कार्यों में आती हैं । परन्तु दोनों प्रकार के कार्यों के लिये व्यवसाय का अल्प-कालीन विशेष प्रशिक्षण होना चाहिये । यह प्रशिक्षण व्यवसाय केन्द्र, दुकान अथवा कारखानों में हो सकता है । सरकारी नौकरियों के लिये सरकारी विभाग उपयुक्त प्रशिक्षण का प्रबन्ध करें, तदनन्तर परीक्षा लें और परिणाम जानकर

उचित एवं उपयुक्त स्थानों पर नियुक्ति करें।

शिक्षा प्रणाली विश्वविद्यालयों के अधीन होनी चाहिये। और विश्वविद्यालय विद्वत् परिषद् (Academic Council) के अधीन होने चाहियें, परिषद् के सदस्यों का निर्वाचन, क्षेत्र के ऐसे स्नातकों से हो जो कम से कम दस वर्ष तक शिक्षा कार्य कर चुके हों और किसी न किसी प्रकार से शिक्षा कार्य में संलग्न हों।

विद्वत् परिषद् की सदस्यता के लिये वे प्रत्याशी हों जो शिक्षा कार्य में कम से कम बीस वर्ष तक लीन रहे हों और जिन्होंने अपने कार्य में प्रतिष्ठा प्राप्त की हो।

विश्वविद्यालय और उसके अधीन विद्यालय तथा पाठशालाओं में सरकारी अधिकारियों अथवा धनी-मानी लोगों का हस्तक्षेप न हो।

हम यह बता चुके हैं कि समाज तन्त्र के अन्तर्गत अर्थ व्यवस्था, धर्म-व्यवस्था, न्याय-व्यवस्था और शासन व्यवस्था है। ये सब विभाग पृथक-पृथक हैं। प्रत्येक की अपनी अपनी परिषद् होनी चाहिये।

वास्तव में शासन ही राज्य है। शासन का सम्बन्ध देश के भीतर शान्ति-व्यवस्था और बाहर के आक्रमण आदि से देश की रक्षा है। इसे अंग्रेजी में Administration and defence (शासन और सुरक्षा) कहते हैं।

शासन का सम्वन्ध अर्थ-व्यवस्था, धर्म-व्यवस्था के साथ नहीं होना चाहिये। सम्पूर्ण वयस्क जनता शासन परिषद् का निर्वाचन करे। वास्तव में जनता का अधिकार शासन परिषद् के चुनाव तक ही सीमित रहना चाहिये।

धर्म सभा (legislative body) के निर्बाचन में तो धर्म (Law) के सिद्धान्त और व्यवहार को जानने वाले ही मतदाता हो सकते है।

इसी प्रकार न्ययाधिकरण (judiciary) का निर्वाचन भी न्यायाधीशों और न्याय के साथ सम्बन्ध रखने वाले विद्वानों से ही संयोजित होनी चाहिये।

राष्ट्रपति जनता का प्रतिनिधि होना चाहिये। वह शरीर में आत्मा स्वरूप काम करे और शरीर अर्थात् समाज के सब विभागों यथा शिक्षा, शासन एवं सुरक्षा धर्म-सभा और न्यायाधिकरण का समन्वय करे।

हमारा मत है कि इससे अराजकता न्यूनातिन्यून होगी, इससे व्यक्ति को अपना व्यक्तित्व निर्माण करने का पूर्ण अवसर मिलेगा और इससे समाज स्वतन्त्र, सफल और सबल होगा।

हम समझते हैं कि इस संक्षिप्त विवरण से हमारे पाठक वर्णाश्रम व्यवस्था का दिग्दर्शन मात्र कर पावेंगे।

अन्तर्राष्ट्रीय हलचल

श्री आदित्य

रूस के आर्थिक प्रपंच की इस देश में बहुत महिमा गायी जाती है, परन्तु जानकार लोग दूसरी ही कथा का वर्णन करते हैं। इसी विषय पर एक लेख देखने में आया है और रूस की जो अवस्था उससे पता चलती है, वह तो किसी प्रकार भी उत्साहवर्धक नहीं।

लैनिन और तदनन्तर स्टालिन ने वहाँ की अर्थ-व्यवस्था पूर्ण रूपेण राज्याधीन बना रखी थी। उन दिनों रूस का सम्पर्क इस से बाहर के देशों के साथ कुछ अधिक नहीं था। जो कुछ था भी, वह केवल उन लोगों के द्वारा था जो अर्थ-व्यवस्था में सरकार के हस्तक्षेप को कल्याणकारी मानते थे। साथ ही उनकी ज़बान और लेखनी पूर्ण रूप से सरकार के अंगूठे तले थी।

बाहर से भी जो लोग जाते थे, उनको दिखाने के लिए नुमायशी घर, दुकानें और यहां तक कि दिखावे के जेलखाने अलग बना रखे थे। उनको देख कर रूस जाने वाले पर्यटक अति प्रभावित होकर आते थे। इन पर्यटकों को उन स्थानों के अतिरिक्त कोई स्थान देखने नहीं दिया जाता था।

परन्तु यह बात सदा रह नहीं सकती थी। बाहर से वहां जाने वालों पर तो प्रतिबन्ध अब भी वैसा ही है। वे केवल उन स्थानों अथवा वस्तुओं को देख सकते हैं, जिनको दिखाना वहां की सरकार को अभीष्ट होता है, परन्तु रूस से आने वाले सरकारी अधिकारी जब बाहर की दुनियां का हाल-चाल देखते हैं तो चकित रह जाते हैं।

परिणाम यह हो रहा है कि वहाँ की राज्य-व्यवस्था और आर्थिक-व्यवस्था पर रूस में ही आलोचना होने लगी है। इन आलोचना करने वालों में ख़ु श्चेव (रूस का भूत पूर्व प्रधान मन्त्री) प्रथम व्यक्ति था, जिसने स्टालिन के राज्य काल की राजकीय तथा वहाँ की अर्थ-व्यवस्था पर दृष्टिपात कर उसे सुधारने का यत्न किया था। उसने अर्थ-व्यवस्था के विषय में यत्न किया था कि इसका विकेन्द्रीकरण किया जाये।

यद्यपि यह रोग का निदान नहीं था; इस पर भी ऐसा व्यवहार किया गया और उससे क्या परिणाम निकले, यही इस लेख का विषय है।

ख्रुश्चेव ने यह भविष्यवाणी की थी कि शीघ्र ही सोवियत संयुक्त राज्य घरेलू प्रयोग की वस्तुओं में अमेरिका को पछाड़ देगा। उसका अनुमान था कि वह यह दस वर्ष में कर सकेगा, परन्तु वस्तु स्थिति यह है कि आज भी वहां दुकानों पर आवश्यक सामान उपलब्ध नहीं होता। ग्राहकों को अपने मतलब की वस्तु ढूंढने के लिए प्रायः कई कई दुकानों की यात्रा करनी पड़ती है। अमेरिका, जापान, पश्चिमी जर्मनी, फ्रान्स और इटली में तो ग्राहकों को यह कष्ट उठाना नहीं पड़ता। वहां स्थिति यह है कि माल इतना अधिक दृष्टिगोचर होता है कि ग्राहक उनको खरीदने की आवश्यकता अनुभव नहीं करता।

मास्को में अण्डे और आटा भी दुकान-दुकान पर जाकर ढूंढना पड़ता है। बिजली के बल्ब वहां कठिनाई से मिलने वाली वस्तु है।

सन् १९६० में ख्रुश्चेव ने तो यह उद्देश्य बनाया था कि सन् १९७० में नागरिकों के प्रयोग की वस्तुओं में रूस, अमेरिका को पछाड़ देगा। सन् १९६६ में रूसी नेताओं ने इसे अतिशयोक्ति समझा और कह दिया कि इतना तो नहीं हो सकता, परन्तु प्रति वर्ष उत्पादन में दस प्रतिशत वृद्धि कर सकेंगे।

सन् १९६६ के उपरान्त उत्पादन में वृद्धि नहीं हो रही। सन् १९६८ में केवल सात प्रतिशत वृद्धि हुई थी और सन् १९६९ में यह वृद्धि ६.३ प्रतिशत हुई है।

सोवियत रूस के अधिकारियों का यह कथन था कि वे सन् १९७० में १०,००,००,००,००० (दस अरब) KWH विद्युत का उत्पादन करने लगें परन्तु सन् १९६६ में लक्ष्य बना दिया गया था ८५,००,००,००० (पच्चासी करोड़) KWH का और सन् १९७० तक ये ७४,००,००,००० (चौहत्तर करोड़) KWH तक ही पहुंच पाये हैं।

इसी प्रकार की अन्य कमियों को देखकर रूस में आजकल इस बात पर भारी विवाद खड़ा हो गया है कि उन्नति सन्तोषजनक नहीं हो रही। वहां के अर्थ शास्त्री यह समझते हैं कि प्रगति में कमी इस कारण हुई है कि विकेन्द्रीकरण, जैसी कि नीति थी, नहीं किया गया।

दो सप्ताह हुए पार्टी के नेता ल्यो नोट ब्रैजनीव ने प्रवदा में अर्थ व्यवस्था की धीमी प्रगति पर आलोचना की है। उसने कहा है कि रूस का आर्थिक प्रपंच भारी कठिनाई में पड़ गया है। इसमें उसने एक कारण समय, सामान

और परिश्रम का व्यर्थ जाना बताया है। दूसरा है नौकरशाही, श्रमिकों का समय व्यर्थ गंवाना।

रूस के अर्थ शास्त्री भी चिन्तित हैं। पिछले बावन वर्ष के कठोर नियन्त्रण पर भी सामान्य प्रयोग की वस्तुयें उपलब्ध नहीं होतीं। इस कारण अर्थ शास्त्री नियन्त्रण को ढीला करने लगे हैं। अर्थ-शास्त्री, विश्वेसी लिवर-मैन के प्रस्ताव पर स्वतन्त्र उद्योग की ओर एक चौथाई मुड़ा गया। कारखानों को माल की पैदावार के अनुपात से अनुदान न देकर लगी पूंजी पर लाभ के अनुपात से दिया जाने लगा। फैक्टरी के मैनेजरों को यह स्वतन्त्रता दे दी गयी कि वे क्या निर्माण करें और क्या न करें। साथ ही यह स्वीकृति भी दे दी गयी कि वे स्वयं ग्राहकों के साथ व्यवहार करें।

ये सुधार व्यवहार में लाये गये हैं। परन्तु इन सुधारों में सरकारी अधिकारी बाधायें खड़ी करते रहे हैं। इससे लाभ के स्थान पर विभ्रम (confusion) अधिक हुआ है।

मास्को में बैठे हुए उच्च अधिकारी मैनेजरों को अधिकार देने के लिए राजी नहीं हुए। वे अपनी महिमा कम नहीं कर सके और वे प्रायः मैनेजर को स्वतन्त्रता देने का विरोध करते रहे हैं। U. S. S. R. के योजना आयोग के उपाध्यक्ष ऐलेग्जैण्डर बुकारिन ने प्रवदा में लिखा है कि अर्थ व्यवस्था में सुधारों का विरोध मास्को के उच्चाधिकारियों ने किया है और उनके कारण ही प्रगति उतनी नहीं हुई, जितनी कि आशा की जा रही थी।

उक्त योजनानुसार सन् १९६६ में गोर्की डीज़ल फैक्टरी में अठारह प्रकार के इन्जिन बनाने के स्थान पर केवल चार प्रकार के इन्जिन बनाने आरम्भ कर दिये गये। यह इस कारण किया गया कि जिससे किस्मों के कम करने से वे इंजिनों को अधिक बढ़िया और सस्ता बना सकेंगे, परन्तु भारी पदार्थों के उद्योग मन्त्रालय की आज्ञा पर उनको तेईस प्रकार के इन्जिन बनाने पड़े।

त्योर्गी कुलगिन लेनिनग्रांड मशीन टूल निर्माण संस्थान ने यह शिकायत की है कि परस्पर विरोधी आज्ञाओं के कारण उद्योगों की स्थिति यह हो गयी है जैसी उस सेना की होती है, जिसे अफ़सरों की एक पलटन की आज्ञायें मानने के लिए कहा जाए। यदि एक अफ़सर कहता है "दौड़ो" तो दूसरा कह देता है "लेट जाओ"। कम्युनिस्ट पार्टी ने इस गड़बड़ में अपनी टांग अड़ाई है। वह कह रही है कि उद्योगों में उच्च कर्मचारी राजनीतिक भरोसे के होने चाहिएं। वे तकनीकी योग्यता को कुछ अधिक महत्व नहीं देते। अधिकतर अर्थशास्त्री स्वतन्त्र अर्थ व्यवस्था की ओर सुधार चाहते हैं

और उच्च राजनीतिक नेता अपने पूर्वग्रहों से ग्रसित नियन्त्रित अर्थ-व्यवस्था को छोड़ नहीं पा रहे ।

पश्चिमी उद्योग-विशेषज्ञों के विचार से सोवियत उद्योग-धन्धों में कर्मचारियों की संख्या आवश्यकता से बहुत अधिक है । फालतू कर्मचारियों को निकाला नहीं जा सकता । इससे उन विचारों का विरोध होता है जो मिथ्या समाजवादी आधारों पर गले में बँधे हुए हैं । मकान, छुट्टियों और शिशुओं की जो सुविधायें सरकार देती है, वे काम के साथ सम्बन्ध रखती हैं, अतः काम बदल देने अथवा काम से निकाल देने पर उन सुविधाओं में भी परिवर्तन होता है और कोई कर्मचारी यह पसन्द नहीं करता । मैनेजर भी कर्मचारियों की, आवश्यकता से अतिरिक्त संख्या सदा अपने पास रखते हैं । वे स्वयं नहीं जानते कि किस समय उच्चाधिकारी उनको काम तेज़ कर देने को कह देंगे और उनको अधिक माल बनाने के लिए कहेंगे । किसी फैक्टरी से कर्मचारी निकाले जायें तो फैक्टरी को मास्को से मिलने वाले अनुदान की राशि में कमी हो जाती है ।

निर्मित वस्तुओं के मूल्यों का निश्चय करने में भी सुधार किया गया है । पहले वस्तुओं की कीमतें एक केन्द्रीय बोर्ड निश्चिय करता था । अब केन्द्रीय बोर्ड अधिक से अधिक और कम से कम दाम निश्चत करता है और मैनेजर इन सीमाओं में अपने कारखाने की वस्तुओं के दाम निश्चय करते हैं । इस पर भी केन्द्र का नियन्त्रण रहता है । उसे भय रहता है कि कहीं एक वस्तु बनाने वाली दो फैक्टरियां परस्पर प्रतिस्पर्धा न करने लगें ।

इस प्रकार ये इस बात के लक्षण दिखाई देते हैं कि सोवियत अर्थ प्रपंच दोष पूर्ण सिद्ध हो रहा है, परन्तु राजनीतिक नेता इसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होते ।

यह निचश्य है कि उद्योग-धन्धों में विकास और प्रगति हो नहीं सकेगी, जब तक कार्ल मार्क्स और ऐंजल द्वारा निर्धारित धारणाओं से मुक्त हो, अर्थ-प्रपंच को प्रतिस्पर्धात्मक (Competetive) नहीं बनने दिया जाता । जो कुछ पिछले बीस वर्ष में पश्चिमी जर्मनी और जापान ने कर दिखाया है, वह सोवियत रूस की अर्थ-व्यवस्था नहीं कर सकेगी ।

भारत भी कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों पर अपनी अर्थ-व्यवस्था निर्माण कर रहा है । वह मिथ्या है । उक्त विवेचना तथा सूचना से यह बात स्पष्ट दिखाई देती है कि मानस प्रकृति में स्वतन्त्रता से अपना मार्ग ढूंढने की प्रवृत्ति है । यह किसी की दासता कुछ अधिक काल तक सहन नहीं कर सकता । यह

प्रेरणा तो ग्रहण करता है, परन्तु स्वेच्छा से। मनुष्य में बुद्धि नाम का एक तत्त्व है और वह प्रत्येक बात को बुद्धि द्वारा परख कर ही स्वीकार करता है। उसकी परख ठीक है अथवा गलत, परन्तु अपनी प्रवृत्ति से विवश वह अपनी विचारित बात को ही ग्रहण करता है।

अर्थ व्यवस्था न तो राजनीतिक सूत्रों से बांधनी चाहिए और न ही यह राजनीति की दुम-छल्ला बननी चाहिए। इससे अर्थ-व्यवस्था में उन्नति नहीं हो सकती।

एक ही कार्य करने वाले अथवा पदार्थ निर्माण करने वाले कई संस्थान होने चाहियें और उनमें प्रत्येक विषय में परस्पर प्रतिस्पर्धा की स्वीकृति होनी चाहिए।

कर्मचारियों के वेतन और अन्य सुविधायें परिश्रम, गुण और योग्यता के साथ सम्बन्धित होनी चाहिएं।

राज्य की ओर से लोक कल्याण के कुछ कार्य चलाये जा सकते हैं। वृद्ध, अपाहिज अथवा बेकारों की सामान्य-सी सहायता तो हो सकती है। वह केवल इतनी जिससे कि वे अपनी आत्मा और शरीर का सम्बन्ध रख सकें। यह जीवन-यापन का साधन नहीं हो सकती।

समाज में सदा एक वर्ग ऐसे लोगों का होता है जो समाज की सेवा तो करता है, परन्तु किसी ऐसे काम से नहीं जिसका मूल्य प्रत्यक्ष रूप में रुपयों में आंका जा सके। उस वर्ग के पालन का प्रबन्ध होना चाहिए, परन्तु राज्य को इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। यह निजी लोगों के दान दक्षिणा का क्षेत्र है।

वेदान्त दर्शन में जड़वाद का खण्डन

श्री गुरुदत्त

पूर्व लेखों में यह बताया गया था कि वेदान्त दर्शन में त्रैतवाद को स्वीकार किया गया है। किसी दर्शन शास्त्र में किसी बात को स्वीकार करने का अर्थ यह है कि युक्ति से अर्थात् तर्क से उस बात को सिद्ध किया गया है।

प्रस्तुत लेख में यह बताने का यत्न किया जा रहा है कि व्यास मुनि के वेदान्त दर्शन में जड़वाद का खण्डन किया गया है। खण्डन का अर्थ भी यही है कि युक्ति अर्थात् तर्क से असिद्ध करना।

यह मण्डन करना कि परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति है, एक बात है। परन्तु यह सिद्ध करना कि प्रकृति ही सृष्टि रचना का कारण नहीं, एक दूसरी बात है। परमात्मा के सिद्ध करने के लिए वेदान्त दर्शन के प्रथम अध्याय के प्रथम पाद में अकाट्य युक्तियां दी गई हैं। अनीश्वरवादियों को चुनौती दी गई है कि वे उस तर्क का खण्डन करें। इस लेख में हम वेदान्त दर्शन के कुछ वे सूत्र देना चाहते हैं, जिनसे जड़वाद का तर्क द्वारा खण्डन किया गयाहै।

जड़वाद का अभिप्राय यह है कि यह जगत् प्रकृति से ही उत्पन्न हुआ है तथा इसमें प्रकृति के अतिरिक्त अन्य किसी का सहयोग नहीं। ऐसा बौद्ध सम्प्रदाय वाले मानते हैं। कुछ यूरोपियन वैज्ञानिक और दार्शनिक भी ऐसा ही मानते हैं। भारत के भी कई नास्तिक यह मानते हैं कि प्रकृति ही इस जगत् को उत्पन्न करती है और कालान्तर में इसे नष्ट करती है।

ईश्वरवादी इसे ईश्वर से उत्पन्न किया हुआ मानते हैं और उसी से इसका विनाश स्वीकार करते हैं। उदाहरण के रूप में भगवद् गीता में लिखा है :—

> एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
> अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥
>
> (भ० गी ०७–६)

अर्थात्—ऐसा समझो कि इन दो (मूल प्रकृति और जीव) से ही सब प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और परमात्मा सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करता है

और इसका प्रलय करता है।

इसके विपरीत ही जड़वादी यह मत व्यक्त करते हैं कि जड़ से ही चेतनता का प्रादुर्भाव होता है। मूल पदार्थ जड़ है।

वेदान्त दर्शन में इसका खण्डन करते हुए लिखा है :--

रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम् ।। (वे० द०–२-२-१)

इसका अर्थ इस प्रकार है। रचना--जगत् की रचना। अनुपपत्तेश्च–न उत्पन्न हो सकने से अर्थात् असिद्ध होने से। च–और। न–नहीं। अनुमानम्-अनुमान है।

अर्थात् जगत् की रचना (स्वत:) होनी असिद्ध है। अनुमान से भी यह सिद्ध नहीं हो सकता।

इसका भावार्थ यह है कि जड़वादी युक्तियां करते हैं कि जगत् अपने आप बन गया है, चल रहा है और विनष्ट हो जायेगा। सूत्रकार यह दावा करता है कि यह स्वतः नहीं बना, वरंच इसके बनने में कोई इससे भिन्न प्रकार का कारण है।

इस दावे को अर्थात् जगत् को स्वत: बनने के सिद्धान्त का खण्डन करने से पूर्व हम अनुमानम्—अनुमान प्रमाण के विषय में सब दार्शनिकों का मत लिख दें तो ठीक होगा।

वेदान्त दर्शनकार लिखता है—

तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथामेयमिति चेदेवमप्यनिर्मोक्षप्रसङ्गः ।।
(वे० द० २–१–११)

तर्काप्रतिष्ठानात्— युक्ति के अप्रतिष्ठित अर्थात् आधार रहित होने से। अनुमानम्—अनुमान से जो पता चलता है उससे अन्यथा अर्थात् विपरीत बात हो जायेगी। इतिचेत्—यदि यह कहो तो। एवम् अपि—ऐसा होने पर भी। अनिर्मोक्षप्रसङ्ग:—मोक्ष न होने का प्रसंग बन जायेगा।

अभिप्राय यह कि यदि तर्क आधार रहित किया जायेगा तो अनुमान प्रमाण से जानी जाने वाली बात भी गलत हो जायेगी। यदि यह भी कहो तो (अर्थात् अप्रतिष्ठित तर्क करो तो) निर्मोक्ष असिद्धि का सामना करना पड़ेगा।

अभिप्राय यह कि तर्क करते समय किसी आधार पर तर्क करना चाहिए। तर्क से ही अनुमान प्रमाण सिद्ध होता है। अतः ऊपर के सूत्र (२-२-१) में यह लिखा है कि जगत् की स्वत: रचना तर्क से असिद्ध होने से अनुमान से भी सिद्ध नहीं हो सकती।

अब देखिए सूत्रकार अपने दावे की पुष्टि किन युक्तियों से करता है।

पहली युक्ति यह दी है—

प्रवृत्तेश्च ।। (वे० द० २-२-२)

और प्रवृति से भी नहीं । क्या नहीं ? जगत् की स्वतः रचना ।

हम जगत् में देखते हैं कि जड़ पदार्थ अपने आप कुछ नहीं करते । जगत् में प्रत्येक कार्य के करने में किसी न किसी प्रकार से चेतन की सहायता की आवश्यकता रहती है ।

किसी कार्य-विशेष में स्वतः प्रवृत्त होने अर्थात् अपने आप लग जाने को प्रवृति कहते हैं । जगत् में किसी भी पदार्थ का किसी कार्य में स्वतः लग जाना हम नहीं देखते । अतः जगत् में पदार्थ की प्रवृत्ति है कि कार्य में न लगा जाये । इससे यह सिद्ध होता है कि जगत् अवश्य किसी चेतन शक्ति की सहायता से ऐसा हुआ है ।

और भी बताया है :—

पयोऽम्बुवच्चेत्तत्रापि ।। (वे० द० २-२-३)

पयो—मां के स्तनों में स्वतः दूध उतर आने तथा नदी-नालों में स्वतः जल के बहने से यह कहा जाता है कि प्रकृति स्वतः कार्य करती देखी जाती है । सूत्रकार कहता है—चेत्+तत्रापि—यदि कहो तो वहां भी (यह सिद्ध नहीं होता कि बिना चेतन् के सहयोग के ऐसा हुआ है,

शिशु की मां में जीवात्मा है जो बच्चे को देख कर चिन्तन करता है तो स्तनों में दूध उतर आता है । बिना मां में जीव की प्रेरणा के दूध नहीं उतरता ।

इसी प्रकार नदी-नालों में जल का बहना बिना चेतन शक्ति की सहायता के नहीं होता । सूर्य के ताप से जल वाष्प बन उड़ कर ऊपर चला जाता है । वहां से वर्षा के रूप में तथा हिम पात से पृथिवी के ऊंचे स्थानों पर गिर नीचे को बहता है । सूर्य में अग्नि परमात्मा से मिली है, अतः परमात्मा की सहायता से जल ऊँचे स्थानों पर पहुंचता है तो यह बहता हुआ नीचे को आता है ।

जड़वादी और भी कहते हैं :—

व्यतिरेकानवस्थितेश्च अनपेक्षत्वात् ।।

(वे० द० २-२-४)

व्यतिरेकानवस्थिते—विपरीत क्रम की अवस्था में । अनपेक्षत्वात्—अपेक्षा के न हो सकने से । इससे भी यही सिद्ध होता है कि चेतन के बिना सृष्टि-क्रम नहीं । अपेक्षा के अर्थ हैं दूसरे से ध्यान दिया जाना । बिना दूसरे के

ध्यान दिये जाने से अर्थात् बिना किसी दूसरे के करने से कार्य विपरीत नहीं हो सकता। अभिप्राय यह कि जड़ पदार्थ में जो कुछ हो रहा है, उससे स्वत: उलट नहीं हो सकता। उलट करने के लिए किसी दूसरे की अपेक्षा होनी चाहिए।

भारतीय परम्परा के अनुसार वेदान्त सूत्र के कर्ता व्यास को हुए पाँच सहस्र वर्ष हो चुके हैं। यह सिद्धान्त कि प्रकृति में बिना किसी दूसरे के प्रभाव के अवस्था वदल नहीं सकती, व्यास जी को विदित थी। सहस्रों वर्ष उपरान्त न्यूटन ने यही बात पता की और अपने गति के तीन सिद्धान्तों में प्रथम स्थान पर लिखा।

न्यूटन का '1st Law of Motion' इस प्रकार है :--

Every particle of matter remains at rest or moves in a straight line unless obsructed by somebody

अर्थात्—पदार्थ का प्रत्येक कण, जब तक किसी के द्वारा हिलाया न जाय, या अवरुद्ध न हो, सीधा पड़ा रहता है या एक दिशा में चलता रहता है।

इससे भी पता चलता है कि सर्ग से पूर्व, सृष्टि की रचना के लिए किसी चेतन शक्ति की आवश्यकता पड़ी होगी। निश्चल प्रकृति वर्तमान चलायमान रूप में स्वयमेव नहीं आ सकती।

नास्तिकों ने और भी कहा है। गाय घास खाती है तो वह स्वतः दूध इत्यादि बन जाता है। सूत्रकार कहता है--नहीं। यह भी बिना चेतन के सहयोग के नहीं बन सकता। यथा :--

अन्यत्राभावाच्च न तृणादिवत् ॥ (वे० द० २-२-५)

दूसरे स्थान में अभाव से (इस स्थान में सृष्टि हो गई) जैसे तृणादि से दूध इत्यादि बन जाता है। सूत्रकार कहते हैं--नहीं। वहां भी चेतन का सहयोग दिखाई देता है।

नास्तिक यह भी कहते हैं :—

अभ्युपगमेऽप्यर्थाभावात् ॥ (वे० द० २-२-६)

अभ्युपगमे—(सृष्टि रचना के समय) स्वत: गति उत्पन्न हो गई। यह नास्तिकों का कहना है। सूत्रकार एक तर्क तो ऊपर दे चुका है जिसे आज न्यूटन का गति का प्रथम नियम कहा जाता है। इसके साथ ही सूत्रकार अब एक अन्य युक्ति देता है। सूत्रकार कहता है अपि+अर्थाभावात्–किसी प्रयोजन के न होने से। यदि यह मान लिया जाये कि जड़ प्रकृति में स्वतः गति उत्पन्न हो गई तो प्रश्न होता है कि किस प्रयोजन से ? बिना प्रयोजन के कुछ कार्य होता नहीं। जड़ प्रकृति में स्वतः किस अर्थ क्रिया आरम्भ हुई ?

ग्रौर भी देखिए --

पुरुषाश्मवदिति चेत्तथापि ॥ (वे० द० २-२-७)

पुरुष—मनुष्य। अश्म—पत्थर (चुम्बक) वत् इति-की भांति। (प्रकृति कार्य करती है)। संसार में मनुष्य एक दूसरे के अभाव को दूर कर देते हैं। लंगड़ा अन्धे के कन्धे पर चढ़ा हुआ यात्रा कर सकता है अथवा चुम्बक स्वतः लोह कण को अपनी ओर खींच सकता है।

सूत्रकार कहता है चेत्+तथापि–यदि यह कहो तो भी (बिना चेतन की सहायता के नहीं हो सकता।)

अन्धे और लंगड़े दोनों में चेतना होने से वे परस्पर सहायक होते हैं। इसी प्रकार चुम्बक भी जब तक लोहे के समीप न लाया जाये तब तक आकर्षण नहीं होता। साथ ही जगत् रचना में काल, स्थान और दिशा दिखाई देती है। ये बिना चेतन के नहीं हो सकते। चुम्बक के लोह के आकर्षण में काल, स्थान और दिशा निश्चय नहीं होती। अतः यह उदाहरण भी उपयुक्त नहीं होता। इसकी तुलना जगत् की रचना के साथ नहीं की जा सकती।

उक्त एवं इसी प्रकार की कई अन्य युक्तियां दी गई हैं कि जिनसे यह सिद्ध होता है कि जड़ प्रकृति स्वतः जगत् रचना, जगत् पालन और जगत् की प्रलय करने में सक्षम नहीं। किसी चेतन की इसे आवश्यकता रहती है।

इसी युक्ति के आधार पर सूत्रकार ने कहा है कि जगत् का निमित्त कारण परमात्मा है।

शाश्वतवाणी

१. शाश्वत वाणी भारतीय (हिन्दू) संस्कृति एवं धर्म तथा शास्त्रों की शुद्ध वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करने वाली हिन्दी की एक मात्र पत्रिका है।

२. राजनैतिक, सामाजिक एवं विविध समस्याओं का युक्तियुक्त विश्लेषण इसमें पढ़िये।

३. शाश्वाणी का वार्षिक शुल्क केवल पांच रुपये है। एक साथ बीस रुपये भेजकर पाँच पाठकों का इसका ग्राहक बना सकते हैं।

अस्तित्व की रक्षा [१६]

स्वामी श्री विद्यानन्द जी 'विदेह'

आर्यसमाज के उद्भट विद्वान् रिसर्च स्कॉलर पं० भगवद्दत्त जी ने पुराणों के आश्रय से भारत के इतिहास की श्रेणियां लिखी हैं। पुराणों को आधार मानकर उन्होंने भारत के इतिहास की लुप्त हुई कड़ियों को जोड़ा है। पुराणों का मैंने अभी तक अध्ययन तो नहीं किया है, किन्तु सरसरी निगाह से उनका पारायाण किया है। मेरा पं० भगवद्दत्ताजी की तरह ऐसा मत बना है कि पुराणों से भारत के इतिहास की लुप्त शृंखलाओं की खोज की जा सकती है और कि उनके कथानकों का, सबका नहीं तो बहुतों का, बुद्धिसंगत ऐतिहासिक रूप निखारा जा सकता है। साथ ही उनसे धार्मिक मान्यताओं के अन्तर्निहित आशयों की वैदिक व्याख्या भी की जा सकती है। स्वयं मैंने वाल्मीकीय रामायण के आधार पर **रामचरित्** नामक जिस पुस्तक की रचना की है, उसे सनातनधर्म तथा आर्यसमाज के क्षेत्रों में समान श्रद्धा से इसीलिये अपनाया गया है कि उसमें मैंने किसी वितण्डावाद को खड़ा न करके रामायण-पुराण के ऐतिहासिक रूप को श्रद्धापूर्वक निखारा है।

इसी प्रकार मेरा विचार है कि सभी पुराणग्रन्थों का ऐतिहासिक तथा धार्मिक स्वरूप निखारकर उन्हें सम्पूर्ण हिन्दू-आर्य-समाज के लिये सर्वथा सिद्धान्तानुकूल, मान्य तथा निरापद बनाया जा सकता है। ऐसा होने पर सनातनधर्म तथा आर्यसमाज के एकीकरण में पर्याप्त सहायता मिलेगी।

सार्वदेशिक-आर्यप्रतिनिधि सभा के विद्वान् उपमन्त्री, श्री पं० शिवचन्द्रजी ने हाल ही में एक बातचीत में मुझे बताया कि वेद ही सनातनधर्म है, कि वेदानुयायी ही सनातनधर्मी हैं, और कि जिनको हम सनाततधर्मी कहते हैं सनातनधर्मी नहीं पौराणिक हैं। उनके इस कथन से मुझे एक नयी दिशा की झलक मिली। **वेदों की वैदिक व्याख्या तथा वेदों का वैदिक अर्थ सनातनधर्म और आर्यसमाज को एकरूप कर सकता है।** मद्रचित

वेदव्याख्याग्रन्थों के अब तक जो ग्यारह पुष्प प्रकाशित हुये हैं, उन्हें सनातन-धर्म तथा आर्यसमाज, दोनों के विद्वानों तथा वेदानुशीलनकर्ताओं ने समान रूप से सराहा और अपनाया है। उनमें से प्रथम पुष्प का जो अंगरेज़ी अनुवाद किया है, उसे पाश्चात्य विद्वानों ने अतिशय अनुकूलता के साथ अंगीकार किया है। निस्सन्देह वेदों का **वैदिक व्याख्यासहित वैदिक वेदार्थ हिन्दुमात्र को नहीं, मनुष्यमात्र को एकत्व के सूत्र में पिरो सकता है।** इसीलिये तो महर्षि दयानन्द ने वेदों का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना परम धर्म ठहराया था।

इसी लेखमाला के सत्रहवें लेख में मैंने संकेत किया था कि आर्यावर्त के महापुरुषों की सर्वमान्यता किन कारणों से समाप्त हुयी है। उसी लेख में मैंने यह भी संकेत किया था कि परिवार नियोजन और शासन की नीतियां भी हिन्दु-विरोधी तथा हिन्दु-अस्तित्वविनाशक हैं। इन सबकी चिकित्सा किस प्रकार की जाये—यह विचारणीय है।

जिस प्रकार अलंकारों, अलौकिकताओं तथा चमत्कारों के झाड़-झंकार से शुद्ध ऐतिहासिक तथ्यों को निकालकर मैंने **रामचरित** की रचना की है, उसी प्रकार आर्यावर्त के समस्त महापुरुषों तथा मही महिलाओं के चरितों के प्रकाशन की प्रत्यक्षतः आवश्यकता है। हमारे महापुरुषों की शृंखला सृष्टि के आदि से आरम्भ होती है। ऋषियों की शृंखला भी ब्रह्मा से लेकर दयानन्द तक बहुत लम्बी है। सभी में हमारी समान निष्ठा तथा आस्था हो, एतदर्थ हमें उनकी जीवनियों का ऐतिहासिक विवरण प्रकाशित करना है। जिन्हें आज अछूत और अन्त्यज अथवा अन्त्यक् कहा जा रहा है, उनमें भी भक्तों और सन्तों के रूप में बड़े-बड़े महापुरुष और मही महिलायें हुई हैं। उनके चरितों को पढ़- सुनकर हिन्दु जाति की अपने महापुरुषों और मही महिलाओं में जो आस्था प्रस्थापित होगी, उससे हिन्दु जाति के सभी वर्गों को एकत्व में सिया जा सकेगा। अपने महापुरुषों के विषय में हमारी सन्तति की अनभिज्ञता, अवमान्यता तथा लापरवाही ने हिन्दु जाति के संगठन को बहुत विगठित किया है। सुविज्ञ और मेधावी उदार लेखकों को शीघ्रातिशीघ्र इस खाई को पाटने की संसाधना करनी चाहिये।

('सविता' से साभार)

भारत का बदलता राजनीतिक चित्र

श्री प्रणव प्रसाद

कांग्रेस दल की फूट से देश की राजनीतिक स्थिति में विस्फोट हुआ है। इस फूट का कारण कांग्रेस में विद्यमान मतभेद था। कदाचित् गांधी जी ने इसे देखा था और सन् १९४७ में ही यह कहा था कि सिद्धान्तों के आधार पर दल बन जाने चाहियें और सिद्धान्तों के आधार पर राज्य संचालन होना चाहिये।

गांधी किस बात को सिद्धान्त मानते थे और किसको सिद्धान्त नहीं मानते थे, यह उन्होंने नहीं बताया। यह भी कहा जा सकता है कि राजनीतिक सिद्धान्तों के विषय में उनको बहुत कम ज्ञान था। अत: यदि वह इस विषय पर कुछ लिखते भी तो गलत होता। वे कांग्रेस में दो विचार के लोग तो देखते थे, उनका परस्पर मतभेद भी देखते थे। परन्तु उनके पूर्ण व्यवहार से यह पता चलता है कि वह नहीं जानते थे कि कौन क्या चाहता है? वह राजनीतिक विषय से सर्वथा अनभिज्ञ थे।

गांधी की अनभिज्ञता का स्पष्ट प्रमाण भी मिलता है। वह अपने को हिन्दू कहते थे, परन्तु हिन्दुओं की जड़ काटने वालों का समर्थन करते थे। गांधी प्रतिस्पर्धात्मक अर्थ व्यवस्था (free competetive economy) के पक्षपाती थे। वह सरकार से नियन्त्रित अर्थ व्यवस्था को पसन्द नहीं करते थे, परन्तु डंके की चोट से अपने आप को समाजवादी और कम्युनिस्ट कहने वाले की पीठ ठोका करते थे। गांधी जी सादा और श्रेष्ठ जीवन (simple living and high thinking) को पसन्द करते थे, परन्तु जीवन भर उनका पृष्ठ पोषण करते रहे जो बड़े बड़े उद्योगों के चलाने की इच्छा वाले थे। इसी प्रकार वह हिन्दी के पक्षपाती थे, परन्तु अरबी, फ़ारसी मिश्रित हिन्दुस्तानी के लिये हिन्दी का सत्यानाश करते रहे। उनके लिये भाषा का कोई वैज्ञानिक पक्ष नहीं था। वह भाषा को भी राजनीति की ऐनक से देखते थे।

इन परस्पर विरोधी बातों का प्रदर्शन वह वल्लभ भाई पटेल की भर्त्सना और जवाहर लाल नेहरू का समर्थन करते हुए करते रहे। उनकी दृष्टि में दो

व्यक्ति ही आते थे, परन्तु वे किस सिद्धान्त के प्रतीक थे, यह उनको कभी समझ में नहीं आया और इनके विषय में उन्होंने कभी नहीं लिखा।

एक बार दोनों की विचारधाराओं पर चर्चा चली थी। सन् १९३६ में लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन के प्रधान जवाहर लाल बनाये गये। वह प्रधान बने महात्मा गांधी के समर्थन के कारण। अधिकांश नेता उस बार पटेल को प्रधान बनाना चाहते थे। गांधी को बताया भी गया था कि जवाहर लाल के विचार कम्युनिस्ट धारा के हैं, परन्तु गांधी जी हठ करते रहे और कांग्रेस को फूट से बचाने के लिये पटेल ने अपना नाम वापिस ले लिया। जवाहर लाल प्रधान बन गये। इन्होंने लखनऊ में अध्यक्षीय भाषण में सोशलिज्म का प्रचार किया और यह कह दिया कि कांग्रेस के नेताओं में अधिक संख्या में उसके समाजवाद को पसन्द नहीं करते और वे उसके कार्यक्रम को कार्यान्वित नहीं करेंगे। इस पर भी वह प्रधान थे और गांधी स्वयं सोशलिस्ट न होते हुए उसको कंधों पर उठाये फिरते थे। गांधी ने उन दिनों कांग्रेस को छोड़ रखा था, परन्तु वे अधिवेशन में उपस्थित थे।

लखनऊ के अधिवेशन के उपरान्त नेहरू समाजवाद का अर्थात् कम्युनिज्म का प्रचार करने लगे। इस पर समाचार-पत्रों में यह चर्चा होने लगी कि गांधी नेहरू को प्रधान बना कर पश्चात्ताप कर रहे हैं। तुरन्त गांधी का उत्तर छपा"...'मुझ में और जवाहर लाल में कोई मतभेद नहीं। हम में किसी प्रकार का विवाद भी नहीं। मैं जानता हूं कि नेहरू अहिंसावादी है।" इस बात ने समाचार पत्रों का तो मुख बन्द कर दिया, परन्तु यह बात भी स्पष्ट हो गयी कि गांधी जी हिंसा-अहिंसा को राजनीति में उद्देश्य समझ रहे हैं और कम्युनिज्म और सोशलिज्म इत्यादि को साधन। यह महापुरुष साधन और लक्ष्य में अन्तर नहीं समझता था।

इसी से हम कहते हैं कि गांधी जी पटेल और नेहरू में मतभेद तो देखते थे, परन्तु वे जीवनान्त तक समझ नहीं सके कि वह भेद क्या है और उनको किसका पक्ष लेना चाहिये। नेहरू मुख से अपने को अहिंसावादी कहते थे और साथ ही स्वयं कम्युनिस्ट थे और कार्ल मार्क्स की प्रशंसा करते थे। कार्ल मार्क्स और कम्युनिज्म हिंसा को ही अपने उद्देश्य की पूर्ति का एक मात्र साधन मानते थे। कम्युनिस्ट अब भी मानते हैं। गांधी इतना भी नहीं समझ सके।

इस पर भी यह तो सर्व विदित ही है कि गांधी स्वराज्य की कुछ ऐसी कल्पना रखते थे जो जवाहर लाल ने कभी पसन्द नहीं की और गांधी स्वराज्य प्राप्ति के उपरान्त भी नेहरू का समर्थन करते रहे और पटेल के आगे आने में बाधा बने रहे।

गांधी का कांग्रेस को तोड़ देने का आशय केवल इस कारण प्रतीत होता है कि जवाहर लाल और पटेल खुलकर झगड़ लें और वह खुलकर जवाहरलाल का समर्थन कर सकें।

कांग्रेस को तोड़ने के पक्ष में तो गांधी थे, परन्तु कौन खिलाफ़ था, यह कहना कठिन है। इस पर भी काँग्रेस के न टूटने से लाभ जवाहरलाल को और उनके विचार वालों को हुआ। जवाहरलाल के विचार यह थे कि देश को कम्युनिस्ट बनाना है, परन्तु धीरे-धीरे। कुछ घटनाचक्र को न समझने वाले यह कहते हैं कि जवाहरलाल सोशलिज्म लाना नहीं चाहते थे। हमारा विचार है कि वह सोशलिज्म चाहते थे और उनके मस्तिष्क में सोशलिज्म और कम्युनिज्म में कुछ भी अन्तर नहीं था। वह यह भी समझते थे कि सोशलिज्म एक साथ लाने से दक्षिण पंथियों के पक्ष में क्रान्ति हो जाने का डर है। अतः वह यह नहीं चाहते थे कि वे सत्ताधीश के पद से हट जायें। कदाचित् उनको यह भी विश्वास था कि उनके अतिरिक्त भारत में अन्य कोई नहीं जो समाजवाद ला सके।

नेहरू यह भी चाहते थे कि भारत में मुसलमान न केवल बने रहें, वरंच इतनी संख्या में हो जायें कि यहां कभी हिन्दू राज्य स्थापित न हो सके। उनके मस्तिष्क में यह घुसा हुआ था कि हिन्दू समाजवाद का विरोध करेंगे और यदि कहीं व्यापक समाजवाद हो भी गया तो हिन्दू विद्रोह कर इसे हटा देंगे। अतः नेहरू का जीवन भर यह प्रयास रहा कि भारत में मुसलमानों की संख्या इतनी अधिक हो जाये कि वे हिन्दुओं का प्रभावी विरोध कर सकें।

हम ये दोनों बातें नेहरू के प्रधान मन्त्रित्व काल की घटनाओं से सिद्ध कर सकते हैं। श्री गुरुदत्त जी की 'भारत गांधी नेहरू की छाया में' नामक पुस्तक में प्रचुर मात्रा में प्रमाण दिये गये हैं।

इन बातों से हमारा यह अनुमान है कि यह जवाहरलाल ही थे जो कांग्रेस को तोड़ने के विरुद्ध थे। इस पर भी यह निर्विवाद है कि जवाहरलाल तथा उनके साथियों ने गांधी के नाम का, तथा कांग्रेस के कथित प्रयासों से स्वराज्य प्राप्ति का भरपूर लाभ उठाया। यह हम जानते हैं कि सरकार में श्री जवाहरलाल जी के साथी जो इनके समाजवादी कार्यक्रम चलाते रहे हैं, प्रायः चरित्रहीन, स्वार्थी, कुनबापरवर और अवसरवादी थे, परन्तु जवाहर लाल ने उनको गले लगाते हुए, अपनी कल्पना का समाजवाद लाने में उनका प्रयोग किया। समाजवाद के लाने में सहायक या तो मूर्ख होते हैं अथवा सब प्रकार से चरित्रहीन। जवाहरलाल इस बात को जानते थे और इन्होंने

इस मानव दुर्बलता का भरपूर लाभ उठाया ।

जवाहर लाल ने अपने विचार से पटेल के साथियों को सर्वथा निस्तेज कर दिया था । इस पर भी कांग्रेस में फूट थी और वह सन् १९६९ में नग्न रूप में प्रकट हुई ।

श्रीमती इन्दिरा अपने पिता से कम समाजवादी हैं अथवा अधिक हैं, यह कहना कठिन है । हमारा विचार है कि वह अपने पिता श्री जवाहर लाल की प्रतिलिपि हैं । यह समाजवादी हैं, कम्युनिस्ट हैं और हिन्दुओं से घृणा करती हैं तथा मुसलमानों को गले लगाती हैं । यह जवाहरलाल की भांति पग-पग कर अपने उद्देश्य की पूर्ति करना चाहती हैं ।

यह ठीक है कि आप खुले आम समाजवाद और पूर्ण समाजवाद को लाने के लिये लालायित हैं । वैसे पण्डित जवाहरलाल भी थे । यों भी देश के सब अवसरवादियों, फ़िरकापरस्तों, मुसलमानों और हिन्दू विरोधी तत्त्वों को वह अपनी सहायता में इकट्ठा कर रही हैं । इनके व्यवहार से यह भी स्पष्ट है कि यह हिन्दुओं के रहते अपनी कल्पना के समाजवाद को सम्भव नहीं समझतीं । अतः यदि यह जवाहरलाल से कुछ तेज़ी से लक्ष्य की ओर जाना चाहती हैं और जाने में सफल हो रही हैं तो इसलिये कि पिछले चालीस वर्ष में जवाहरलाल के प्रयत्नों से देश में ऐसा वातावरण बन चुका है कि उनको तीव्र गति से अपने लक्ष्य की ओर जाना सम्भव प्रतीत होता है ।

स्थिति ऐसी हो गई है कि देश के अधिकांश लोग जानते हुए अथवा न जानते हुए सोशलिज्म के पक्ष में हो गए हैं । जब कभी किसी को सोशलिज्म की बुराइयाँ बताई जाती हैं तो वह पैसे वालों को गालियां देने लगता है । जैसे समाजवाद का विकल्प पूंजीवाद ही है । यह सब एक ही दिशा में प्रबल प्रचार का परिणाम है । आज स्थिति यह हो गई है कि हिन्दू महा सभा, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, जन संघ, सनातन धर्म सभा, आर्य समाज और कोई भी हिन्दू संस्था अपने आप को समाजवादी कहने में अपना मान समझती है और मजेदार बात यह है कि सबकी समाजवाद की कल्पना अपनी अपनी है । वे परस्पर एक बात में सहमत हैं और वह बात है बिरला इत्यादि को गाली देना । यह सब जवाहरलाल का भारत जैसे विशाल देश के साधनों को सत्रह वर्ष तक समाजवाद के पक्ष में प्रयोग करने का दुष्परिणाम है और रूस को अपने अपार धन से देश में कम्युनिज्म का प्रचार करने का अवसर देने के कारण है ।

अतः यह विस्मय करने की बात नहीं है कि श्रीमती इन्दिरा गांधी अपने पिता से अधिक तेजी से समाजवाद की ओर जा रही हैं ।

परन्तु तेजी से जाने और लम्बे लम्बे व्याख्यान देकर समाजवाद लाने से देश और भारतीय समाज का कल्याण होगा क्या ? मुसलमानों की संख्या देश में पचास प्रतिशत होने देने की स्वीकृति देने से यहां उन्नति हो सकेगी क्या ? एक सामान्य व्यक्ति इस स्थिति से अधिक सुखी होगा क्या ?

हमें इसमें सन्देह है। इस पत्रिका में अनेक बार समाजवाद की व्याख्या की जाती रही है और युक्तियुक्त ढंग से तथा प्रमाणों से यह सिद्ध किया जा चुका है कि समाजवाद से देश का कल्याण नहीं हो सकता। इससे अधिक व्याख्या के लिए यहां स्थान नहीं है।

परन्तु यह बात विचारणीय है कि कांग्रेस की वर्तमान फूट से देश के दूसरे राजनीतिक दलों की स्थिति क्या है ? जनसंघ यह समझ रहा है कि इसके लिए आगे बढ़ने का अवसर है। भारतीय क्रान्तिकारी दल तो यह समझने लगा है कि इस फूट से उत्तर प्रदेश में उनकी स्थिति में बहुत सुधार हुआ है। दक्षिण का डी० एम० के० दल तो बगलें बजा रहा है और वे कम्युनिस्टों की भांति अपने को राज्य का भागीदार समझने लगे हैं। स्वतन्त्र पार्टी निरीह बालक की भांति अपनी स्थिति को बदलने के लिए तैयार हो रही है। सबके सब, कांग्रेस के अतिरिक्त दल अपने अपने लिए अवसर समझने लगे हैं शक्तिशाली बनने का।

परन्तु सब दलों की इन आशाओं को. वर्तमान वस्तुस्थिति की पृष्ठभूमि में देखते हुए यह भविष्यवाणी करनी कठिन प्रतीत नहीं होती कि सबके सब मूर्ख बने रह जायेंगे और यदि किसी दल के लिए स्वर्ण अवसर आया है तो वह कम्युनिस्ट दल है। यह भी जवाहर लाल के प्रयत्नों का परिणाम ही है। जवाहरलाल तो सन् १९२७ में ही कम्युनिज्म की प्रशंसा के पुल बांधने लगे थे। कुछ लोग कहते हैं कि वे मूर्ख बनाये गये थे। हम उनसे सहमत नहीं। हमारा यह मत है कि जान-बूझ कर सत्य एवं झूठ बोल कर भी जवाहरलाल समाजवाद और कम्युनिज्म की प्रशंसा करते थे और तब ही उन्होंने दृढ़ता पूर्वक कम्युनिज्म का प्रचार आरम्भ कर दिया था। गांधी की सहायता से वे यह सब कर सके थे और आगे वे लोग जो इस देश में कम्युनिज्म को कल्याण का सूचक नहीं मानते, अपने को असहाय पा रहे हैं।

हमारी रुचि जनसंघ में और हिन्दू समाज की रक्षा में है, अतः हमारे मस्तिष्क में लक्ष्य ये दोनों हैं। इस विषय में हम आगामी लेख में लिखेंगे।

योगीराज श्रीकृष्ण

श्री सच्चदेव

द्रौपदी विवाह में श्रीकृष्ण का सहयोग

युधिष्ठिर इत्यादि पाण्डव श्रीकृष्ण की बूआ के लड़के थे। कुन्ती वसुदेव की बहन थी। पाण्डव श्रीकृष्ण से आयु में छोटे थे। जब कुन्ती और उसके पुत्रों को लाक्षागृह में जला देने का यत्न हुआ था, उस समय श्रीकृष्ण की ख्याति एक वीर और नीतिमान योद्धा के रूप में हो चुकी थी। तब तक श्रीकृष्ण और बलराम जरासंध से सत्रह बार युद्ध कर विजय प्राप्त कर चुके थे। इन्द्र की सहायता के लिए भौमासुर से युद्ध हो चुका था और उसमें विजय प्राप्त हो चुकी थी। इसके अतिरिक्त रुक्मिणी हरण की घटना घट चुकी थी और सत्यभामा के पिता का हत्यारा शतधन्वा मारा जा चुका था। इनके अतिरिक्त अन्य कई शौर्य के काम किये जा चुके थे।

साथ ही द्वारिकापुरी जो पहले सागर तट पर केवल माहीगीरों का गांव था, वहां एक भव्य नगरी निर्माण हो चुकी थी। यह सागर तट सागर के द्वीपों में रहने वाले एक राजा के राज्य में था। जब यादवों ने यहां अधिकार किया तो सागर के राजा से युद्ध हो गया। इस युद्ध में सागर राजा को परास्त कर बहुत धन-दौलत एकत्रित किया गया।

इन सब कर्मों से श्रीकृष्ण और बलराम की ख्याति देश भर में विस्तार पा चुकी थी और कृष्ण की मान-प्रतिष्ठा बनी हुई थी।

जब इनको पता चला कि कुन्ती पुत्रों सहित जल कर मर गई है तो द्वारिका से शोक प्रकट करने तथा वास्तविक स्थिति जानने के लिए दूत भेजा गया। इस दूत के लौटने से कुन्ती के पुत्रों सहित जल मरने के समाचार की पुष्टि ही हुई थी।

इसके कुछ काल उपरांत पाँचालराज महाराज द्रुपद ने अपनी कन्या द्रौपदी का स्वयंवर रचा। वह काल था जब निशानेबाजी की बहुत महिमा थी और स्वयंवर में कुछ ऐसी ही शर्त रखी गई थी, जिसे धनुर्विद्या के ज्ञाता और इसमें अति कुशल ही कोई पूरा कर सकता था। शर्त इस प्रकार थी—एक जल

कुण्ड के ऊपर एक चक्र एक दिशा में घूम रहा था और उसके ऊपर एक मछली थी, जो विपरीत दिशा में घूम रही थी। इन दोनों का प्रतिबिम्ब जल में दिखायी देता था। इस जल कुण्ड के समीप खड़े हो, कुण्ड में प्रतिबिम्ब देखते हुए ऊपर को बाण चलाकर, बाण के चक्र में से मछली को बींधना था। जो ऐसा कर सकेगा, वह द्रौपदी से पति के रूप में वरा जायेगा।

कृष्ण और बलराम दोनों इस स्वयंवर में महाराज द्रुपद के निमन्त्रण पर आये हुए थे। वहां देश भर के राजे-महाराजे और अन्य क्षत्रिय वीर धीर धनुर्विद्या में कुशल पधारे हुए थे। सबके समक्ष प्रतियोगिता आरम्भ हुई। कुण्ड के कुछ अन्तर पर द्रौपदी हाथ में जयमाला लिए खड़ी थी, जिससे वह शर्त पूरी करने वाले के गले में माला डाल दे। द्रौपदी के पीछे एक उच्च सिंहासन पर महाराज द्रुपद बैठे थे। द्रौपदी का भाई धृष्टद्युम्न अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित वीरों की एक सेना लिये खड़ा था। सामने आमन्त्रित राजे-महाराजे बैठे थे। इनमें ही कृष्ण और बलराम बैठे थे। दोनों की इच्छा इस प्रतिस्पर्धा में भाग लेने की नहीं थी।

इस मण्डप में एक ओर विद्वान ब्राह्मणों के लिये भी बैठने का स्थान था और वे भी भारी संख्या में वहां उपस्थित थे।

एक एक कर प्रत्याशी आने लगे और मछली को बींधने का यत्न करने लगे। बींधने के लिए वहाँ धनुष और पांच बाण रखे थे। प्रत्येक प्रत्याशी के लिए धनुष बाण वही रहता था तथा बाण समाप्त होने पर और बाण रख दिये जाते थे।

इस स्वयंवर में द्रौपदी देख रही थी कि कौन वहां आता है और उसको वरने का यत्न करता है। प्रत्येक प्रत्याशी जब आता था तो उसका नाम, पद और उसके स्थान की घोषणा कर दी जाती थी। जब कर्ण आया तो द्रौपदी ने कह दिया कि मैं इसे नहीं वरूंगी। इसे शर्त को पूरा करने की स्वीकृति न दी जाये। महाराज द्रुपद ने पूछा—क्यों ?

द्रौपदी का उत्तर था, 'यह अज्ञात पिता का पुत्र है और एक सूत जातीय व्यक्ति द्वारा पालन-पोषण किया गया है।'

महाराज कर्ण को इस प्रतियोगिता में भाग लेने से मना नहीं कर सके और कर्ण जब धनुष उठा बाण चलाने लगा तो द्रौपदी ने ऊँचे स्वर से कह दिया, 'चाहे कुछ हो, परन्तु मैं इस सूत पुत्र को नहीं वरूंगी।'

इस पर कर्ण को क्रोध आ गया और वह लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित न कर

सकने से लक्ष्य बींध नहीं सका। क्रोध से भरे कर्ण ने कहा, 'देखूंगा कौन इस शर्त को पूरा करता है और यदि कोई न बींध सका तो मैं तुम्हारा अपहरण करूंगा।'

द्रौपदी ने इसका उत्तर नहीं दिया। एक एक कर सब प्रत्याशी आये और असफल हो चल दिये। महाराज द्रुपद अति निराश हो यह घोषणा करने वाले थे कि द्रौपदी राजाओं में घूम कर जयमाला जिसे पहना देगी, वही उससे विवाह कर सकेगा। परन्तु घोषणा होने से पूर्व ही ब्राह्मण कक्ष में से एक सुन्दर युवक, ब्राह्मणों के सामान्य परिधान में, निकल आया और बोला, 'मैं एक ब्राह्मण हूं और इस शर्त को पूर्ण करने के लिये यत्न करना चाहता हूं।'

द्रौपदी ने देखा कि वह एक निर्धन ब्राह्मण तो है, परन्तु सुन्दर, बलशाली और ओजस्वी है। इस कारण उसने वैसी कोई आपत्ति नहीं की जैसी, कि उसने कर्ण के समय की थी।

जब कोई आपत्ति नहीं कर सका तो वह ब्राह्मण आगे बढ़ा और उसने पहले ही बाण से मछली को बींध दिया। इस पर सब विस्मय करने लगे। द्रौपदी ने आगे बढ़ जयमाला उस ब्राह्मण के गले में डाल दी।

जब यह ब्राह्मण मछली बींधने के लिये आगे बढ़ा था, उसी समय कृष्ण ने उसे पहचान लिया था। उसने समीप बैठे बलराम से कहा, 'यह तो अर्जुन प्रतीत होता है।'

बलराम अभी पहचानने का यत्न ही कर रहा था कि मछली बींधी गई। तदनन्तर कर्ण, द्रौपदी ने जिसका सूत पुत्र कह कर तिरस्कार किया था, अपना धनुष-बाण ले आगे बढ़ा और ऊंचे स्वर में बोला, 'हम सब राजा महाराजाओं के बैठे यह निर्धन साधन-विहीन ब्राह्मण एक राज-कन्या से विवाह नहीं कर सकता।'

इस ललकार पर अधिकांश राजा द्रौपदी की रक्षा के लिए लपके। कर्ण उसका अपहरण करने आगे बढ़ा. परन्तु उस ब्राह्मण ने उसी धनुष पर जिससे उसने बाण चला मछली बींधी थी वहीं रखे शेष चार बाणों में से एक बाण चढ़ा कर्ण पर चला दिया। तीर कर्ण की जांघ पर लगा और वह वहीं चलने में अशक्त हो गिर पड़ा। दुर्योधनादि जो स्वयंवर में आये हुए थे, कर्ण को उठा कर शाला से बाहर ले गये, इस समय तक अन्य राजा-महाराजा अपने अपने अस्त्र-शस्त्र उठा ब्राह्मण और द्रौपदी का मार्ग रोक खड़े हो गये। ब्राह्मण द्रौपदी को साथ ले महाराज द्रुपद का आशीर्वाद लेने के लिए जा रहा था।

कृष्ण इस उपद्रव को देख आगे बढ़ आया और महाराज द्रुपद के

समीप जा खड़ा हुआ। कर्ण को आहत हुआ देख शल्य राजाओं का नेतृत्व करता हुआ द्रौपदी को ब्राह्मण से छुटकारा दिलाने के लिए आगे बढ़ा, परन्तु इस समय तक एक अन्य ब्राह्मण जो लक्ष्य बींधने वाले से कम बलशाली प्रतीत नहीं होता था, राजाओं को रोकने के लिए आगे आ खड़ा हुआ। उसने यज्ञ-मण्डप का एक बहुत बड़ा खम्बा उखाड़ लिया और उससे राजाओं पर प्रहार करने लगा। शल्य को तो इस ब्राह्मण ने उठाकर ऐसे फैंका मानो वह कोई गेंद हो। राजे-महाराजे इस ब्राह्मण के युद्ध-कौशल को देख पीछे हटने लगे।

दूसरी और वहां एकत्रित ब्राह्मणों को क्रोध चढ़ आया। वे यह समझे कि ये क्षत्रिय लोग इतने अभिमानी हो गये हैं कि ब्राह्मणों को राज-कन्या के योग्य नहीं समझते। वे ईंट-पत्थर से उन पर प्रहार करने लगे।

महाराज द्रुपद यह अव्यवस्था देख धृष्टद्युम्न को यह आज्ञा देने वाले थे कि द्रौपदी को इस ब्राह्मण से छुड़ा लें। वह द्विविधा में थे कि द्रौपदी ने जिस ब्राह्मण के गले में जयमाला डाली है, उस ब्राह्मण को यहां से खदेड़ देना ठीक रहेगा अथवा नहीं। इस समय कृष्ण ने धृष्टद्युम्न से कहा, 'इस ब्राह्मण ने तुम्हारी बहन के विवाह की सब शर्तें पूरी कर दी हैं। अब इसका विरोध तो अधर्म हो जायेगा।'

कृष्ण की विद्वत्ता और शौर्य की महिमा का देश में डंका बज रहा था। अतः महाराज द्रुपद और उसका लड़का तटस्थ हो गये। राजाओं की भीड़ को खदेड़ते हुए अर्जुन तथा भीम द्रौपदी को लेकर अपने निवास-स्थान को चल दिये।

कृष्ण और बलराम को सन्देह था कि द्रौपदी के विवाह की शर्त पूरी करने वाला अर्जुन ही है; परन्तु उनकी सूचना थी कि वह अपने भाइयों और माता के साथ वर्णावत में जल कर मृत्यु को प्राप्त हो चुका है। इस कारण अनिश्चित मन विचार करते रहे कि क्या करें। वे पता कर वहाँ पहुंचे जहां ब्राह्मण द्रौपदी को ले गया था। यह एक कुम्हार का घर था। जब कृष्ण वहां पहुंचा तो वे अपनी बूआ को पांचों पुत्रों और द्रौपदी के मध्य में बैठे देख पहचान गये।

कृष्ण ने आगे बढ़ बूआ के चरण-स्पर्श किये और कहा, 'हमें आप सबको जीवित देख बहुत प्रसन्नता हुई है। साथ ही अर्जुन के द्रौपदी को प्राप्त करने से तो भारी हर्ष भी हुआ है।'

कृष्ण और बलराम महाराज द्रुपद के पास लौट आये। उन्होंने उन्हें यह सम्मति दी कि वह अपने पुरोहित को ब्राह्मण के निवास-स्थान पर भेजें और

उसका परिचय प्राप्त कर उससे द्रौपदी का विधिवत् विवाह कर दें।

इस समय तक महाराज ने धृष्द्युम्न को भेज दिया हुआ था। वह इस ब्राह्मण का पूर्ण वृत्तान्त जानने के लिए गुप्त रूप से कुम्हार के घर में गया था और वहां पर मां-पुत्रों को देख और उनके विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लौट आया था।

कृष्ण के कहने तथा धृष्टद्युम्न के उचित समाचार लाने पर पुरोहित भेजा गया और विवाह हो गया।

इस विवाह के उपरान्त द्रुपद ने धृष्टद्युम्न के अधीन एक सुदृढ़ सेना पाण्डवों के साथ कर दी। कृष्ण ने भी महाराज धृतराष्ट्र के पास सन्देश भेजा कि यह सौभाग्य की बात है कि पाण्डु पुत्र मिल गये हैं। उनको चाहिए कि इन्हें उचित स्थान प्रदान करें।

इस प्रकार पाण्डवों को एक पृथक् राज्य मिल गया। खाण्डव वन के तट पर इन्द्रप्रस्थ का छोटा सा राज्य उनको दिया गया और वे वहां जा राज्य करने लगे।

शाश्वत वाणी मासिक

समाचार पत्र रजिस्ट्रेशन केन्द्रीय कानून १९५६ के ८वें नियम के अन्तर्गत "शाश्वत वाणी" से सम्बन्धित जानकारी का विवरण।

प्रपत्र–४ (नियम सं० ८)

१—प्रकाशन स्थल	नई दिल्ली
२—प्रकाशन अवधि	मासिक
३—मुद्रक तथा प्रकाशक का नाम	अशोक वर्द्धन कौशिक
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली
४—सम्पादक का नाम	अशोक वर्द्धन कौशिक
५—स्वत्वाधिकारी	भारतीय संस्कृति परिषद्
पता	३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली

मैं, अशोक वर्द्धन कौशिक, घोषित करता हूं कि ऊपरलिखित विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के आधार पर सत्य है।

दिनांक १-३-१९७०

अशोक वर्द्धन कौशिक
(हस्ताक्षर प्रकाशक)

वैद्य श्री गुरुदत्त जी का नागरिक अभिनन्दन

'शाश्वत वाणी' के पाठकों को यह जान कर अपार हर्ष होगा कि उनकी पत्रिका के संरक्षक तथा शताधिक सशक्त एवं विचार प्रधान उपन्यासों और दशाधिक तत्त्वज्ञानपूर्ण ग्रन्थों के प्रणेता तथा सुप्रसिद्ध आयुर्वेदिक चिकित्सक वैद्य श्री गुरुदत्त जी को १६ फरवरी १९७० को दिल्ली विश्व विद्यालय के हंसराज कॉलेज में आयोजित एक भव्य समारोह में एक बृहद् अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया, जिनमें उनकी समाज एवं साहित्य सेवाओं पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। समारोह की अध्यक्षता एवं ग्रन्थ समर्पण भारत गणराज्य के उपराष्ट्रपति डाक्टर गोपाल स्वरूप पाठक ने किया।

पं० राम गोपाल जी शास्त्री के वेद मन्त्रोच्चार तथा गान्धर्व विद्यालय की

पं० रामगोपाल शास्त्री द्वारा वेद मंत्रोच्चार और श्री गुरुदत्त जी को माल्यार्पण।
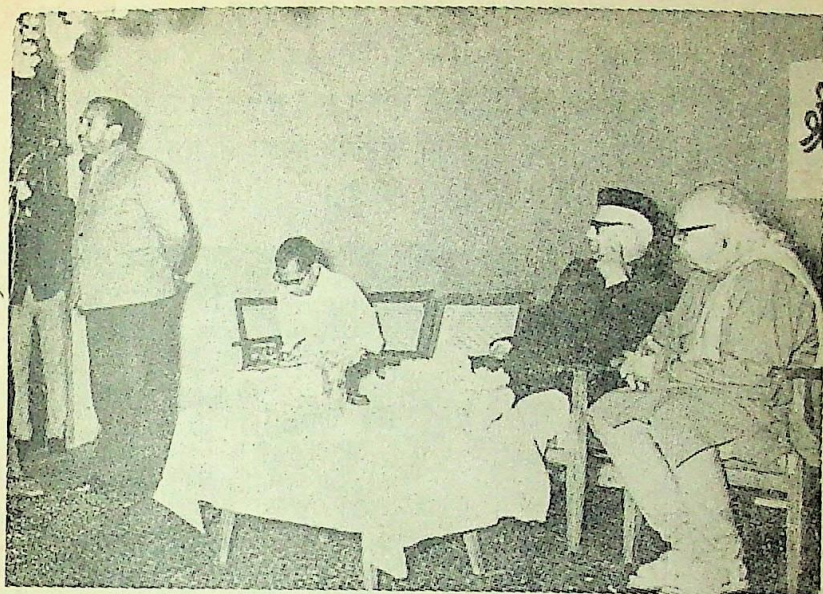
प्रो० बलराज मधोक द्वारा श्री गुरुदत्त जी के व्यक्तित्व पर प्रकाश।
उनके पीछे श्री अशोक कौशिक बैठे हैं।

छात्राओं के सरस्वती वन्दना से समारोह का शुभारम्भ किया गया। अभिनन्दन समिति के अध्यक्ष एवं संसद सदस्य श्री बलराज मधोक ने प्रारम्भ में श्रद्धेय वैद्य जी तथा उपराष्ट्रपति महोदय को माल्यार्पण कर स्वागत किया। तदनन्तर उन्होंने वैद्य जी के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर प्रकाश डालते हुए अपने प्रारम्भिक परिचयात्मक भाषण में कहा कि वैद्य जी इस युग के महर्षि हैं। उन्होंने जिस क्षेत्र में भी अपना पग रखा, वहीं सफलता प्राप्त की। उन्हें भारतीयकरण अथवा हिन्दूकरण का उद्घोषक बताते हुए प्रो० मधोक ने कहा कि आज जिस भारतीयकरण के नारे की चारों ओर चर्चा फैल रही है, वैद्य जी ने उसे अपने साहित्य के माध्यम से जन-जन तक पहुंचाया है। उनकी रचनाओं को जो कोई भी पढ़ लेता है, उसे हिन्दुत्व के प्रति अपार श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। उनके उपन्यासों को पढ़ कर पाठकों ने नई चेतना प्राप्त की है, उनमें अपने देश और संस्कृति के प्रति अनुराग जगा है। इसलिए श्रद्धेय वैद्य जी राष्ट्र के सबसे बड़े राष्ट्रवादी साहित्यकार हैं। उन्होंने अपने सिद्धान्तों पर आघात सहन नहीं किया। वे सदैव अपने हिन्दुत्व के मार्ग पर दृढ़ रह कर साहित्य-साधना करते रहे और आज भी अनवरत कर रहे हैं। हमें उनका मार्गदर्शन प्राप्त होता रहा है और भविष्य में भी यथावत् हम उनसे प्रेरणा प्राप्त करते रहेंगे।

दिल्ली विश्वविद्यालय के वरिष्ठ प्राध्यापक तथा हिन्दी के विद्वान डा० विजयेन्द्र स्नातक ने श्रद्धेय गुरुदत्त जी के साहित्य पर प्रकाश डालते हुए कहा कि गुरुदत्त जी जन-उपन्यासकार ही नहीं अपितु एक महान् विचारक भी हैं। उन्होंने हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में जो योगदान किया है, वह अभिनन्दनीय है। उन्होंने साहित्य को नई दिशा प्रदान की है।

प्रो० मधोक द्वारा माल्यार्पण।

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक डा० मनमोहन सहगल ने, जिन्होंने 'उपन्यासकार गुरुदत्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' नामक एक बृहदाकार ग्रन्थ का प्रणयन भी किया है, अपनी भावांजलि अर्पित करते हुए कहा कि गुरुदत्त जी मुझ सरीखे अनेक व्यक्तियों के सबसे प्रिय एवं प्रेरणादायक उपन्यासकार हैं। उनके उपन्यास हिन्दू संस्कृति तथा भारतीयता से ओत-प्रोत होते हैं। उन्हें हिन्दी साहित्य के क्षेत्र से उपेक्षित करने का षड्यन्त्र भी किया गया किन्तु वे सूर्य की किरणों की भांति बाधारूपी बादलों को वेध कर उद्भासित हुए और अपने साहित्य के माध्यम से हिन्दुत्व की भावना को बल प्रदान करने के साथ साथ उपन्यास साहित्य में एक नई विधा का विधान किया। मैं तो अपनी अभिवन्दना अपनी रचना द्वारा इससे पूर्व ही अर्पित कर चुका हूं और पुनः कामना करता हूं कि यह सुअवसर हम लोगों को बारम्बार सुलभ होता रहे।

राजधानी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री जैनेन्द्र जी ने श्रद्धेय वैद्य जी का अभिनन्दन करते हुए कहा कि मैं किसी से यदि प्रभावित हुआ हूं तो वे श्री गुरुदत्त जी एवं उनके उपन्यास हैं। उनकी लेखनी में समस्याओं को प्रस्तुत करने की अपूर्व क्षमता है। उनके उपन्यास अन्तस्तल-स्पर्शी होते हैं। मैंने जब उनकी प्रथम कृति 'स्वाधीनता' के पथ पर पढ़ी, तो मैं इतना अभिभूत हुआ कि उपन्यास समाप्त करते ही तुरन्त उन्हें बधाई का पत्र लिखा। तब से मैं निरन्तर उनका पाठक एवं प्रशंसक रहा हूँ। ईश्वर उन्हें चिरायु प्रदान करे।

प्रसिद्ध हिन्दी सेवी श्री क्षेमचन्द्र सुमन ने वैद्य जी के जीवन पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए कहा कि उन्होंने देवतास्वरूप भाई परमानन्द से प्रेरणा प्राप्त कर शहीदेआजम सरदार भगतसिंह को क्रान्ति की प्रेरणा दी। इसके बाद आयुर्वेद क्षेत्र में भी सफलता प्राप्त कर वे साहित्य क्षेत्र की ओर उन्मुख हुए तथा वहां भी अपूर्व धाक जमाई। वे अमृतपायी साहित्यकार और पीयूषपाणि वैद्य हैं।

देश के उदीयमान कवि श्री कृष्णमित्र ने अपने मधुर कण्ठ से स्वरचित अभिनन्दन गीत द्वारा समारोह को नये संगीत संसार में समाविष्ट करा दिया। तदनन्तर अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के अध्यक्ष तथा प्रसिद्ध प्रकाशक श्री रामलाल पुरी ने पुष्पहार से श्रद्धेय वैद्य जी का अभिनन्दन किया।

स्टार पब्लिकेशंस के श्री अमरनाथ दुशाला भेंट कर रहे हैं।

स्टार पब्लिकेशंस के प्रबन्ध निदेशक श्री अमरनाथ ने एक मूल्यवान दुशाला भेंट किया।

इस अवसर पर भारतीय साहित्यकार संघ की ओर से श्रद्धेय वैद्य जी को एक ताम्रपत्र भेंट कर उन्हें साहित्य-विभूति की उपाधि से विभूषित किया गया।

तदनन्तर उपराष्ट्रपति महोदय ने श्रद्धेय वैद्य जी के मस्तक पर रोली का तिलक किया, उन्हें माल्यार्पण किया और फिर नारियल के साथ अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित किया।

अपने अभिनन्दन-भाषण में उपराष्ट्रपति महोदय ने कहा कि गुरुदत्त जी का सम्मान वस्तुतः एक व्यक्ति का सम्मान नहीं अपितु यह भाषा और साहित्य का सम्मान है। उन्होंने कहा कि आज देश के सर्वांगीण विकास के कार्य में लेखकों का बहुत बड़ा दायित्व है। सर्वत्र शान्ति और नैतिकता के विकास के लिये लेखकों को प्रयत्नशील होना चाहिये।
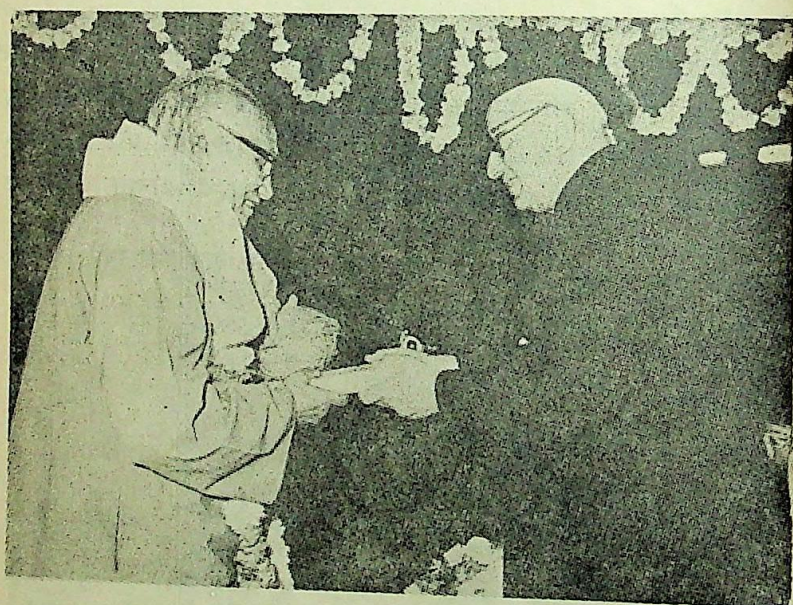
उप-राष्ट्रपति द्वारा ग्रन्थ समर्पण।

अत्यन्त भावविभूति की स्थिति में उपराष्ट्रपति ने रहस्योद्घाटन करते हुए बताया कि श्रद्धेय वैद्य जी और वे स्वयं न केवल समकालीन हैं, अपितु एक ही विद्यालय के छात्र भी हैं। इस प्रकार उनका परस्पर बहुत प्राचीन आत्मिक सम्बन्ध है।

अपने सम्मान के उत्तर में श्रद्धेय गुरुदत्त जी ने कहा कि उन्होंने जो कुछ

भी लिखा है वह अपने सिद्धान्तों, साहित्य व हिन्दी सेवा के उद्देश्य से प्रेरित हो कर की लिखा है। उन्होंने कहा कि मेरी उपेक्षा नहीं, अपितु मुझे तो भारत के शीर्षस्थ साहित्यकारों की सराहना एवं प्रशंसा प्राप्त है। अतः उपेक्षा की न उन्हें चिन्ता है और न अभिनन्दन की आकांक्षा है। वे जीवन के अन्तिम क्षणों तक अपने कर्तव्य का पालन करते रहेंगे। और जो कुछ उनकी प्रशंसा में यहां कहा गया है वे तदनुसार अपने जीवन और कर्तृत्व को ढालने का यत्न करते रहेंगे।

अभिनन्दन समारोह मे राजधानी के प्रमुख साहित्यकार, विश्वविद्यालय के प्राध्यापकगण, पत्रकार, राजनीतिक नेता तथा प्रतिष्ठित नागरिक भारी संख्या में उपस्थित थे। अभिनन्दन समिति के मन्त्री के नाते श्री अशोक कौशिक इस समारोह के संयोजक थे। श्रद्धेय वैद्य जी को समर्पित किये गये उस विशाल अभिनन्दन ग्रन्थ का सम्पाद भी उन्होंने ही किया।

पांच खण्डों में विभाजित इस नयनाभिराम अभिनन्दन ग्रन्थ में सुहृजनों की शुभकामनाओं एवं संस्मरणों के अतिरिक्त श्रद्धेय गुरुदत्त जी के जीवन एवं कृतियों पर विशेष विशद् एवं सारगर्भित लेखों के साथ साथ उपन्यास साहित्य के इतिहास, उसकी विविध विधाओं और प्रचलित वादों पर डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, आचार्य विनयमोहन शर्मा, डॉ० रामदत्त भारद्वाज, डॉ० मनमोहन सहगल, डॉ० यश गुलाटी, डॉ० महाराज कृष्ण जैन, डॉ० हेमराज निर्मम प्रभृति अनेक अधिकारी विद्वानों के विशेष लेखों द्वारा साहित्यानुशीलन किया गया है। इसके साथ ही सनातनधर्म एवं आर्य समाज, हिन्दू महासभा तथा जनसंघ और कांग्रेस एवं चिकित्सा विज्ञान के आचार्यों, नेताओं, अधिवक्ताओं तथा अनेक संसद सदस्यों ने अपने विचार एवं भावांजलियां इस ग्रन्थ के माध्यम से अभिव्यक्त की हैं। इस प्रकार यह अभिनन्दन ग्रन्थ सभी वर्गों के पाठकों, चिन्तकों, प्राध्यापकों एवं शोधछात्रों के लिये समानरूपेण संग्रहणीय एवं उपयोगी है। हमें आशा है कि भारत का जन-जन इससे लाभान्वित होगा।

प्रस्तुतकर्त्ता

शिवकुमार गोयल

समाचार समीक्षा

बैंकों का पुनर्राष्ट्रीयकरण

उन्नीस जुलाई सन् १९६९ को भारत के राष्ट्रपति ने एक अध्यादेश जारी कर देश के प्रमुख बैंकों को सरकारी अधिकार में ले लिया था। इसके कुछ दिन उपरान्त संसद के दोनों सदनों में उस अध्यादेश को वैधानिक रूप दे दिया गया। हमने तब भी यही लिखा था कि यह कानून अनुचित है। स्वतन्त्र दल के अतिरिक्त अन्य किसी भी दल ने संसद में इस कानून को इस आधार पर अवांछनीय नहीं माना कि यह देश के लिए, देश की आर्थिक स्थिति के लिए और देश की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के लिए घातक होगा। अन्य सब दलों ने या तो उस कानून का समर्थन किया, या केवल इसके विधि-विधान पर आपत्ति की, परन्तु इसके मूल सिद्धान्त को सब ने स्वीकार किया।

हमारा विचार था कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण की आवश्यकता नहीं है। नैतिक दृष्टि से भी यह उचित नहीं। बैंकों के राष्ट्रीयकरण से देश को लाभ होने की अपेक्षा हानि होने वाली है और हमारा यह भी विचार था कि निजी उद्योग-धन्धों में अनन्त बाधायें उपस्थित हो जायेंगी।

राष्ट्रपति के अध्यादेश और संसद से स्वीकृत राष्ट्रीयकरण के कानून को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गयी थी और उस चुनौती के फलस्वरूप सुप्रीम कोर्ट के ग्यारह न्यायाधीशों का न्याय-मण्डल इस चुनौती को सुनने के लिए बैठा। उन ग्यारह न्यायाधीशों में से दस ने यह सम्मति दी है कि यह कानून सार्वजनिक लाभ के लिए नहीं, वरंच राजनीतिक लाभ प्राप्त करने के लिए बनाया गया है। इन न्यायाधीशों का यह भी मत है कि देश भर के केवल चौदह बैंकों का राष्ट्रीयकरण करने से सरकार ने पक्षपातपूर्ण व्यवहार अपनाया है। इन का यह भी मत है कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण के प्रतिकार में जो मुआवज़ा दिया गया है, वह न तो पर्याप्त है और न उसके देने का ढंग ही ठीक है। इस प्रतिदान को प्रतिदान कहा ही नहीं जा सकता।

इन न्यायाधीशों ने यह तो स्वीकार किया है कि संसद को किसी भी सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण का अधिकार है, परन्तु उसमें भेद-भाव नहीं होना चाहिए और न ही राष्ट्रीयकरण की जाने वाली सम्पत्ति का प्रतिकार ऐसे

ढंग से हो, जिससे कि सम्पत्ति के स्वामी नया कारोबार न चला सकें।

सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय के विरुद्ध ग्यारह में से एक न्यायाधीश का यह मत है कि राष्ट्रीयकरण का कानून भारत के संविधान के अनुकूल है और इससे किसी प्रकार की संवैधानिक आपत्ति खड़ी नहीं होती। कुछ भी हो, न्यायाधीशों के विशाल बहुमत ने इस कानून को संविधान के विरुद्ध माना है।

इस निर्णय पर कुछ लोग प्रसन्न थे और कुछ अप्रसन्न। कुछ ऐसे भी थे जो सरकार को सम्मति दे रहे थे कि वह न्यायालय द्वारा उल्लिखित दोषों को हटा कर तुरन्त एक नया अध्यादेश जारी कराए, जिससे बैंकों का पुनः राष्ट्रीयकरण हो जाए। और सरकार ने वही किया तथा बैंकों का पुनर्राष्ट्रीयकरण हो गया।

किसी देश के संविधान से और लिखित न्याय प्रपंच से भी ऊपर एक अन्य संविधान अथवा कानून है, जिसे हम धर्म कहते हैं। और उस धर्म से किसी नागरिक की धर्मयुक्त अर्जित सम्पत्ति छीन लेने वाला चोर कहलाता है। बैंकों की भी अथवा बैंकों में जमा कराने वालों की भी, धर्मयुक्त अर्जित सम्पत्ति सरकार नहीं ले सकती। धर्मयुक्त अर्जित सम्पत्ति क्या है और कितनी है, इसमें मतभेद हो सकता है। परन्तु जो भी व्यक्ति ईमानदारी से काम करता हुआ धन अर्जन करता है और उस धन पर न्यायोचित कर दे देता है, शेष बचे हुए धन को धर्मयुक्त ढंग से व्यय करना उसका अपना अधिकार है। हम तो यह मानते हैं कि सरकार क्या, परमात्मा भी उसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता। तदपि चोर चोरी करते हैं, डाकू डाका डालते हैं, तानाशाह लूट-पीट लेते हैं और बलशाली उसका भोग करते हैं। इस सबके होते हुए भी हम लोग जो कर्म-फल पर विश्वास रखते हैं, इसको अन्याय समझते हैं।

जब प्रथम बार, अर्थात् जुलाई १९६९ में बैंकों का राष्ट्रीयकरण हुआ था तो साइकल रिक्शा, तांगा, मोटर रिक्शा तथा टैक्सी चालकों के भाड़े के जलूस निकाले गये, देवी इन्दिरा को बधाइयां दिलवाई गईं। किराये के उन प्रदर्शनकर्त्ताओं को बड़े बड़े दिलासे दिलाये गये और अब तक के समाचारों से जो विदित है वह यही है कि—"ढाक के तीन पात, चौथा लगे न पांचवें की आश।" अर्थात् तांगे वाला तांगा ही चला रहा है, रिक्शेवाला रिक्शा ही खींच रहा है, अन्य सब भी वही कर रहे हैं, जो वे जलूस निकालने से पूर्व करते थे। न किसी रिक्शेवाले को किसी राष्ट्रीयकृत बैंक ने कार दिलवाई और न किसी कारवाले को कोई कारखाना। किन्तु पूंजीपति अर्थात् देवी इन्दिरा और उसकी सरकार के स्वार्थी साथियों की शारीरिक व आर्थिक

सम्पत्ति में अवश्य वृद्धि हुई है। सभी के चेहरे लाल और हाल खुशहाल दृष्टिगोचर होते हैं। इस पुनर्राष्ट्रीयकरण से भी उन्हीं पूंजीपतियों, अर्थात् शासकों को लाभ होगा। जनसाधारण उसी अभाव की चक्की में पिसता रहेगा जिसमें वह अब तक पिसता आ रहा है। हां, पिसने की प्रक्रिया यदि अभी तक धीमी थी तो वह अब तीव्र अवश्य हो जावेगी।

इस सन्दर्भ में हम सत्तारूढ़ कांग्रेस के महामन्त्री शंकरदयाल शर्मा द्वारा इलाहाबाद जिला कांग्रेस कमेटी के कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं की एक सभा में दिये उस भाषण का उल्लेख कर देना चाहते हैं जो उन्होंने २३ फरवरी को दिया और जिसमें उन्होंने कहा—"समय आने पर सरकार सभी बैंकों का, जिसमें विदेशी बैंक भी शामिल हैं; राष्ट्रीयकरण करेगी मगर धन की कमी के कारण फिलहाल यह सम्भव नहीं है।"

गरीबी; समाजवाद और बजट

इन पंक्तियों के पाठकों तक पहुंचने से पूर्व देवी इन्दिरा की किचन केबिनट अर्थात् भारत सरकार का १९७०-७१ वर्षीय बजट पूर्णतया प्रकाश में आ चुका होगा। उस बजट में आंकड़ों के हेर-फेर को समाजवाद की पुट द्वारा पुष्ट किया गया होगा। २४ फरवरी की कालिमामय प्रातर्वेला में सफेद कागज पर काली स्याही से, किचन केबिनट में सद्यःसमाविष्ट पाकशास्त्री, गुलजारीलाल नन्दा की कलम रूपी करछी से समाचार पत्रों में रेल-मन्त्रालय का जो बजट प्रकाशित हुआ है, उससे इन्दिरा सरकार के बजट का पूर्वानुमान स्पष्ट परिलक्षित होता है।

नन्दा जी ने रेल यातायात की कोई भी मद ऐसी नहीं छोड़ी जिसके किराये में वृद्धि न की गई हो। हास्यास्पद बात यह है कि रेल मन्त्रालय इस सबका उत्तरदायित्व योजना आयोग पर डाल रहा है। और नन्दा साहब की उस स्पष्टवादिता पर कौन नहीं न्यौछावर होगा जब वे कहते हैं कि आगामी तीन वर्ष में अभी और कई वृद्धियां होंगी। नन्दा ने किरायों और भाड़ों की वृद्धि में जो दलीलें दी हैं उनमें मुख्य हैं रेलों के विकास कार्यक्रमों, इस्पात और ईंधन के मूल्य और रेल कर्मचारियों के वेतनों तथा उनके कल्याण सम्बन्धी कार्यों पर खर्च में वृद्धि। तो क्या इसके लिये किरायों और भाड़ों में वृद्धि के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं रह गया था? हमें बताया गया है कि गत वर्ष जून में बिना टिकट रेलयात्रा करने वालों को कड़ा दण्ड देने के लिये रेल अधिनियम में किये गये संशोधन के फलस्वरूप चालू वर्ष में यात्री किराये से होने वाली आय में अनुमानतः सवा नौ करोड़ रुपये की वृद्धि हुई है। क्या इसी

प्रकार रेलों में भ्रष्टाचार, चोरी, अपव्यय करने वालों के लिये भी कड़े दण्ड की व्यवस्था नहीं की जा सकती थी ? क्या राजनीति प्रेरित आन्दोलनों के समय रेलों की सम्पत्ति पर गुस्सा उतारने और उसे नष्ट करने वालों के लिये भी ऐसी कठोर सजाओं का विधान नहीं हो सकता, जो दूसरों के लिये उदाहरण बन सकें और उन्हें विनाश तथा लूटपाट की असामाजिक प्रवृत्तियों से रोक सकें ? किरायों और भाड़ों में वृद्धि को जनता खुशी से सहन भी कर सकती है यदि उसे यह भरोसा हो कि उसकी यात्रा सुखपूर्वक होगी तथा उसका भेजा गया माल अपने गन्तव्य स्थान तक सकुशल पहुंच जावेगा ।

समाजवादी सरकार के इस असमाजवादी बजट की लोक सभा में न केवल विपक्षी दलों अपितु सत्तारूढ़ कांग्रेस के कुछ सदस्यों ने भी कड़ी आलोचना की है और उसे '**समाजवाद पर चलने का दावा करने वाली सरकार का जनविरोधी बजट**' बताया है । मार्क्सवादी संसद सदस्य आनन्द नम्बियार ने कहा कि उनकी पार्टी लोक सभा में इस बजट के विरोध में अपना मत देगी । उन्होंने तो इतना तक कह डाला कि **इस प्रक्रिया में यदि इन्दिरा सरकार का पतन भी हो जाय तो उनको इसकी परवाह नहीं** । यह स्मरणीय है कि इन्हीं मार्क्सवादियों के भरोसे पिछले कई मास से देवी इन्दिरा शासनतन्त्र रूपी मंच पर नर्तन कर रही हैं । कम्युनिस्ट पार्टी के दूसरे धड़े के नेता डांगे ने कहा कि सड़क परिवहन के निहित स्वार्थी तत्त्वों को खुश करने के लिये रेल यात्रियों का उत्पीड़न किया जा रहा है और उनकी पार्टी इसका विरोध करेगी ।

इन्दिरा सरकार की प्रबल समर्थक प्रजा समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष गोरे ने कहा कि यात्री किराये और माल भाड़े में बराबर वृद्धि से महंगाई बढ़ाने के अलावा रेलवे, प्रतियोगिता में सड़क परिवहन से पिछड़ जावेगा ।

सत्तारूढ़ कांग्रेस के युवा तुर्क कृष्णकान्त ने बजट की तीव्र आलोचना करते हुए कहा कि इसका स्वागत नहीं किया जा सकता । **कांग्रेस के बम्बई अधिवेशन के बाद लोगों को आशा थी कि कम से कम रेल बजट में गरीबों को राहत मिलेगी ।**

श्री के० आर० गनेश, कम्युनिस्ट पार्टी के कार्ड होल्डर, किन्तु सत्तारूढ़ कांग्रेस की कार्यकारिणी के सदस्य, का कथन है कि **बजट समाजवादी सिद्धान्तों से मेल नहीं खाता है** । राहत की आशा कर रहे सामान्य लोगों पर इस बजट से चोट पहुंचेगी । हीरेन मुखर्जी ने कहा कि किराये में वृद्धि दुर्भाग्यपूर्ण है ।

अनेक सदस्यों ने यह विचार व्यक्त किया कि किराया भाड़ा में वृद्धि की अपेक्षा इस घाटे की पूर्ति रेलवे के बेहतर ढंग से काम करने, चोरियां एवं

बर्बादी को रोकने और कुप्रबन्ध को दूर करने से हो सकती थी। माल भाड़े व किराये में वृद्धि से ग्राम तौर पर वस्तुओं के मूल्य में स्वाभाविक वृद्धि हो जायेगी।

यहां हमने केवल उन्हीं संसद सदस्यों के कथन का उल्लेख किया है जो देवी इंदिरा की किचन कैबिनट के या तो सदस्य हैं अथवा उसके प्रबल समर्थक। यह धोखे का समाजवाद है। **क्योंकि जहां ये सदस्य इस समय इस बजट का विरोध कर रहे हैं वहां यदि मतदान का अवसर आया तो ये ही बढ़ चढ़ कर बोलने वाले सदस्य इनका दो दो हाथों से समर्थन करेंगे।**

क्रय-विक्रय की राजनीति :

२३ फरवरी को लोक सभा में उत्तर प्रदेश और बिहार के राज्यपालों के अपने राज्यों में नये मन्त्रिमण्डल बनाने सम्बन्धी कार्य की कटु आलोचना हुई। जनसंघ, विरोधी कांग्रेस, संसोपा और स्वतन्त्र दल ने उक्त दोनों राज्यपालों पर आरोप लगाया कि केन्द्र के दबाव में आकर उत्तर प्रदेश में चरणसिंह और बिहार में दरोगाराय को मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए ही आमन्त्रित किया।

उत्तर प्रदेश में चौधरी चरणसिंह को मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए आमन्त्रित करने के कारण पर प्रकाश डालते हुए जब चह्वान ने कहा कि अपने कटु अनुभव के कारण चौधरी जनसंघ और संसोपा के साथ मिलकर मंत्रिमण्डल बनाने के लिए तैयार नहीं थे तो श्री कंवरलाल गुप्त ने उन्हें बीच में ही टोक कर कहा कि **पण्डित द्वारकाप्रसाद मिश्र ने चौधरी चरणसिंह को खरीद लिया है।**

चौधरी चरणसिंह के अन्धभक्त, उनके पथानुगामी तथा उनकी भारतीय क्रान्ति दल के महामन्त्री श्री प्रकाशवीर शास्त्री ने जितने जोरों से शासक कांग्रेस के पक्ष का समर्थन किया, उतने प्रभावशाली ढंग से तो शासकीय सदस्यों ने भी नहीं किया। उन्होंने कहा—'**मैं मानता हूं कि विरोधी कांग्रेस को खरीद-फरोख्त करने के लिए समय नहीं मिला।** क्या शास्त्री का यह कथन इस बात का पुष्ट प्रमाण नहीं है कि चौधरी चरणसिंह सहित समूचे भारतीय क्रान्ति दल को खरीद लिया गया है। अन्यथा जो चौधरी कुछ ही दिन पूर्व चन्द्रभानु गुप्त के गुणगान के गीत गा चुका था वह एकाएक कैसे पलट गया? और जिस इंदिरा सरकार को शास्त्री महोदय अभी तक विधर्मी, विदेशी, देशघातक और भी न जाने क्या क्या कहते आये हैं, आज उसी के गुणानुवाद में उनकी शास्त्रचर्चा होती है। इतना ही नहीं २४ फरवरी को रात्रि में

आकाशवाणी से जो समाचार प्रसारित हुआ है उसके अनुसार शीघ्र ही भारतीय क्रान्ति दल की कार्यकारिणी जगजीवनराम की कांग्रेस में सम्मिलित होने की प्रक्रिया पर विचार कर रही है। सम्भवतया इन पंक्तियों के पाठकों तक पहुंचने से पूर्व ही कुछ निर्णय हो चुका होगा। क्या इसका यह अभिप्राय नहीं कि भारतीय क्रान्ति दल और उसके नेता रूपी अभिनेताओं को खरीद लिया गया है।

श्री प्रकाशवीर शास्त्री ने जिस खरीद-फरोख्त का जिक्र किया है उस आरोप से स्वयं को अथवा अपने छोटे से भारतीय क्रान्ति दल को मुक्त करना चाहते हों तो यह उनका भ्रम है। आज देश का, राजनीति से सर्वथा अनभिज्ञ व्यक्ति भी यह बात भली-भांति जानता है कि सत्तालोलुप एवं सिद्धान्तविहीन चरणसिंह ने ही यह खरीद-फरोख्त का नाटक सर्व प्रथम प्रारम्भ किया। इस जघन्य कृत के लिये न चरणसिंह की प्रशंसा की जा सकती है और न भारतीय क्रान्ति दल की ही। शास्त्री जी की निष्ठा के बारे में भी अब किसी को सन्देह नहीं रह गया होगा। स्पष्ट है कि शास्त्री जी के लिए चौधरी साहब दल और देश से ऊपर हैं। दल को तो उन्होंने दबा लिया किन्तु देश को वे गुमराह नहीं कर सकते, इतनी बात ध्यान में रखें। यह देश का सौभाग्य ही है कि भारतीय क्रान्ति दल अपने प्रारम्भिक काल में ही अपने इस छद्म रूप को छोड़ कर और सिद्धान्तवाद का नकाब उतार कर अपने वास्तविक रूप में प्रकट हो गया है। चौधरी साहब की इस खरीद-फरोख्त का परिणाम भी शीघ्र ही प्रकट हो जायेगा।

क्या आर्यसमाज और आर्य नेता इन दो विशुद्ध आर्यसमाजियों के कृत्यों से देश की कोटि-कोटि जनता को आगाह करने में पहल करेंगे?

'मैं लेने नहीं देने आया हूं'

अन्त में अपने ४ मास के भारत के प्रवास के बाद खान अब्दुल गफ्फार खां इस देस से करोड़ रुपये की सम्पत्ति बटोर कर ८ फरवरी को अफगानिस्तान के लिये प्रस्थान कर ही गये। खान साहब ने जब हवाई जहाज से उतर कर इस धरती पर पग धरा था तो कहा था कि मैं देने आया हूँ लेने नहीं और वे अन्त तक भारतवासियों को झिड़कियां और गालियां देते रहे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। जाते समय भी यही कुछ वे भारतवासियों को दे कर गये हैं। किन्तु यह सफेद झूठ है कि वे कुछ ले कर नहीं गये। जितनी धन सम्पत्ति वे यहां से उपहार के नाम पर ले कर गये हैं, उतने से लाखों लोगों को समाजवाद के रंग में रंगा जा सकता था।

इतना ही नहीं, जाते जाते वे एक संस्था का भी गठन करवा गये हैं, जिससे कि भविष्य में उनके भारत में आने के द्वार सर्वथा खुले रहें। उस संस्था का नाम भी उनकी पुरानी संस्था के नाम पर 'खुदाई खिदमतगार' रखा गया है। भारत की कोटि कोटि जनता में उनको कोई भी ऐसा समाजसेवी नहीं मिला, जिसके हाथों वे इस संस्था की बागडोर सौंपते। भारत में स्थापित इस खुदाई खिदमतगार संस्था के मुख्य कर्ताधर्ता हैं कुख्यात शेख अब्दुल्ला और उसके सहायक हैं भूदान नारायणसिंह, (जिनका वास्तविक नाम जयप्रकाश-नारायणसिंह है) और मौलाना सुन्दर लाल। इन दोनों व्यक्तियों की भारतभक्ति और पाकिस्तान तथा चीन भक्ति के बारे में भारत का बच्चा बच्चा जानता है। चीन और पाकिस्तान इन दोनों मुल्लाओं की पितृभूमि हैं। खान अब्दुल गफ्फार खां के श्रद्धालुओं, प्रशंसकों तथा आमन्त्रित कर्ताओं को खान की नीयत का अनुमान कर अब भी सावधान हो जाना चाहिये।

इन्हीं दिनों का दूसरा समाचार शेख का विचित्र वक्तव्य है। यदि शेख ने वह वक्तव्य सचेतन मन और बुद्धि से दिया है तो उसे सुखद् ही कहना चाहिये। सन्देह केवल इस लिये होता है कि शेख की अब तक की गतिविधियां सर्वथा इसके विपरीत रही हैं।

६ फरवरी को शेख अब्दुल्ला ने दिल्ली में एक संवाददाता सम्मेलन में कहा कि 'भारत हमारा देश है और भारतीयों को बिना किसी जाति और धर्म सम्बन्धी भेदभाव के पूरे उत्तरदायित्व के साथ इसके विकास और प्रगति के लिये सभी प्रयत्न करने चाहियें। उन्होंने यहां की राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रति भी आस्था प्रकट की और यह भी कहा कि मैं भारतीयकरण के नारे से भयभीत नहीं हूं और इसे उपयुक्त समझता हूं।' किन्तु इसके ८ दिन बाद ही अर्थात् १४ फरवरी को जयपुर में अपने एक भाषण में शेख ने कहा—'जब मैं कहता हूं कि भारत मेरा देश है तो तो मैं यह नहीं कहता कि पाकिस्तान मेरा देश नहीं है।' शेख के इस दूसरे वक्तव्य ने लोगों में खलबली मचा दी। किन्तु उसका स्पष्टीकरण करते हुए शेख ने कहा कि मैंने देश के विभाजन को (गांधी जी की भांति ही) स्वीकार नहीं किया है। मैं अब भी यही समझता हूं कि भारत पाकिस्तान मिला कर एक देश हैं। अर्थात् वे अखण्ड भारत के हामी हैं।

अब देखना यही है कि शेख रूपी यह ऊंट किस करवट बैठता है। देशवासियों से हमारा एक ही निवेदन है कि सन्देह की पुष्टि होने से पूर्व वे सावधान रहें, इसी में हम सब का कल्याण निहित है।

महान् उपन्यासकार श्री वैद्य गुरुदत्त के अभिनन्दन के अवसर पर श्रद्धागान

युग के रचनाकार समर्पित विनय पूर्ण वन्दन,
श्रद्धानत हो जन जन करते तेरा अभिनन्दन ॥

जगी राष्ट्र चेतना तुम्हारी अनुपम कृतियों से,
धन्य हुई कल्पना सुखद सुन्दरतम स्मृतियों से ।
युग को वाणी मिली अनूठा वह साहित्य दिया,
शब्द अर्थ भाषा को तुमने नव लालित्य दिया ॥
हुई 'देश की हत्या' तो रो उठा तुम्हारा मन,
श्रद्धानत हो जन जन करते तेरा अभिनन्दन । युग के......

मुखरित हुआ अतीत लेखनी जब तेरी बोली,
भारतीय सस्कृति की गहन समस्यायें खोलीं ।
'वाम मार्ग' की 'प्रवंचना' का पथ क्या देता है,
समझाया तुमने 'छलना' है, 'बहती रेता' है ॥
मिटी रूढ़ियां धर्म कर्म के खोल दिये बन्धन,
श्रद्धानत हो जन जन करते तेरा अभिनन्दन । युग के......

चली विषैली हवा पश्चिमी, युग बीमार हुआ,
और अभी इसका न किसी से कुछ उपचार हुआ ।
योग्य वैद्य हो, तुम्हीं रोग का ठीक निदान करो,
रोगी मन के लिए, औषधि नव निर्माण करो ॥
मूर्छित मन जागे बांटो साहित्यिक संजीवन,
श्रद्धानत हो जन जन करते तेरा अभिनन्दन । युग के—....

युग की नमस्कार स्वीकारो कवि की भाषा में,
दीर्घायुष्य कामना अर्पित जन अभिलाषा में ।
नैतिकता जागे स्वदेश में, ऐसी कथा कहो,
उपन्यास और कहानियों में युग की व्यथा कहो ॥
इस प्रकार हो युगवाणी का सुन्दर सम्पादन,
श्रद्धानत हो जन जन करते तेरा अभिनन्दन । युग के—....

कृष्ण मित्र,
राकेश मार्ग, गाज़ियाबाद

दिनांक :—१६-२-७०

संरक्षक सदस्य

१ केवल एक सौ रुपये भेजकर परिषद् के संरक्षक सदस्य बनिये। यह रुपया परिषद् के पास आपकी धरोहर बनकर रहेगा।

संरक्षक सदस्यों को सुविधाएँ—

१ परिषद् के आगामी सभी प्रकाशन आप बिना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। आगामी वर्ष ये पुस्तकें प्रकाशित होंगी—इतिहास में भारतीय परम्पराएँ (मार्च १९७० में); वर्ण व्यवस्था अथवा प्रजातन्त्र (अप्रैल १९७०); राष्ट्रीयकरण (अप्रैल १९७०); ब्रह्म-सूत्र हिन्दी विवेचना (मूल्य २५.००) अगस्त १९७० एवं कुछ अन्य

२ परिषद् की पत्रिका 'शाश्वत वाणी' आप जब तक सदस्य रहेंगे निःशुल्क प्राप्त कर सकेंगे।

३ परिषद् के पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ आप २५ प्र० श० छूट पर प्राप्त कर सकेंगे। सूची इस अंक में अन्यत्र देखें।

४ जब भी आप चाहेंगे एक मास की पूर्ण सूचना देकर अपनी धरोहर ले सकेंगे। धन मनी वापिस आर्डर द्वारा भेज सकते हैं।

सदस्यों को परिषद् के पिछले निम्न तीन प्रकाशन बिना मूल्य भेजे जाएंगे।

१ समाजवाद एक विवेचन—ले० श्री गुरुदत्त मू० १.००

२ गांधी और स्वराज्य—ले० श्री गुरुदत्त मू० १.००

३ भारत में राष्ट्र—ले० श्री गुरुदत्त मू० १.००

सूचना—परिषद् का आगामी प्रकाशन 'इतिहास में भारतीय परम्पराएँ' प्रेस में है तथा आशा है ३१ मार्च तक तैयार हो जायेगा। मूल्य होगा १२ रुपये। सदस्यों को बिना मूल्य भेजा जायगा।

भारतीय संस्कृति परिषद् के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं शक्तिपुत्र मुद्रणालय दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

अप्रैल, १९७० वर्ष १०—अंक ४ ६६८६/६०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता
प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

सम्पादक
अशोक कौशिक

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१
फोन : ४७२६७

मूल्य
एक अङ्क रु. ०.५०
वार्षिक रु. ५.००

सम्पादकीय

सम्भावित समाजवाद

समाज-कल्याण अथवा समाज-शास्त्र तो समझ में आने वाले विषय हैं, परन्तु 'समाजवाद' एक भारी विवाद का विषय है, क्योंकि 'समाज' के साथ 'वाद' शब्द का संयोग एक विशेष स्थिर अपरिवर्तनशील अर्थों की घोषणा करता है।

जैसे विकासवाद के सामान्य अर्थ 'जो विकास अर्थात् प्रसार का सूचक हो' नहीं, वरंच इससे एक मत-विशेष का अर्थ भाषित होता है। इस संसार में अनेक बातों में विकास होता देखा जाता है, परन्तु विकासवाद के अर्थ किसी उद्योग के विकास अथवा किसी बालक के मस्तिष्क के विकास इत्यादि नहीं समझे जाते, वरंच एक मत से लिये जाते हैं जिसे डार्विन ने प्रतिपादित किया था। इसी प्रकार समाजवाद का अभिप्राय उस अर्थ व्यवस्था से लिया जाता है, जिसका चलन योरोप (विशेष रूप में इंग्लैण्ड एवं फ्रांस) में कुछ तार्किकों ने प्रतिपादित किया और अन्त में कार्ल मार्क्स और एंजिल ने इसे कार्य रूप दिया तथा लैनिन ने इस सार्थक सिद्ध करने का यत्न किया।

कुछ लोग यह भी कहते सुने जाते हैं कि उनका समाजवाद दूसरी ही प्रकार का है। वह कार्ल मार्क्स, एंजिल अथवा लैनिन का समाजवाद नहीं है। हम उनसे प्रश्न करते हैं कि उनको 'समाजवाद' शब्द से इतना मोह क्यों है? वे अपना मत का प्रतिपादन करने के लिये किसी नये शब्द का निर्माण क्यों नहीं कर लेते? इस बात को स्वीकार कर भी लिया जाय कि उनकी सामाजिक व्यवस्था कार्ल मार्क्स प्रभृतियों द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था से सर्वथा भिन्न है, तो हमारा प्रश्न है कि वे अपनी समाज-व्यवस्था को वही नाम किस लिये दे रहे हैं, जिस नाम से मार्क्सवादी मत प्रतिपादित होता है?

इसमें सन्देह नहीं कि वे लोग कार्ल-मार्क्स के नाम का और कई राज्यों द्वारा प्रचारित उसके मत का लाभ उठाना चाहते हैं। 'समाजवाद' का नाम किसी स्थान विशेष पर किसी संस्थान विशेष द्वारा पंजीकृत तो है नहीं, जिससे कि कोई भी इस नाम का लेबल अपने पर लगा नहीं सके। कोई भी स्वयं को समाजवादी कह सकता है।

तदपि एक 'नैतिक संहिता' है, जिससे यत्न किया जाता है कि जन मानस में विभ्रम न फैले और कहने वाले का अर्थ सुनते वाला ठीक-ठीक समझ सके। 'समाजवाद' शब्द इस युग में पारिभाषिक शब्दावलि के अन्तर्गत आ गया है, अतः यदि किसी भी पारिभाषिक शब्द के अर्थ प्रत्येक लेखक अथवा वक्ता अपना-अपना लगाने लगें तो संसार में इतना विभ्रम फैल सकता है कि जिससे कोई भी किसी की बात समझ नहीं सकेगा।

इस कारण भाषा के प्रयोग में अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है। जो समाजवाद की कूक लगाते हुए यह कहते फिरते हैं कि उनका समाजवाद भिन्न प्रकार का है, उनसे हमारा निवेदन है कि वे इस शब्द का प्रयोग न करें जिससे उनके पाठक उनमें और मार्क्सवादियों में अन्तर को जान सकें।

समाजवाद का नारा लगाने वाले तीन प्रकार के लोग हैं। एक वे जो खुले आम मार्क्सवाद को मानते हैं और अपने को 'वैज्ञानिक समाजवादी' कहते हैं। इनका समाजवाद कितना वैज्ञानिक है और कितना अवैज्ञानिक, यह इस लेख का विचारणीय विषय नहीं है। परन्तु वे स्वयं को समाजवादी कहते हैं। वे मानते हैं कि रूस और चीन समाजवादी देश हैं। दूसरी प्रकार के वे हैं, जो बेचारे समाजवाद के अर्थ तो समझते नहीं, किन्तु अपनी निरर्थक बात को सार्थक सिद्ध करने के लिए पुराण, इतिहास तथा महापुरुषों के वाक्य अनुपयुक्त रूप एवं अर्थ में उद्धृत कर समाजवाद शब्द की महिमा बढ़ाते रहते हैं। ये लोग समझते हैं कि समाजवाद के प्रबल प्रचार से लाभ उठाकर अपनी अथवा अपने दल की ख्याति प्राप्त कर लेंगे। तीसरी प्रकार के लोग वे हैं जो

उसी समाजवाद को स्वीकार करते हैं, जिसे मार्क्सवादी स्वीकार करते हैं, परन्तु कुछ गौण कारणों से अपने को मार्क्सवादियों से पृथक रखना चाहते हैं। इस श्रेणी में एस० एस० पी०, पी० एस० पी०, आर० एस० पी० इत्यादि हैं।

प्रथम श्रेणी में तो मार्क्सवादी, लैनिनवादी माओवादी इत्यादि हैं। इनके विषय में आगे चलकर, जब समाजवाद के वास्तविक अर्थों पर प्रकाश डालेंगे तब लिखा जायेगा। यहाँ हम दूसरे और तीसरे प्रकार के समाजवादियों के विषय में बताना चाहते हैं। इनमें दूसरे प्रकार के समाजवादी हैं आर्य समाजी, सनातन धर्मी, कुछ पूंजीपति और कुछ जनसंघी तथा बहुत से वेतनभोगी कर्मचारी। इनमें से कोई भी समाजवाद को नहीं मानता, परन्तु समाजवाद के नाम की ख्याति से ये सभी लाभ उठाना चाहते हैं। ये समझते हैं कि समाजवाद नाम स्वीकार कर लेने से वे प्रतिक्रियावादी वैतरणी से पार उतर जावेंगे।

हमें इन लोगों की बातें सुन अथवा पढ़कर इन पर हँसी आती है। यह तो वैसा ही है जैसा कि किसी कौए का, नील के खत्ते में गिरने से नीला हो जाने पर स्वयं को मोर मान लेना। सबसे विचित्र बात तो यह है कि इन सबके समाजवाद के अर्थ परस्पर सर्वथा भिन्न हैं। इसके विपरीत तथ्य यह है कि ये लोग अनजाने में मार्क्सवादियों की महिमा को बढ़ाने वाले और उनके वाद के प्रचलन में सहायता करने वाले सिद्ध हो रहे हैं। ऐसे दिग्भ्रान्त समाजवादी अन्य देशों में भी हो चुके हैं। जब वे मार्क्सवादियों के हाथ में चले जाते हैं तो फिर उनका नाश होने लगता है और तब वे पश्चात्ताप करने लगते हैं।

चेकोस्लावाकिया इसका प्रत्यक्ष-प्रमाण है। वह अपने को समाजवादी कहते हुए रूस के चंगुल में फंस गया था और ज्यों ही अपने समाजवाद पर व्यवहार करने लगा कि रूसियों की सेनाओं ने उनको दबोच लिया।

ऐसे समाजवादियों के घोषों का एक अन्य परिणाम भी होता है। समाजवाद के नाम पर वे अनैतिकता के शिकार हो जाते हैं और फिर बाद में पश्चात्ताप की अग्नि में जीवन व्यतीत करने पर विवश हो जाते हैं। फ्रांस और इंग्लैण्ड इस भ्रामक समाजवाद के सार्थक उदाहरण हैं। इन दोनों देशों में समाजवाद ने अनैतिकता का वह प्रसार किया है कि इस विषय में चुप रहना ही भला प्रतीत होता है। जिस देश में गर्भ-पात सदृश जघन्य कृत्य सरकारी और राष्ट्रीय आय का स्रोत बन जाये, वहां क्या-कुछ नहीं हो सकता।

स्वयं को समाजवादी कहने वाले तीसरी प्रकार के लोग तो स्पष्ट रूप में उस समाजवाद का पोषण करते हैं जिसे मार्क्स ने कहा तथा लेनिन ने प्रचलित किया है। यदि उन्होंने पृथक दल बनाये हुए हैं तो केवल इसलिये कि

मार्क्सवादियों में उनकी नेतागीरी चल नहीं सकती। वे रूस अथवा चीन से यथेष्ट धन प्राप्त नहीं कर सके। कदाचित् वे कर भी नहीं सकते थे। उनमें कुछ आत्म-सम्मान अब शेष है। परन्तु जहां तक सैद्धान्तिक समाजवाद का सम्बन्ध है, उनमें और मार्क्सवादियों में कुछ भी भी अन्तर नहीं।

आदिकाल से इस समय तक भूमण्डल पर दो ही प्रकार के लोग चले आये हैं। दैवी स्वभाव के आसुरी स्वभाव के। स्वभाव सिद्धान्तों की उपज होते हैं। अतः सिद्धान्त अर्थात् विचार सरणियां भी दो ही हैं। दैवी और आसुरी।

अन्य सब बातों को यदि छोड़ भी दें तब भी अर्थ व्यवस्था में दो दिशायें प्रत्यक्ष हैं। एक दिशा है आर्थिक स्वतन्त्रता की ओर दूसरी, आर्थिक परतन्त्रता की ओर। आर्थिक स्वतन्त्रता दैवी विचार-सरिणी की उपज है। और आर्थिक परतन्त्रता आसुरी विचार-सरिणी की। जहां-जहां मनुष्य को स्वतन्त्रा से अपनी जीविका-उपार्जन करने की स्वीकृति हो वहां आर्थिक विचार से दैवी समाज और दैवी विचार ही मानना पड़ेगा। इस समाज में लोग स्वेच्छा से कार्य करते हुए स्वेच्छा से निर्वाह करते हैं। यह ठीक है कि मनुष्य को अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये दूसरे की स्वतन्त्रता की गारण्टी देनी पड़ती है। धर्म का नियम है अपने प्रतिकूल बात का व्यवहार दूसरों के साथ भी नहीं करना। यह दैवी स्वभाव और दैवी आचरण वालों का चलन है। जो स्वतन्त्रता हम अपने लिये चाहते हैं वही हमें दूसरों को भी देनी होती है।

'जो कुछ प्राप्त हो सके वह प्राप्तव्य है' यह आसुरी विचार और स्वभाव है। यही बात समाजवादियों में पायी जाती है। किसी दूसरे की सम्पत्ति छीनने के लिये शक्ति की आवश्यकता है और किसी भी देश में शक्ति का सबसे बड़ा भण्डार राज्य है। अतः जो राज्य सबका सब कुछ छीन ले, उसे समाजवाद कहते हैं। समाजवाद के लक्षण समाजवादियों ने स्वयं किये हैं :—

Socialism is a working class doctrine and movement aiming through the class struggle at the collective control of society, by the capture of the state machine by the workers and the establishment of self government in industry.

कर्मचारियों की सरकार होगी अथवा कर्मचारियों पर सरकार होगी, यह विषय यहां विचारणीय नहीं। विचारणीय तो यह है कि जो कुछ भी समाजवाद में होने वाला है, वह सरकार द्वारा होगा। कर्मचारी और विचारक सब समानरूपेण राज्य कार्य करेंगे। यह भी निश्चय है कि सब लोग राज्याधिकारी नहीं हो सकेंगे। जो भी राज्याधिकारी बनेंगे वे अन्य सब पर शासन करेंगे।

यह है समाजवाद। स्पष्ट शब्दों में यह कहा जा सकता है कि राज्य देश

की अर्थ-व्यवस्था को चलायेगा। यह है उक्त समाजवाद का केन्द्रीय बिन्दु। इसमें दो हेत्वाभास उत्पन्न किये गये हैं। एक working class doctrine और दूसरा है self government in industry. ये दोनों बातें चकमा देने के लिये लिखी गयी हैं। कारण यह है कि जब सब कुछ राज्य के द्वारा ही होना है तो self government नहीं वरंच slavery of the government होगा। गवर्नमेण्ट बन जाने के उपरान्त उसको हटाना सुगम काम नहीं है। निर्वाचनों के समय राज्य बल और सेना तथा पुलिस के दबाव से सब कुछ किया जा सकता है। यह प्राय: सब देशों में किया जा रहा है।

हमारा कहना है कि समाजवाद में मनुष्य की पूर्ण जीवन-चर्या राज्याधीन हो जाती है और राज्याधिकार क्या कुछ अनर्थ कर सकते हैं, वह स्टालिन और 'माओ' के कारनामों से प्रकट ही है। पिछले ही वर्ष जो कुछ रूस ने चेकोस्लावाकिया में किया है, वह भी सर्व विदित है।

अत: गीता के अनुसार दो स्वभाव के लोगों में असुर प्रवृत्ति के लोग ही समाजवादी होते हैं। समाजवादी समाज में सबके सब लोग असुर नहीं होते। अधिकांश भले लोग असुर नहीं होते। वे मूर्ख होते हैं अथवा मूर्ख बनाये जाते हैं। असुर वे होते हैं जो उनको धोखे में डाल राज्य सत्ता अपने हाथ में सम्भाल लेते हैं और फिर पूर्ण समाज को अंगुलियों पर नचाते हैं।

इसमें समाज का कितना भला होता है और सबको खाने-पीने को मिल जाता है क्या, यह विवादस्पद बात है। यह बात ठीक है कि सरकार सबको खिलाने पिलाने की ज़िम्मेदार होती है, परन्तु जब-जब भी खाद्य सामग्री का अभाव होता है तब तब सरकार लोगों को किसी न किसी बहाने श्रम शिविरों (forced labour camps) में बन्द कर उन्हें भूखे मार डालती है।

जब श्रम करने वालों को मिलने वाला पारिश्रमिक छीन कर सरकार बांटने लगती है तब मेहनत करने वालों को तो श्रम से कम मिलता ही है, परन्तु उसमें भी जब कमी होने लगती है तो सरकार फिर परिवार नियोजन की बातें करने लगती है। भारत के समाजवादी यह कहने लगे हैं कि परिवार में दो या तीन बच्चों की संख्या बलपूर्वक सीमित की जाय। इसका अभिप्राय यह है कि यदि कभी किसी स्त्री के तीसरा अथवा चौथा बच्चा हो जाये तो गर्भपात करा दिया जाय अथवा बच्चे के पैदा होते ही उसकी हत्या कर दी जाय। इंग्लैण्ड में गर्भपात की सामाजिक स्वीकृति और सन्तान उत्पन्न करने से बचने के लिये समलैंगिक सम्भोग की स्वीकृति सिद्ध करते हैं कि राज्य अपने हाथ में ऐसा काम ले रहा है, जिसके वह योग्य नहीं है। ●●

अन्तर्राष्ट्रीय हलचल

श्री आदित्य

प्रजातन्त्रात्मक भावना संयुक्त राज्य अमेरिका में दिखायी देती है। प्रजातन्त्रात्मक भावना का अभिप्राय यह है कि अनधिकारियों के पास ही अधिकार।

प्रजातन्त्र का यह अर्थ प्रजातन्त्र के प्रशंसक नहीं मानते। उनके मानने अथवा न मानने का प्रश्न तो तब उत्पन्न हो, जब वे अपने अर्थों को प्रचलित करने की सामर्थ्य और योग्यता रखते हैं। उदाहरण के रूप में डैमोक्रैसी पर लिखते हुए सर स्ट्रैफर्ड क्रिप्स ने एक बार लिखा था कि—

Democracy ensures freedom to all in all matters provided one is prepared to concede the same freedom to others.

अर्थात्—प्रजातन्त्र सबको सब बातों में स्वतन्त्रता प्रदान करता है। शर्त यह है कि स्वतन्त्रता का भोग करने वाला दूसरों को भी उसी विषय में वैसी ही स्वतन्त्रता प्रदान करें।

यह सिद्धान्त अति सुन्दर और कल्याणकारी है, परन्तु जो तन्त्र इस स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए निर्माण किया गया है, वह इसका पालन कराने में असफल सिद्ध हो रहा है। वह तन्त्र प्रजातन्त्रात्मक राज्य पद्धति है। प्रजातन्त्रात्मक राज्य पद्धति के मूल में अनधिकारी को अधिकार प्रदान करने की प्रक्रिया विद्यमान है।

प्रजातन्त्र, जैसा कि आज प्रायः प्रजातन्त्रात्मक देशों में समझा जाता है, है; प्रत्येक वयस्क का राज्य निर्माण में अधिकार। इसी का एक उप-सिद्धान्त है कि ऐसे प्रजातन्त्रात्मक राज्य का देश के प्रत्येक क्रिया-कलाप पर सर्वोच्च अधिकार।

कुछ देशों में जो अपने को डैमोक्रैटिक कहते हैं, राज्य निर्माण का अधिकार सब वयस्कों को नहीं; परन्तु वहाँ भी इस अधिकार का आधार गुण कर्म और स्वभाव नहीं है, वरंच राजनीतिक विचारधारा है। हमारा अभिप्राय रूस

चीन इत्यादि देशों से है। वहाँ राज्य निर्माण का अधिकार सुप्रीम सोवियत के सदस्यों को ही दिया जाता है। सुप्रीम सोवियत के सदस्य राजनीतिक विचारों के आधार पर बनाये जाते हैं। इस प्रकार की पद्धति में प्रजातन्त्र का मूल दोष विद्यमान है। वहां भी अनधिकारियों के हाथ में अधिकार दिये गये हैं। सोवियत के सदस्य गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर स्वीकार नहीं किये जाते। कम्युनिस्ट विचारधारा को मानने वाले ही सदस्य लिये जाते हैं। साथ ही वहां की पद्धति में प्रजातन्त्र का दूसरा दोष भी विद्यमान है। अर्थात् राज्य को सर्वाधिकार सम्पन्न सर्वोच्च अधिकारी माना जाता है।

गुण, कर्म और स्वभाव की व्याख्या इस पत्रिका में अनेक बार की जा चुकी है। इसी पत्रिका में वर्णाश्रम पद्धति विषयान्तर्गत लेखों में इसका भली-भांति वर्णन किया जा चुका है। राज्याधिकारी गुण अर्थात् योग्यता से, कर्म अर्थात् कर्त्तव्य पालन में और स्वभाव अर्थात् प्रवृत्ति से उस कार्य के उपयुक्त होने चाहियें जो कार्य राज्य का है। राज्य का कार्य है जनता द्वारा नियत और विशेष धर्मों का पालन कराना।

जब अनधिकारियों द्वारा निर्वाचित अनधिकारी सर्वाधिकार सम्पन्न राज्य का संचालन करने लगें तो फिर धर्म का पालन करना कैसे सम्भव हो सकता है? यही बात संयुक्त गण राज्य अमेरिका में हो रही है।

अमेरिका में सब वयस्कों को राज्य में प्रतिनिधि निर्वाचन का अधिकार है। इस बात का विचार नहीं कि उनकी शिक्षा-दीक्षा तथा उनके कर्म और स्वभाव क्या हैं? ज्यों ही एक युवक अथवा युवती की आयु इक्कीस वर्ष की हुई कि वह देश के राष्ट्रपति से लेकर राज्य, नगरों तथा कस्बों की प्रबन्ध समितियों के अधिकारियों तक के निर्वाचन का अधिकार प्राप्त कर जाता है। इस प्रकार निर्मित राज्य-व्यवस्था में अधिकारी समाज की प्रत्येक गतिविधि पर नियन्त्रण अथवा अनियन्त्रण करने का अधिकार प्राप्त कर लेता है।

राज्यतन्त्र में शक्ति होती है सेना और पुलिस के हाथ में। जब सेना और पुलिस अयोग्य विकर्मी तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार से युक्त व्यक्तियों के अधिकार में आ जाती है तो वे सब अनर्थ हो सकते हैं जो घोर से घोर अनैतिक व्यवहार रखने वाला कर सकता है।

इस सबके उदाहरण नित्य अमेरिका के नगरों और सार्वजनिक स्थानों पर दिखाई देते हैं। उसके घोरतम उदाहरण में से एक दो हम यहां देना चाहते हैं। एक दिन चार युवक अपने गले में कार्ड-बोर्ड की तख्तियां लटकाये खड़े दिखाई दिये। एक युवक की तख्ती पर "F" का अक्षर लिखा था, दूसरे की

तख्ती पर "U" का अक्षर था, तीसरे की तख्ती पर "C" का और चौथे की तख्ती पर "K" था। ये युवक किसी सार्वजनिक स्थान पर ऐसे खड़े हो जाते थे कि चारों अक्षरों का एक शब्द बन जाता था। यह अश्लील शब्द पढ़ कर युवक-युवतियां विभिन्न प्रतिक्रिया लेती थीं। पुलिस ने इनको पकड़कर मैजिस्ट्रेट के सम्मुख उपस्थित किया तो वे वहां से छूट गये। कारण यह कि यह सिद्ध नहीं किया जा सका कि वे उस क्रम में खड़े थे जिस क्रम में इन अक्षरों से वह अश्लील शब्द बनता है। इन युवकों की वकालत करने वाले वकील भी थे। और न्यायाधीश भी कोई अक्ल का धनी ही था जो उनमें कोई दोष नहीं देख सका।

इससे भी अधिक भयंकर घटना कुछ दिन हुए अमेरिका में घटी है। लगभग दो वर्ष हुए कुछ युवकों ने वियतनाम युद्ध के विरोध में प्रदर्शन किया था। उस प्रदर्शन में कुछ युवकों ने अति उत्तेजक वक्तृतायें दी थीं। इस पर उपद्रव हो गये थे। उन उपद्रवों में लूट-पीट, अग्निकाण्ड और स्त्रियों पर बलात्कार भी हुए थे। पुलिस ने आन्दोलन के प्रमुख सात व्यक्तियों को पकड़ लिया और उन पर मुकद्दमा चलाया गया।

मुकद्दमे का निर्णय अभी हुआ है। अभियोग तो कुछ अधिक गम्भीर नहीं था। उन्हें एक-दो मास की कैद का दण्ड देकर छोड़ दिया जाता, परन्तु न्यायालय में अभियुक्तों का व्यवहार इतना आपत्तिजनक था कि न्यायाधीश को न्यायालय का अपमान करने में उन पर मुकद्दमा चलाना पड़ा। इस अपराध में भी तीन चार मास से अधिक का दण्ड नहीं दिया जा सकता, परन्तु अभियुक्तों ने बार-बार न्यायाधीश और न्यायालय का अपमान किया।

अभियुक्त न्यायालय में न्यायाधीश से हंसी, व्यंग और हिंसात्मक व्यवहार भी करते रहे। न्यायाधीश का नाम ज्यूलियस हाफमैन था। जब अदालत लगी होती थी और अभियुक्त कठघरे में खड़े होते थे तब वे प्रायः जज को "ज्यूलि" के नाम से व्यंगात्मक ढंग पर बुलाते थे। एक बार तो एक अभियुक्त ने जज को कुर्सी से नीचे पटक देने का यत्न किया। अदालत में मुकद्दमा होते हुए भी अभियुक्त न्यायाधीश को गालियां देते थे।

न्यायाधीश ने प्रत्येक अभियुक्त के विपरीत कई-कई अपमानयुक्त व्यवहारों के मुकद्दमों में पृथक-पृथक पांच-पांच, छः-छः महीने का दण्ड दिया और दण्ड एक के उपरान्त दूसरा आरम्भ होने की व्यवस्था दे दी। इससे एक-दो अभियुक्तों का दण्ड तो छः तथा सात वर्ष तक हो गया है।

अब अमेरिका के अधिकांश समाचार पत्र, पत्रिकायें न्यायाधीश के निर्णय

का विरोध कर रहे हैं। उसे पिशाच, निर्दयी इत्यादि नामों से स्मरण किया जा रहा है।

इस निर्णय की अपील तो सर्वोच्च न्यायालय में होगी ही, परन्तु अमेरिका में खुले आम जज की निन्दा की जा रही है। जज के पुतले बना जलाये जा रहे हैं और उसे बुरा-भला कहा जा रहा है।

यह विचार किया जा रहा है कि सुप्रीम कोर्ट इन अभियुक्तों को छोड़ देगा। वह क्या करेगा और क्या नहीं करेगा, कहा नहीं जा सकता। परन्तु इस पूर्ण घटना से एक बात सिद्ध होती है कि देश के पत्र-पत्रिकाओं में अभियुक्त साहसी और बलिदानी माने जा रहे हैं और न्यायकर्त्ता एक शैतान का अवतार।

यह कहना तो ठीक नहीं होगा कि अमेरिका की पूर्ण जनता उस जज को दोषी मानती है। यह भी कदाचित् ठीक ही है कि जज को ठीक मानने वालों की संख्या अधिक है, बहुत अधिक है और निन्दा करने वालों की संख्या बहुत कम है। परन्तु वे अधिक संख्यक लोग भले शान्ति प्रिय और न्याय प्रिय होने के कारण मौन हैं और प्रजातन्त्र में उनकी चल जाती है जो गुण्डागर्दी पर उतर आते हैं।

यह है प्रजातन्त्र और जनता का निर्णय उनके पक्ष में होता है जो हिंसात्मक कार्य करने पर उतारू हो जाते हैं।

प्रजातन्त्र में दो भूलें हैं। एक यह कि पूर्ण जनता को राज्याधिकारी निर्वाचन का अधिकार है और दूसरे, राज्य सब प्रकार के कार्यों पर नियन्त्रण अथवा अनियन्त्रण का अधिकार रखता है। जब हम अनियन्त्रण के अधिकार की बात करते हैं तो हमारा अभिप्राय यह है कि राज्य किसी कार्य को वैध अथवा अवैध मानने में स्वतन्त्र है। अतः प्रजातन्त्रात्मक देशों में बहुत से ऐसे कर्मों को भी वैध मान लिया जाता है जो नैतिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य के लिये भी अहित कर होते हैं।

उदाहरण के रूप में इंग्लैण्ड में सह यौन सम्भोग को अपराधों की सूची से निकाल देना है। गर्भपात को अनापत्तिजनक मानना है। सिनेमा घरों में सम्भोग प्रक्रिया के प्रदर्शन को वैध मान लेना है और अब न्यायाधीश को कचहरी में बैठे हुए गाली देना तथा उस पर हिंसात्मक प्रहार करने को वैध स्वीकार कहने की मांग करना है।

वास्तव में यह विचार ही, कि राज्य जो पूर्ण व्यस्क जनता से निर्वाचित होता है, सब प्रकार के कार्यों के करने का अधिकारी है, रोग का मूल

कारण है।

इसके विपरीत प्रचीन भारतीय वर्णाश्रम प्रणाली, जिसका आधार गुण, कर्म और स्वभाव है, अधिक श्रेष्ठ है।

हम वर्णाश्रम पद्धति को ही प्रजातन्त्र पद्धति मानते हैं। इसमें प्रजातन्त्र उसको समझना चाहिये जो तन्त्र प्रजा के कल्याण के लिये हो। जो जिस काम के योग्य हो उसे समाज के वे काम सौंपने का विधि-विधान प्रजातन्त्र है।

यह ठीक है कि वर्णाश्रम पद्धति के वकील वर्ण व्यवस्था को गुण, कर्म, और स्वभाव से न मान जन्म से मानने लगे हैं, परन्तु यह दोष तो उन मानने वाले (वकीलों) समर्थकों का है, न कि पद्धति का है। पद्धति तो गुण, कर्म और स्वाभावानुसार कर्त्तव्य और अधिकार बांटने के लिये है।

वर्तमान प्रजातन्त्र का दुरुपयोग न केवल अमेरिका में ही हो रहा है, वरंच अब भारत में भी ज़ोरों पर हो रहा है। बंगाल में अराजकता व्यापक रूप में विद्यमान है, परन्तु बंगाल राज्य के मुख्य मन्त्री, देश के प्रधान मन्त्री और केन्द्र के गृह मन्त्री यह मानते हुए भी कि अराजकता है, इसे रोकनेमें अपने को अशक्त पाते हैं। राज्य के मुख्य मंत्री ने जब इस अराजकता को रोकने में स्वयं को सर्वथा अशक्त पाया तो उसने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। विवश राष्ट्रपति शासन के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं रह गया।

महर्षि व्यास और सांख्य

श्री गुरुदत्त

स्वामी शंकराचार्य परिपाटी के विद्वानों ने एक महान् भ्रम फैला रखा है। वह यह कि साँख्य दर्शन के प्रवक्ता नास्तिक और अनीश्वरवादी हैं। इस कारण यह बताना पाठकों के हित में होगा कि सांख्य के विषय में महाभारत के प्रणेता-महर्षि व्यास क्या मानते हैं?

महाभारत के पढ़ने वालों को इस ग्रन्थ की शैली का ज्ञान होना चाहिए। रचयिता किसी भी विषय के निरूपण के लिए किसी से प्रश्न करवा देता है और फिर किसी ऋषि, महर्षि अथवा महापुरुष द्वारा उसका विश्लेषण प्रस्तुत करता है। विश्लेषण रचयिता का अपना होता है।

इसी शैली का अनुकरण करते हुए महाभारत के रचयिता ने युधिष्ठिर से यह प्रश्न कराया है कि सांख्य और योग में क्या अन्तर है। प्रश्न इस प्रकार किया है:

सांख्ये योगे च मे तात विशेषं वक्तुमर्हसि ।
तव धर्मज्ञ सर्वं हि विदितं कुरुसत्तम ।।
(महा भा० शा० ३००-१)

(हे तात्, धर्मज्ञ कुरुश्रेष्ठ ! आप सब बातों को जानने वाले हैं। अतः मुझे योग और सांख्य में अन्तर बताइए।)

भीष्म पितामह उत्तर देते हैं—

सांख्याः सांख्यं प्रशंसन्ति योगा योगं द्विजातयः ।
वदन्ति कारणं श्रेष्ठं स्वपक्षोद्भावनाय वै ।।
(महा भा० शा० ३००-२)

सांख्य के विद्वान सांख्य की और योग के ज्ञाता द्विज योग की प्रशंसा करते हैं। दोनों ही अपने अपने पक्ष को श्रेष्ठ सिद्ध करने में युक्ति देते हैं।

साँख्यकों से अभिप्राय है वैज्ञानिक (सायंसदान)। परन्तु आज का वैज्ञानिक परमात्मा के अस्तित्व को छोड़ कर विज्ञान (Science) के अध्ययन में लगा हुआ है। योग का परम आश्रय और साध्य परमात्मा ही है।

उस काल में भी कुछ सांख्यक (सायंसदान) ऐसे रहे होंगे जो आत्मा-परमात्मा का अस्तित्व नहीं मानते होंगे। तभी यह विचार महर्षि ने प्रस्तुत किया है।

महर्षि व्यास योग दर्शन वालों का पक्ष इस प्रकार रखते हैं:—

अनीश्वरः कथं मुच्येदित्येवं शत्रुकर्शन।
वदन्ति कारणैः श्रैष्ठ्यं योगाः सम्यङ्मनीषिणः॥
(महा भा० शा० ३००-३)

योग के विद्वान योग की श्रेष्ठता वर्णन करते हुए कहते हैं कि ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार किए बिना मुक्ति कैसे हो सकती है ?

और नास्तिक सांख्यवक्ता (सायंसदान) क्या कहते हैं ? महर्षि उनका पक्ष इस प्रश्न प्रस्तुत करते हैं—

वदन्ति कारणं चेदं सांख्याः सम्यग् द्विजातयः।
विज्ञायेह गतीः सर्वा विरक्तो विषयेषु यः॥
ऊर्ध्वं स देहात् सुव्यक्तं विमुच्येदिति नान्यथा।
एतदाहुर्महाप्राज्ञाः सांख्ये वै मोक्षदर्शनम्॥
(महा भा० शा० ३००-४,५)

सांख्य मत के मानने वाले महाज्ञानी द्विज कुछ इस प्रकार की युक्ति देते हैं कि सब प्रकार की गतियों (व्यवहारों) को जानकर जो विषयों से विरक्त हो जाता है, वही देह त्याग कर मुक्त हो जाता है। दूसरे किसी उपाय से मोक्ष मिलना असम्भव है। यह सांख्य का मोक्षदर्शन कहलाता है।

निःसन्देह यहां नास्तिक साँख्यकों का वर्णन है, परन्तु महर्षि व्यास आस्तिक सांख्यकों का वर्णन करते हुए कहते हैं :—

शृणु मे त्वमिदं सूक्ष्मं सांख्यानां विदितात्मनाम्।
विहितं यतिभिः सर्वैः कपिलादिभिरीश्वरैः॥
यस्मिन् न विभ्रमाः केचिद् दृश्यन्ते मनुजर्षभ।
गुणाश्च यस्मिन् बहवो दोषहानिश्च केवला॥
(महा भा० शा० ३०१-३,४)

सुनो, आत्मतत्त्व को जानने वाले सांख्य शास्त्र के आत्मज्ञानी विद्वानों का यह सूक्ष्म ज्ञान बताता है। इसे ईश्वर कोटि के कपिल आदि मुनियों ने वर्णन किया है। इस मत में किसी प्रकार की भूल दिखाई नहीं देती। इसमें गुण तो बहुत हैं, किन्तु दोषों का सर्वथा अभाव है।

इस कथन से महर्षि व्यास ने दो बातें स्पष्ट कर दी हैं कि कपिल मुनि ईश्वर कोटि के अर्थात् मोक्ष प्राप्त व्यक्ति थे। दूसरे यह कि वह आत्म तत्त्व के जानने वाले थे। इससे यह बात स्पष्ट है कि सांख्य मतानुयायी दो प्रकार के हैं। एक वे, जो आत्म तत्त्व को मानते हैं और दूसरे वे जो आत्म तत्त्व के

विषय में कम से कम अनभिज्ञ अवश्य हैं। महर्षि व्यास का मत यह है कि आत्म तत्त्व के जानने वाले सांख्यक (सायंसदान) निस्सन्देह ठीक बात कहते हैं कि उसमें भूल कहीं नहीं है। कपिल मुनि इसी कोटि के महर्षि हैं।

अभिप्राय यह कि सांख्यक (वैज्ञानिक) जो परमात्मा को मानता है, वह कभी भूल नहीं कर सकता। वह निस्सन्देह मोक्ष मार्ग का अनुगामी है।

ज्ञानविज्ञानसम्पन्नाः कारणैर्भाविताः शुभाः।
प्राप्नुवन्ति शुभं मोक्षं सूक्ष्मा इव नभः परम् ॥
(महा भा० शा० ३०१-१७)

अर्थात्—ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न, शुभ कारणों (व्यवहारों) से युक्त मरने पर सूक्ष्म होकर आकाश में विलीन हो मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

यह तो हम ऊपर लिख आए हैं कि योगी परमात्मा को आश्रय मानते हैं और परमात्मा को साध्य मानते हैं। इस पर भी योगियों के विषय में महर्षि व्यास लिखते हैं;--

यथा चानिमिषाः स्थूला,जालं छित्त्वा पुनर्जलम्।
प्राप्नुवन्ति तथा योगास्तत् पदं वीतकल्मषाः ॥
(महा भा० शा० ३००-१२)

अर्थात्—जैसे कोई बड़ा मच्छ जाल में फंसा हुआ जाल को तोड़कर निकल जाए वैसे ही एक योगी अपने पापों का नाश करके मुक्तावस्था को पा लेता है।

इस पर भी यह बात स्पष्ट है कि यदि वह बड़ा 'मच्छ' ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न नहीं होगा तो वह पुनः जाल में फंस सकता है। अतः मुक्तावस्था का पूर्ण लाभ प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि योग के साथ सांख्य का भी ज्ञान हो। महर्षि पुनः लिखते हैं:

विपन्ना धारणास्तात नयन्ति न शुभां गतिम्।
नेतृहीना यथा नावः पुरुषानर्णवे नृप ॥
(महा भा० शा० ३००-५५)

अर्थात्—जैसे समुद्र में बिना नाविक के नाव मनुष्य को पार नहीं लगा सकती, वैसे ही यदि योग की धारणा विपन्न नहीं हुई तो शुभ गति प्राप्त नहीं करा सकती।

धारणा क्या है और किस प्रकार बनती है, यह सांख्य के ज्ञाता ही समझ और ग्रहण कर सकते हैं। जीवात्मा जब इस संसार रूपी जाल में फंस जाता है तो वह उस जाल के तार-तार को जाने बिना उसे तोड़ नहीं सकता। अतः सांख्य की भारी महिमा है।

अत्र ते संशयो मा भूज्ज्ञानं सांख्यं परं मतम् ।
अक्षरं ध्रुवमेवोक्तं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥
अनादिमध्यनिधनं निर्द्वन्द्वं कर्तृ शाश्वतम् ।
कूटस्थं चैव नित्यं च यद् वदन्ति मनीषिणः ॥

(महा भा० शा० ३०१-१०१, १०२)

अर्थात्—सांख्य ज्ञान सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है । यह संशय रहित बात है । इसमें अक्षर ध्रुव अथवा पूर्ण सनातन ब्रह्म का ही प्रतिपादन है ।

सांख्य की एक महिमा और वर्णन कर दी है । हम ऊपर लिख चुके हैं कि दुर्बल अधूरा योगी तो जाल को तोड़ नहीं सकता अथवा जाल को न समझने वाला जाल से बाहर आ नहीं सकता । वहां सांख्य का अधूरा ज्ञान रखने वाले की गति इस प्रकार लिखी है—

विपर्यये तस्य हि पार्थ देवान् गच्छन्ति सांख्याः सततं सुखेन ।
तांश्चानुसंचार्य ततः कृतार्थाः पतन्ति विप्रेषु यतेषु भूयः ॥

(महा भा० शा० ३०१-१११)

इसका अभिप्राय यह है कि यदि साधन में कुछ त्रुटि रह जाने के कारण साँख्य का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ, तब भी सांख्य के विद्वान देवलोक में अवश्य जाते हैं । वहां सुख से रहते हुए देवताओं का आधिपत्य पाकर कृतार्थ हो जाते हैं । पुण्य क्षय हो जाने पर वे पुनः इस लोक में जन्म ग्रहण करते हैं ।

देवलोक को प्राप्त होना और उनका आधिपत्य प्राप्त करने का अभिप्राय यह है कि वे लोग देवताओं की प्राकृत दिव्य शक्तियों को प्राप्त कर लेते हैं और उनका उपयोग करते हुए सुख प्राप्त करते हैं ।

वर्तमान युग के वैज्ञानिक यही कर कर रहे प्रतीत होते हैं । अग्नि, वायु विद्युत एवं नक्षत्रादि का ज्ञान प्राप्त करते हुए वे इन देवताओं का उपभोग कर रहे हैं और सुख प्राप्त कर रहे हैं ।

महर्षि का वास्तविक अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि सांख्य और योग का समन्वय ही परम् मोक्ष की प्राप्ति में सिद्ध हो सकता है ।

भगवद्गीता में भी महर्षि ने लिखा है :—

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेंद्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ॥

(भ० गी०--६, ८)

अर्थात्—ज्ञान-विज्ञान से तृप्त होकर हृदय की गुहा में रहता हुआ इन्द्रियों को जीत कर मिट्टी, पत्थर और सोने को समान समझता हुआ युक्त योगी माना जाता है ।

अस्तित्व की रक्षा

श्री विद्यानन्द 'विदेह'

शासन की वोट-बटोर नीति ने हिन्दू विद्यार्थियों के मानस में से पूर्वजों की महानताओं को ओझल ही नहीं किया है, कोर्स की किताबों में उन्हें बहुत हलकेपन से प्रस्तुत किया है जबकि अहिन्दु साधारण व्यक्तियों को महापुरुषों के रूप में पेश किया गया है । केन्द्र और प्रदेशों के शासकों से यह आशा करना कि वे पाठ्य-पुस्तकों में कभी हिन्दुओं के पूर्वजों का ऐतिहासिक दृष्टि से सही रूप चित्रित करेंगे, दुराशामात्र है । इस दिशा में अशेषतः सम्पूर्ण कार्य हिन्दु विद्वानों को ही करना होगा । इस साध की सिद्धि के लिये आदि से अद्य तक के इतिहास की नये सिरे से रचना करनी होगी । मैं चाहता हूं कि इस कार्य के लिये कोई हिन्दू परिषद् हरकत में आये । अन्यथा वेद-संस्थान को तो यह करना ही होगा । यदि संस्थान को ही यह कार्य करना पड़ा तो साधकों और साधनों की न्यूनता के कारण इसमें बहुत विलम्ब हो जायेगा ।

सरकारों द्वारा चलित परिवार-नियोजन जिस रीति-नीति से चल रहा है, उससे जहां हिन्दुओं को हिन्दुस्थान में अल्प-संख्यक बनाकर रख दिया जायेगा, वहां वह जातीय दृष्टि से हिन्दुओं के लिये और भौमिक दृष्टि से देश के लिये बहुत खतरनाक है । विघातक शस्त्रास्त्रों के आविष्कारों के बावजूद भी जनशक्ति का महत्व है । चीन देश इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है । उसकी जनशक्ति के सामने रूस और भारत सतत आतंकित रहते हैं । हजारों मील दूर स्थित होते हुये भी अमेरिका चीन की जनशक्ति से थर्रा रहा है और चीन के साथ अपने सम्बन्ध सुधारने के लिये आदर अन्दर-खाने उपाय कर रहा है । अपनी भौगोलिक और पड़ोसीय समस्याओं से सफलता के साथ निबटने के लिये हिन्दुओं की अपनी आबादी चीन के मुकाबिले की होना नितान्त आवश्यक है । चीन की आबादी इस समय सत्तर करोड़ है और वह अपनी जनसंख्या इससे कम नहीं करना चाहता ।

परिवार-नियोजन के नाम पर एक और बड़ी भयंकर विनष्टि का सूत्र-पात्र हो रहा है। सुशिक्षित, स्वस्थ और सुसम्पन्न दम्पति, जो दस-बारह बच्चों का पालन, पोषण और सुशिक्षण कर सकते हैं केवल 'दो या तीन बच्चे और बस' के नारे का शिकार हो रहे हैं। उधर मध्य श्रेणी तथा दरिद्र श्रेणी के दम्पति, जो दो-चार बच्चों से अधिक का पालन, पोषण तथा शिक्षण करने में असमर्थ हैं, दस-दस, बारह-बारह बच्चों के माता-पिता बन कर राष्ट्र के लिये निपट कंकालों की संख्या-वृद्धि कर रहे हैं। हिन्दू जाति के हित में यही होगा कि साधारण तबकों में कोई भी दम्पति चार बच्चों से अधिक के माता-पिता न बनें और सम्पन्न श्रेणी के दम्पति दस-दस बलिष्ठ और बुद्धिमान पुत्र-पुत्रियों के माता-पिता बनें।

सन् १९७१ में भारत की जो जनगणना होने वाली है, उसमें हिन्दुओं को बहुत सावधानी वर्तने की आवश्यकता है। तीन जनगणनाओं में मैंने सुपरवाइज़र का काम किया था। उनका मुझे बहुत कटु अनुभव है। ईसाई और मुस्लिम गणक हिन्दू परिवारों की जनसंख्या जानबूझकर कम लिखते थे और अपने-अपने सम्प्रदाय के परिवारों की जनसंख्या कहीं अधिक दिखाते थे। बार-बार पुनर्गणना करके मैं संख्याओं को ठीक कराता था। पाकिस्तान के निर्माण में ग़लत जनगणना ने देश का जो विनाश किया, उसके परिणाम-स्वरूप भावी जनगणना के अवसर पर हिन्दुओं की आँखें खुली रहनी चाहियें।

विभाजन के समय जनगणना के आंकड़ों के अनुसार पंजाब में मुस्लिम प्रतिशतक इक्यावन और हिन्दू प्रतिशतक उनंचास था। लगभग ऐसी ही स्थिति बंगाल में थी। मुस्लिम-बहुल होने पर भी इन दोनों प्रान्तों में प्रतिशतक वास्तव में हिन्दुओं का मुस्लिमों से अधिक ही था। वह सब ग़लत जनगणना की ही करामात थी। गत वर्ष (१९६९) केरल राज्य में दो जिलों को काट-छांट कर एक छोटा सा पाकिस्तान बनाया जा चुका है। यदि सन् १९७१ की जनगणना में सतर्कता न वर्ती गयी तो पुनः अनिष्ट के द्वार खुल सकते हैं। अभी से हिन्दू संस्थाओं को इस विषय में अचूक व्यवस्थाओं की तैयारी आरम्भ कर देनी चाहिये। स्वभाव से असाम्प्रदायिक होते हुये भी हिन्दुओं को साम्प्रदायिकता से अपनी रक्षा करनी है।

(सभार सविता से)

भारत का बदलता राजनीतिक चित्र

श्री प्रणव प्रसाद

गांधी जी ने भूल करके जवाहर लाल को स्वराज्यकाल का प्रथम प्रधान मन्त्री बनने का अवसर दिलाया।

क्या गांधी जी जवाहर लाल का विरोध करते तो जवाहर लाल बाग़ी हो जाते और कांग्रेस को छोड़कर स्वतन्त्र रूपेण कांग्रेस का विरोध करते ?

हमारा विचार है कि यदि गांधी जी में कुछ भी हिन्दू और हिन्दुस्तान की भलाई का विचार होता तो वे जवाहर लाल जैसे व्यक्ति को चिमटे से भी न छूते। यदि देश की भलाई का विचार नहीं था तो उनके जीवन का लक्ष्य क्या था ? हमारा विचार है कि वह सत्य वक्ता तो थे, उनमें छल-कपट भी नहीं था, क्यों कि जैसा वह विचार करते थे, वैसा ही कहते और करते थे। यदि दोष था तो उनके संस्कारों और बुद्धि का ही था। उनको न तो राजनीति का ज्ञान था और न ही इतिहास का। अंग्रेजी शिक्षा से भ्रमित मस्तिष्क हो वह अपनी यात्रा पर चल पड़े थे। स्वयं तो गड्ढे में गिरे ही साथ ही देश को भी खाई में धकेल दिया।

जवाहर लाल पक्के कम्युनिस्ट थे और उन्होंने देश को ऐसी गाड़ी में सवार करा दिया जो सीधी मास्को की ओर भागती हुई चली जा रही है।

जवाहर लाल जी के उपरान्त इन्दिरा गांधी देश की गाड़ी को उसी ओर धकेल रही हैं जिधर उनके पिता इस गाड़ी को ले जा रहे थे। अब गाड़ी रूस की सीमाओं के भीतर पहुंच चुकी है और किसी समय भी रूसी सरकार इस गाड़ी को अपनी मान इस पर अधिकार कर सकती है।

क्या इससे देश और देशवासियों का कल्याण होगा ? इसका उत्तर तो यही दिया जा सकता है कि अधिक से अधिक उतना ही कल्याण हो सकता है जितना कि रूस का हुआ है।

आज बंगाल में कम्युनिस्ट घोर उत्पात मचा रहे हैं। केरल में भी कुछ कम उत्पात नहीं है। वैसे तो पूर्ण देश में ही कम-अधिक अराजकता विद्यमान है। हरियाणा में व्यावहारिक रूप में संविधान विलुप्त हो चुका है। पंजाब में सिक्खों को यह विश्वास हो गया है कि केन्द्र सरकार को धमकी देकर उससे सब कुछ कराया जा सकता है। उत्तर प्रदेश और बिहार में तो सरकार की जो छीछालेदर हो रही है, उसकी तुलना पहले के किसी भी

व्यवहार से नहीं की जा सकती । मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में भी अशान्ति है ।

पूर्ण देश में प्रान्तीय और भाषाई विवाद चल रहे हैं । पुलिस और न्यायालय पर विश्वास उठता जाता है । न्यायालय ने बैंकों का राष्ट्रीयकरण रद्द किया तो केन्द्रीय सरकार ने कुछ रुपया अधिक देकर पुनः उनका राष्ट्रीयकरण कर दिया । सुप्रीम कोर्ट में राष्ट्रपति के निर्वाचन को चुनौती दी गई और यदि सर्वोच्च न्यायालय ने राष्ट्रपति का निर्वाचन रद्द कर दिया तो राजनीतिक संस्थान संसद तथा न्यायपीठ के मध्य खाई और गहरी हो जायेगी ।

यदि कम्युनिस्ट उसकी पीठ पर न हों तो केन्द्र में इन्दिरा गांधी की सरकार चल नहीं सकती । अतः जो कुछ वे चाहते हैं, इन्दिरा गांधी सरकार से करा सकते हैं और करा रहे हैं । कम्युनिस्ट क्या चाहते हैं, जिसके करने पर इन्दिरा सरकार विवश है और किये बिना जीवित नहीं रह सकती ? वह है प्रथम चरण में घोर अराजकता, द्वितीय चरण में सैनिक तानाशाही और तीसरे चरण में समाचार-पत्रों और सामान्य लेखकों के मुख पर पट्टी बांध देना । अन्तिम चरण होगा पूर्ण रूपेण कम्युनिस्ट राज्य ।

कम्युनिस्ट राज्य के भी कई चरण हैं । प्रथम चरण है विरोधियों का सफ़ाया, व्यापक हत्यायें और लूट-मार । न बिड़ला रहेगा, न टाटा । न बालचन्द रहेगा, न डालमियां । अभिप्राय यह है कि सब लोग जिनकी कम्युनिस्ट निन्दा करते रहे हैं वे तलवार के घाट उतार दिये जायेंगे । कम्युनिस्टों के राज्य का दूसरा चरण होगा उन लोगों का सफ़ाया जो अपने आपको कम्युनिस्ट न मानते हुए कम्युनिस्टों की सहायता करते रहे हैं । अन्तिम चरण होगा 'पब्लिक कोर्ट' 'कन्सैन्ट्रेशन कैम्प' और नौकरशाही का राज्य । सबके मुख बन्द होंगे, लेखनी टूट जायेगी और सबके सिरों पर लोहे की टोपियां लगा दी जायेंगी ।

सेना प्रबल होगी, फैक्टरियां बहुत बड़ी बड़ी बन जायेंगी । खुफिया-पुलिस और पुलिस घर घर में चली जायेगी, परन्तु खाने-पीने की वस्तुओं का अभाव होगा । जेब में रुपयों के नोट तो होंगे, परन्तु खरीदने को कुछ नहीं होगा । अन्न में कमी होगी और वस्तुयें कम तथा भद्दी प्राप्त होंगी । जनता दुःखी होगी, परन्तु सेना और पुलिस उनको दुःख प्रकट करने नहीं देगी । मनुष्यों की सब प्रकार की अच्छी और बुरी भावनायें दब जायेंगी और पूर्ण देश जड़वत् हो जायेगा । कुछ गुण्डे राज्य करेंगे और देश के भीतर और बाहर लट्ठ लिये घूमते फिरेंगे ।

चीन और रूस में यही सब कुछ हो रहा है । एक बहुत ही न्यून संख्या

में लोग राज्य करते हैं और शेष जनता कोल्हू के बैल की भांति मेहनत करती है।

लोग कहते हैं कि भारत में ऐसा नहीं होगा। ये भोले-भाले लोग नहीं जानते कि यह प्रवृत्ति इस देश में उत्पन्न हो चुकी है और द्रुत गति से वही स्थिति उत्पन्न हो रही है जो कम्युनिस्ट देशों में है।

हम समझते हैं कि इस प्रवृत्ति को उत्पन्न करने वालों में महात्मा गांधी प्रमुख रहे हैं। उन्होंने बुद्धि के प्रयोग को दूषित माना और कर्म को प्रमुख माना। ऐसा उन्होंने अपने गीता के प्रवचनों में कहा है कि एक मन तर्क से एक तोला भर कर्म (कर्त्तव्य) भारी होता है। वह जानते नहीं थे कि कर्म अथवा कर्त्तव्य जो तर्क अर्थात् बुद्धि से सिद्ध न हो वह अकर्त्तव्य ही होता है। वह स्वयं भी जब अपने सत्याग्रह आन्दोलनों को तर्क से श्रेष्ठ सिद्ध नहीं कर सकते थे तो कह दिया करते थे कि यह उनकी अन्तरात्मा की आवाज़ (inner voice) है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि उनकी तर्कविहीन (irrational) नीति देश के लिये घातक सिद्ध हुई है। बुद्धि के प्रयोग को वर्जित करने वाले महात्मा जी वर्तमान युग के विद्यार्थियों, मज़दूरों, क्लर्कों, राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं और नेताओं को तर्कविहीन कर गये हैं। देश में कोई भी व्यक्ति नहीं है जो अपनी इच्छा को दूसरों पर आरोपित करने का यत्न न कर रहा हो।

तनिक विचार करें कि हमारे नेतागण क्या कर रहे हैं? हमने अपने पिछले मास के लेख में बताया था कि हमारी रुचि हिन्दुओं में अधिक है और इस समय हिन्दुओं का एक ही राजनीतिक दल है, जिसका नाम लिया जा सकता है। वह भारतीय जनसंघ है।

यहाँ भी भारतीय और हिन्दू शब्दों का झगड़ा है। कारण यह कि हमारी दृष्टि में दोनों में अन्तर नहीं है। जहां तक हम जनसंघ के सदस्यों और कार्यकर्त्ताओं के विचारों को जानते हैं, हमारा यह विश्वास है कि वे भी भारतीय और हिन्दु में अन्तर नहीं मानते।

यदि यह बात ठीक है तो हिन्दू शब्द छोड़कर भारतीय शब्द का प्रयोग करना अविचारशीलता ही मानी जायेगी। उनकी अविचारशीलता यह है कि भारतीय जनसंघ के वे लोग जो भारतीय और हिन्दू शब्द में भेद नहीं समझते, दो में से एक बात तो कर ही रहे हैं। या तो वे अपने को धोखा दे रहे हैं अथवा दूसरों को धोखा दे रहे हैं। हमारा विचार है कि वे पहली ही बात कर रहे हैं।

भारत नाम हिन्दू की भांति सांस्कृतिक एवं धार्मिक भावों का सूचक नहीं है। इस कारण हिन्दू के स्थान पर भारत स्वीकार करना या तो हिन्दू संस्कृति से अपने को पृथक करना समझा जायेगा अथवा दूसरों को धोखा देने के लिये समझा जायेगा। भारत और भारतवर्ष पर्याय वाचक नहीं हैं। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष का सम्बन्ध किसी प्रकार की संस्कृति से न तो लिखा हुआ मिलता है और न ही यह कभी प्रचलित रहा है। भारत नाम तो श्री नेहरू जी तथा कांग्रेसी विचारधारा के लोगों के मस्तिष्क की उपज है और इन्होंने नाम रखते समय सांस्कृतिक मान्यता से यह नाम स्वीकार नहीं किया था।

कांग्रेस के लोग तो मुसलमानों को, देश के अन्य घटकों से पृथक रहते हुए भी, उनको देश में रहने की स्वीकृति देना चाहते थे और उनको प्रसन्न करने के लिये हिन्दू शब्द को छोड़कर भारत का शब्द स्वीकार किया था। कांग्रेस तो मुसलमानों का मत प्राप्त करने के लिये लालायित थी। राष्ट्रपति के निर्वाचन में तो खुले आम कहा जा रहा था कि कुछ कांग्रेसियों ने मुसलमानों को इस्लाम का ख़तरा बता बता कर वोट लिये हैं। प्रश्न यह है कि क्या भारतीय जनसंघ भी यही करने जा रहा है ?

यह स्पष्ट है कि भारतीय जनसंघ न तो ऐसा करने का विचार रखता है और न ही कर सकेगा। अतः इस दल को भारतीय नाम स्वीकार करने का यह लाभ न तो है और न कभी होगा।

अतः हमारा यह मत है कि भारतीय जनसंघ का हिन्दू शब्द से पृथकता उनकी अविचारशीलता के कारण है। यह अविचारशीलता कांग्रेस में जोरों पर है। क्या भारतीय जनसंघ भी इस (अविचारशीलता) का क्षेत्र विस्तृत करना चाहता है। ऐसा ही प्रतीत होता है।

यही बात समाजवाद की है। भारतीय जनसंघ यद्यपि अपने दल को समाजवादी नहीं कहता; इस पर भी यह अपनी विचारधारा को समाजवाद के अनुरूप रखना चाहता है। यह कार्य भी अविचारशीलता का है।

समाजवाद में समाज की प्रत्येक गतिविधि राज्याधीन होती है। आज प्रजातन्त्रात्मक पद्धति से राज्य एक सार्वजनिक संस्थान है। अभिप्राय यह है कि इसमें योग्यता तथा आचार-विचार की बात छोड़कर सब का राज्य निर्माण में बराबर का भाग है। ऐसा माना जाता है। समाज में अधिक संख्या में लोग राज्य के अनेक कार्यों को न समझने वाले होते हैं। अतएव राज्य निर्माण का कार्य अल्प शिक्षित और अन्य बुद्धिमानों के हाथ में चला गया है। निर्वाचनों के समय धन अथवा अन्य प्रलोभनों द्वारा मत प्राप्त करने की सुविधा इस कारण रहती है कि प्रजातन्त्रात्मक पद्धति में मतदाता अशि-

क्षित और चरित्र एवं अनुभवविहीन होते हैं। विद्वान चरित्रवान् और बुद्धिमानों के मत न तो खरीदे जा सकते हैं और न ही धोखा-धड़ी से प्राप्त किये जा सकते हैं।

अतएव निर्वाचनों में प्रायः कम पढ़े-लिखे लोग ही सफल होते हैं। बुद्धिमान और प्रतिभाशाली लोग प्रथम तो निर्वाचनों में भाग ही नहीं लेते और यदि वे आगे आते हैं तो प्रायः असफल होते हैं।

ऐसे मतदाताओं से निर्वाचित, ऐसे संसद सदस्य समाज के प्रत्येक कार्य को अपने अधीन कर लेंगे तो समाज का भगवान ही मालिक होगा। यही कुछ हो रहा है। उद्योगों के राष्ट्रीयकरण में छीज (व्यर्थ जाना) अधिक होती है और लाभ वाला कार्य कम होता है। इस पर भी उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की धूम है।

यही बात जनसंघ की बैंकों के राष्ट्रीयकरण के विषय में हुई है। यह ठीक है कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण के विषय में जनसंघ ने संसद में विरोध किया था, परन्तु यह विरोध राष्ट्रीयकरण का विरोध नहीं था, केवल राष्ट्रीयकरण करने की विधि जनसघ को स्वीकार नहीं। तो कौन सी विधि उनकी है, वह उन्होंने बतायी नहीं।

जनसघ के श्री सुन्दरसिंह भण्डारी ने यह कहा था कि वे बैंकों का भारतीयकरण चाहते हैं। यह वक्तव्य भी विचारहीनता का ही सूचक है। भारतीयकरण के दो अर्थ हो सकते हैं। एक तो यह कि सब बैंकों के मालिक भारत के रहने वाले हों। भारतीयकरण का दूसरा अर्थ है कि बैंकों में काम करने वाले बैंकों के मालिक बन जायें। दोनों बातें अव्यवहारिक हैं और हो नहीं सकतीं।

जब विदेशों से व्यापार होना है तो विदेशी बैंक भी यहां चलेंगे। रूस, चीन इत्यादि कम्युनिस्ट देशों के अतिरिक्त अन्य कोई देश नहीं जहां विदेशीय बैंक कार्य नहीं करते। विदेशों से व्यापार के लिये विदेशीय बैंक चलेंगे, अन्यथा व्यापारिक असुविधायें उत्पन्न हो जायेंगी और बैंकों में काम करने वालों को मालिक बनाने पर तो बैंकों के धन का अपव्यय हो जाने का डर है। इस प्रकार के विचार तो अविचारशील व्यक्ति ही उपस्थित करते हैं।

अतएव समाजवादी बनने की अभिलाषा भी राजनीतिक दलों में और विशेष रूप में जनसंघ में अविचारशीलता के कारण ही है।

आज भारत में राजनीतिक चित्र बदल रहा है और वह अविचारशीलता की ओर जा रहा है। क्या विद्यार्थी और क्या मज़दूर, क्या नेता और क्या नेताओं के अनुमोदक, क्या धार्मिक सभायें और क्या सामाजिक एवं शैक्षणिक संस्थान, सब अविचारशीलता की ओर अग्रसर हो रहे हैं। ●●

ख़ान अब्दुल ग़फ्फ़ार ख़ाँ

विद्यानन्द 'विदेह'

[जब तक ख़ान मियां इस देश में रहे, उनकी भारत विरोधी गतिविधियों की, हम अपने पाठकों को लगभग प्रत्येक अंक में कुछ-न-कुछ सूचना देते रहे हैं। यहां पर हम सहयोगी सविता में प्रकाशित स्वामी जी का लेख उद्धृत कर रहे हैं जो उन्होंने काबुल के एक सिख की व्यथा-जन्य प्रतिक्रिया स्वरूप लिखा है। हमारे पक्ष की स्वामी जी ने पुष्टि की है। हम भी स्वामी जी के कतिपय विचारों को छोड़कर शेष के पूर्णतया समर्थक हैं। कतिपय से हमारा अभिप्राय 'छागला' के विषय में व्यक्त स्वामी जी की भावना से है। हांडी का एक चावल परखने की प्रक्रिया व्यक्ति को परखने में प्रामाणिक नहीं हो सकती। अन्यथा शेख का पिछले मास का एक वक्तव्य ही उसे महान् देश-भक्त की उपाधि से विभूषित करने के लिए पर्याप्त था। किन्तु क्या शेख उस पर टिका रह सका? इसी प्रकार राष्ट्र भाषा के विषय में छागला के विचारों से हम परिचित हैं। अपनी राजनीतिक स्थिति सुदृढ़ करने के लिए छागला किसी वाक्य विशेष का प्रयोग कर भी लें तो उसे सदा के लिए प्रमाण मान लेना हमारी भूल होगी। छागला भी फखरुद्दीन, यूनुस सलीम और शेख अब्दुल्ला की कोटि के व्यक्ति हैं। रही खान की बात, वे अपने विष बीज 'इंसानी बिरादरी' के रूप में भारत में बो गए हैं। अतः खान के वापस चले जाने के बाद भी इस लेख की सामयिकता समाप्त नहीं हो जाती।

सम्पादक]

'स्वामी साहब! अब्दुल गफ्फ़ार खां के बारे में आपकी क्या राय है? काबुल में मेरा काफ़ी बड़ा कारोबार है। इस शख्स की स्पीचों की ज्यों-ज्यों यहां खबरें आती हैं, हिन्दुओं के ख़िलाफ़ जज़्बात भड़कते जाते हैं। काबुल में तीस हज़ार के करीब हिन्दु निवास करते हैं, जिनमें अधिक संख्या सिखों की है। सभी मुल्कों में सिखों को हिन्दु समझा जाता है। मैं सिख हूं। अपने को

हिन्दु कहलाने में मुझे फख़ है। अब तक हम यहां बेफ़िक्र रहते थे। इस शख्स ने हमें मुसीबत में डाल दिया है।'

—सिंह

जिस समय प्रिय जयप्रकाशनारायण ने ख़ान अब्दुल गफ्फ़ार खां को भारत बुलाने का राग अलापना आरम्भ किया था, उसी समय मैंने उनकी इस भूल पर कुछ जिम्मेदार लोगों को संकेत किया था। प्रिय नारायण एक परास्त और निराश राजनीतिज्ञ हैं। कहने को उन्होंने राजनीति से सदा के लिये सन्यास लिया हुआ है, किन्तु अपने को जनमानस में जीवित रखने के लिये वे अवाञ्छनीय चेष्टायें करते रहते हैं—

फिरते हैं ख्वार उनको कोई पूछता नहीं।
आते नहीं पर बाज अपनी आदतों से वह।

श्री अब्दुल गफ्फार खां ने यहां इन दिनों में जो कुछ किया व कहा है, उसकी मुझे पूर्ण जानकारी है। **वह यहां आये थे गांधी के लिबास में और यहां आने के कुछ ही दिनों बाद उन्होंने शेख अब्दुल्ला का लबादा पहन कर जिन्नाह की बोली बोलना आरम्भ कर दिया।** उन्होंने न केवल काबुल में, अपितु सभी मुस्लिम देशों में बसे हिन्दुओं के लिए कांटे बो दिए हैं। भारत के आतिथ्य का लाभ उठा कर उन्होंने पाकिस्तानी हुकूमत को प्रसन्न कर के पख्तूनिस्तान राज्य की स्थापना का मार्ग प्रशस्त कर लिया है। एक भद्र अतिथि की हैसियत से उन्हें यहां के मामलात में इतना अधिक दख्ल नहीं देना चाहिए था। उनके अपने पाकिस्तान में हिन्दुओं के साथ जो बीती है, उस पर उन्होंने एक बार भी अपनी जबान नहीं खोली है। उस दिन श्री दिनेशसिंह ने राष्ट्रसंघ में पाकिस्तान के प्रतिनिधि से जवाबी प्रश्न किया था, **'पाकिस्तान में आप उन अस्सी लाख हिन्दुओं के बारे में क्या कहते हैं जो या तो मौत के घाट उतार दिये गये हैं या बलात् मुसलमान बना लिए गए हैं।'** पाकिस्तान में जाकर क्या सरहदी गांधी इस विषय में पाकिस्तान के बहु-संख्यकों तथा शासकों की भर्त्सना करेंगे?

अहमदाबाद की जिस दुर्घटना को उन्होंने इतना उछाला है उसमें पहल यहां के बहुसंख्यकों ने नहीं, स्वयं मुसलमानों ने की थी। आम जनता सब देशों की उत्तेजनाग्रस्त ही होती है। सन्त व्यक्तिविशेष ही होते हैं। और अत्याचार तो ऐसी वस्तु है जिस पर सन्तों और पैगम्बरों को भी रोष आ जाता है।

श्री अब्दुल गफ्फार खां अब पाकिस्तान के नागरिक हैं, हिन्दुस्तान के नहीं। फिर भी जितनी आजादी विचार व्यक्त करने और घूमने फिरने की उन्हें यहां दी गई है, क्या उतनी स्वतन्त्रता वह मुझे पाकिस्तान में दिला सकते हैं ? या उतनी स्वतन्त्रता से वह स्वयं पातिस्तान में बोल सकते हैं ? हिन्दुस्तान की अपेक्षा उन्हें पाकिस्तान की कहीं अधिक आलोचना करनी चाहिए थी। किन्तु उस पर उन्होंने अपने मुंह को कस कर बन्द किया हुआ है।

भारत के मुसलमानों से उन्हें कहना चाहिये था कि वे भारत की हिन्दु जनता के साथ भाई-बहनों की तरह मिल-जुल कर रहें, परस्पर एक-दूसरे की भावनाओं का आदर करें और अपने मनों में से द्वित्व को निकाल दें। वैसा उन्होंने एक बार भी नहीं कहा। मैं सारे देश में घूमता हूँ और सर्वत्र हिन्दुओं तथा मुसलमानों को समान रूप से देशभक्त और राष्ट्रनिष्ठ रहने का उपदेश देता हूं। श्री खान ने वैसा बिल्कुल नहीं किया। उसका कारण है दारुल हरब और दारुल अमन का सिद्धान्त। माई का लाल श्री छागला है जो इस विष से सर्वथा मुक्त है और भारत के मुसल्मानों को इससे मुक्त रहने की प्रेरणा करता है। श्री खान श्री छागला से कुछ सीख लेकर भारत में विचरते तो न केवल भारत में, अपितु सारे मुस्लिम देशों में हिन्दु-मुस्लिम भाई-चारे का वातावरण बन गया होता।

यह तथ्य है कि पाकिस्तान में मुसलमान उतने सुखी और स्वतन्त्र नहीं हैं जितने भारत में। भारत में मुसलमान हिन्दुओं की भी अपेक्षा अधिक सुखी और स्वतन्त्र हैं। फिर भी हिन्दुस्तान के शासकों के लिए श्री खान ने जिन भद्दे शब्दों का प्रयोग किया है वह हमारे आतिथ्य का अपमान है। हमारे शासक कैसे भी हैं, वे पाकिस्तान के उन शासकों की अपेक्षा बदरजहा अच्छे हैं, जिनसे भयभीत होकर श्री खान काबुल में शरण लिए हुए हैं।

मैं यह सहन नहीं कर सकता कि एक विदेशी नागरिक हिन्दुस्तान में आकर हिन्दुस्तान के नागरिकों तथा शासकों के बारे में मर्यादा से अधिक मुंह खोले। यहां के हिन्दु और मुसलमान एक रक्त और एक परिवार हैं। अपने मामलात वे आपस में तय कर लेंगे। इस सम्बन्ध में उनकी चिन्ता अनधिकार चेष्टा है।

योगीराज श्रीकृष्ण

श्री सचदेव

श्रीकृष्ण आयु में पाण्डवों से बड़े थे। विद्या में, शौर्य में, धर्म-कर्म में और ज्ञान-विज्ञान में भी दक्ष थे। तत्कालीन भारतवर्ष की राजनीति का उनको बहुत ज्ञान था। देश के सब बड़े बड़े परिवारों से भी उनका सम्बन्ध था।

देश भर में कृष्ण की महिमा का गान हो रहा था और सब राजे-महाराजे उनसे परामर्श और सहायता के लिए याचना करते रहते थे। पाण्डव तो श्री कृष्ण की बूआ के पुत्र थे और दुर्योधन से भी कृष्ण का सम्बन्ध बन चुका था। बलराम दुर्योधन का गुरु था। बलराम की पत्नी जाम्बवती के पुत्र साम्ब का दुर्योधन की लड़की लक्ष्मणा से विवाह हो चुका था।

यद्यपि यदुवंशी एक छोटे से राज्य के स्वामी थे और इन्होंने तथा इनके किसी पूर्वज ने चक्रवर्ती राज्य प्राप्त नहीं किया था, इस पर भी श्रीकृष्ण की योग्यता तथा नीतिज्ञता के कारण यदुवंशियों का भारत भर में मान था।

जब पाण्डवों को इन्द्रप्रस्थ का राज्य दिया गया तब इन्द्रप्रस्थ की स्थिति एक गांव के तुल्य थी। पाण्डव द्रौपदी सहित वहां रहने के लिए गये तो राज्य की वृद्धि और सम्पन्नता के लिए विचार होने लगा। इस विचार विमर्ष में श्री कृष्ण सहायक हो गए। विचारोपरान्त यह निश्चय हुआ कि इन्द्रप्रस्थ राज्य की वृद्धि के लिए सर्वप्रथम उर्वराभूमि की आवश्यकता है। अतः इन्द्रप्रस्थ के पड़ोस में एक विशाल खाण्डव वन को बसने योग्य भूमि बना कर सम्पन्नता प्राप्त की जाये।

खाण्डव वन को जला कर भस्म कर दिया गया और इससे रिक्त हुई भूमि पर कृषि आरम्भ कर दी गई। इसमें नगर बसाये गये और इन्द्रप्रस्थ राज्य को धन-धान्य से पूर्ण कर दिया गया।

जब धन आने लगा तो इन्द्रप्रस्थ का नगर और उसमें सभाभवन बनवाया

गया। यह सब कृष्ण के परामर्श से हुआ था। एक समय जरासंध के बार बार आक्रमण से दुःखी यादव द्वारिकापुरी को चले गए थे और वहां पर सर्वथा नवीन नगर और रहने के लिए नवीन भवन बनवाये गये थे। अतः पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ के निर्माण की योजना भी श्री कृष्ण के परामर्श से ही बनाई।

द्वारिकापुरी के निर्माण के उपरान्त उस पुरी के सौन्दर्य और भव्यता की महिमा पूर्ण देश में फैली थी। उस समय द्वारिकापुरी का सौन्दर्य अति विख्यात था। नरकासुर की पराजय के उपरान्त और इन्द्र की माता के कुण्डल उनको लौटाने के उपरान्त तो द्वारिका के धन-वैभव में अपार वृद्धि हुई थी। अति सुन्दर भवन, विशाल जनपथ, सुरभित पुष्पों से भरे उद्यान थे और पुरी के चारों ओर मनुष्य निर्मित खाइयों में समुद्र भरा रहता था।

द्वारिकापुरी के निर्माता श्री कृष्ण के परामर्श से ही इन्द्रप्रस्थ का निर्माण कराया गया।

जब नगर बस गया और धन-धान्य से पूर्ण हो गया तो एक दिन नारद युधिष्ठिर इत्यादि से मिलने आये और राज्य तथा नगर की भव्यता, समृद्धता और सम्पन्नता देख अति प्रसन्न हुए।

युधिष्ठिर ने नारद मुनि का आदर सत्कार कर उनको बैठाया। नारद ने युधिष्ठिर से उसके अपने तथा नागरिकों के जीवन के सम्बन्ध में बहुत से प्रश्न पूछे। उन प्रश्नों से वह यह जानना चाहते थे कि युधिष्ठिर चक्रवर्ती सम्राट पद प्राप्त करने के योग्य हैं या नहीं।

नारद उस काल के एक महान् विद्वान और पण्डित माने जाते थे। महाभारत में नारद की महिमा इस प्रकार लिखी है :—

> **वेदोपनिषदां वेत्ता ऋषिः सुरगणार्चितः।**
> **इतिहासपुराणज्ञः पुराकल्पविशेषवित् ॥**
> **न्यायविद् धर्मतत्त्वज्ञः षडंगविदनुत्तमः।**
> **ऐक्यसंयोगनानात्वसमवायविशारदः ॥**
> **वक्ता प्रगल्भो मेधावी स्मृतिमान् नयवित् कविः।**
> **परापरविभागज्ञः प्रमाणकृतनिश्चयः ॥**
> **पञ्चावयवयुक्तस्य वाक्यस्य गुणदोषवित्।**
> **उत्तरोत्तरवक्ता च वदतोऽपि बृहस्पतेः ॥**
> **धर्मकामार्थमोक्षेषु यथावत् कृतनिश्चयः।**
> **तथा भुवनकोशस्य सर्वस्यास्य महामतिः ॥**

प्रत्यक्षदर्शी लोकस्य तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ।
सांख्ययोगविभागज्ञो निर्विवित्सुः सुरासुरान् ॥
(महा भा० सभा०—५-२ से ७ तक)

अर्थात्–नारद मुनि वेद, उपनिषद् के ज्ञाता, ऋषि, देवताओं द्वारा पूजित, इतिहास, पुराण के मर्मज्ञ, पूर्व कल्प की बातों को जानने वाले, न्याय के विद्वान, धर्म तत्त्व को जानने वाले, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द और ज्योतिष के विद्वान, ऐश्वर्य, संयोग, नानात्व और समवाय ज्ञान के विशारद, प्रगल्भ वक्ता, मेधावी, स्मरण शक्ति सम्पन्न, नीतिज्ञ, त्रिकालदर्शी, अपर ब्रह्म और पर ब्रह्म को विभाग पूर्वक जानने वाले, प्रमाणों द्वारा एक निश्चित सिद्धान्त तक पहुंचे हुए, पंचावयव युक्त, वाक्य के गुण-दोष को जानने वाले, बृहस्पति जैसे वक्ता के साथ भी उत्तर-प्रत्युत्तर करने में समर्थ, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, चारों पुरुषार्थों के विषय में निश्चय से जानने वाले, चौदह भुवनों को ऊपर-नीचे से देखने वाले, महाबुद्धिमान्, सांख्य और योग के ज्ञाता देवताओं और असुरों में भी वैराग्य उत्पन्न करने के इच्छुक—नारद मुनि की ऐसी महिमा महाभारत में वर्णित है ।

युधिष्ठिर के धर्म-परायण होने की बहुत महिमा थी । अतः नारद जी ने इसके विषय में युधिष्ठिर से बहुत प्रश्न किये, जिनका सार इस प्रकार है :

नारद ने पूछा :—

राजन् ! क्या तुम्हारा धन तुम्हारे तथा तुम्हारे कुटुम्ब के कर्मों को पूरा कर सकता है अथवा नहीं ? और तुमको तुम्हारी इच्छानुसार सुख भोग होता है अथवा नहीं ?

क्या ब्राह्मण, वैश्य और शूद्रों के प्रति तुम्हारा व्यवहार धर्मयुक्त तथा उदारतापूर्ण है अथवा नहीं ?

क्या तुम धन के लोभ में धर्म का और धर्म में लगे रह कर धन का नाश तो नहीं कर रहे ? अथवा काम की आसक्ति में धन और धर्म दोनों का ह्रास तो नहीं कर रहे ?

तुम त्रिवर्ग का सेवन, यथा समय करते हो अथवा नहीं ?

तुम शत्रु की शक्ति का अनुमान लगा कर अपने व्यवहार का निश्चय करते हो न ?

तुम्हारे राज्य के धनी लोग बुरे व्यसनों से बचे रहकर तुमसे प्रेम करते हैं अथवा नहीं ?

जिन पर तुम्हें सन्देह नहीं होता, उनके भी गुप्तचर क्या तुम्हारे भेदों को

बाहर प्रचारित तो नहीं करते ?

तुम्हारे मन्त्री कार्य कुशल, वार्त्तालाप में कुशल और दूसरों पर प्रभाव उत्पन्न तो कर सकते हैं न ?

तुम बेवक्त तो सो नहीं जाते ?

गुप्त बातों में अकेले ही तो नहीं कार्य करते अथवा एक से अधिक लोगों में तो रहस्य की बात नहीं करते ?

तुम्हारे पुरोहित विनयशील, कुलीन, बहुज्ञ, विद्वान, दोष दृष्टि रहित और शास्त्र चर्चा करने वाले हैं न ?

तुम्हारे सेनापति हर्ष और उत्साह से सम्पन्न हैं न ? वे वीर, बुद्धिमान्, धैर्यवान्, पवित्र, कुलीन, स्वामी भक्त हैं न ?

सेना को वेतन, भोजन समय पर मिलता है न ?

तुम पुरुषार्थ और कार्य कुशल व्यक्तियों को पुरस्कृत करते हो न ?

जो सैनिक तुम्हारे हित में मृत्यु का वरण कर लेते हैं, तुम उनके बच्चों की रक्षा करते हो न ?

शत्रु पराजित होने पर भी अगर वह शरण में आये, उसकी रक्षा करते हो न ?

शत्रु को पराजित करने में उसकी कठिनाई, दुर्भिक्ष, महामारी अथवा उनके अन्य संकटों का विचार तो नहीं करते ?

तुम्हारे राज्य में जल के भण्डार हैं न ? किसानों के पास बीज हैं न ?

नगरों के समान गांवों की भी रक्षा करते हो न ?

राष्ट्र में स्त्रियाँ सुरक्षित हैं न ? वे सन्तुष्ट रहती हैं अथवा नहीं ?

तुम रात्रि के अन्तिम प्रहर में उठ धर्म और अर्थ का चिन्तन करते हो न ?

इस प्रकार नारद ने युधिष्ठिर से राज्य, राष्ट्र और उसके अपने विषय में अनेक प्रश्न पूछे और जब इन सबका उत्तर सन्तोषजनक पाया तो नारद ने युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ करने को कहा। नारद ने कहा :—

एवं यो वर्तते राजा चातुर्वर्ण्यस्य रक्षणे ।
स विहृत्येह सुसुखी शक्रस्यैति सलोकताम् ॥

(महा भा० सभा—५-१२९)

अर्थात्—जो राजा इस प्रकार चारों वर्णों की रक्षा में भी संलग्न रहता है। वह इस लोक के देवराज इन्द्र के समान अत्यन्त ही सुखपूर्वक राज्य करता है।

अतः :—

समर्थोऽसि महीं जेतुं भ्रातरस्ते स्थिता वशे ।
राजसूयं क्रतुश्रेष्ठमाहरस्वेति भारत ॥
(महा भा० सभा—१२-२५)

हे भारत ! तुम्हारे भाई तुम्हारी आज्ञा का पालन करते हैं। तुम पूर्ण पृथिवी को जीतने में समर्थ हो; अतः राजसूय नामक श्रेष्ठ यज्ञ का अनुष्ठान करो।

अन्त में नारद जी ने युधिष्ठिर को आशीर्वाद दिया :

भव एधस्व मोदस्व धनैस्तिर्पय च द्विजान् ।
एतत् ते विस्तरेणोक्तं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
आपृच्छे त्वां गमिष्यामि दाशार्हनगरीं प्रति ॥
(महा भा० सभा०—१२-३२)

नारद के राजसूय यज्ञ के सुझाव पर युधिष्ठिर ने विचार किया। उसने अपने भाइयों और मन्त्रियों से सम्मति की और सबका यह निर्णय हुआ कि इस विषय में श्रीकृष्ण से सम्मति करनी चाहिए।

अतः उसी समय श्रीकृष्ण को इन्द्रप्रस्थ आने का निमन्त्रण दे दिया गया।

(क्रमशः)

नए संरक्षक सदस्य

२९. श्री अभिलाष सिंह आर्य
स्थान+पो० पचौमी, (वाया फरीदपुर)
जि० बांस बरेली (उ० प्र०)

३०. श्री जे० टी० भट्ट
भारटैक्स प्रा० लि०,
पहला माला, मफतलाल हाऊस
बैक-बे रिक्लेमेशन, बम्बई-२०

३१. श्री इन्दुलाल मोतीलाल पटेल
वेद मंदिर, सायला, जि० सुरेन्द्र नगर,
(सौराष्ट्र)

३२. श्री देवदत्त बाली बी. ए.,
१८ पलटन बाजार, देहरादून

३३. श्री श्याम सुन्दर प्रसाद,
बेलन बाजार मुंगेर, (बिहार)

समाचार समीक्षा

संविधान और सैनिक शासन

गत मास संसद के दोनों सदनों में भूतपूर्व सेनापति जनरल करिअप्पा के घनबाद में दिये गए एक वक्तव्य की कड़ी आलोचना हुई। लोकतन्त्र की दुहाई दे कर वक्तव्य की अवांछनीयता का नारा लगाया गया। इस आलोचना में सरकारी पक्ष और विरोधी पक्ष में समानरूपेण मतैक्य था। परिणामस्वरूप करिअप्पा को मूर्त्तरूप में उपस्थित हो कर न केवल लोकसभाध्यक्ष ढिल्लों को अपना मौलिक वक्तव्य दिखाकर स्पष्टीकरण देना पड़ा अपितु उन्हें आधुनिक शिवाजी (?) चौहान वंशावतंश एवं समन्वित संस्कृति की प्रतीक तथा समाजवादी चिन्ता की चिता में अहर्निश जाज्वल्यमान देवी की शरण भी गहनी पड़ी।

जब कभी भी सैनिक हस्तक्षेप की बात आती है, तभी लोकतन्त्र की दुहाई आरम्भ हो जाती है। अन्यथा राजा-प्रजा, नेता-अभिनेता, वक्ता-अधिवक्ता, पाठक-श्रोता सभी दिन रात लोकतन्त्र की जड़ों में तेल देते रहते हैं। किन्तु जब उन्हें यह प्रतीत होने लगता है कि उनका अस्तित्व खतरे में है तो वे उच्चस्वर से लोकतन्त्र का नामोच्चार करते हैं। आज जब समस्त देश में सत्ता के लिए संविधान की खिल्ली उड़ाई जा रही हो—इस दुष्कृत्य में प्रारम्भ में तो द्रविड़ मुन्नेत्र कषघम और कम्युनिस्ट ही सम्मिलित थे, किन्तु आज सभी इसके दोषी सिद्ध हो रहे हैं—तब कोई यदि इसका निदान सैनिक शासन सुझावे तो जैसे लाल कपड़े को देख कर सांड विदकता है वैसे ये देश के तथा कथित कर्णधार (?) क्यों विदकने लगते हैं ?

यदि इनको लोकतन्त्र प्रिय है तो वे संविधान की रक्षा करें और संविधान प्रिय है तो वे राष्ट्र की रक्षा करें। हम लोकतन्त्र एवं संविधान से सर्वोपरि राष्ट्र को समझते हैं। जो लोकतन्त्र अथवा संविधान राष्ट्र रक्षा में आड़े आवे उसे बदल कर राष्ट्र रक्षार्थ तन्त्र एवं विधान का निर्माण किया जाय।

इस प्रसंग में हम संवाददाताओं अथवा संवाद प्रकाशकों से दो शब्द कहे बिना नहीं रह सकते। आये दिन हम समाचारपत्रों में अनेक वक्तव्य एवं भाषण के अंश पढ़ते हैं। जब कोई इस प्रकार का महत्वपूर्ण अथवा विवादास्पद अंश सम्मुख आता है तो दूसरे दिन उसका प्रतिवाद प्रकाशित करना पड़ता है।

तब यह कहा जाता है वक्तव्य को गलत छापा गया था अथवा उसको तोड़ मरोड़ कर छापा गया था, या मुख्य प्रसंग से पृथक् कर अपने मन की बात को प्रकाशित किया गया था। लोकतन्त्र में समाचारपत्रों का मुख्य दायित्व है, अतः हम कहेंगे कि इस प्रकार का अनुत्तरदायित्व पूर्ण कार्य समाचार पत्रों की ओर से होना सर्वथा अवांछनीय है। क्या लोकतन्त्र के ये सजग (किन्तु भ्रमित) प्रहरी इस दिशा में सक्रिय पग उठावेंगे ?

सत्ता संघर्ष की राजनीति

विगत दो मास से भारत के अधिकांश प्रदेशों में सरकारों के पतन एवं गठन की अनेक प्रक्रियायें हुई हैं। उत्तर प्रदेश में चन्द्रभानु गुप्त समर्थित चरणसिंह सरकार बनते-बनते त्रिपाठी समर्थित सरकार बन गई है और थोड़े ही समय में उसने विधान सभा में विश्वास भी प्राप्त कर लिया। विश्वास का मत प्राप्त करते ही, करिअप्पा के भाषण पर लोकतन्त्र की दुहाई देने वाली इंदिरा की कैबिनेट द्वारा समर्थित चौधरी चरणसिंह ने लोकतन्त्र की हत्या कर प्रदेश में पंचायत परिषदों को समाप्त कर उनके अधिकार जिलाधीशों को सौंप दिए हैं। स्थान, समय और परिस्थिति-भेद से लोकतन्त्र शब्द के अर्थ बदलते रहते हैं, इसकी शिक्षा देना देवी इंदिरा भली-भांति जानती हैं।

बिहार में संविद सरकार बनते-बनते असंविद सरकार बनी किन्तु टिकेगी कब तक, यह अनिश्चित है, क्योंकि वहां एक अन्य संविद के गठन की प्रक्रिया जोरों पर है।

भूल से आय कर न चुका सकने वाले जगजीवनराम एक और भूल कर बैठे हैं। उड़ीसा में प्रसोपा के समर्थन से वे वर्तमान सरकार का तख्ता पलट कर नई कांग्रेस की नई सरकार बनाते बनाते स्वयं पटकी खा गए हैं।

नई कांग्रेस बनने का मुख्य कारण था पुरानी कांग्रेस द्वारा स्वतन्त्र पार्टी को चिमटे से न छूना। किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि गुजरात सरकार को गिराने के लिए केन्द्रीय सरकार अर्थात् नई कांग्रेस स्वतन्त्र दल को चिमटे से छूना तो क्या उससे चिपटने के लिए लालायित हो रही है। इंदिरादेवी और जगजीवन राम निर्लज्जता से घोषणा करते फिर रहे हैं कि राजनीति में स्याह-सफेद सब जायज है। इस प्रसंग में स्वतन्त्र दल की सराहना करनी चाहिए कि उसने नई कांग्रेस का सहयोग ठुकरा दिया है।

न केवल स्वतन्त्र दल अपितु महाराष्ट्र में नई कांग्रेस शिवसेना के शिवत्व को स्वीकार कर संसद में अपनी संख्या की समृद्धि में संलग्न है।

एक वृहद् योजना के अन्तर्गत अनेक मुख्यमन्त्रियों एवं मन्त्रियों तथा

नेताओं का काम तमाम करने वाले कामराज, इंदिरादेवी को राजगद्दी दिलाने वाले कामराज आज गुप्त रूप से इंडिकेट के कुख्यात नेता द्वारकाप्रसाद मिश्र से मिष्ठ सम्भाषण करने लगे हैं। कभी इंदिरा कामराज की प्रदक्षिणा करती थी। आज कामराज उसकी प्रदक्षिणा कर रहे हैं।

१९५२ में दिल्ली के गांधी मैदान में जवाहरलाल नेहरू की कांग्रेस को कब्र में दफनाने की प्रतिज्ञा करने वाले किन्तु आज इंडिकेटी षड्यन्त्र के स्रष्टा द्वारकाप्रसाद मिश्र को भारत के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय ने न दीन का रखा और न ईमान का। लपेट में मध्यप्रदेश के वर्तमान मुख्यमन्त्री को भी लिया गया है। किन्तु तब भी निर्लज्जता की नकाब अभी तक भी दोनों में से किसी के भी चेहरे से नहीं उतरी है। तदपि इससे मध्यप्रदेश सरकार का अस्तित्व भी खतरे में ही है।

बंगाल में संयुक्त मोर्चा सरकार का पतन हो कर राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया है। केन्द्र विचार कर रहा है कि उसका ऊंट किस करवट बैठे कि जिससे उसकी गद्दी बरकरार रह सके। अतः वामपन्थियों के साथ लगी गांठ को पक्का करने का उपक्रम चल रहा है। यही कारण है कि बंगाल की विधान सभा को अभी भंग नही किया गया है।

केरल की सरकार गिर कर उठ गई है। किन्तु खड़ी कब तक रहेगी यह कहना कठिन है।

राजस्थान प्रारम्भ से ही डांवाडोल स्थिति में है। असम के मुख्यमन्त्री चालिहा त्यागपत्र प्रदत्त मुख्यमन्त्री हैं। कश्मीर सरकार को कासिम का कांटा कसक रहा है। इन पंक्तियों के पाठकों तक पहुँचते सम्भवतया वहां भी कोई नया रूप ही सम्मुख आ जावे। हरियाणा सरकार को बचाने के लिए वहां की विधान सभा में प्रस्तुत अविश्वास प्रस्ताव पर बहस की बजाय सभा का ही सत्रावसान कर दिया गया, जिससे कि सरकार को संभलने का अवसर मिल जाय।

मद्रास जो अब तमिलनाडु बन गया है, असंवैधानिक और अलोकतन्त्री गतिविधियों तथा उत्तर भारत के प्रति विदेश एवं देश के अभिजात्य वर्ग के प्रति घृणा की भावना के बल पर द्रविड़ मुन्नेत्र कषघम के शासन को सम्भाले हुए हैं। इंदिरा सरकार इसमें उसकी पूर्ण सहयोगिनी है।

नागालैंड और नेफा में पहले से ही देशद्रोही सरकारों की स्थापना है।

पंजाब की अकाली-जनसंघ संयुक्त मोर्चा सरकार का पतन हो गया। किन्तु गुरनामसिंह जगजीवनराम की कांग्रेस के समर्थन से सरकार बनाने की

फिराक में मुख्य मन्त्रित्व से त्यागपत्र न देने की ठाने हुए थे कि राज्यपाल ने उनसे त्यागपत्र देने के लिए कह दिया। उधर अकाली दल पुनः संयुक्त मोर्चा सरकार बनाने की सोच रहा है। आखिरकाल गुरनामसिंह को त्याग-पत्र देना ही पड़ गया।

मैसूर सरकार को गिराने के लिए इंडिकेट पिछले वर्ष से ही प्रयत्नशील है। क्योंकि वहां निजलिंगप्पा कांग्रेस शासनारूढ़ है।

पृथक् तेलंगाना आन्दोलन के कारण आन्ध्र सरकार गिरते-गिरते अभी तो बची हुई है। किन्तु उसका स्थायी रहना सन्देहास्पद है। या तो तेलंगाना प्रदेश बनेगा अन्यथा रेड्डी सरकार की रेड़ी रिड़क जावेगी।

महाराष्ट्र में यदि शिवसेना और कम्युनिस्टों का समर्थन नहीं रहा तो वहां भी नाइक का नायकत्व कब नदारद हो जाय कहा नहीं जा सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं सम्पूर्ण देश में आज अराजकता का शासन है। देवी इंदिरा केन्द्र में अपनी स्थिति को सुदृढ़ रखने के लिए देशद्रोही एवं राष्ट्रघाती तत्त्वों से गठबन्धन के लिए लालायित हैं।

हमें पुनः कहना पड़ता है कि यदि इन सब बातों के निदानस्वरूप कोई सैनिक शासन की बात करता है तो उसे क्यों अनुपयुक्त कहा जाय?

महामना, (श्री) माली और संघ

घटना बहुत छोटी सी है। सम्भवतया कतिपय पाठक इसे राष्ट्रीय महत्त्व मी बात न समझ पावें। किन्तु हम उसका उल्लेख इस लिए कर रहे हैं कि उसकी पृष्ठ भूमि में एक राष्ट्रीय संस्था के विगत ४५ वर्षों के सतत अध्य-वसाय का प्रश्न है। घटना केवल इतनी ही है कि बनारस हिन्दू विश्व-विद्यालय के संस्थापक महामना मदनमोहन मालवीय जी ने विश्वविद्यालय के अन्तर्गत एक भवन राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को प्रदान किया था और आज की वामपंथी सरकार, विश्वविद्यालय के वर्तमान माली अर्थात् उपकुलपति श्री श्रीमाली तथा गजेन्द्रगड़कर आयोग की रिपोर्ट की रेखायें, ये सब मिल कर संघ से वह भवन खाली करवा रहे हैं। क्योंकि इसमें उनके विश्वविद्यालय की अशान्ति में शान्ति के तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं।

संघ अभी तो सशर्त भवन खाली करने के लिए उद्यत हो गया है। थोड़ा सा दबाव पड़ने पर एक दो दिन में बिना शर्त भवन खाली हो जाएगा, हमें इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। शक्ति पूजा का पुजारी संघ दुःशासनों के सम्मुख नतशिर है।

भारत में कम्युनिज्म का आगमन **अभी कल की** बात है। कम्युनिस्ट पार्टी

की स्थापना संघ की स्थापना से बाद की बात है। किन्तु स्थिति यह है कि हिन्दुओं के इस देश में कम्युनिज्म टिड्डियों के दल की भांति छा गया है। कम्युनिज्म यहां के जन-जन में रम गया है किन्तु संघ एक अछूत संस्था की भांति रह गया है।

जिस संघ में सदा परिस्थिति निरपेक्षता शब्द गुंजायमान रहता था, वह संघ अन्त में सर्वथा परिस्थिति सापेक्ष सिद्ध होगा, इसका अनुमान यदि डॉक्टर हैडगेवार कर पाते तो सम्भवतया वे इसकी स्थापना ही न करते। हमारा तो विश्वास है देश के दुर्भाग्य ने यदि डाक्टर साहब को असमय में ही हमसे न छीना होता और वे केवल दस वर्ष ही और जीवित रहते तो भारत का आज का मानचित्र कुछ और ही होता।

गांधी को प्रातर्वन्द्य एवं नेता मानना ही हो तो फिर पृथक् संघ की क्या आवश्यकता है ? उसके लिए कांग्रेस थी ही और आज तो एक के बजाय दो दो कांग्रेस हैं।

परिस्थिति सापेक्षता की बात हम इस लिए कहते हैं कि संघ की ओर से एक प्रातः स्मरण नाम की पुस्तिका प्रसारित होती है। संघ के शिविरों में उस प्रातःस्मरण का पाठ कराया जाता है। उसी प्रातःस्मरण में गांधी को प्रातर्वन्द्य मान उसके नाम का समावेश किया गया है। इतना ही नहीं सरसंघचालक महोदय स्वयं को इस लिए धन्य समझने लगे हैं कि एक बार गांधी ने उनके नाम का सार्वजनिक सभा में उल्लेख कर दिया था।

जब समालोचक इस ओर इंगित करते हैं तो कहा जाता है कि यह समय की मांग है। इससे कई खतरे टल जाते हैं। क्या इसी को परिस्थिति निरपेक्ष कहते हैं ? यदि संघ की यही पलायनवादी नीति जारी रही तो भारत की भावी सन्तान उसे उसके इस कृत्य के लिए कभी क्षमा नहीं करेगी।

हम यह दावे के साथ कह सकते हैं कि यदि किसी वामपन्थी दल अथवा व्यक्ति के अधिकार में यह भवन होता तो वह इस प्रकार की धमकी में आकर कभी भवन खाली नहीं करता।

क्या संघ कभी और कहीं साहस का परिचय देगा ? अथवा ४५ वर्ष अवसर की प्रतीक्षा में बिता कर आगामी ४५ वर्ष और प्रतीक्षा में ही बितायेगा। जो हो अवसर संघ की प्रतीक्षा नहीं करेगा और यदि यही स्थिति रही तो शीघ्र ही संघ को इसका परिणाम भुगतना पड़ेगा।

इस सन्दर्भ में सद्यः सम्पन्न राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की प्रतिनिधि सभा में पारित प्रस्ताव के उस अंश के क्या अर्थ रह जाते हैं, जिसमें कहा है—समाज

के उन राष्ट्रभक्त प्रबुद्ध लोगों से भी जो इन सारी परिस्थितियों से दुखी और चिन्तित हैं, यह प्रतिनिधि सभा आग्रह करती है कि वे इस परिस्थिति में मूक दर्शक न बने रह कर, साहस एवं निर्भयता के साथ आगे आवें तथा व्यक्तिशः या सामूहिक रीति से इन कृत्यों का विरोध करते हुए सर्वसाधारण समाज का मनोबल बढ़ावें।

मूक दर्शक न बने रहना, साहस एवं निर्भयता से आगे आना, इन कृत्यों का विरोध कर सर्वसाधारण का मनोबल बढ़ाना यह सब कार्य यदि संघेतर जन कर लें तो फिर संघ की क्या आवश्यकता एवं उपयोगिता रह जाती है ?

संघ आज तक मूक दर्शक ही बना रहा। यदि उसने कहीं साहस का परिचय दिया है तो अपने सहयोगियों को लांछित एवं अपमानित करने में। यदि उसने कहीं सहयोग का परिचय दिया है तो अपने विरोधियों के सम्मुख नतशिर होने में। संघ प्रेमियों पर गुर्राना और संघ-द्रोहियों के सम्मुख भीगी बिल्ली बनने की आत्मघाती नीति जब तक संघ नहीं बदलता, तब तक वह सदा आत्मत्राण की याचना ही करता रहेगा।

आज देश को, हिन्दू राष्ट्र को नेतृत्व की आवश्यकता है। हम समझते हैं कि संघ के लिए यह 'आज नहीं तो फिर कभी नहीं' की स्थिति है। क्या संघ नेताओं में है देश के नेतृत्व की भावना एवं साहस ?

वर्ष प्रतिपदा के अवसर पर, स्वर्गीय डाक्टर हैडगेवार की आत्मा की सन्तुष्टि के लिए तथा जिस भावना से महामना ने संघ को विश्वविद्यालय का भवन प्रदान किया था, उसको दृष्टि में रखते हुए हम संघ के नेताओं से नम्र निवेदन करें कि स्थिति को देखते हुए वे अपनी कार्य-प्रणाली में परिवर्तन कर अपने सहयोगियों से सहयोग एवं विरोधियों से विरोध की भावना से प्रेरित हो कर देश का यदि नेतृत्व न भी कर सकें तो उसकी उन्नति में सहायक बनने का संकल्प तो करें ही।

रबात के बाद अब जैद्दा

प्रेस ट्रस्ट के सूत्रों से विदित हुआ है कि २३ मार्च को जैद्दा में प्रारम्भ हुए इस्लामी देशों के विदेश मन्त्रियों के सम्मेलन में भारत के भाग लेने को तो अस्वीकार किया ही गया है, साथ ही भारत के पत्रकारों को भी वहां की रिपोर्ट लेने के लिए नहीं जाने दिया गया है। हिन्दुस्तान टाइम्स के सम्वाद-दाता को सउदी अरब के दूतावास से वीसा नहीं दिया गया।

रबात का घाव अभी भरा भी नहीं था कि यह दूसरा आघात लग गया।

प्रधानमन्त्री देवी इन्दिरा, विदेश मन्त्री दिनेशसिंह, मियां फखरुद्दीन अली अहमद और मियां युनुस सलीम अपना मुखड़ा जन साधारण की ओर मुखातिब करके इस विषय में क्या कुछ जवाब देंगे ? कौन उत्तरदायी है इस प्रकार के निरन्तर अपमान के लिए ?

हम खुदाई खिदमतगारों और इंसानी विरादरों से भी पूछते हैं कि क्या इसी अपमान के लिए इन संस्थाओं को भारत की खून पसीने की कमाई से सींचा जा रहा है ?

भारतीयकरण की ओर एक पग

युनाइटेड न्यूज के सूत्रों से विदित हुआ है कि २२ मार्च को पूना नगर की मुख्य सड़कों पर कुछ मुस्लिम युवकों ने जुलूस निकालते हुए 'भारत माता की जय, भारत हमारी शान है' आदि नारे लगाये। मजहबी अन्धविश्वासों को छोड़ो और मौलवियों को दफा करो आदि नारे भी इस जुलूस में लगाये गये थे।

युवकों के इस जलूस ने बाद में एक सभा का रूप ग्रहण किया। इस सभा का आयोजन मुस्लिम सत्य शोधक मण्डल के उद्घाटन समारोह के अवसर पर किया गया था। मण्डल का उद्देश्य समाज में ऐसे क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने हैं कि भारतीय जीवन की मुख्य धारा में पूरी तरह रम जायं।

इस सभा में लगभग २५० प्रतिनिधियों ने भाग लिया, जिनमें कुछ मुस्लिम महिलायें भी थीं। सभा की अध्यक्षता बम्बई के प्रमुख लेखक श्री हमीद दलवाई ने की। सभा में अधिकांश वक्ताओं ने मुस्लिमों में समान सिविल कोड तथा बहुविवाहप्रथा के उन्मूलन के प्रचार पर बल दिया।

चटगांव का चन्द्रनाथ मन्दिर

संसोपाई संसद सदस्य राजनारायण ने राज्य सभा में जब ११ मार्च को पूर्वी पाकिस्तान स्थित चटगांव के चन्द्रनाथ मन्दिर पर पाकिस्तानी सेना के अधिकार का प्रश्न उठाया तो विदेश मंत्री को यह स्वीकार करना पड़ा कि भारत पाक संघर्ष के दौरान ऐसा हुआ है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि मन्दिर पर पाक सेनाओं का अधिकार होने के बहुत समय बाद तक भारतीय उच्च आयुक्त को इसकी कोई सूचना नहीं मिली। श्री सिंह ने बताया कि भारत सरकार ने पाकिस्तान में मन्दिरों और गुरुद्वारों को अपवित्र करने की शिकायतों पर पाकिस्तान सरकार को अनेक बार विरोधपत्र भेजे हैं परन्तु किसी का भी

(शेष पृष्ठ ४१ पर)

वेद में सूर्य का स्वरूप

श्री रामशरण वशिष्ठ

वेदों में कई मन्त्रों में सूर्य का शब्द आता है। इसका बहुत अद्भुत् वर्णन है। इन मन्त्रों में सूर्य शब्द के कई अर्थ होते हैं। श० ब्रा० में लिखा है—सूर्यो वै सर्वेषां देवानामात्मा। अर्थात् सब देवों का आत्मा। ऋ०-१-५०-१—'दृशे विश्वाय सूर्यम्' आता है। यहां पर सूर्य परमेश्वर का वाचक है। ऋ०—१-५०-१० में भी—'देवं देवत्रा सूर्यमगन्यज्योतिरुत्तमम्। इसमें भी सूर्य परमात्मा का वाचक है। परमात्मा ज्योतिर्मय प्रकाशस्वरूप है। इसी प्रकार यजु०—७-४२ में 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' अर्थात् सूर्य चेतन और जंगम का आत्मा। यहां भी सूर्य परमेश्वर का वाचक है। ऐसे और भी कई मन्त्र हैं जो वेदों में स्थान-स्थान पर आते हैं, जिनमें सूर्य परमात्मा ज्योतिस्वरूप का द्योतक है।

इसके अतिरिक्त इस शब्द के अर्थ भौतिक सूर्य के हैं। अधिकतर मन्त्रों में सूर्य शब्द इसी अर्थ में आया है। सूर्य के लिये वेदों में कई शब्द आते हैं। जैसे आदित्य, सविता, विष्णु, रवि आदि। इस भौतिक सूर्य की महानता, शक्ति और लाभ का वेद मन्त्रों में बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है। सूर्य को वसू, बसाने वाला देवता, दिव्य शक्ति वाला और ग्रह बताया गया है। अथर्व वेद के १७वें काण्ड में ३० मन्त्र आते हैं, जिनमें सूर्य की प्रशंसा है। आजकल भी कई ब्राह्मण इन मन्त्रों का नित्य पाठ करते हैं।

सृष्टि क्रम में सूर्य की उत्पत्ति के विषय में मई मन्त्र हैं। जैसे 'सूर्य चन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्' (ऋ०—१०-१९०-३) और शंनः सूर्य उरुचक्षा उदेतु (ऋ—७-३५-८) और 'यत्र सूर्य उदैति' और ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा (यजु० ३-९)। इन मन्त्रों में सूर्य भौतिक सूर्य के अर्थ में आया है।

सूर्य इस लोक का केन्द्र है। (यजु०—१७-६०) यह सारे लोक को प्रकाशित करता है; (यजु०—१२-२१) गरमी देता है; संसार में जीवन का

आधार है। सारे भूमण्डल की स्थिति इस पर है। सूर्य की आकर्षण शक्ति से सब ग्रह-उपग्रह अपनी अपनी जगह पर काम कर रहे हैं। (ऋ— १०-८५-१, २) और (यजु०—१८-४०) दिन-रात, ऋतु इन सबका कारण भी यही है। (यजु०—१७-८६) सूर्य की तपस से जलों की भाप बन कर वायु और सूर्य की किरणों द्वारा आकाश में जाती है और बादल बन कर वर्षा होती है। (यजु०—१७-८६) सूर्य के कारण कई जीव-जन्तु मर जाते हैं और गन्दी गली-सड़ी चीजें सूख जाती हैं, जिसके कारण कई बीमारियों का फैलना रुक जाता है। सूर्य के प्रकाश में ही सारा संसार अपना अपना काम कर सकता है।

प्रातःकाल सूर्य पूर्व दिशा में दिखता है। (यजु—१३-५६) उस ओर दिन होता है और पृथिवी के दूसरी ओर रात। सूर्य का प्रकाश सब ओर फैल जाता है। (यजु०—१७-५६) वर्षा का कारण भी सूर्य ही है। (यजु०—१७-६०) सूर्य की रश्मियां कई किस्म की हैं। उनमें सात रंग होते हैं। रश्मियों को सूर्य के सात घोड़े कहा है। उसका रथ सुनहरी है। यह वर्णन अलंकारिक है। (ऋ०—१-३५-४) सूर्य प्रातःकाल से सायंकाल तक मनुष्यों के कर्मों को देखता हुआ कहा गया है। (ऋ०—१-३५-२) सूर्य के लाभदायक होने के कारण कई देशों में इसकी पूजा की जाती है। सूर्य की उत्पत्ति भी (अलंकारिक रूप में) प्रजापति की आंख से कही गयी है। (ऋ०—१०-६०-१३)।

सूर्य की किरणों का वर्णन भी वेदों में बहुत विस्तार से आता है। किरणें कई प्रकार की हैं। उनको आदित्य और अंगिरा कहते हैं। किसी को हरया कहते हैं। पं० भगवद्दत्त जी ने अपनी पुस्तक (Creation of the Universe) में बहुत विस्तार से लिखा है। सूर्य उत्पत्ति काल में पहले पृथिवी के पास था, फिर ऊंचा होता गया और जहां अब है, वहां प्रभु शक्ति ने उसे स्थिर किया। (ऋ०—३-५४-७ व १०-६५-८)।

सूर्य की गर्मी से कई बीमारियां दूर होती हैं। ऋ०—१-५०-११ में आता है कि पीलियों में सूर्य की प्रातःकाल की रश्मियां नग्न शरीर पर लेने से पीलापन जाता रहता है। सूर्य की गर्मी से पौधे उगते हैं, पलते हैं और फल पकता है। कृषि में इसका बड़ा लाभ है। (ऋ०—१-३५-६, १०)।

सूर्य अपने धुरे पर घूमता है। (यजु०—१४-२१) और पृथिवी सूर्य के गिर्द घूमती है। (यजु०—३२-७) जब इन दोनों के बीच में कोई ग्रह व उपग्रह आ जाता है तो ग्रहण लगता है। (ऋ०—५-४०-१) सूर्य का आकार बहुत बड़ा है और वह पृथिवी से बहुत दूर है। यदि पास-पास रहते तो कोई जीव न होता। चन्द्रमा भी सूर्य की रोशनी से चमकता है। (यजु०—१८-४०)

सूर्य के पास जल के अणु हैं और सोम भी है। यह जल विद्यत: (electrified) है। (१-१६४-५२) सूर्य की किरणें तिरछी चलती हैं। वह टूट कर नहीं चलतीं (ऋ०—६-५१-५)। किरणें सात रंग की हैं (५-४७-४)।

यह हमारे सूर्य का अपना लोक है। ऐसे कई लोकान्तर हैं और कई सूर्य हैं। (ऋ०—९-११४-३) इस सूर्य का वर्णन वेदों में इतने विस्तार से है कि उसका देना यहां पर सम्भव नहीं। हमने यह संक्षेप से दिया है।

सूर्य शब्द के और भी कई अर्थ हैं। सूर्य के अर्थ कुछ मन्त्रों में "विद्वान्" के होते हैं। जैसे ऋ०—१-२२-२० में—'तद् विष्णो: परमं परं सदा पश्यन्ति सूरय:। अर्थात् विद्वान पुरुष उस प्रभु के दर्शन करते हैं। इस प्रकार (अथ०—१४-२-४६ में)—'सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय—नमो। यहां पर भी सूर्य के अर्थ विद्वान के हैं।

इसी प्रकार सूर्य के अर्थ राजा के भी हैं। इसी कारण वेद के पाठकों को ध्यान रखना चाहिये कि सूर्य के अर्थ किस मन्त्र में क्या हैं, उसको जानें। नहीं तो उलझन में पड़ जायेंगे। वेद की शैली जांचकर ही मन्त्रों के ठीक अर्थ होते हैं।

(पृष्ठ ३८ का शेष)

कोई असर नहीं पड़ा। उन्होंने इस बात को भी स्वीकार किया कि धर्मस्थानों की पवित्रता बनाये रखने के लिए नेहरू-लिकायत और नेहरू-नून आदि अनेक समझौते पाकिस्तान और भारत के मध्य हो चुके हैं। भारत ने हर धर्मस्थान को सुरक्षित रखने की व्यवस्था की है किन्तु पाकिस्तान ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

एक अन्य तथ्य का उद्घाटन करते हुए उन्होंने बताया कि पाकिस्तान में भारतीय दूतालय के सदस्यों को यात्रा पर लगे प्रतिबन्धों के कारण स्वतन्त्रता से आने जाने का अवसर नहीं है जबकि पाक उच्चायुक्त को भारत में घूमने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। यहां तक कि वे राष्ट्रद्रोही शेख सदृश व्यक्तियों की मिज़ाज़पुर्सी में अपना अधिकांश समय व्यतीत किया करते हैं।

भारत सरकार जब तक अपनी विदेश नीति में परिवर्तन नहीं करती तब तक रबात, जैद्दा और चटगांव जैसे ये अपमान निरन्तर होते ही रहेंगे। आवश्यकता नीति को पलटने की नहीं अपितु सरकार को पलटने की है। क्या भारत का जनमानस उद्यत है इसके लिए?

कुछ अत्यन्त रोचक व प्रेरणाप्रद पुस्तकें

जो प्रत्येक को पढ़नी चाहियें

श्री सावरकर साहित्य

पुस्तक	मूल्य
प्रतिशोध (नाटक)	४.००
मोपला-गोमान्तक	३.००
अमर सेनानी सावरकर	२.५०
हिन्दुत्व	४.००

श्री बलराज मधोक साहित्य

पुस्तक	मूल्य
जीत या हार	३.००
हिन्दू राष्ट्र	१.५०
श्यामाप्रसाद मुखर्जी : जीवनी	६.००
भारत की सुरक्षा	४.००
भारत और संसार	६.००
भारत की विदेश नीति	४.००
भारतीय जनसंघ एक राष्ट्रीय मंच	१.५०
Indian Nationalism	1.50
What Jana Sangh Stands For	1.50
Nationalism Democracry and Social Change	1.50
Kashmir Centre of New Alignments	15.00
India's Foreign Policy And National Affairs	3.00

डा० रामलाल वर्मा

पुस्तक	मूल्य
दिल्ली से कालीकट	५.००

श्री सीताराम गोयल

पुस्तक	मूल्य
शक्तिपुत्र शिवाजी	१.५०

श्री तनसुखराम गुप्त

पुस्तक	मूल्य
हिन्दुत्व का अनुशीलन	४.००

श्री गुरुदत्त साहित्य

पुस्तक	मूल्य
अन्तिम यात्रा	१.००
समाजवाद एक विवेचन	१.००
गाँधी और स्वराज्य	१.००
भारत में राष्ट्र	१.००
वन्दे मातरम् (नाटक)	२.००
भारत गान्धी नेहरू की छाया में	४.००
देश की हत्या (उपन्यास)	३.००
भग्नाश ,,	३.००
छलना ,,	७.००
धर्म संस्कृति और राज्य	८.००
जमाना बदल गया (नौ भागों में)	२०.००
महर्षि दयानन्द	२.००
श्रीमद्भगवद्गीता–एक अध्ययन	१५.००
धर्म तथा समाजवाद	६.००
युगपुरुष राम (किशोरों के लिए)	२.००
India in the Shadow of Gandhi and Nehru	20.00

श्री पी० एन० ओक

पुस्तक	मूल्य
भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें	१०.००
भारत में मुस्लिम सुल्तान	१०.००
Some Blunders of Indian Historical Research	15.00

Hansraj Bhatia

पुस्तक	मूल्य
Fatehpur Sikri is a Hindu City	10.00

श्री गुरुदत्त का सम्पूर्ण साहित्य हमारे सदन से उपलब्ध है। १० रुपये की पुस्तकों पर डाक व्यय फ्री; २० रुपये की पुस्तकों पर १० प्रतिशत छूट।

भारती साहित्य सदन (सेल्स)

३०/९०, कनाट सरकस, (मद्रास होटल के नीचे), नई दिल्ली-१

संरक्षक सदस्य

१ केवल एक सौ रुपये भेजकर परिषद् के संरक्षक सदस्य बनिये। यह रुपया परिषद् के पास आपकी धरोहर बनकर रहेगा।

संरक्षक सदस्यों को सुविधाएँ—

१ परिषद् के आगामी सभी प्रकाशन आप बिना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। आगामी वर्ष ये पुस्तकें प्रकाशित होंगी—इतिहास में भारतीय परम्पराएँ (अप्रैल १९७० में); वर्ण व्यवस्था अथवा प्रजातन्त्र (मई १९७०); राष्ट्रीयकरण (जून १९७०); ब्रह्मसूत्र हिन्दी विवेचना (मूल्य २५.००) अगस्त १९७० एवं कुछ अन्य।

२ परिषद् की पत्रिका 'शाश्वत वाणी' आप जब तक सदस्य रहेंगे निःशुल्क प्राप्त कर सकेंगे।

३ परिषद् के पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ आप २५ प्र० श० छूट पर प्राप्त कर सकेंगे। सूची इस अंक में अन्यत्र देखें।

४ जब भी आप चाहेंगे एक मास की पूर्व सूचना देकर अपनी धरोहर ले सकेंगे। धन मनीआर्डर द्वारा भेज सकते हैं।

सदस्यों को परिषद् के पिछले निम्न तीन प्रकाशन बिना मूल्य भेजे जाएंगे।

१ समाजवाद एक विवेचन—ले० श्री गुरुदत्त मू० १.००

२ गांधी और स्वराज्य—ले० श्री गुरुदत्त मू० १.००

३ भारत में राष्ट्र—ले० श्री गुरुदत्त मू० १.००

सूचना—परिषद् का आगामी प्रकाशन 'इतिहास में भारतीय परम्पराएँ' प्रेस में है तथा आशा है १५ अप्रैल तक तैयार हो जायेगा। मूल्य होगा १२ रुपये। सदस्यों को बिना मूल्य भेजा जायगा।

भारतीय संस्कृति परिषद् के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं शक्तिपुत्र मुद्रणालय दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

मई, १९७० वर्ष १०—अंक ५ रजि० क्र० ६६८९/६०

शाश्वत वाणी

ऋ॒तस्य॒ साना॒वधि॒ चक्रमा॒णाः रि॒हन्ति॒ मध्वो॑ अ॒मृत॑स्य॒ वाणीः॑ ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुख

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।
ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

●

परामर्शदाता
प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

●

सम्पादक
अशोक कौशिक

●

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१
फोन : ४७२६७

●

मूल्य
एक अङ्क रु. ०.५०
वार्षिक रु. ५.००

सम्पादकीय

न्यायालय और संसद

भारत का वर्तमान संविधान आज पुनः विवाद का विषय बन गया है। एक बार पहले भी इसी प्रकार का विवाद खड़ा हुआ था। उन दिनों किसी व्यक्ति ने उत्तर प्रदेश विधान सभा में कुछ पर्चे वितरित किए थे। इसको विधान सभा का अपमान समझा गया और उस व्यक्ति को विधान सभा में उपस्थित हो क्षमा मांगने के लिए कहा गया। वह व्यक्ति विधान सभा में आया, परन्तु क्षमा मांगने की अपेक्षा वह अध्यक्ष की ओर पीठ करके खड़ा हो गया।

अतः उसका मामला 'प्रिविलेज कमेटी' के अधीन कर दिया गया। उस कमेटी की सिफ़ारिश पर अपराधी को एक सप्ताह की कैद का दण्ड दिया गया। उस तथा-कथित अपराधी ने उच्च न्यायालय में इस कैद के दण्डके विपरीत 'हैबियस कार्पस' पटीशन कर दी। उच्च न्यायालय ने विधान सभा के अध्यक्ष को कोर्ट में उपस्थित होकर यह बताने के लिए सम्मन जारी कर दिये कि क्यों न उसके द्वारा दिया गया दण्ड रद्द कर दिया जाये? विधान सभा के अध्यक्ष ने कोर्ट के "सम्मन" की अवहेलना की तो कोर्ट द्वारा वारण्ट जारी हो गये।

इस पर विधान सभा का अपमान करने पर हाई कोर्ट के जजों को विधान सभा में उपस्थित हो क्षमा मांगने का आदेश जारी हो गया।

मामला सर्वोच्च न्यायालय में पहुँचा और फिर येन-केन प्रकारेण मामले को ठप्प कर दिया गया।

अब तो उससे भी अधिक गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो गयी है। पुरी पीठ के अध्यक्ष शंकराचार्य जी ने पटना में एक व्याख्यान दिया था। उसमें उन्होंने अछूत प्रथा के विषय में कुछ कहा था। समाचार-पत्रों ने समाचार को विशिष्ट रूप में छापा और विषय संसद में उपस्थित हुआ। उन समाचार-पत्रों के लेखों के आधार पर संसद में गृह मन्त्री तथा तत्कालीन लोक सभाध्यक्ष और कुछ अन्य सदस्यों ने स्वामी जी की बहुत भर्त्सना की।

एक व्यक्ति ने स्वामी जी पर भारत के संविधान के विपरीत आचरण और प्रचार करने का आरोप लगा कर मुकद्दमा कर दिया। किन्तु न्यायालय ने स्वामी जी को आरोपमुक्त कर दिया। न्यायालय में वह सब कुछ सिद्ध नहीं किया जा सका जो संसद संदस्यों ने तथा गृह मन्त्री ने समाचार पत्र पढ़ कर समझा था।

क्योंकि गृह मन्त्री, लोक सभाध्यक्ष तथा सम्बन्धित संसद सदस्यों की टीका-टिप्पणी अनुचित थी, अत: स्वामी जी ने गृह मन्त्री, तत्कालीन लोक सभा के अध्यक्ष और कुछ अन्य सदस्यों पर दिल्ली हाई कोर्ट में मान-हानि का दावा कर दिया। उस समय भी संसद सदस्यों में भारी रोष उत्पन्न हुआ था। परन्तु जब भारत के "अटोर्नी जनरल" के कार्ट में वक्तव्य के उपरान्त हाई कोर्ट ने स्वामी जी की याचिका रद्द कर दी तो स्वामी जी ने पुन: वह याचिका "सुप्रीम कोर्ट" में की है।

सुप्रीम कोर्ट ने गृह मन्त्री, तत्कालीन लोक सभा अध्यक्ष और कुछ अन्य सदस्यों के नाम सम्मन जारी कर दिये हैं। इस पर पुन: संसद सदस्यों में रोष की लहर दौड़ गयी है और संसद के वर्तमान अध्यक्ष ने सुप्रीम कोर्ट में बुलाये जाने वाले संसद सदस्यों को सम्मति दी है कि वे सुप्रीम कोर्ट के सम्मन की अवहेलना करें।

यह संघर्ष भारत के संवैधानिक संघर्षों में एक ऐतिहासिक महत्त्व का होगा। अत: पाठकों को वास्तविक विवाद की गहराई तक पहुंचाने केलिए हम इसके सैद्धान्तिक पक्ष पर प्रकाश डालना चाहते हैं।

संसद के वर्तमान अध्यक्ष ने किस आधार पर सर्वोच्च न्यायालय की आज्ञा की अवहेलना करने के लिए कहा है? वह आधार हम बताना चाहते हैं।

संविधान में एक धारा (१०५) है। वह धारा इस प्रकार है :—

No member of Parliament shall be liable to any proceedings in any court in respect of anything said or any vote given by him in Parliament or any Committees thereof, and no person shall be liable in respect of the publication by or under the authority of either house of Parliament of any report, paper votes or procedings.

"संसद में या उसकी किसी समिति में कही हुई किसी बात अथवा दिए हुए किसी मत के विषय में किसी सदस्य के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं चल सकेगी और न ही संसद के किसी सदन के अधिकारी के अधीन अथवा उसके द्वारा प्रतिवेदन, पत्र, मतों, अथवा कार्यवाही के प्रकाशन के विषय में कोई ऐसी कार्यवाही हो सकेगी।"

प्रत्यक्ष रूप में यह धारा सर्वथा स्पष्ट है, परन्तु जब कोई व्यक्ति यह कहता है कि किसी संसद सदस्य ने अथवा उसके किसी अधिकारी ने असत्य भाषण कर उसका अपमान किया है तो क्या उस व्यक्ति को यह सब कुछ कडुवा घूंट पीकर चुप रह जाना चाहिए ?

उदाहरणार्थ हम एक काल्पनिक घटना का उल्लेख करते हैं। मान लीजिए कि संसद का कोई सदस्य किसी नागरिक की पत्नी के विरुद्ध यह वक्तव्य दे देता है कि अमुक स्त्री अपना सतीत्व बेच कर संसद के किसी प्रत्याशी के विरुद्ध कार्य करती रही है।

अथवा एक और कल्पना करिये। सत्ताधारी दल के विरुद्ध लिखने वाले समाचार-पत्र पर कोई मन्त्री अथवा सदस्य यह लांच्छन लगाता है कि वह समाचार-पत्र किसी विदेशी सरकार का एजण्ट है।

अथवा यह प्रत्यक्ष उदाहरण ले सकते हैं। संसद सदस्य यह कई बार कह चुके हैं कि अमुक सार्वजनिक संस्था गांधी जी की हत्या की दोषी है।

हम जानना चाहते हैं कि यदि उक्त कल्पित स्त्री अथवा समाचार-पत्र अथवा सार्वजनिक संस्था अपने को निर्दोष सिद्ध करना चाहें तो वे क्या करें ? संसद सदस्यों को यह विदित होना चाहिए कि देश के धन और प्रतिष्ठा के कारण संसद में कही बात का भूमण्डल में प्रचार होता है और उसका प्रतिवाद कोई व्यक्ति अपने बल-बूते पर नहीं कर सकता। वह किस प्रकार अपनी सफाई प्रस्तुत करे ?

हम चाहते हैं कि देश के प्रतिनिधियों की मान-प्रतिष्ठा निर्मल और उज्ज्वल हो। परन्तु उक्त उदाहरणों में क्या उपाय बताया जाता है ? क्या यह संसद

सदस्यों तथा संसद अध्यक्ष का काम नहीं कि ऐसी समस्या उपस्थित होने पर कोई समाधान प्रस्तुत करें ?

संसद सदस्य तथा विधान सभाओं के सदस्य जो कुछ कर रहे हैं, वह क्या उनके किसी न्यायालय में जा अपनी सफाई प्रस्तुत करने से कम लज्जास्पद है ?

यह नहीं कि उक्त सम्भावनायें कभी संसद में उपस्थित नहीं हुईं अथवा कभी उपस्थित नहीं हो सकतीं। उनमें से दूसरी और तीसरी समस्या तो उपस्थित हो चुकी है। यदि उन मामलों में पीड़ित व्यक्ति ने चीख-पुकार नहीं की तो क्या यह एक नियम हो गया कि कोई चीख-पुकार कर ही नहीं सकता ?

आए दिन संसद सदस्य ऐसी बातें कहते रहते हैं जो दोषियों अथवा निर्दोषों को बदनाम करती हैं। यदि कोई व्यक्ति अपने को निर्दोष मानता है तो क्या वह इस कारण मौन रहे कि आरोपकर्त्ता ने वह अरोप अथवा लांछन संसद में लगाया है ?

वास्तविक बात यह है कि संविधान में ही मौलिक दोष हैं। इसमें संशोधन होना चाहिए। इस संशोधन का सुझाव सर्वोच्च न्यायालय ही दे सकता है। हम किसी संसद सदस्य का, किसी क्षेत्र में कुछ बहु-मत प्राप्त कर निर्वाचित हो जाने मात्र ही से यह अधिकार नहीं मानते कि वह संसद में खड़ा होकर जिस किसी का भी चाहे अपमान अथवा भत्सर्ना करे। उसको अपने कथन का उत्तरदायित्व निभाना होगा और तज्जन्य परिणाम भी भुगतना ही होगा।

यह एक सैद्धान्तिक बिवाद है कि वर्तमान प्रजातन्त्र पद्धति में न्यायालय का अधिकार अधिक है अथवा संसद का ? प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के अधिकारों की भांति ही यह झगड़ा भी कई बार उपस्थित हो चुका है। इसका निर्णय होना चाहिए।

क्या यह सम्भव नहीं कि दोनों वरिष्ठ संस्थाओं को अपने अपने क्षेत्र में सर्वोच्च अधिकार प्राप्त हों ? संसद का अधिकार है कि कानून बनाये और प्रशासन चलाये। न्यायपीठ का अधिकार हो कि कानून की व्याख्या और अर्थ बताए और प्रशासन के कोप से जनता की रक्षा करे।

वर्तमान संविधान की विवादास्पद धारा (१०५-२) कसौटी पर है। क्यों न इसके विषय में न्यायालय को विचार करने दिया जाये ?

हम समझते हैं कि स्वामी शंकराचार्य जी महाराज का न्यायालय का द्वार खटखटाने का यही आशय है कि संविधान की धारा (१०५-२) स्पष्ट नहीं

है। क्योंकि इस धारा में संसद सदस्यों को संवैधानिक कार्यवाही के अतिरिक्त भी स्वतन्त्रता दी गयी है।

संसद सदस्य भगवान का अवतार नहीं हैं। वे भी भूल कर सकते हैं और करते भी हैं किन्तु यदि वे संसद के भीतर ही अपनी भूल स्वीकार कर लेते तो कदाचित् बात इतनी दूर तक न जाती।

यह सम्भव है कि सर्वोच्च न्यायालय और संसद में कोई लीपा-पोती हो जाये, परन्तु उक्त संविधान की धारा अस्पष्ट है। इसे कभी न कभी स्पष्ट करना ही होगा। उत्तम यही है कि इसे तुरन्त कर लिया जाय।

नये संरक्षक सदस्य

३४. पं० रामशरण दास जी मौद्गल्य
द्वारा बैण्ड बॉक्स प्रा० लि०
ब्लाक ९०, कनाट सरकस, नयी दिल्ली-१

३५. श्री उमेश चन्द्र शर्मा,
२४५०-नाईवाड़ा,
चावड़ी बाज़ार, दिल्ली-६

३६. श्री दौलत राम चौहान,
सदस्य विधान सभा हिमाचल प्रदेश,
४-४५, यू० एस० क्लब, शिमला

३७. श्री दिनेश बी० रावल,
द्वारा—श्री भानुदत्त पी० रावल एण्ड सन्ज़,
क्लाक निर्माता एवं इञ्जीनियरिंग वर्कस,
धांगधरा (सौराष्ट्र)

३८. श्री पी० सुधाकर
एस० जी० यूनिट, असिस्टैंट एम्पलोई सैक्शन,
बी० एच० ई० एल० हैदराबाद-३२

३९. श्री तेज नारायण पाण्डे,
द्वारा – श्री बनारसी पाण्डे,
ग्रा० मनोहर पुर,
पो० — धनकुनी
जिला—हुगली (प० बंगाल)

अन्तर्राष्ट्रीय हलचल

श्री आदित्य

पिछले मास लाओस और कम्बोडिया में वही हुआ जिसकी कम्युनिस्टों के साथ मित्रता रखने के कारण आशा की जा सकती थी। उत्तर वियतनाम और दक्षिण वियतनाम के युद्ध में इन दोनों देशों ने उत्तर वियतनाम (कम्युनिस्ट) को सुविधायें दी थीं और वे अभी तक उनको दक्षिण वियतनाम अर्थात् स्वतन्त्र वियतनाम के विरुद्ध अपनी भूमि के प्रयोग और वहां साधनों के प्रयोग की स्वीकृति दे रहे थे।

जब अमेरिका उत्तरी वियतनाम की कम्युनिस्ट सेनाओं और 'गौरिल्ला' घुसपैठियों के विरुद्ध युद्ध में दक्षिण वालों की सहायता कर रहे थे तो लाओस और कम्बोडिया अमरीकी सैनिकों को उनके क्षेत्रों में विद्यमान उत्तरी वियतनाम के सैनिकों पर हवाई बम्बबाज़ी से मना करते रहते थे।

वियतनाम के युद्ध में लगभग ६,१०,००० उत्तरी वियतनामी सैनिक और वियतकौंग मारे गये कहे जाते हैं। दक्षिण वियतनाम के १,७५,००० सैनिक मारे जा चुके हैं। ४२,००० अमेरिकन मारे जा चुके हैं। इनके अतिरिक्त ३,००,००० के लगभग वियतनाम नागरिकों की हत्या हुई है। जब यह विनाश हो रहा था तब लाओस और कम्बोडिया के अधिकारी सब सम्भव सुविधायें कम्युनिस्टों को दे रहे थे। ये उत्तरी (कम्युनिस्ट) वियतकौंग के आक्रमणकारी सैनिकों को न केवल दक्षिण पर आक्रमण करने का मार्ग दिये हुए थे, वरंच उनको अपने क्षेत्र में छावनियां बनाने, हवाई अड्डे स्थापित करने और घायल सैनिकों के लिये अस्पताल खोलने की सुविधा दे रहे थे।

जब अमेरिका ने वियतनाम से अपने सैनिक वापिस बुलाने आरम्भ किये तो कम्युनिस्टों को लाओस तथा कम्बोडिया की ओर दृष्टि डालने का अवसर मिल गया और उत्तरी वियतनाम की कम्युनिस्ट सेनायें लाओस और कम्बोडिया में घुस आयी हैं।

लाओस के प्रिंस सुवन्नफौमा तो अपने को कम्युनिस्ट और गैर कम्युनिस्टों

में तटस्थ घोषित करते हैं और एक ईमानदार (?) तटस्थ की भांति उग्रवादियों के सहायक हो रहे हैं।

दक्षिण पश्चिम एशिया की वर्तमान समस्या तो तब आरम्भ हुई थी जब चीन कम्युनिस्टों के हाथ में चला गया था। चीन को कम्युनिस्टों के अधिकार में ले जाने का यह पाप अमेरिका के रूज़वेल्ट प्रशासन का किया हुआ है। कम्युनिस्ट चीन ने पूर्ण पूर्वी और दक्षिण एशिया को मुसीबत में डाला हुआ है। जहां-जहां भी कम्युनिस्ट विचार के लोग हैं, उनको भड़का कर वहां उपद्रव मचाने के लिये चीन प्रत्येक प्रकार के उपाय प्रयोग में लाता रहता है। कोरिया का युद्ध भी इसी कारण हुआ और अब वियतनाम का युद्ध भी चीन के कराने से ही हुआ है। इण्डोचायना से जब फ्रांसीसी गये तो इन क्षेत्रों में कम्युनिस्टों ने उपद्रव मचाना आरम्भ कर दिया। हो-चि-मिन्ह इस क्षेत्र में फ्रांसीसियों के राज्य का विरोधी था। और जब फ्रांसीसी गये तो इसने पूर्ण चीन पर कम्युनिस्ट विधि का राज्य स्थापित करने का यत्न किया। इण्डोचायना के अधिकांश लोग कम्युनिज़म को पसन्द नहीं करते थे। अतः लोगों ने हो चि-मिन्ह का विरोध किया। इस प्रकार देश में सिविल वार आरम्भ हो गयी। हो-चि-मिन्ह की सहायता चीन करने लगा तो दूसरे लोग फ्रांस अथवा अमेरिका से सहायता मांगने लगे। जब अमेरिका ने चीन के विरुद्ध लड़ना चाहा तो यू०एन०ओ० ने जेनेवा कान्फरेंस बुला ली और उसके निर्णय से देश चार भागों में बट गया। एक भाग थाईलैण्ड हुआ, दूसरा कम्बोडिया, तीसरा लाओस और चौथा वियतनाम। लाओस और कम्बोडिया में तो समझौते की सरकारें (अर्थात् कम्युनिस्ट और गैर कम्युनिस्टों की सांझी सरकारें) बन गयीं और थाईलैण्ड में गैर कम्युनिस्ट सरकार बनी। वियतनाम के दो भाग कर दिये गये। उत्तरी वियतनाम और दक्षिणी वियतनाम। उत्तरी कम्युनिस्ट और दक्षिणी गैर-कम्युनिस्ट।

समझौते के तुरन्त बाद ही हो-चि-मिन्ह ने दक्षिणी वियतनाम में गैर कम्युनिस्टों को कम्युनिस्ट रंग में रंगने के लिये 'गोरिल्ला युद्ध' आरम्भ कर दिया। इसी घुसपैठ का परिणाम वियतनाम-युद्ध था जो लगभग पांच वर्ष तक चला। अमेरिका ने दक्षिणी वियतनाम की सहायता में अपनी सेना वहां भेजी। उत्तरी वियतनाम तो पहले ही चीन तथा रूस से सहायता ले रहा था।

लाओस और कम्बोडिया अपने क्षेत्र के प्रयोग की स्वीकृति उत्तरी वियतनामियों को देते रहे थे। युद्ध समाप्त तो नहीं हुआ, परन्तु अमेरिका युद्ध करता करता थक गया और अब अमेरिका बिना शर्त अपने सैनिक वापिस बुला रहा है। दूसरी ओर उत्तरी वियतनाम की भी अपार हानि हुई है। हो-

चि-मिन्ह का देहान्त हो गया। इससे उत्तरी वियतनाम भी हताश हो गया। वहां की सरकार ने अपने नागरिकों का साहस बनाये रखने के लिये लाओस और कम्बोडिया पर आक्रमण कर दिया है।

लाओस में तो उत्तरी वियतनाम की सेना 'जार' के मैदान में घुस गयी है। इसने इस देश के तीन नगरों पर आक्रमण कर दिया है। एक नगर है मौगसुई, दूसरा है साम थौंग और तीसरा है लौंगचैंग।

यहां का प्रधान मन्त्री प्रिंस सुवन्नफौमा जनेवा कान्फरेंस में हुए समझौते को लागू करवाने के लिये भरसक प्रयत्न कर रहा है। किन्तु जब तक जनेवा कान्फरेंस के सदस्य कुछ करेंगे तब तक उत्तर वियतनामी कम्युनिस्ट पूर्ण लाओस पर अधिकार प्राप्त कर लेंगे।

दूसरी ओर कम्बोडिया में एक अन्य नाटक खेला जा रहा है। कम्बोडिया ने भी उत्तरी वियतनाम अर्थात् कम्युनिस्टों की सहायता की थी। कम्बोडिया का प्राइम मिनिस्टर प्रिंस नरोत्तमसिंहानौक (अब अपदस्थ) है। यह कम्युनिस्ट माना जाता है, परन्तु इसके मन्त्री-मण्डल में गैर कम्युनिस्ट भी थे। कम्युनिस्ट प्रधान मन्त्री वियतनाम युद्ध में कम्बोडिया के कम्युनिस्टों को युद्ध लड़ने केलिये सुविधायें देता रहा है।

कम्बोडिया के बन्दरगाह शिनौकविला से उत्तरी वियतनाम वालों को लगभग ८० प्र० श० युद्ध सामग्री मिलती रही थी, जिससे वे दक्षिण वियतनाम वालों पर आक्रमण करते थे। चीनी और रूसी युद्ध सामग्री इसी बन्दरगाह के द्वारा आती थी। वहां से लगभग ५०० चीनी मोटर-लारियां सामान ढोकर दक्षिण वियतनाम के युद्ध क्षेत्र पर ले जाती थीं। यहां कई सैनिक कैम्प भी बन गये थे, जहां से सैनिक और गौरिल्ला युद्ध के लिये दक्षिण वियतनाम में घुस जाते थे। कम्बोडिया में कम्युनिस्ट घायल सैनिकों के लिये अस्पताल और आराम करने के शिविर रहते थे। मीकौंगडेल्टा में से तो आक्रमण चलाये जाते थे।

लाओस और कम्बोडिया स्वयं युद्ध न करते हुए उत्तरी वियतकौंग अर्थात कम्युनिस्टों की सहायता कर रहे थे।

परन्तु युद्ध जब लगभग समाप्त हो गया तो कम्बोडिया और लाओस दोनों की सरकारों ने कम्युनिस्टों को कहा कि वे उनका देश छोड़ दें। जब कम्युनिस्ट जाने को तैयार नहीं हुए तो प्रिंस सुवन्नफौमा तो जनेवा कान्फरेंस के सदस्यों से बातचीत करने लगा और कम्बोडिया की जनता रूसी और चीनी दूतावासों पर आक्रमण करने लगी।

(शेष पृष्ठ १२ पर)

अस्तित्व की रक्षा

श्री स्वामी विद्यानन्द 'विदेह'

इस्लाम और ईसाईयत—ये दो विदेशी सम्प्रदाय ही राष्ट्र-गठन और हिंदु-संगठन को इतना क्षतिग्रस्त नहीं कर रहे हैं, जितना स्वयं हिन्दुओं के सम्प्रदाय कर रहे हैं। ईसाइयों के छहत्तर [७६] सम्प्रदाय हैं। किन्तु तीन सूत्र ऐसे हैं जो उन्हें परस्पर सम्बद्ध रखते हैं—क्राइस्ट, क्रॉस और बाइबिल। सबका एक देवता क्राइस्ट है। सबका एक चिह्न क्रॉस है। सबकी एक किताब बाइबिल है। इसी प्रकार मुसलमानों के भी तीन सूत्र हैं, जिन्होंने इस्लाम के छत्तीस फ़िर्कों को एकता के सूत्र में ग्रथित किया हुआ है—मोहम्मद, कुरान और काबा। सभी फ़िर्कों का पैगम्बर मोहम्मद है। सभी की एक किताब कुरान है। काबा सभी का तीर्थस्थान है।

हिन्दुओं में इतने सम्प्रदाय हैं कि उनकी निश्चित गणना कर सकना आसान काम नहीं है। निश्चित गणना तो तब हो जब सम्प्रदायों की रचना पूर्ण हो चुकी हो। यहां तो नित्य नये-नये सम्प्रदायों की रचना निरन्तर निर्बाध चलती रहती है। लुत्फ़ यह है कि प्रत्येक हिन्दु सम्प्रदाय का अपना-अपना पृथक् खुदा है, पृथक् देवता है, पृथक् गुरु है, पृथक् मन्दिर है, पृथक् ग्रन्थ है। हिन्दुओं में ऐसे-ऐसे वीभत्स सम्प्रदाय भी हैं जिन्हें हिन्दु-जाति का कोढ़, कलंक और अभिशाप कहा जा सकता है और जिन पर लज्जा आती है। दुर्भाग्य यह है कि इन सम्प्रदायों के अनुयायी परस्पर एक-दूसरे के कार्यक्रमों तक में सम्मिलित नहीं होते हैं, एक दूसरे की छाया तक से बिदकते हैं।

इस रोग का इलाज एक विकट समस्या है। मुझे इसका एक ही उपाय सूझता है और वह यह कि सनातन धर्म-सभा हिन्दुओं के सब सम्प्रदायों की मान्यता तथा अमान्यता घोषित करके सनातधर्मी जनता को अमान्य सम्प्रदायों में सम्मिलित होने से रोके। जिन हिन्दु सम्प्रदायों में मांस, मदिरा और मैथुन की छूट है, जो वेदों, शास्त्रों और पूर्वजों की निंदा करते हैं, उन सम्प्रदायों के विरुद्ध शास्त्रीय आधार पर तुमुल प्रचार करे, प्रत्येक सम्प्रदाय में शुद्ध आहार और शुद्ध व्यवहार की प्रतिष्ठा करे। सनातनधर्म को जीता-जागता एक

आचार प्रतिष्ठ रूप दिया जाय और माहात्म्य-वृत्ति से हिन्दु जाति का जितना वैचारिक और आचारिक सर्वनाश हुआ हैं, उतना और किसी बात से नहीं। इस वृत्ति ने शुद्ध सनातन वैदिक धर्म को कूड़ा-कचरा बनाकर रख दिया है। हिन्दु जाति के अस्तित्व और गौरव के नाम पर मैं सनातनधर्म के संन्यासियों, मंडलेश्वरों, विद्वानों और प्रचारकों से अपील करता हूँ कि वे हिन्दु जाति के संठगन को अजेय बनाने के लिए सुधार और संशोधन का ऐसा तीव्र आन्दोलन करें कि हिन्दुओं में से अवैदिक तथा अशास्त्रीय समस्त सम्प्रदाय लुप्त हो जायें और सम्पूर्ण हिन्दु जाति राम की प्रजा बन जाये। यह कार्य सनातनधर्म को स्वयं करना है। एक शोध-पत्रिका के अनुसार सनातनधर्म में आठ सौ अनैतिक सम्प्रदाय हैं जो हिन्दु जनता को भ्रान्त करके उन्हें लूट रहे हैं और उनके चरित्र को भ्रष्ट कर रहे हैं।

देवताओं की संख्यावृद्धि ने भी हिन्दुओं के विगठन को पर्याप्त उभारा है। ओम्, वेद और मातृभूमि—ये तीन देवता ही श्रेयस्कर हैं। साथ ही धर्म के शाश्वत मूल्यों की रक्षा के लिए सनातन-धर्म के विश्वासों का भी विश्लेषण किया जाये। अन्ध-विश्वासों को पृथक् करके धर्म प्रधान सत्य-विश्वासों की ही हिन्दु प्रजा के मानस में स्थापना की जाय। भ्रम-भ्रान्तियां तथा अन्धविश्वास वे घुन हैं जिन्होंने हिन्दु जाति के तत्त्व को सर्वथा नष्ट कर दिया है, उसे नितान्त नपुंसक बना दिया है। इसलिए यह जाति आसानी से विधर्मियों के चंगुल में फंसकर उन वर्गों का अंग बन जाती है जो हिन्दु और हिन्दुत्व का नामो-निशान मिटाने पर तुले रहते हैं।

(पृष्ठ १० का शेष)

कम्बोडिया का प्रधान मन्त्री नरोत्तम सिहानोक मास्को जा पहुंचा और वहां रूसी सहायता मांगने लगा। इस पर कम्बोडिया के मन्त्री मण्डल के तीन सदस्यों ने वहां नयी सरकार बना ली है और सिहानौक को अपदस्थ कर दिया है। सिहानौक मास्को से पीकिंग में आ गया है और वहां पर देश के बाहर स्वतन्त्र सरकार बनाने का यत्न कर रहा है। यह सरकार निश्चय ही कम्युनिस्ट सरकार होगी।

इस नई परिस्थिति पर थाईलैण्ड भी मौन नहीं रह सकता। कारण यह कि वहां के कम्युनिस्टों पर विश्वास नहीं किया जाता।

एक बात स्पष्ट है कि जिन जिन देशों ने कम्युनिस्टों का विश्वास किया है, उनसे ही कम्युनिस्टों ने दग़ा किया है। एक बार ये देश में घुसे तो फिर बाहर नहीं निकले और उन देशों को रूस अथवा चीन का पिछलग्गू बना कर ही छोड़ा।

**

विनाश की ओर

श्री गुरुदत्त

भारत में तो अराजकता है ही; किन्तु भूमण्डल के अन्य अनेक देशों में भी अराजकता की कमी नहीं है। संयुक्त राज्य अमेरिका का यह समाचार उल्लेखनीय है। लगभग नौ मास पूर्व एक नैशनल कमीशन यह पता करने के लिए नियुक्त किया गया था कि हिंसात्मक घटनाओं की रोकथाम के लिये क्या उपाय किये जायं ? इस कमीशन ने यह पता किया कि संयुक्त राज्य अमेरिका में पुराने क्रान्तिकारी षड्यन्त्रों और आतंकवादियों के विचार से हिंसात्मक कार्य नहीं होते। यह ठीक है कि अमेरिका में देश के इतिहास के कारण झगड़े और साज़िशें होती रही हैं और कभी कभी बम्ब भी फटे हैं, परन्तु ये घटनायें स्थानीय श्रमिकों के झगड़ों, जातीय विद्वेष अथवा पारिवारिक विवादों के कारण होती थीं। कई 'दहकों' से यहां राजनीतिक हिंसा के लक्षण नहीं थे।

यह खोज आज से कुछ ही मास पूर्व की गई थी, परन्तु आज संयुक्त-राज्य अमरीका बम्बों के फटने से कांप उठा है। एक सरकारी विज्ञप्ति से यह पता चलता है कि केवल न्यूयार्क में सन् १९६९ में ९३ बम्ब फटे हैं। इनके अतिरिक्त १९ बम्ब फटने के लिये रखे तो गये, परन्तु फटे नहीं। पुलिस के कथन से ९३ में से आधे राजनीतिक उद्देश्यों से चलाये गये हैं। आज से दस वर्ष पूर्व राजनीतिक हिंसात्मक कार्यवाहियां लगभग शून्य थीं।

न्यूयार्क अधिकारियों का आरोप है कि वहां २१ 'Black panthers' हैं जिन्होंने षड्यन्त्र कर अनाज की दुकानों, रेल की पटरियों, काले लोगों पर जांच करने वाले न्यायालयों को उड़ा देने का यत्न किया।

एक रात में न्यूयार्क के विभिन्न भागों में पांच बम्ब फटे। इनमें से तीन तो न्यायाधीशों के घरों पर फ़टे। कई बम्ब सरकारी और नगरपालिकाओं के कार्यालयों में फटे। ये हिंसात्मक कार्य केवल 'नीग्रो' जाति वालों ने ही किये। कुछ दिन पूर्व तीन वाम पंथी गोरे भी बम्ब चलाते पकड़े गये।

इसी प्रकार संयुक्त राज्यग्रमरीका के एक अन्य नगर सान-फ्रांसिस्को में इस वर्ष ६२ बम्बों के फटने का समाचार है। सिएटल क्षेत्र में ३३ बम्ब फटे हैं। सरकारी F.B.I. विभाग का कहना है कि कालेज क्षेत्रों में पिछले वर्ष में ६१ बम्ब फटने का समाचार है।

इन बम्बों को चलाने में निशाना पुलिस, सरकारी कार्यालय और काले अथवा गोरे क्रान्तिकारी होते हैं।

ऐसे समाचार अन्य देशों से भी आ रहे हैं। दो वर्ष हुए पैरिस के विद्यार्थियों ने और श्रमिकों ने इतनी प्रबल हड़ताल की थी कि फ्रांस में १७६० की सी क्रान्ति की आशंका उत्पन्न हो गयी थी। इसके उपरान्त चैकोस्लोवाकिया में एक राज्य का दूसरे राज्य पर बलात्कार हुआ। और प्रति दूसरे मास किसी ने किसी राजनीतिक नेता को गोली से उड़ा देने का समाचार आता रहता है।

भारत में बंगाल और केरल की अवस्था तो स्पष्ट ही है, परन्तु अन्य राज्यों में भी हिंसात्मक क्रिया-कलाप व्यापक रूप में विराजमान हैं। कहीं विधान सभा में अध्यक्ष को कुर्सी से बल-पूर्वक उठाने का यत्न हो रहा है तो कहीं अध्यक्ष पर जूते फेंके जा रहे हैं। ऐसी घटनायें भी कम नहीं कि जब किसी की बात दूसरे सुनना पसन्द नहीं करते तो बात करने वाले मुक्के बाज़ी से अपनी बात सुनाने का यत्न करते हैं। विद्यार्थी अपने प्राध्यापकों से रुष्ट होते हैं और विश्वविद्यालय क्षेत्र से बाहर चलते-फिरते नागरिकों को मारना-पीटना आरम्भ कर देते हैं। उनकी मोटर गाड़ियों को आग लगा देते हैं। शान्ति से पढ़ने-लिखने वाले छात्रों को पढ़ाई के कमरे में जाने से रोका जाता है। जो उनकी बात नहीं मानते, उनको मारा-पीटा जाता है।

यह भयंकर वातावरण उपस्थित हो रहा है और यह बात भूमण्डल के प्रायः देशों में हो रही है। इसी संदर्भ में जापान की बात उल्लेखनीय है। जापान के प्रधान मन्त्री अमेरिका में किसी विषय पर बातचीत करने जा रहे थे। वामपंथियों ने उन्हें जाने से रोकने के लिये टोकियो में हड़ताल घोषित कर दी और मार-पीट, लूट-खसूट जारी कर दी। कई बसें जला दी गयीं, सरकारी इमारतों को हानि पहुंचायी गयी और प्रधान मन्त्री को अमेरिका जाने से रोकने का यत्न किया। इसके कुछ ही उपरान्त वहां की सरकार बनाने के लिये नियमित निर्वाचन हुए और वही प्रधान मन्त्री पहले से भी अधिक मतों से सफल हो सरकार बना सका।

प्रश्न तो यह उपस्थित हो गया है कि यह क्यों है? इसको समझने के लिये एक कहानी कही जाती है। किसी गांव में एक बहुत ही विद्वान पण्डित

रहते थे। वह शान्ति पूर्वक अपने पूजा-पाठ और ध्यान-ज्ञान के कार्य में लगे रहते थे। उनका एक पुत्र था। वह कालेज में शिक्षा समाप्त कर घर आया तो पिता को निरर्थक शक्ति और समय का अपव्यय करते देख दुःख अनुभव करने लगा। पण्डित जी के पूजा गृह में एक बोतल रखी हुई थी और उसमें बहुत ही छोटा सा एक प्राणी बन्द था। बोतल के मुख पर डाट थी और उस पर मुहर लगी थी।

शिक्षित युवक को अपने पिता जी के कमरे में इस बोतल का रहस्य समझ नहीं आया। उसने विस्मय में पूछा, 'पिता जी ! यह क्या है और इसमें यह कौन है ?' पण्डित जी नयी पीढ़ी के अपने युवक पुत्र को बताना नहीं चाहते थे। उन्होंने इसे टालने का यत्न किया, परन्तु पढ़ा-लिखा युवक कब मानने वाला था ! उसने इस रहस्य को जानने का बार बार आग्रह किया तो पिता को बताना पड़ा। विद्वान पण्डित ने कहा, 'मैंने अपनी विद्या से इस बोतल को बन्दीगृह बनाया हुआ है और इसमें मैंने एक दैत्य को बन्द कर रखा है।'

'किसलिये बन्द कर रखा है ?'

'यह दैत्य मुझे और मेरे घर वालों को बहुत कष्ट देता था। यह नित्य टोकरी भर अनाज खाता था और काम न होने पर मुझे और बच्चों को मारता-पीटता था। अतः मैंने मन्त्र से इसे छोटा कर इस बोतल में बन्द कर रखा है।'

इस वर्णन से तो पुत्र को बहुत दुःख हुआ। उसे यह पिता का घोर अन्याय समझ आया। वह समझ नहीं सका कि पूजा-पाठ में लीन रहने वाला उसका पिता भला ऐसा क्रूर काम कैसे कर सकता है ?

इस कारण उसने इस दैत्य को मुक्त करने के लिये कहना आरम्भ किया। पिता मानता नहीं था, परन्तु बार बार आग्रह और विद्रोह की धमकी सुन पिता ने उस बोतल को खोल दिया। बोतल खुलते ही दैत्य बाहर निकल आया और धीरे धीरे बढ़ने लगा। कुछ ही मिनटों में वह बढ़ता बढ़ता एक बरगद के पेड़ के समान विशालकाय हो गया।

अपनी स्वाभाविक आकृति को प्राप्त कर वह पण्डित जी से बोला, 'इतने वर्ष से बन्द पड़ा रहने के कारण मैंने कुछ भी खाया-पिया नहीं है। अब मुझे भूख लगी है। खाने को दो।'

पण्डित जी ने पुत्र को कहा, 'इसे घर में से भोजन लाकर खिलाओ। भोजन लाकर दिया गया, परन्तु उससे पेट नहीं भरा। और लाकर दिया गया। वह दैत्य खाता गया मांगता गया। घर का सब अन्न-अनाज समाप्त हो

गया, परन्तु दैत्य का पेट नहीं भरा। पण्डित के पुत्र ने कहा, और नहीं है।

'पर मुझे भूख लगी है।' दैत्य ने कहा।

'तो मैं क्या करूं?'

'मुझे खाने को दो।'

जब पण्डित जी का पुत्र और खाने को न दे सका तो दैत्य ने उसे पीटना आरम्भ कर दिया। लड़का अपने पिता के पास आया और कहने लगा कि उनके दैत्य ने उसे मार मार कर बेहाल कर किया है। पण्डित जी मुस्कराये और बोले, 'मैं तो इसका एक ही इलाज जानता हूं, परन्तु तुमने उस इलाज से मना कर दिया है।''

'पिता जी, कुछ करिये। यह तो बहुत दुष्ट है। मुझे बहुत बुरी तरह पीट रहा है।'

पिता ने पुनः नियन्त्रण मन्त्र का जप किया और दैत्य को छोटा कर बोतल में बन्द कर दिया।

यही अवस्था आज भूमण्डल भर में हो रही है। अयोग्य और बुद्धिविहीन जन समूह नियन्त्रण से बाहर हो खाने-पीने को मांगने लगा है। इस मूर्ख जन-समूह ने अपनी कामनाओं में अपार वृद्धि कर ली है और उनकी पूर्ति के साधन नहीं हैं। इस मशीन युग में सबके करने को काम नहीं है और जीवन स्तर को ऊंचा करने की होड़ में आवश्यकतायें इतनी बढ़ गयी हैं कि मशीनों द्वारा उत्पादन होने पर भी पेट नहीं भरता। अब वह दैत्य, जो कोई उसके हाथ चढ़ जाता है उसे मारने-पीटने लगा है।

हमारा अभिप्राय आज भूमण्डल में व्यापक प्रजातन्त्र से है। प्रजातन्त्र के जो अर्थ लिये जाते हैं, उससे अयोग्य, अशिक्षित और अकर्मण्य जनता की कामनाओं में अपार वृद्धि की जा चुकी है। अब उन कामनाओं की पूर्ति के लिये पर्याप्त साधन न होने से मार-पीट आरम्भ हुई है।

प्रजातन्त्र में इन अयोग्य, अशिक्षित और मूर्खों को ही कहा जाता है कि अपने पर राज्य करें और वे राज्य करने का अर्थ यह समझते हैं कि उनकी कामनाओं में वृद्धि हो और उन कामनाओं की पूर्ति के लिये साधन प्राप्त किये जायें। जिस किसी के पास जो कुछ भी मिले, छीन लिया जाये और सबका पेट भरने का यत्न किया जाये।

प्रजातन्त्र का अर्थ यह भी समझा जा रहा है कि सब समान हैं और सब को समानाधिकार प्राप्त होने चाहियें।

आवश्यकता है कि नियन्त्रण मन्त्र से अनधिकारी, अशिक्षित और बुद्धि-विहीन दैत्य को नियन्त्रण में रखा जाये। प्रजातन्त्र में तो अन्धेर नगरी गबर-

गण्ड राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा वाली बात होती है।

कठिनाई यह है कि मूर्खों को ही अपनी उच्छृंखलता का इलाज करने के लिये कहा जा रहा है।

यह नहीं कि इस प्रकार के अयोग्य और अनधिकारी दैत्य ही पूर्ण संसार में विद्यमान हैं। बुद्धिशील और भले विचार के लोगों की संख्या अधिक है, परन्तु उनके मन में यह भावना उत्पन्न कर दी गई है कि दो टांगों पर चलने वाले सब जानवर समान हैं। सबके समानाधिकार हैं। यह अशुद्ध भावना से वह दैत्य पर दया भाव और मिथ्या न्याय की भावना से व्यवहार करते हैं और वह दैत्य उपद्रव मचा रहा है।

प्रजातन्त्र के शाब्दिक अर्थ हैं प्रजा की व्यवस्था। इसके अर्थ यह नहीं कि प्रजा द्वारा व्यवस्था। भला जिसको व्यवस्था के अर्थों का ही ज्ञान नहीं, वह व्यवस्था स्थापित कैसे करेगा ?

आज मानव समाज में मूल दोष यह आ गया है कि वे समझने लगे हैं कि मनुष्य सब समान योग्यता के होते हैं और उनके अधिकार समान हैं।

सबके साथ दया भाव रखा जाये। सबको उन्नति करने का अवसर मिले और सबको जीवन चलाने में सुभीता मिले, समझ में आ सकने की बातें हैं, परन्तु सब बराबर हैं और सबके बराबर अधिकार हैं, वस्तु स्थिति के विपरीत बात है। अधिकार अधिकारी के ही होते हैं। जो अधिकारों की योग्यता नहीं रखता, उसको अधिकारी बना देने से अव्यवस्था ही उत्पन्न होगी और आज पूर्ण प्रजातन्त्रवादियों में अव्यवस्था एवं अराजकता दिखायी दे रही है।

हमारी भारतीय (वैदिक) परम्परा तो यह है कि जो जिसके योग्य है, वही काम वह करे और उस काम के अनुसार ही वह उपभोग प्राप्त करे। समाज की इस व्यवस्था का नाम वर्णाश्रम व्यवस्था है।

जब तक सारे जग में वर्णाश्रम व्यवस्था स्थापित नहीं होती तब तक संसार में अशान्ति बनी रहेगी। शान्ति और अहिंसा की कूक लगाने से ये गुण उत्पन्न नहीं होते। समाज में शान्ति और अहिंसा की स्थापना के लिये मुख्य बात है यथायोग्य व्यवहार और उपहार। सबको यह समझ लेना और समझा देना होगा कि गुण, कर्म और स्वभाव से ही इस बात की परख होगी, कि किसी को क्या और कितना उपलब्ध होना चाहिये ?

भारत में बदलता राजनीतिक चित्र

श्री प्रणव प्रसाद

आज भूमण्डल के प्रायः सभी प्रजातन्त्रात्मक देशों में राजनीतिक अनैतिकता विद्यमान है। इसे अवसरवादिता कहते हैं। परन्तु इस राजनीतिक अवसरवादिता का भारत में सर्वाधिक बोलबाला है।

प्राचीन काल में भी यह राजनीतिक अवसरवादिता रही होगी, परन्तु यह देखने में आता है कि अपने पक्ष वालों के साथ ऐसा व्यवहार कभी भी पसंद नहीं किया जाता था।

महाभारत में राज्य के कर्त्तव्यों में तो यहाँ तक लिखा मिलता है कि सत्यवादिता राजा के लिए इतनी ही आवश्यक है जितनी कि ऋषि-महर्षियों के लिए। जो राजा अपनी प्रजा के साथ सत्य व्यवहार नहीं करता, वह अपनी प्रजा का विश्वास खो देता है।

यह ठीक है कि शत्रु के साथ लुकाव-छुपाव रखना आवश्यक होता है, परन्तु अपनी प्रजा के प्रति तो सत्य व्यवहार की ही आकांक्षा की जाती है और अवसरवादिता सदैव असत्य व्यवहार की सूचक होती है। मन में भले ही कुछ हो, समयानुसार अपना व्यवहार प्रकट करना ही अवसरवादिता है।

वर्तमान युग की अवसरवादिता तो भारत में अंग्रेजी राजनीति की उपज है। अपने राज्य को सुदृढ़ करने के लिए अंग्रेज ने देश के विशाल हिन्दु समाज को बदनाम किया, निन्दित घोषित किया, मिथ्या दोषों को इसके गले में बांधा और फिर मुसलमानों का पक्ष लेकर हिन्दू समाज के पक्ष को दुर्बल करने का यत्न किया।

अंग्रेज के इस व्यवहार को क्षम्य माना जा सकता है। क्योंकि अंग्रेज ने भारत की जनता को, विशेष रूप में हिन्दु समाज को, सदा ही अपना शत्रु समझा और शत्रु को परास्त करने के लिए अवसर ढूंढना राजनीति का मूल सिद्धान्त है।

परन्तु अपने ही पक्ष वालों से झूठ बोलकर, अवसर से निजी लाभ प्राप्त करने की नीति तो कांग्रेस की स्थापना से आरम्भ हुई है। कांग्रेस के प्रारम्भिक

काल में राजभक्त नेतागण देश के हित के नाम पर राज्य का समर्थन कर अपने लिए पदवियां, नौकरियां और आर्थिक सुविधायें प्राप्त करते थे। बाद में वे अपनी नेतागीरी रखने के लिए तिलक इत्यादि देशभक्तों का तिरस्कार और अनादर करने पर उतारु हो गए।

सन् १९१६ में कांग्रेस ने अपनी अवसरवादिता का नग्न दर्शन कराया। मुसलमानों का सहयोग प्राप्त करने के लिए कांग्रेसी नेताओं ने मुसलमानों के विशेषाधिकार और उनकी पृथक् मतदाता सूची का समर्थन किया। उस समय के अधिकांश कांग्रेसी यह जानते थे कि यह एक मिथ्या व्यवहार है; इस पर भी समय से लाभ उठाने के लिये उन्होंने इस दूषित नीति का अवलम्बन किया।

कांग्रेस की यह अवसरवादी प्रवृत्ति महात्मा गांधी के काल में और भी उग्र हुई। गांधी जी ने सन् १९२०-२१ में खिलाफ़त के मामले को देश की राजनीति में सम्मिलित कर अपनी अवसरवादिता की नीति का प्रमाण दिया। खिलाफ़त का मामला भारत के हित में कभी नहीं हो सकता था, इस पर भी इस अनर्गल प्रश्न को अपनी राजनीति का अंग बनाकर देश में न केवल एक अशुद्ध परम्परा डाली गई प्रत्युत देश में एक विरोधी दल खड़ा करने का अवसर निर्माण किया गया।

तदनन्तर कांग्रेस और महात्मा गांधी ने अन्य अनेक योग्य और भले नेताओं पर नेहरू परिवार को इस कारण अधिमान दिया कि इससे गांधी जी की अपनी नेतागीरी सुरक्षित होती थी।

गांधी जी जानते थे कि श्री जवाहर लाल नेहरू हिन्दू विरोधी, मुसलमानों के सहायक, कम्युनिस्ट और शिथिल चरित्र व्यक्ति थे। इस पर भी जब उनको पता चला कि उनकी नेतागीरी भय में है तो वह पहले मोती लाल जी नेहरू के और बाद में जवाहरलाल नेहरू के अधीन मरणपर्यन्त चलते रहे। वह स्वयं अपने को अहिंसावादी मानते थे। परन्तु कम्युनिस्टों का पक्ष लेने वाले श्री जवाहरलाल नेहरू का पक्ष लेते थे।

देश विभाजन के समय भी गांधी जी ने नेहरू जी की नीति का अवलम्बन किया था। स्वराज्य के उपरान्त भी गांधी जी ने नेहरू जी की इस नीति का कि 'मुसलमानों को भारत में बसाया जाये' समर्थन किया था।

गांधी जी के निधन के उपरांत कांग्रेस की नीति अपनी सत्ता स्थिर रखने का यत्न करती रही। कांग्रेसी नेता हिन्दुओं से मत लेने के लिए गांधी की राम धुन गाते थे और मुसलमानों का समर्थन प्राप्त करने के लिए पाकिस्तान को सुविधायें देते थे। मुसलमानों के मत प्राप्त करने के लिए मुसलमानों को हिन्दुओं पर अधिमान देते थे और हिन्दु रुष्ट न हो जायें, उनको प्रसन्न करने

के लिए गांधी जी की समाधि पर चर्खा कातते आते थे।

कांग्रेस की अवसरवादिता इससे अधिक क्या हो सकती है कि कांग्रेस की भूतपूर्व अध्यक्ष और आज देश की प्रधान मन्त्री कांग्रेस का अनुशासन भंग कर खुले आम कम्युनिस्टों से सहयोग करने लगी हैं। प्रधान मन्त्री सन् १९६७ से लेकर सन् १९६८ तक बंगाल और केरल में कम्युनिस्ट पार्टी के सत्ताधीश रहने में सहयोग देती रही और फिर सन् १९६९ से तो खुले आम देश को कम्युनिस्टों के हाथ बेच देने के षड्यन्त्र में सम्मिलित हो गयी हैं। गुट-निरपेक्षता की डुग्गी पीटते हुए रूस का पक्ष लेने लगी हैं। सैक्युलरिज्म का मन्त्र जपते हुए रबात कान्फरेंस में इनके प्रतिनिधि जा पहुंचे और अब वह भारतीयकरण का भी विरोध करने लगी हैं। यह नीति श्रीमती गांधी और उसकी सरकार इस कारण स्वीकार कर रही है, क्योंकि देश के कम्युनिस्ट और मुसलमान इसे पसन्द करते हैं।

इन्दिरा गांधी सरकार अरबों के पक्ष में है। इस्राईलियों के विरोध की नीति भी कम्युनिस्ट और मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए है।

इस अवसरवादिता की नीति को देश के अन्य राजनीतिक दल भी प्रयोग में ला रहे हैं। समाजवादी दल संसद में और विधान सभाओं में प्रत्येक ऐसे अवसर से लाभ उठाने का यत्न करते रहते हैं जिससे विधान सभाओं में, संसद में एवं देश में अव्यवस्था उत्पन्न होती प्रतीत हो। ये सज्जन किसी भी ऐसे दल से सहयोग देने को तैयार रहते हैं जो देश में अव्यवस्था तथा अराजकता उत्पन्न करने का यत्न करे। विश्वविद्यालय में कम्युनिस्ट विचार के विद्यार्थियों को इनका समर्थन प्राप्त होता है और उन विद्यार्थियों का विरोध रहता है उनके विरुद्ध जो शान्ति पूर्वक अपना अध्ययन जारी रखना चाहते हैं।

अवसरवादिता के क्षेत्र में भारतीय जनसंघ ने भी आगे बढ़कर भाग लेना आरम्भ कर दिया है। सबसे निकृष्ट ढंग की अवसरवादिता भारतीय जनसंघ ने पंजाब में दिखाई है। सन् १९५७ के हिन्दी आन्दोलन के उपरान्त इस दल का अकालियों से गठ जोड़ दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है।

इन्होंने सबसे पहले यह स्वीकार किया कि पंजाबियों की भाषा गुरुमुखी लिपि में पंजाबी है। बाद में हिन्दू और सिक्ख बहुमत के आधार पर पंजाब का विभाजन स्वीकार किया। पंजाब सिक्ख बहुमत का राज्य बन गया और हरियाणा हिन्दु बहुमत का राज्य।

कुछ जनसंघी यह कहते हैं कि यह विभाजन उन्होंने नहीं कराया, वरंच कांग्रेस द्वारा सिक्खों की मांग स्वीकार करने से हुआ है। यह बात सत्य नहीं

है । राज्य विभाजन से पूर्व ही जनसंघ और अकालियों की सहचारिता चल रही थी। जब सन्त फतेहसिंह ने पंजाबी सूबे की माँग के समर्थन में भूख हड़ताल रखी थी तो जनसंघ के एक पंजाबी नेता ने भी भूख हड़ताल कर दी थी। तब दिल्ली से एक नेता ने वहां पहुंच जनसंघी नेता की भूख हड़ताल खुलवाई थी और सन्त फतेहसिंह से बातचीत की थी।

चण्डीगढ़ के विषय में भी जनसंघी नेताओं का विचित्र व्यवहार रहा है। हरियाणा के जनसंघी चण्डीगढ़ को हरियाणा में मांगते रहे थे और पंजाब के जनसंघी पंजाब में। चण्डीगढ़ का जनसंघ इसे स्वतन्त्र चाहता था।

हिन्दी के विषय में भी जनसंघ का व्यवहार पंजाब में अकालियों की नीति के अनुसार ही है।

यह देश का दुर्भाग्य है कि राजनीति में अवसरवादिता इतनी अधिक घुस गयी है कि किसी भी दल के नेता इससे मुक्त दिखायी नहीं देते। जब भी कोई समस्या उपस्थित होती है तो प्रत्येक दल यह देखने लगता है कि वह समस्या का अपने दल की स्थिति को सुदृढ़ करने में कैसे प्रयोग कर सकता है? जनसंघ भी इस लांच्छन से मुक्त नहीं।

पिछले वर्ष केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों ने हड़ताल की थी। जनसंघ के एक वरिष्ठ नेता ने यह घोषणा की थी कि हड़ताल नहीं होनी चाहिए। तुरन्त ही दूसरे नेतागण उस नेता की निन्दा करने लगे थे। कारण स्पष्ट था कि जनसंघ की स्थिति हड़ताल का विरोध करने से दुर्बल होती थी।

यह ठीक है कि बढ़ती महंगाई में वेतन बढ़ने चाहियें, परन्तु इसके लिए सरकारी काम-काज ठप्प हो जाये, यह कहाँ की युक्ति है? यदि सरकारी क्लर्क अपनी किसी माँग के लिए हड़ताल कर सकते हैं तो पुलिस के लोग क्यों नहीं कर सकते और फिर सेना के लोग क्यों नहीं कर सकते?

हमारे कहने का अभिप्राय यह नहीं कि जनसंघ अकेला इस अवसरवादिता के लिए दोषी है। हम तो यह कह रहे हैं कि जनसंघ जिसको हम देश का राष्ट्रीय दल मानते हैं, भी ऐसे अराष्ट्रीय व्यवहार का समर्थन कर सकता है तो फिर कम्युनिस्ट जो कुछ भी करें, क्षम्य है। उनकी तो यह घोषणा ही है कि देश की राष्ट्रीयता को विनष्ट करना है।

राजनीति में भी अवसरवादिता वैसे ही विफल होती है जैसे कि किसी व्यक्ति के व्यवहार में। अवसरवादी व्यक्ति की उपमा चमगादड़ से दी जाती है। उसकी गति चमगादड़ की उस गति से की जाती है जो पक्षियों और पशुओं

के काल्पनिक युद्ध में वर्णन की जाती है।

जातियों के इतिहास में भी इसकी विफलता स्पष्ट दिखायी देती है। अंग्रेजों के राज्य के विस्तार के समय मरहटों के विभिन्न राज्यों में इसी अवसरवादिता ने मरहटा राज्य का विनाश सम्पन्न किया था। गांधी जी को मुसलमानों का सहयोग प्राप्त करने के लिए अपने सिद्धान्तों के विरोध में जाना भी वही फल लाया था जो अवसरवादियों का होता है।

मुसोलिनी की दुर्गति तथा हिटलर की रूस से संधि की बात भी अध्ययन के योग्य है।

हमारा यह मत है कि अवसरवादिता दुर्बलता का लक्षण है। यद्यपि यह भी ठीक है कि सिद्धान्त और सत्य तथा न्याय का पक्ष शक्ति का स्थानापन्न नहीं। अभिप्राय यह कि शक्ति तो विजय के लिए आवश्यक अंग है, परन्तु अवसरवादिता शक्ति संचय का नाम नहीं है। शक्ति संचय एक पृथक बात है।

अवसर का लाभ उठाने के लिए सत्य और न्याय की हत्या सदा विपरीत परिणाम उत्पन्न करते हैं। इनसे अवसरवादी पतन को प्राप्त होते हैं।

पुनर्विभाजन के स्वप्न-द्रष्टा

श्री टेकचन्द शर्मा

श्री जयप्रकाश नारायण ने, जिन्हें कुछ लोग विचारक भी फर्ज कर लेते हैं, पिछले दिनों यह विचार व्यक्त किया था कि "साम्प्रदायिक दंगों के परिणाम स्वरूप भारत का विभाजन और पाकिस्तान का निर्माण हुआ और पाकिस्तान यह चाहेगा कि वैसा ही पुनः हो। अगर दंगे होते हैं और मुसलमान यह कह सकने की स्थिति में होते हैं कि सरकार उनकी रक्षा करने में असमर्थ रही है तो वे अपने लिये कुछ क्षेत्र की मांग करेंगे, जहां वे अपनी रक्षा कर सकें और शान्तिपूर्वक रह सकें। इसका अर्थ होगा दूसरा पाकिस्तान।"

उक्त वक्तव्य प्रसारित करने में श्री जयप्रकाश का क्या उद्देश्य था यह तो वह ही जानें। परन्तु यह स्पष्ट है कि यह वक्तव्य बिना सोचे-समझे और निरुद्देश्य नहीं दिया गया है। यह भी नहीं माना जा सकता कि यह वक्तव्य देने मे उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों पर होने वाली इसकी खतरनाक प्रतिक्रिया और तज्जनित भयंकर परिणाम पर विचार नहीं किया होगा।

जयप्रकाश बाबू 'मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त' की भूमिका प्रायः खूब निभाते हैं और अपने प्रत्येक वक्तव्य या भाषण को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का उल्लेख किये बिना अधूरा समझते हैं। किन्तु उनके उपरोक्त भाषण में यह प्रतीत होता है कि अब वे मुसलमानों के नहीं अपितु हिन्दुओं के गवाह बन गये हैं। हो सकता है कि अहमदाबाद के दंगों ने उनकी आँखें खोली हों, वे भारतीय मुसलमान की गतिविधियों और इरादों से निराश हो गये हों और उनके हृदय में सुप्त हिन्दुत्व की भावना इस बुढ़ापे में जाग्रत हो गई हो।

मेरी दृष्टि में भारत में रह रहे मुसलमानों के प्रति इतना खतरनाक और अहितकर वक्तव्य स्वाधीनता के बाद अन्य किसी नेता को देने का दुस्साहस तो हुआ नहीं है अन्यथा देश-विभाजन की याद और पुनः विभाजन की बात कह कर हिन्दू की भावनाओं को जाग्रत और उत्तेजित तथा मुसलमानों को भय आतंकित करने के अतिरिक्त उनके वक्तव्य का और कोई प्रयोजन दिखाई नहीं देता।

अपने वक्तव्य में उन्होंने दो प्रश्न उपस्थित किये हैं। एक तो यह कि साम्प्रदायिक दंगों के परिणाम स्वरूप भारत का विभाजन और पाकिस्तान का निर्माण हुआ और दूसरे यह कि मुसलमान अपने लिये कुछ क्षेत्र की मांग करेंगे, जहां वे अपनी रक्षा कर सकें और शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें।

इन प्रश्नों के समाधान के लिये इतिहास के पन्ने उलटना अनिवार्य हो गया है क्योंकि अपने वक्तव्य में उन्होंने यह शर्त जोड़ कर कि "यदि मुसलमान यह कहने की स्थिति में होते हैं" हमें उन सब स्थितियों और परिस्थितियों पर विचार करने को बाध्य कर दिया है जिनसे कि देश का विभाजन और पाकिस्तान का निर्माण सम्भव हुआ।

यह सही है कि पाकिस्तान मुसलमान ने हिन्दू से मांगा। लेकिन प्रश्न है कब और क्यों? पाकिस्तान मुसलमान ने मांगने का साहस तब किया जब उसने पूर्णतया अनुभव कर लिया कि हिन्दू नितान्त कमजोर, गौरवशून्य और कायर है। दंगा और उपद्रवों का सामना करने से डरता है, सामना करने का साहस नहीं करता, चेतनाहीन हो चुका है। इसके अंग पर कहीं भी और कैसा भी वार करने से इसमें सिहरन और प्रतिक्रिया नहीं होती, पग पग पर घुटने टेकता जा रहा है। जब हिन्दू मुसलमान की प्रत्येक इच्छा और मांग के सामने सिर झुकाता चला गया तो मुसलमान में महत्वाकांक्षा का बढ़ना बिलकुल स्वाभाविक था। अतः पृथक् निर्वाचन की इच्छा से शुरू हुई एक मांग, बढ़ते बढ़ते ७, १४ और फिर इक्कीस हो गई। इस पर भी समाधान नहीं हुआ। मांग आगे बढ़ी और समान प्रतिनिधित्व (पैरिटी) और इसके बाद गलियारे (कौरिडोर) सहित अपनी इच्छा, कल्पना तथा आकार के पूर्ण पाकिस्तान अथवा देश विभाजन के रूप में फूलती चली गई।

दूसरा प्रश्न है कि मुसलमान ने पाकिस्तान मांगा क्यों? यह इसलिये मांगा कि वहां भारत के समस्त मुसलमान अपने जान, माल, धर्म, संस्कृति, भाषा, लिपि, कानून आदि की हिन्दुओं की गुलामी के भय से मुक्त हो, रक्षा करते हुए शान्ति और सम्मानपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकें। यह भी सब जानते हैं कि अखण्ड भारत के समस्त मुसलमानों की जान, माल, धर्म, संस्कृति आदि की हिफाजत तथा अमन, चैन और सम्मान से, उनका जीवन व्यतीत कराने के लिये अखण्ड भारत में, उनकी कुल जनसंख्या से भी कुछ अधिक अनुपात में, अखण्ड भारत की भूमि काट कर पाकिस्तान बनाने के लिये उनको दे दी गई। क्यों दी गई? मांगने और देने वालों के लिये क्या विधान होना चाहिये था, इस समय इस लेख में विचार करना हमारा मन्तव्य

नहीं है। अलग-अलग मत हो सकते हैं। मेजर जनरल हबीबुल्लाह (अवकाश प्राप्त) का मत है :— 'कानून की दृष्टि से देश का विभाजन सबसे महान देश-द्रोह था और उसकी प्रतिक्रिया में तुरन्त बहुत बड़ी क्रान्ति हो जानी चाहिये थी तथा प्रकृति के नियमानुसार जितने सरगना लोग थे; सबका सफाया हो जाना चाहिये था। (पैट्रियट साप्ताहिक २३ नवम्बर १९६९)

बहरहाल, देश विभाजन हो गया। बताया गया कि यह दो भाइयों में सम्पत्ति के बंटवारे के समान हुआ है। चलो मान लिया। नैतिकता और न्याय का तकाजा यही है कि दो भाईयों के घर सम्पत्ति के बंटवारे के बाद एक अपने हिस्से के घर और सम्पत्ति का पूरा स्वामी और दूसरा अपने हिस्से के घर सम्पत्ति का पूरा मालिक। इसके बाद एक भाई की दूसरे भाई के घर और सम्पत्ति पर नियत, निगाह या दखल का न औचित्य, न गुंजाइश और न वैधता। एक अपने घर राजी दूसरा अपने घर सलामत। फिर भी यदि एक भाई या उसकी औलाद दूसरे भाई के घर या खेत पर किसी कारणवश अपनी बसर औकात कर ले तो वह दूसरे भाई की दया, कृपा, उदारता और अनुमति रहते तक ही सम्भव और वैध है, जोर जबरदस्ती से नहीं। हां, यदि दूसरा भाई अपनी सन्तान होने के बावजूद भी अपने भाई की सन्तान को गोद ही ले ले तो बात दूसरी है। दत्तक को हिस्सेदार समझ लिया जावेगा, किन्तु फिर भी गैरवफादारी दिखाने पर अपने जीते जी अपनी सम्पत्ति के हक से उसे वंचित कर अपने घर व खेत से निकालने का अधिकार उसके पास सुरक्षित रहेगा और फिर लड़ाई झगड़े के बाद हुए घर सम्पत्ति के बंटवारे के बाद तथा अपनी निजी सन्तान होते हुए भी कोई उदारातिउदार यानि मूर्खातिमूर्ख भाई ही भाई की सन्तान को गोद लेकर अपनी सम्पत्ति में हिस्सेदार बनाना पसन्द करेगा।

पृथ्वीराज चौहान ने भारत पर आक्रमण करने वाले तथा कत्लोगारत मचाने वाले मोहम्मद गोरी को १७ बार परास्त किया, बन्दी बनाया और प्रत्येक बार क्षमादान दे उसे मुक्त कर दिया। संसार तो इसे हिन्दुओं की उदारता और प्रशंसा के ढोल पीट कर तथा इतिहास इसे हिन्दुओं की महा-मूर्खता बता कर खामोश हो गया। लेकिन इन भयंकर भूलों और गलतियों का, हिन्दुस्तान की सन्तान को आज सैकड़ों वर्ष बाद तक भी परिणाम भुगतना पड़ रहा है। प्राचीन काल में भी, और अभी कल तक भी, अदन से सिंगापुर तक फैला विशाल भारत आज सिकुड़ कर अमृतसर स कलकत्ता तक ही सीमित रह गया है।

अपनी कुल जन संख्या के लिये जान, माल, धर्म, संस्कृति, सभ्यता, भाषा, कानून की रक्षा हेतु मुसलमानों को उनके भाग से भी अधिक पृथक् भूमि और सम्पत्ति का कब्जा देने के उपरान्त भी हिन्दुओं का उन्हें अपने हिस्से की भूमि से बदखल न किये जाने को पृथिवीराज की, अथवा कहें हिन्दुओं की इतिहास प्रसिद्ध उदारता से, जिसे इतिहासकारों ने जबरदस्त गलती और मूर्खता लिखा है, संज्ञा दे दी जा सकती है। बंटवारा कराने वाले तो विषवृक्ष बोकर संसार से विदा हो गये या होते जा रहे हैं। भावी पीढ़ियों पर क्या गुजरती है यह जाने उनकी बला। हिन्दु ने देश बांटा था। 'जियो और जीने दो' के आधार पर। किन्तु उदारमना हिन्दू को केवल दूसरे के घर की ही सुख-शान्ति की चिन्ता रही। यह स्मरण नहीं रहा कि पहले अपने घर में स्वयं का सुख शान्ति-पूर्वक जीवन बिताने की गारण्टी हो जाने के बाद ही दूसरे को उसके घर में सुख शान्तिपूर्वक जीवन बिताने की अनुमति देनी है। बहरहाल, हिन्दू ने अपने घर में स्वयं सुख शान्ति से रहने का उचित प्रबन्ध किया या नहीं किया लेकिन इस बात से तो कोई इन्कार नहीं कर सकता कि पाकिस्तान प्राप्त कर लेने के परिणाम स्वरूप अखण्ड भारत के समस्त मुसलमानों ने अपने 'नये घर' में सुख शान्ति से अपना जीवन बिताने का मुकम्मिल इन्तजाम कर लिया था। अतः जयप्रकाश जी के अनुसार अब यह प्रश्न पुनः कैसे उठ सकता है कि "वे मुसलमान अपने लिये कुछ क्षेत्र की मांग करेंगे जहां वे अपनी रक्षा कर सकें और शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें।" भारत कोई धर्मशाला या खालाजी का घर ही समझ लिया गया है।

अब हम जयप्रकाश बाबू के इस रहस्योद्घाटन पर विचार करते हैं कि सांप्रदायिक दंगों के परिणामस्वरूप भारत का विभाजन और पाकिस्तान का निर्माण हुआ। जयप्रकाश ने जो कुछ कहा है वह अर्द्ध सत्य है। शेष अर्द्ध सत्य या तो उन्हें पता नहीं, यदि पता है तो उन्होंने जान-बूझ कर वास्तविकता को छिपाने की कोशिश की है। पूर्ण सत्य यह नहीं है कि मुसलमान के उपद्रव और दंगों के कारण पाकिस्तान बना। यदि दंगों और उपद्रवों की सफलता के परिणामस्वरूप ही मुसलमान का पाकिस्तान बना होता तो फिर यह लंगड़ा लूला, आधा, पाकिस्तान न बना होता। क्या उसने पूरे पंजाब, दिल्ली, पूरे बंगाल, पूरे असम, चौथाई विहार और इन सबको जोड़ने के लिये सौ, सवा सौ मील चौड़े गलियारे की मांग के लिये अन्तिम क्षण तक संघर्ष नहीं किया था? तो फिर यह कैसे हुआ कि अपने आग्रह से अचानक पलट कर जो कुछ उसे दिया गया, उसने भीगी बिल्ली बन कर निहायत खामोशी से सिर झुका कर

स्वीकार कर लिया ? क्या मिस्टर जिन्ना और मुस्लिम लीग ने ऐन मौके पर "दो चार हाथ जब कि लबे बाम रह गया" मुसलमानों और इस्लाम से गद्दारी की थी ? जिन्ना और मुस्लिमलीग की जो राक्षसी भूख सात, चौदह, इक्कीस पैरिटी से बढ़ते-बढ़ते पाकिस्तान और गलियारे की मांग तक गई थी वह एकाएक रातों रात कैसे शान्त हो गई ? क्या कारण था कि वह गलियारा (अर्थात् आधा उत्तर प्रदेश और बिहार) आधा पंजाब, दिल्ली, आधा बंगाल, पूरा आसाम और बिहार का कुछ भाग मांगने से तोबा कर उठा और भिखमंगों की भांति जो कुछ मिल जाये उसे ही स्वीकार कर लेने में उसने अपना भला समझा।

क्या जयप्रकाश जी इसका कारण जानते हैं ? यदि नहीं जानते तो सुनें। इसका कारण क्या था 'दगे और उपद्रव'। परन्तु मुसलमानों की ओर से दंगे और उपद्रव नहीं। वे तो हो ही रहे थे और उन्हें उनके लक्ष्य तक ले जा रहे थे। अपितु सब्र का पैमाना भर जाने पर हिन्दुओं द्वारा इस्लाम की चुनौती स्वीकार करते हुए आत्मरक्षा के लिये प्रतिकार स्वरूप बिना किसी पूर्व योजना; सूत्रबद्धता, नेतृत्व और संगठन की सहायता के केवल स्वयं स्फूर्ति से लड़ा गया युद्ध और किया गया संघर्ष। जहां श्री जयप्रकाश जी के इस कथन में अर्द्ध सत्य है कि मुसलमानों द्वारा दंगों और उपद्रवों में की गई पहल के परिणाम स्वरूप हिन्दुओं को देश विभाजन स्वीकार करना पड़ा, वहां पूर्ण सत्य हमारे इस कथन में है, और इतिहास इसका साक्षी है, कि प्रतिकार और आत्मरक्षा हेतु हिन्दुओं के (अत्यन्त विलम्बित) उपद्रवों और दंगों के परिणामस्वरूप 'जब मार लगी पड़ने, खैरात लगी बंटने' के अनुसार मुसलमानों को लंगड़ा, लूला, विभाजित पाकिस्तान गले उतारना पड़ा। इतिहास गवाही देगा कि यदि हिन्दू समय रहते जाग कर पहल कर जाते या कम से कम प्रतिकार करने में अत्यन्त विलम्ब न करते तो पाकिस्तान का कहीं नामोनिशान भी न होता।

अतः जयप्रकाश बाबू से निवेदन है कि वे देश-विभाजन काल की घटनाओं की पुनरावृत्ति नहीं चाहते, इस देश में रक्त की नदियां बहाना नहीं चाहते, लाखों नहीं करोड़ों स्त्रियों को विधवा और बालकों को अनाथ देखना नहीं चाहते तो आकाश में उड़ना छोड़ें और देश के जनमानस को पहचानने की कोशिश करें। सस्ती प्रसिद्धि प्राप्त करने हेतु बहकी बहकी और बेतुकी बातें करना छोड़ें तथा देश के हिन्दुओं और यहां रह रहे बेचारे गरीब मुसलमानों पर रहम करें। न मुसलमान को ही मूर्ख बनायें और न पुनः सुप्त हिन्दू कुम्भकर्ण को ही झकझोरें। इसे गहरी नींद ही सोने दें। कहीं ऐसा न हो

जाय कि जागने पर इसकी भावनायें उत्तेजित हो जावें और यह प्रलयंकर रूप धारण करने पर विवश हो जाय। इसे इसकी ऐतिहासिक भूल का प्रत्यक्ष रूप से भी स्मरण करा कर न चिढ़ायें इसके मर्मस्थल पर आघात न करें। इस कार्य के लिये देश में मुल्लाओं और मौलवियों की कमी नहीं है, यह एकाधिकार उन्हीं के पास सुरक्षित रहने दें।

मुझे आशा है और मैं विश्वास करता हूं कि जयप्रकाश बाबू मानवतावादी हैं। वे हिन्दुओं और मुसलमानों का अहित नहीं हित ही चाहते हैं। मुसलमानों के वे शत्रु नहीं बल्कि मित्र हैं और हृदय से यह चाहते हैं कि उनकी स्थिति सुधरे और वे सुख शान्तिपूर्वक यहां अपना जीवन निर्वाह करें।

किसी मुसलमान ने विभाजित भारत को पुनः खण्डित करने की बात जबान पर लाने का अभी तक साहस नहीं किया है और मुझे विश्वास है कि जब तक किसी भी समझदार बुद्धिमान मुसलमान को देश विभाजन की घटनाओं का तनिक भी स्मरण रहेगा अथवा उन घटनाओं की पुनरावृत्ति की तनिक भी आशंका रहेगी, वह चाहे जिस हाल में भी यहां रहे, देश विभाजन की मांग करने की मूर्खता नहीं करेगा। आश्चर्य है कि जयप्रकाश बाबू क्या सोच समझ कर यह बात अपनी जबान पर लाये। निस्सन्देह मुसलमानों का अहित उनके मन में नहीं है।

मुसलमानों से यह भी कहना है कि वे भी अपने मित्र और शत्रु की पहचान करें। पूर्वाग्रह छोड़ें। जयप्रकाश बाबू जैसे लोगों के प्रचार और बहकावें में आकर वे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और श्री गोलवलकर से व्यर्थ में चिढ़ना और भयभीत होना छोड़ें। ठण्डे दिमाग से सोचें और सच्चे मित्र और वास्तविक हितैषी की पहचान के लिये गत इतिहास के पन्नों को टटोलें। असलियत यह है कि भारत के आधुनिक इतिहास में मुसलमानों और भारत में इस्लाम को कोई सच्चा मित्र और हितैषी सिद्ध हुआ है तो वह है राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और इसके सरसंघचालक अतिमानवतावादी श्री गोलवलकर। मुसलमानों को कृतघ्न नहीं होना चाहिये। वे सोचें कि यदि श्री गोलवलकर उनके सच्चे हितैषी और मित्र न होते और उनके विरुद्ध वक्र दृष्टि करते, भृकुटी टेढ़ी कर लेते तो क्या हो गया होता और क्या न हुआ होता, कौन घर घाट खाट होती ? यदि मुसलमास शान्तचित से सोचें तो सत्य स्वयं सिद्ध हो जायेगा।

●

योगीराज श्री कृष्ण

श्री सचदेव

श्री कृष्ण युधिष्ठिर के निमन्त्रण पर द्वारिका से इन्द्रप्रस्थ चले आये और जब उनका आतिथ्य सत्कार हो चुका तो युधिष्ठिर ने निमन्त्रण का प्रयोजन बता दिया। युधिष्ठिर ने कहा, श्री कृष्ण! मैं राजसूय यज्ञ करना चाहता हूं, परन्तु संसार में चाहने मात्र से कुछ नहीं होता। उसके लिए उपाय करना पड़ता है। आपको मैंने इस कारण आमन्त्रित किया है कि आप इसमें मुझे शुभ सम्मति दें कि मैं इस यज्ञ को करने की इच्छा करूं अथवा न करूं और यदि इच्छा करूं तो उस इच्छा की पूर्ति के लिए क्या उपाय करूं?

आप इस योग्य हैं कि ठीक सम्मति दे सकें। मेरे सब सम्बन्धी मुझे इस की सम्मति दे रहे हैं, परन्तु इस विषय में अन्तिम निश्चय आपकी अनुमति से ही हो सकेगा। सम्बन्धी तो प्रेम वश तथा अपनी उन्नति की आशा में ऐसी सम्मति देते होंगे परन्तु

त्वं तु हेतूनतीत्यैतान् कामक्रोधौ व्युदस्य च।
परमं यत् क्षमं लोके यथावद् वक्तुमर्हसि॥

(महा भा० सभा० १३—५१)

आपमें उपर्युक्त हेतु है नहीं, न ही आप काम एवं क्रोध के वश में कोई बात कहेंगे। अतः इस लोक में जो कुछ मेरे हित में तथा लोक हित में है, वह ही मुझे कहिये।

कृष्ण राजसूय यज्ञ करने में बाधाओं को जानते थे और उन बाधाओं और कठिनाइयों का वर्णन करने से पूर्व उन्होंने कहा:—

सर्वैर्गुणैर्महाराज राजसूयं त्वमर्हसि।

(महा भा० सभा० १४—१)

महाराज! आप सब प्रकार के गुणों से युक्त होने से राजसूय यज्ञ करने के सर्वथा योग्य हैं।

इस पर भी आपको वर्तमान युग में इस कार्य में बाधक कठिनाइयों का ज्ञान होना चाहिए।

इस समय पुरूरवा और इक्ष्वाकु वंश के नरेशों के एक सौ के लगभग राज्य हैं और ययाति के वंश में भोज वंशियों का बहुत विस्तार हुआ है। उनमें भी महाराज जरासंध प्रायः सब भोजवंशियों को पराजित कर स्वयं सम्राट पद प्राप्त कर चुका है। वह राजाओं का सिरमौर बन चुका है। महाराज शिशुपाल भी उसके ही अधीन है। माया-युद्ध करने वाला महाराज कनक राजा जरासंध के सामने हाथ जोड़े खड़ा रहता है। पूर्वाञ्चल के सब राजे परास्त कर उसने अपने बन्दी बना लिए हैं और पश्चिम के भी भूरिश्रवा तथा भगदत्त इत्यादि इससे भयभीत हो इसके मित्र बने हुए हैं।

इस कारण महाराज युधिष्ठिर! आपको यह समझ लेना चाहिए कि इस समय भारत खण्ड में केवल तीन शक्तियां हैं और उनको पराजित किए बिना आप राजसूय यज्ञ सम्पन्न नहीं कर सकेंगे। एक है दुर्योधन। वह इस समय अपने को अपने चाचा पाण्डु का उत्तराधिकारी मानता है। पाण्डु ने अश्वमेध यज्ञ कर सम्राट की उपाधि प्राप्त की थी और दुर्योधन अपने को इस उपाधि का उत्तराधिकारी मानता है। अतः वह आपके यज्ञ में विघ्न बनेगा।

परन्तु उससे युद्ध के बिना भी निपटा जा सकता है। उसको यह बताये बिना कि आप का इस यज्ञ को करने का विचार है, पहले जरासंध को पराजित कर लेना चाहिए। जरासंध को पराजित करने के लिए यदि आप सेना लेकर आक्रमण करेंगे तो पूर्ण भारत खण्ड में प्रचारित हो जाएगा कि आप यह यज्ञ करना चाहते हैं। अतः दुर्योधन, शिशुपाल और जरासंध तीनों मिल जायेंगे और आप इन तीनों की संयुक्त शक्ति को जीत नहीं सकेंगे।

इस कारण मेरी यह सम्मति है कि जरासंध की राजधानी राजगृह में जाना चाहिए और वहां इसको मल्ल-युद्ध के लिए ललकारना चाहिए मैं समझता हूं कि उसको इस युद्ध में आप परास्त कर सके तो फिर राजसूय यज्ञ के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा हट जायेगी।

कृष्ण का कहना था कि जरासंध के मारे जाने के उपरान्त भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य को अपना पुरखा और गुरु मान यज्ञ में प्रतिष्ठित करने का निमन्त्रण देने से दुर्योधन वश में हो जायेगा। उनके बिना दुर्योधन लड़ नहीं सकता।

परन्तु कठिनाई जरासंध की थी। इसके लिए कृष्ण ने स्वयं राजगृह में जाने का संकल्प कर लिया। अर्जुन और भीम को साथ लेकर वह चुपचाप राजगृह में जा पहुंचा।

राजगृह में प्रवेश पाने के लिए द्वार पर नाम तथा पता लिखाना पड़ता

था। कृष्ण झूठ बोलना नहीं चाहते थे और ललकारने से पूर्व अपना परिचय भी देना नहीं चाहते थे। जरासंध उनका शत्रु था। जरासंध के जामाता कंस को कृष्ण ने मार डाला था। इस कारण कृष्ण इत्यादि कोट की दीवार फांद कर भीतर चले गये।

कोट की दीवार पर एक नगाड़ा रखा था। वहां ऐसा प्रबन्ध था कि यदि कोई चोरी-चोरी भीतर जाना चाहे तो वह नगाड़ा स्वयमेव बज उठता था। अतः दीवार फांदने से पूर्व नगाड़े को फोड़ डाला गया।

ये तीनों भीतर गए और जरासंध के प्रासाद में पहुंच स्नातक बन भीख माँगने लगे। जरासंध भीख देने से इन्कार नहीं कर सका और जब उसने वचन दे दिया तो उससे मल्ल-युद्ध करने की भीख मांगी गई।

इस प्रकार भीम और जरासंध में मल्ल युद्ध होने लगा। मल्ल युद्ध चौदह दिन तक चलता रहा और अन्त में भीम ने जरासंध को मार डाला।

जरासंध के मारे जाने से वे सब राजे और राज्य जिन पर जरासंध ने बलपूर्वक अधिकार जमा रखा था, कृष्ण और युधिष्ठिर के प्रति कृतज्ञता अनुभव करने लगे। वे राजे-महाराजे जो जरासंध से भयभीत थे, युधिष्ठिर के मित्र हो गए। पूर्ण भारतवर्ष का चित्र सहसा बदल गया।

कृष्ण की नीति सफल हुई। जरासंध की मृत्यु के उपरांत युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह धृतराष्ट्र और द्रोणाचार्य से राजसूय यज्ञ के लिए आशीर्वाद मांगा। यह संदेश लेकर महर्षि व्यास जी गए।

इस समय दुर्योधन को पता चला कि युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करना चाहता है। वह इस बात को सहन नहीं कर सका, परन्तु व्यास जी ने जब धृतराष्ट्र का समझाया कि वास्तव में सम्राट वे बनने वाले हैं तो दुर्योधन को चुप रह जाना पड़ा।

इस प्रकार राजसूय यज्ञ के प्रथम चरण में श्री कृष्ण की नीति ने कार्य किया। शिशुपाल ने भी जब देखा कि दुर्योधन मान रहा है तो वह भी मौन रहा।

श्री कृष्ण द्वारिका लौट गए और युधिष्ठिर के चारों भाई भूमण्डल की चारों दिशाओं में दिग्विजय को चल पड़े।

कृष्ण के जीवन की एक अन्य विजय राजसूय यज्ञ के समय सम्पन्न हुई।

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्री कृष्ण से पूछा गया कि वह क्या कार्य अपने लिए उपयुक्त मानते हैं। श्री कृष्ण ने कहा, यज्ञ पर पधारने वाले

साधु-संत, ऋषि-महर्षियों एवं ब्राह्मणों के वे चरण धोयेंगे। अतः कृष्ण यज्ञशाला के द्वार पर बैठ गये और यज्ञ कराने के लिए आये ऋत्विक्, पुरोहित, ऋषि-महर्षि तथा ब्राह्मण वर्ग के पांव धोने लगे।

इस सेवा-कार्य ने श्री कृष्ण को यज्ञ में अग्र पूजा अर्थात् प्रधान पद पर आसीन कराने का विचार उत्पन्न कर दिया। महर्षि नारद ने इस प्रस्ताव को उपस्थित किया और घर के सब बड़ों ने इसे स्वीकार कर लिया। यज्ञ के समय श्री कृष्ण की अग्र पूजा होने लगी तो शिशुपाल के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी। शिशुपाल और कृष्ण सम्बन्धी थे, परन्तु दोनों में वैमनस्य का कारण था रुक्मिणी।

रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से होने वाला था। परन्तु उस समय तक श्री कृष्ण की योद्धा और नीतिज्ञ के रूप में ख्याति देश भर में विख्यात हो चुकी थी। यह ख्याति और श्री कृष्ण के रूप और तेज का भी वृत्तान्त रुक्मिणी को विदित था। अतः रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण को वरने की इच्छा बनायी और श्रीकृष्ण को अपनी इच्छा लिख भेजी।

श्रीकृष्ण जानते थे कि अनामन्त्रित वह विवाह के समारोह में जा नहीं सकते और रुक्मिणी को विवश किया जायेगा कि वह शिशुपाल का वर ले। अतएव श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का अपहरण कर लिया। शिशुपाल को इसका रोष था और राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण की अग्र पूजा होती देख वह क्रोध से भर आपत्ति करने लगा।

जब श्रीकृष्ण को सहदेव इत्यादि अर्घ्य दे रहे थे तो शिशुपाल अपने आसन से उठा सभा के मध्य में आ खड़ा हुआ और बोला —

नायमर्हति वार्ष्णेयस्तिष्ठत्स्विह महात्मसु।
महीपतिषु कौरव्य राजवत् पार्थिवार्हणम्॥

(महा भा० सभा० ३७-१)

यहाँ महात्माओं और राजाओं के रहते हुए इस वृष्णिवंशी का राजाओं की भाँति पूजा का अधिकार नहीं हो सकता। यह राजा नहीं है।

पुनश्च :—

कथं ह्यराजा दाशार्हो मध्ये सर्वमहीक्षिताम्।
अर्हणामर्हति तथा यथा युष्माभिरर्चितः॥

(महा भा० सभा० ३७-५)

शिशुपाल ने आगे कहा कि कृष्ण तो यदुवंशियों में भी राजा नहीं। फिर इसको क्यों राजाओं में अग्रणी बनाया गया है? [शेष पृष्ठ ३६ पर]

महाभारत-युद्ध का पटाक्षेप

श्री गुरुदत्त

महाभारत युद्ध के विषय में यह कहा जाता है कि यह वास्तविक घटना नहीं है। एक कल्पित घटना पर पूर्ण महाभारत ग्रन्थ की रचना की गयी है। महाभारत युद्ध वास्तविक है अथवा कल्पित, इसका भाव कल्पित नहीं है। और इसमें अनेक भाव ऐसे भी हैं जो शाश्वत सत्य का निरूपण करते हैं।

जैसे वेदों में इतिहास, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का निरूपण है, वैसे ही महाभारत में भी इन सब विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

इस विषय में महाभारत ग्रन्थ का कर्ता स्वयं लिखता है :–

अस्मिन्नर्थश्च धर्मश्च निखिलेनोपदिश्यते ।

इतिहासे महापुण्ये बुद्धिश्च परिनैष्ठिकी ।। (महाभारत आदि० ६२, १७)

इसमें पूर्ण रूप से धर्म और अर्थ का उपदेश है। इसमें इतिहास भी है और महापवित्र मोक्ष को दिलाने वाली बुद्धि का भी उपदेश है।

यहां इतना समझ लेना चाहिये कि वेदों में इतिहास के विषय में मतभेद है। हमारा मत है कि वेदों में इतिहास है, परन्तु यह इतिहास मानव का नहीं। यह जगत-रचना का इतिहास है।

अतएव हमारा यह कहना है कि महाभारत ग्रन्थ में अनेक शाश्वत सत्यों का निरूपण किया गया है और यह लेख भी, एक सर्वकालीन सत्य के निरूपण की कथा है। इस घटना को महाभारत युद्ध का पटाक्षेप कहा जा सकता है अर्थात् उसका उपसंहार माना जा सकता है।

अठारह दिन के युद्ध में पूर्ण कौरव सेना के विनष्ट हो जाने पर दुर्योधन युद्ध-क्षेत्र से भाग एक जलाशय में जाकर छिप गया, परन्तु उसे छिपते हुए कुछ माहीगीरों ने देख लिया।

इन माहीगीरों ने पाण्डवों को दुर्योधन के छिपने का स्थान बता दिया। श्रीकृष्ण दुर्योधन के जीवित बच निकलने पर चिन्तित थे। इतना घोर नर-संहार होने पर भी पूर्ण घटना के खलपात्र के बचकर भाग जाने पर चिन्ता करनी स्वाभाविक थी। वह पुनः शक्ति का संचय कर महाभारत युद्ध रच सकता था। अतः सूचना मिलते ही श्री कृष्ण ने सम्मति दी—इस दुष्ट को पकड़ना चाहिये।

सभी पाण्डव एवं सैन्य अधिकारी दुर्योधन को पकड़ने के लिये चल

पड़े। युधिष्ठिर ने छुपे हुए दुर्योधन को ललकारा और कहा—हे दुर्योधन! तुम कर्ण और सुबलपुत्र शकुनि का आश्रय पाकर मोहवश अपने को अजर-अमन मान बैठे थे। अपने को मनुष्य मानते ही नहीं थे। महान् पाप कर्म कर अब युद्ध क्यों नहीं करते ? उठो, हमारे साथ युद्ध करो। तुम्हारे जैसे वीर पुरुष को भागते हुए देखना कौन पसन्द करेगा ?

दुर्योधन ने इन उत्तेजनायुक्त लांच्छनों को सुनकर कहा कि उसने पलायन नहीं किया। वह आज भी पाण्डवों का उत्साह भंग कर उनको जीतने का साहस रखता है। इस पर युधिष्ठिर ने उसे जली कटी सुनायीं तो दुर्योधन जलाशय से बाहर आ गया। उसने कहा—मैं अकेला हूं और तुम सब मिल कर आये हो, यह तो धर्म-युद्ध नहीं होगा। इस पर धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने कह दिया—

मैं तुम्हें यह अभीष्ट वर देता हूं कि हममें से एक का भी वध कर देने पर सारा राज्य तुम्हारा हो जायेगा। और यदि युद्ध में मारे गये तो स्वर्ग पाओगे।

ऐसा प्रतीत होता है कि युद्धिष्ठिर में से जुआ खेलने की लत अभी निकली नहीं थी। इतना ही नहीं, वह अति सरलचित्त एवं अदूरदर्शी व्यक्ति भी था। उसका यह प्रस्ताव तो जीती हुई बाजी हारने के तुल्य था। पूर्ण जीवनभर का कष्ट-सहन और सत्रह अक्षौहिणी सेना का रक्त, सब कुछ उसने यहां दांव पर लगा दिया।

श्रीकृष्ण युधिष्ठिर की इस सरलता पर, जो मूर्खता की सीमा को भी पार कर गयी थी, क्रोध से भर गये। उन्होंने डांट के भाव में कहा, यह तुमने क्या कह दिया है ? तुम में से कोई भी तो उससे द्वन्द्व युद्ध करने की सामर्थ्य नहीं रखता। गदायुद्ध में भीम भी उससे कम है। दुर्योधन भीम से गदा-युद्ध की आशा में, उसका लोह-ढांचा बना कर युद्ध का अभ्यास करता रहा है। इस प्रस्ताव को रख कर तुमने ठीक नहीं किया।

तुमने पूर्व की भांति पुनः जुए का खेल आरम्भ कर दिया है। तुम्हारा यह खेल शकुनि से खेले गए जुए से भी अधिक भयंकर है।

निश्चय ही पाण्डु और कुन्ती की सन्तान राज्य भोगने की अधिकारी नहीं है। विधाता ने अनन्त काल तक इसे बनवास के लिए अथवा भीख माँगने के लिए पैदा किया है।

श्रीकृष्ण के इस कथन से भीमसेन उसका संकेत समझ गया और दुर्योधन से द्वन्द्व युद्ध करने के लिए तैयार हो गया।

युद्ध हुआ और गदा युद्ध के नियमों के विपरीत व्यवहार अपनाकर भीम ने दुर्योधन को घायल कर मरणासन्न कर दिया। इस पर श्रीकृष्ण के भाई

श्री बलराम क्रोध से भर गए और भीम को फटकारने लगे । जब दुर्योधन धराशायी हो भूमि पर पड़ा था तो भीम ने उसके सिर पर पांव की ठोकर मार दी । इससे तो बलराम और क्रुद्ध हो उठे ।

सब उपस्थित राजाओं के बीच दोनों हाथ उठाकर आर्त स्वर में बलराम ने कहा, भीम ! तुझे धिक्कार है । तूने गदा-युद्ध के नियमों का उल्लंघन किया है ।

इतना कह बलराम अपना हल शस्त्र उठा कर भीम पर लपके । श्रीकृष्ण ने यह देखा तो बलराम और भीम के बीच आ खड़े हुए । उन्होंने बलराम को अपनी बाहों में पकड़ लिया और उनके क्रोध को शान्त करने के लिए बोले—

आत्मवृद्धिर्मित्रवृद्धिर्मित्रमित्रोदयस्तथा ॥
विपरीतं द्विषत्स्वेतत् षड्विधा वृद्धिरात्मनः । (गदा० ६०।१३-१४)

अपनी उन्नति छः प्रकार से होती है । अपनी वृद्धि, अपने मित्र की वृद्धि और मित्र के मित्र की वृद्धि और शत्रु के मित्र की हानि ।

इसके साथ ही श्रीकृष्ण ने बताया कि पाण्डव अपने मित्र हैं, सम्बन्धी हैं और पुरुषार्थी हैं । भीम ने अपनी प्रतिज्ञा का ही पालन किया है । अतः मैं भीम का दोष नहीं देखता । आप क्रोध न करें ।

ये युक्तियां बलराम को सन्तुष्ट नहीं कर सकीं । इस पर भी श्रीकृष्ण के कारण वे पाण्डवों का कुछ बिगाड़ नहीं सके और वहां से चले गए ।

बलराम के विचार सुन दुर्योधन का साहस बढ़ गया और वह श्रीकृष्ण को ही गालियां सुनाने लगा । उसने भृकुटि चढ़ाकर कृष्ण से कहा, कंस के दास के पुत्र ! मैं गदा-युद्ध में अधर्म-पूर्वक मारा गया हूं । यह तुम्हारी सम्मति से ही हुआ है । तुमने भीष्म पितामह को शिखण्डी से मरवाया । तुमने कर्ण को धोखे से मरवाया । भूरिश्रवा जब व्रत रखे हुए था तो तुमने सात्यकि से मरवा दिया । तुमसे बढ़कर पापी और कौन हो सकता है ? इन सब कुकृत्यों के लिए तुम्हें लज्जा नहीं आती क्या ?

श्रीकृष्ण बोले, "गान्धारीनन्दन ! तुमने पाप के पथ पर पांव रखा था; इस कारण तुम भाई-बान्धवों, पुत्र-पौत्रों, सेवक, सुहृद्जनों सहित मारे गए हो । भीष्म इत्यादि तुम्हारे दुष्कर्मों के कारण ही मारे गए हैं ।

हे दुर्मते ! तुमने भीम को विष दिया था, तुमने समस्त पाण्डवों को उनकी मातासहित जला देने का प्रयत्न किया था, द्यूतक्रीड़ा में तुम विजयी हुए तो भरी सभा में द्रौपदी को नग्न करने का यत्न किया था, द्यूत-क्रीड़ा में तुमने छलना से युधिष्ठिर को हराया था, इन सब पापों के लिए तुम मारे गए हो । तुम्हारे योद्धाओं ने अकेले अभिमन्यु को घेर कर मारा था ।

भीष्म यह जानते हुए कि पाण्डवों का पक्ष सत्य का है, फिर भी युद्ध कर

रहे थे। ऐसी अवस्था में शिखण्डी ने उनका वध कर कोई पाप नहीं किया।

द्रोणाचार्य अपने (ब्राह्मण) धर्म को छोड़कर साधु पुरुषों की हत्या के लिए उद्यत हुए थे, इसी कारण युद्धभूमि में धृष्टद्युम्न ने उनका वध किया था।

इस प्रकार श्रीकृष्ण ने दुर्योधन और उसके मित्रों के पापाचार का चिट्ठा सुनाया और अन्त में कहा—इन सब अधर्मों के प्रतिकार में युद्ध का नियम भंग करना कोई भी दोष नहीं है। पापियों को मार डालने के लिए, युद्ध के नियमों में हेर-फेर करना दोष नहीं है।

महाभारत युद्ध की यही शिक्षा है। धर्म की महत्ता असीम है। इसकी स्थापना में तनिक छल-कपट करना क्षम्य ही है। जब दुष्ट लोग अत्यधिक शक्ति का संचय कर लें तो उन्हें ऐसे ही मारा जा सकता है।

न च वो हृदि कर्त्तव्यं यदयं घातितो रिपुः।
मिथ्यावध्यास्तथोपायैर्बहवः शत्रवोऽधिकाः॥
पूर्वैरनुगतो मार्गो देवैरसुरघातिभिः।
सद्भिश्चानुगतः पन्थाः स सर्वैरनुगम्यते॥ (महा भा० गदा० ६१।६७, ६८)

इस प्रकार जो शत्रु मारे गए हैं, उनका हृदय में विचार नहीं करना चाहिए। बहुतेरे अधिक शक्तिशाली शत्रु नाना प्रकार के उपायों से तथा कूट-नीति के प्रयोग द्वारा मारने के योग्य होते हैं।

असुरों का विनाश करने वाले पूर्ववर्ती देवताओं ने भी इस मार्ग का आश्रय लिया था। श्रेष्ठ पुरुष जिस मार्ग से चलते हैं, उसका सभी अनुसरण करते हैं।

(पृष्ठ ३२ का शेष)

यदि किसी वृष्णिवंशी की ही अग्र-पूजा करनी है तो इसके पिता वसुदेव की पूजा होनी चाहिये। और फिर इस सभा में वीरों में भीष्म पितामह, कर्ण, दुर्योधनादि अनेक राजा-महाराजा हैं जो कृष्ण से अधिक पूजा के योग्य हैं।

युधिष्ठिर ने समझाया और फिर भीष्म ने भी समझाया, परन्तु शिशुपाल नहीं माना और भरी सभा में कृष्ण की निन्दा करने लगा। श्रीकृष्ण ने कहा—तुम मेरे सम्बन्धी हो और तुम्हारी मां का विचार कर मैं तुम्हें इस पूर्ण गाली-गलौज के लिये क्षमा करता हूं, परन्तु अब बैठ जाओ और यज्ञ का काम होने दो। और देखो, यदि तुम अब भी नहीं माने और गालियां देते रहे तो मैं तुम्हारी एक सौ गाली क्षमा कर सकता हूं परन्तु १०१वीं गाली पर तुम्हारी खैर नहीं।

शिशुपाल नहीं माना और गालियां देता रहा। ज्यों ही उसने एक सौ एकवीं गाली दी, कृष्ण ने अपना सुदर्शन चला कर उसका सिर काट दिया।

सबको यह बात अखरी, परन्तु दोष शिशुपाल का था, उसका पक्ष कोई नहीं ले सका। दुर्योधन आदि शिशुपाल के मित्र भी चुप रहे।

समाचार समीक्षा

भारत की विदेश नीति के निर्देशक

विदेशमन्त्रालय की मांगों पर चल रही बहस के दौरान विदेशमन्त्री श्री दिनेश सिंह ने दोहराया कि तिब्बत चीन का अंश है। एक ओर जहां भारत ने चीन के भूतपूर्व राज्याधिकारी महामान्य दलाई लामा को शरण दी हुई है वहां उसका इस प्रकार तिब्बत को चीन का अंग बताना कितनी बुद्धिमत्ता अथवा राजनयिज्ञता है यह विचार करने की बात है।

विदेशमन्त्री ने कहा कि हिन्द-चीन में युद्ध के विस्तार से हम अत्यन्त दुःखी हैं। वहां की समस्या का हल तभी सम्भव है जब विदेशी सेनायें वहां से हटा ली जायं। अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण आयोग को पुनः सक्रिय करने का हमने प्रस्ताव किया था, पर निरीक्षक शक्तियों ने उसे नामंजूर कर दिया। हम पूछते हैं कि क्या भारत का कोई सुझाव कभी किसी शक्ति ने स्वीकार भी किया है ?

उधर दारस्सलम में हुए निर्गुट तैयारी सम्मेलन में भारतीय विदेशमन्त्री द्वारा दक्षिणवियतनाम की "अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार" और कम्बोडिया के पदच्युत राष्ट्राध्यक्ष राजकुमार सिंहानुक का समर्थन करने पर राजधानी के राजनीतिक क्षेत्रों में आश्चर्य प्रकट किया गया और संसद के अनेक सदस्यों ने इस पर क्षोभ प्रकट किया। श्री दिनेश सिंह ने उक्त सरकार को प्रेक्षक के रूप में सम्मिलित करने का समर्थन और राजकुमार सिंहानुक के निर्गुट आन्दोलन में अब तक के योग की प्रशंसा की।

आश्चर्य की बात है कि सिंहानुक, चीन में शरण ले कर, उसके सहयोग से दक्षिण वियतनाम पर उत्तर के हमले और वियतकांग की अन्य कार्यवाहियों को पूरा सहारा दे रहे हैं। उन्हें कम्बोडिया के शासन ने पद से ही हटा दिया है। इतना ही नहीं भारत ने कम्बोडिया के नए शासन से मान्यता वापस नहीं ली है और वह उससे पहले के समान ही राजनयिक सम्बन्ध रखे हुए हैं। ऐसी स्थिति में राजकुमार सिंहानुक का राजा दिनेशसिंह द्वारा समर्थन कुछ विचित्र बात है।

गालिब, गाँधी और लेनिन शताब्दियाँ

दो वर्ष पूर्व मरहूम गालिब की मरण शताब्दी मनाई गई । शाही शान से मनाई गई । गरीब देश की खून पसीने की कमाई को पानी की भांति बहाया गया । किंतु गालिब न राष्ट्रीय महापुरुष था और न ऐसा अय्याश व्यक्ति कभी भारत जैसे देश का राष्ट्र पुरुष हो सकता है । अतः कितना भी प्रयत्न किया गया हो, कितना ही सरकारी संरक्षण दिया गया हो, राष्ट्रवादियों के मनों में उसकी प्रतिमा न प्रतिस्थापित हुई और न कभी होगी । इस विषय में विस्तृत जानकारी हम अपने पाठकों को यथा समय देते रहे हैं, यहां अधिक विस्तार से लिखने की आवश्यकता नहीं ।

उसके बाद आई गांधी शताब्दि की आंधी । वास्तव में वह आंधी ऐसी थी कि सब कुछ लपेट कर उड़ा ले जाने की शक्ति प्रतीत होती थी । किंतु हमारा कथन है कि गांधी शताब्दी भी सब प्रकार से खोखली सिद्ध होकर समाप्त हो गई है ।

गांधी शताब्दी वर्ष में सर्वाधिक दुःखद् घटना खान अब्दुल गफ्फार का भारत आना नहीं, अपितु भारत आकर यहां के निवासियों को लांछित करना, विदेशों में भारत के सम्मान को घटाना, राष्ट्रद्रोही तत्वों को खान द्वारा बढ़ावा दिया जाना और सबसे अधिक भारत के खून पसीने की गाढ़ी कमाई को विदेश ले जाना है । इतना ही नहीं उसका कुछ भाग अल-फतह जैसी भारत-द्रोही शक्तियों को भेंट करना भी है ।

यह घाव अभी भरा नहीं था कि लेनिन शताब्दी की धूम सामने आ गई । लेनिन शताब्दी मनाने वालों का एक भाग एक ओर तो लेनिन की वाह वाही कर रहा है और दूसरी ओर सरकारी बापू की तस्वीर के साथसाथ उसके साहित्य को भी नेस्त-नाबूद करने में अपने पुनीत कर्तव्य का पालन कर रहा है ।

हम सहयोगी पांचजन्य के इस कथन से सर्वथा सहमत हैं कि लेनिन का मूल्यांकन एक रूसी राष्ट्रपुरुष के रूप में ही किया जाना चाहिए, भारत के राष्ट्रपुरुष के नाते नहीं । आज भारत में लेनिन जयन्ती का जो इतना डिमडिम बज रहा है उसका प्रमुख कारण यही है कि लेनिन के पीछे रूस की विशाल सैनिक एवं आर्थिक शक्ति खड़ी है । आखिर क्यों नहीं भारत में मैजिनी और गैरीबाल्डी की जयंतियों को इतने धूमधाम से मनाया जाता जब कि सब जानते हैं कि हमारे स्वातन्त्र्य संग्राम को उनसे कहीं अधिक प्रेरणा मिली थी । वस्तुतः हम आज लेनिन की नहीं लेनिन के माध्यम से रूस की शक्ति की पूजा

कर रहे हैं और यहीं हमारी आजादी को भारी खतरा छिपा हुआ है। क्योंकि इस कृत्रिम वातावरण से हम अपनी नई पीढ़ी को गुमराह होने का अवसर देते हैं और तब वह सब कुछ होता है जो आजकल कलकत्ते में हो रहा है।

और कलकत्ता ही क्यों, दिल्ली विश्वविद्यालय के किसी भवन की कोई भी दीवार ऐसी नहीं जिसको नक्सलपन्थी नारों से पोता न गया हो। इतना ही क्यों, शक्ति पूजा का यह प्रवाह उन तरुणों में भी आ गया है जिसको राष्ट्रवादी कहा जाता था। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हमें दिल्ली के एक क्षेत्र में आयोजित लेनिन शताब्दी समारोह में मिला। **उस समारोह के आयोजकों में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के स्वयंसेवकों एवं स्वयं को हिन्दू महासभाई ही नहीं अपितु देवतास्वरूप भाई परमानन्द का मानसपुत्र कहने वाले व्यक्ति सम्मिलित थे और बड़े उत्साह से वह लज्जाजनक तैयारियां कर रहे थे।**

क्या पतन की ओर भी कोई पराकाष्ठा हो सकती है ?

सुरूप सुन्दरियां और श्वेत बाघ

समाचार है कि ओसाका में हो रहे विश्व मेले–एक्सपो ७०–में भारतीय मण्डप में काम कर रही भारतीय युवतियां इतनी लोकप्रिय हुई हैं कि प्रतिदिन मण्डप देखने आने वाले ६० हजार व्यक्तियों में से अनेक उनके साथ चित्र खिंचवाने के लिए लालायित रहते हैं। भारतीय कन्यायें भी उनकी यह इच्छा पूरी करने में संकोच नहीं करतीं। भारतीय मण्डप के महाआयुक्त श्री एच०डी० शौरी ने संवाददाताओं को १९ अप्रैल को उक्त सूचना देते हुए बताया कि भारत की सुन्दर युवतियां मुस्कराते हुए चित्र भी खिंचवाती हैं और हस्ताक्षर मांगने पर हिंदी में हस्ताक्षर भी करती हैं।

श्री शौरी ने बताया कि भारतीय मण्डप का दूसरा आकर्षण सफेद बाघ है, जिसके जापान पहुंचने के पहले ही उसकी खबरें जापानी समाचार पत्रों में अनायास ही छपती रहीं और दूरदर्शन पर प्रसारित की गईं, फिर पहुंच जाने पर छपीं और बाद में एक बार उसे जरा सा जुकाम हो गया तब भी पत्रों में खूब समाचार प्रकाशित हुए और दूर-दर्शन पर चित्र दिखाए गए।

उक्त समाचार किसी प्रकार की समीक्षा की अपेक्षा नहीं रखता। जगतगुरु और विश्ववन्द्य भारत इतनी सस्ती लोकप्रियता को लालायित होगा क्या इसकी कल्पना की जा सकती है। हमें श्री गौरी सदृश अधिकारियों की बुद्धिमत्ता पर हंसी आती है जो इस प्रकार समाचारों के प्रकाशन को राष्ट्रीय महत्व की बात समझते हैं।

विशेषाधिकार और कर्तव्य

समाचार पत्रों के नियमित पाठकों ने अनुभव किया होगा कि विगत मास में किसी भी तिथि का कोई भी समाचार पत्र ऐसा न होगा जिसमें कोई न कोई और किसी न किसी के विशेषाधिकार का समाचार इस अथवा उस रूप में प्रकाशित न हुआ हो। संसद के विशेषाधिकार के प्रश्न पर तो आपको इसी अंक में अन्यत्र पढ़ने को मिला ही होगा, यहां हम केवल संसद के विशेषाधिकार की नहीं अपितु उन सभी विशेषाधिकारों की चर्चा कर रहे हैं जिनकी गूंज विगत मास में छाई रही है।

अनुपम ग्रंथ महाभारत में शास्त्रों का सार सूत्ररूप में समझाते हुए कहा गया है—"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।" अर्थात् जिस आचार, विचार, व्यवहार अथवा क्रिया को व्यक्ति स्वयं के लिए अनुपयुक्त समझता है वैसा ही उसे अन्य व्यक्ति के लिए भी समझना चाहिए।

अपने लिए सभी प्रकार की सुख-सुविधा एवं विशेषाधिकार की मांग करने वाले उन संसद सदस्यों की बुद्धिमत्ता पर क्या कहा जाए जिन्हें आई० सी० एस० अधिकारियों के विशेषाधिकार सह्य नहीं, न्यायपालिका का विशेषाधिकार स्वीकार्य नहीं, न्यायाधीशों के विशेषाधिकार के प्रति उनकी सहमति नहीं, देशी नरेशों को दिए गये विशेषाधिकार उन्हें सुहाते नहीं।

ऐसे व्यक्ति जब अपने लिए सुन्दर एवं सुखप्रद निवास की मांग, रेल भाड़े में रियायत, हवाई यात्रा में रियायत, विदेशी मुद्रा में रियायत, दुर्लभ अथवा अलभ्य वस्तुओं में प्राथमिकता, अपनी संतति के, विद्यालय अथवा विश्वविद्यालय प्रवेश में वरीयता, इतना ही नहीं दुग्ध वितरण केन्द्र की प्रणाली में भी अपने लिए विशेषाधिकार की मांग करते हैं तो उनके मुख से यह शब्द शोभाजनक प्रतीत नहीं होता कि अमुक आई०सी०एस० अधिकारी हवाई जहाज से क्यों गया अथवा इतने वर्ष तक विदेश में किस प्रकार रहा या अमुक न्यायाधीश ने ऐसा निर्णय क्यों दिया, या अमुक राज्य के नरेश को अमुक रियायत क्यों दी गई ?

इस सबसे हमारा अभिप्राय यह नहीं कि आई०सी०एस० अधिकारी, न्यायाधीश अथवा नरेशों के विशेषाधिकार बरकरार रहें। हमारा अभिप्राय तो केवल विरोधाभास की ओर संकेत करना है।

प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के विशेषाधिकार का प्रश्न बहुत पहले उठ चुका है। क्योंकि उसके बाद न कोई ऐसा अड़ियल प्रधानमन्त्री आया और न दब्बू राष्ट्रपति, मिली भगत से काम चलता रहा इसलिए इस प्रश्न की पुनरावृत्ति नहीं हुई।

राज्यों एवं केन्द्र के विशेषाधिकार का प्रश्न कछुए के सिर की भांति खोल में से बाहर निकलता है और किसी प्रकार की विपरीत सी आहट पा कर फिर भीतर घुस जाता है। दल के अध्यक्ष और नेता के विशेषाधिकार की चखचख नित्य ही सुनने में आती है। ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण हैं जो इस विशेषाधिकार के प्रश्न पर प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

स्वतन्त्र भारत के २२ वर्षों में हमने किसी संसद सदस्य के मुख से भूले भी यह नहीं सुना कि हमारा यह कर्तव्य है अथवा संसद का यह कर्तव्य है। हां, दूसरों का कर्तव्य सुझाने में वे पीछे नहीं रहते सम्भवतया इसी में अपने पुनीत कर्तव्य की इतिश्री समझते हों।

विशेषाधिकारों की दुहाई देने वाले संसद सदस्यों, न्यायपालिकाओं, न्यायाधीशों, नरेशों, राज्यों एवं केन्द्र के मन्त्रियों से हमारा यही कहना है कि अधिकार की अपेक्षा यदि वे कर्तव्य की रट लागाना आरम्भ कर दें तो उन्हें विशेषाधिकारों के लिए कभी चिन्तित होना ही नहीं पड़ेगा। अपने अधिकार की मांग करने वालों से हमारा कहना है कि वे दूसरों के अधिकारों को भी पहचानें।

तस्कर पाक राजदूत

एसोसियेटेड प्रेस समाचार समिति के अनुसार इटली की पुलिस ने ट्यूनेशिया स्थित पाकिस्तानी राजदूत प्रिंस हारून अल रसीद को १३ अप्रैल को इटली में अवैध चरस व्यापार में भाग लेने के सन्देह में गिरफ्तार कर लिया। राजदूत के साथ एक जर्मन फिल्म अभिनेत्री और उसके एक इटालियन मित्र को गिरफ्तार किया गया है। पुलिस ने इन व्यक्तियों पर मादक पदार्थ रखने तथा उनका तस्कर व्यापार करने का आरोप लगा कर उन्हें जेल भेज दिया है। इटली की पुलिस ने कुछ दिनों से मादक द्रव्य रखने वालों के विरुद्ध धर-पकड़ की कार्रवाई तेज कर दी है।

इटली की पुलिस का कथन है कि पाक राजदूत एवं अन्य तस्करों की गिरफ्तारी रविवार १२ अप्रैल की रात को हुई थी। अनुमान है कि आगे छानबीन करने पर कुछ और व्यक्ति गिरफ्तार किये जा सकते हैं। पाक राजदूत को जब गिरफ्तार किया गया तो उसने राजनयिक मुक्ति की दलीलें दीं, किंतु उन्हें यह बताया गया कि यह सुविधा उनको या तो उनके देश में मिल सकती हैं या उस देश में जहां के वे राजदूत हों।

जिस देश के ऐसे राजदूत हों उसके शासक कैसे होंगे, इसका अनुमान लगाने में किसी को किसी प्रकार की कठिनाई नहीं हो सकती। ::::

साहित्य समीक्षा

श्रेय–सम्पादकद्वय डा० रामदत्त भारद्वाज तथा मोहनलाल श्रीवास्तव; कार्यालय–सी-३-३१ ए, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-२७; मूल्य एक प्रति १.५० वार्षिक ५ रुपया।

श्रेय का प्रवेशांक प्रस्तुत है। अल्प समय में सीमित साधनों से जितनी सुन्दर पत्रिका निकल सकती थी उतनी सुन्दर यह है। सभी साहित्यिक सद्गुणों से सम्पन्न। तदपि विकासवाद के सिद्धान्तानुसार भावी अंकों में और निखार आने की सम्भाव्यता को तो स्वीकारना ही चाहिये।

श्रेय भारतीय साहित्यकार संघ की मुख पत्रिका है। इसका प्रकाशन त्रयमासिक होगा। देश की साहित्यिक संस्थानों में भारतीय साहित्यकार संघ की भूमिका अपना विशेष महत्व रखती है, उसी प्रकार की महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का श्रेय 'श्रेय' को भी प्राप्त होगा, इसमें सन्देह नहीं।

काव्य और काव्यशास्त्र–आचार्य पं० किशोरीदास वाजपेयी, प्रकाशक जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर, मूल्य एक रुपया।

प्रस्तुत पुस्तिका के ४४ पृष्ठों में आचार्य जी के तीन व्याख्यान–काव्य का उद्भव और विकास, हमारा काव्यशास्त्र, काव्यार्थ न समझने से अनर्थ–संकलित हैं, जो उन्होंने जबलपुर विश्वविद्यालय के त्रयोदश दीक्षान्त समारोह के अवसर पर प्रसार व्याख्यानमाला के अन्तर्गत दिये थे। आचार्य जी न केवल हिन्दी के अपितु संस्कृत वाङ्मय के भी प्रकाण्ड विद्वान हैं। हिन्दी में वर्तनी का निर्धारण तो उन्होंने किया ही है। प्रस्तावक के इस कथन से हम सर्वथा सहमत हैं कि "भारतीय काव्य-शास्त्र के विभिन्न सम्प्रदायों और उनके पारस्परिक सम्बन्धों पर आचार्य वाजपेयी ने सूत्रवत् शैली में गहन विचार किया है। मेरा विश्वास है कि इस पुस्तिका से काव्यशास्त्र के अध्येताओं को अनेक मौलिक विचार विन्दु प्राप्त हो सकेंगे और विवेच्य विषय को सही परिप्रेक्ष में समझने में बहुत सुविधा होगी।

श्री गुरुदत्त की बहुचर्चित एवं बहुप्रशंसित रचना

जवाहरलाल नेहरू एक विवेचनात्मक वृत्त

का नया संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण

भारत गांधी नेहरू की छाया में

छपकर तैयार है। नेहरू की स्वरचित जीवनी, श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, श्री एन० वी० गाडगिल, महात्मा गांधी की जीवनी लिखने वाले श्री प्यारेलाल तथा अन्य प्रमुख लेखकों की रचनाओं में से लगभग २५० उद्धरणों के आधार पर यह पुस्तक लिखी गयी है तथा राजनीति में रुचि रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयोगी है। मूल्य पाकेट संस्करण केवल ४.००

समाजवाद एक विवेचन

समाजवाद क्या है? धर्म क्या है? धर्मवाद क्या है? क्या दोनों में समन्वय हो सकता है? मूल्य १.००

गांधी और स्वराज्य

देश की राजनैतिक अधोगति क्यों हुई? क्या स्वराज्य गांधी जी की करनी से मिला है? मूल्य १.००

भारत में राष्ट्र

भारत में राष्ट्र कौन सा है? हिन्दू की परिभाषा क्या है? हिन्दू के लक्षण तथा हिन्दू राष्ट्र की विवेचना। मूल्य १.००

धर्म संस्कृति और राज्य **श्री गुरुदत्त** मूल्य ८.००

धर्म तथा समाजवाद ,, ,, मूल्य ६.००

श्रीमद्भगवद्गीता एक विवेचन ,, ,, मूल्य १५.००

इतिहास में भारतीय परम्पराएं ,, ,, मूल्य १२.००

प्राप्ति स्थान

भारती साहित्य सदन सेल्स

३०/९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे)

नई दिल्ली-१

भारतीयकरण

१ पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि शाश्वतवाणी का आगामी अंक एक विशेषाँक होगा।

२ विशेषांक का विषय है 'भारतीयकरण'।

३ आज भारतीयकरण के ऊपर भारतीय समाज में खूब ले-दे हो हो रही है। यह कितना हास्यास्पद है कि भारत देश में, भारतीयों के प्रतिनिधि, भारतवासियों के भारतीयकरण का विरोध कर रहे हैं।

४ भारतीयकरण का अभिप्राय क्या है ? इसका विरोध क्यों हो रहा है ? देश की राजनैतिक परिस्थिति के सन्दर्भ में इस समस्या का विश्लेषण इस अंक की विशेषता होगी।

५ यह कहना सत्य से दूर नहीं होगा कि 'शाश्वत वाणी' जैसी अनूठी पत्रिका का यह विशेषांक भी अनूठा ही सिद्ध होगा।

६ इस अंक के कुछ लेखक हैं—सर्वश्री गुरुदत्त, बलराज मधोक, टेकचंद्र शर्मा, भक्त रामशरणदास, निरंजन वर्मा (संसद सदस्य), मोहनलाल श्रीवास्तव, डॉ० प्रभाकर माचवे, अवनींद्रकुमार विद्यालंकार, पं० माधवाचार्य शास्त्री एवं कई अन्य।

७ इस अंक का मूल्य होगा केवल मात्र पांच रुपये, परन्तु वार्षिक ग्राहकों को विना मूल्य प्राप्त होगा। जिन पाठकों ने आगामी वर्ष का शुल्क अभी तक नहीं भेजा, कृपया तुरन्त भेजें जिससे यह अंक उन्हें बिना मूल्य भेजा जा सके।

भारतीय संस्कृति परिषद् के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं शक्तिपुत्र मुद्रणालय, दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

जुलाई १९७० वर्ष १० अंक ७ रजि० नं० ६६८६/६०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत संस्कृति परिषद् के प्रकाशन

१. इतिहास में भारतीय परम्पराएं

पाश्चात्य इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास को जो गलत-सलत करने का षड्यन्त्र रचा था तथा उनके अनुगामी भारतीय इतिहासकार जो उस गलत इतिहास को लोगों के गले उतार रहे हैं, इसकी व्याख्या इस पुस्तक में है। लेखक ने अत्यन्त ही कुशलता तथा युक्ति से उनकी मान्यताओं का खण्डन कर इतिहास की भारतीय परम्पराओं का दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया है।

मूल्य रु० १०.००

२. श्रीमद्भगवद्गीता एक अध्ययन

प्रायः प्रत्येक मनीषी ने गीता पर विवेचना लिखने का प्रयास किया है। परन्तु इस विवेचना की अपनी विशेषता है। लेखक की मान्यता है कि गीता में जो ज्ञान का भण्डार है, वह कर्म की प्रेरणा के निमित्त है।

मूल्य रु० १५.००

३. भारत गान्धी नेहरू की छाया में

लगभग २५० उद्धरणों के आधार पर रचा गया यह ग्रन्थ नेहरू जी की राजनैतिक जीवनी है। प्रायः उद्धरण श्री नेहरू की अपनी रचनाओं में से लिये गये हैं। यह पुस्तक चित्र का बिल्कुल दूसरा और वास्तविक रूप दर्शाती है।

मूल्य १०.०० (सम्पूर्ण पाकेट संस्करण ४.००)

४. धर्म संस्कृति तथा राज्य

तीनों की विवेचना, तीनों का परस्पर सम्बन्ध, यह इस पुस्तक का विषय है। अत्यन्त ही सरल भाषा में यह पुस्तक लिखी गयी है, परन्तु विषय अत्यन्त ही गम्भीर है।

मूल्य रु० ८.००

उपर्युक्त सभी रचनाओं के रचयिता हैं श्री गुरुदत्त

शाश्वत वाणी

ऋतस्य॒ सानावधि॑ चक्र॒माणाः रिहन्ति॒ मध्वो॑ अ॒मृत॑स्य॒ वाणीः॑ ॥

ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक

श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता

प्रो० बलराज मधोक

श्री सीताराम गोयल

सम्पादक

अशोक कौशिक

सम्पादकीय कार्यालय

७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय

३०/९०, कनाट सरकस,

नई दिल्ली-१

फोन : ४७२६७

मूल्य

एक अङ्क रु. ०.५०

वार्षिक रु. ५.००

सम्पादकीय

अपने ही घर की बात

मत-भेद हो जाना मनुष्य के स्वभाव में है, परन्तु कार्य-भेद हो जाना घर के भीतर को बाहर की स्थिति में बदल देता है।

कभी जब घर के पुरखा का कार्य अहितकर समझ में आने लगता है तब घर के सदस्यों के लिये दो मार्ग रह जाते हैं। एक तो यह कि पुरखा के अधिकार को अस्वीकार कर दिया जाये और दूसरा यह कि घर को छोड़ कर नया घर बसाया जाये।

पुरखा को अधिकारच्युत करने के भी दो उपाय हैं। एक तो घर के घटकों को इसके लिये प्रेरणा दी जाये और दूसरे यह कि उसकी हत्या कर दी जाये।

हमारा विचार है कि पुरखा को अधिकार-च्युत करने की दूसरी विधि विशेष परिस्थितियों में ही उपयुक्त है। यहां इतना समझ लेना चाहिये कि हमारा यहां हत्या से सम्बन्ध जीव-नान्त करने से नहीं है। यद्यपि जीवनान्त करना भी क्षम्य हो सकता है, परन्तु यहाँ घर की समस्याओं में हत्या से हमारा अभिप्राय नैतिक हत्या से है। झूठ बोलकर अथवा लोभ, मोह, भय इत्यादि अस्वाभाविक बातों के बल पर किसी

को पुरखा की पदवी से हटा देना है। इसको भी हम कुछ विशेष परिस्थितियों में ही स्वीकार करने योग्य मानते हैं। सामान्य परिस्थिति में इस प्रकार पुरखा बदलने से यह अच्छा होता है कि उस घर को छोड़ कर पृथक् घर बना लिया जाये।

परन्तु घर को छोड़ने का एक यह भी अर्थ होता है कि घर के केन्द्रीय आधार से ही मतभेद है। उदाहरण के रूप में एक परिवार अपने निर्वाह के अतिरिक्त एक पाठशाला का संचालन भी कर रहा है। ऐसी स्थिति में घर छोड़ने का अर्थ यह भी हो जायेगा कि पाठशाला का विरोध नहीं तो उससे अरुचि अवश्य है।

उसमें रुचि रखते हुए भी घर को छोड़ना सम्भव नहीं। ऐसी स्थिति में घर को छोड़ने की अपेक्षा घर के घटकों को अपने मतानुकूल बनाना ही एक मात्र उपाय है और वह अनुकूलन प्रक्रिया भी प्रेरणा से ही होनी चाहिए।

यही बात किसी समाज अथवा समुदाय के लिये आवश्यक है। यदि समाज केवल जीविकोपार्जन के लिये एक संगठन मात्र हो तब तो मतभेद होने पर और समाज के नेता को अपने मतानुसार न कर सकने पर उस समाज को छोड़ना सहज है। समाज के घटकों को प्रेरणा देकर नेता को बदला भी जा सकता है।

परन्तु अधिकांश समाजों का संगठन आर्थिक उपलब्धियों के अतिरिक्त उद्देश्यों से होता है। आर्थिक उपलब्धियाँ तो उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये ही होती हैं। उद्देश्य सदा साधनों से पृथक् होते हैं और साधनों पर प्रभावी होते हैं। हमारा इससे यह अभिप्राय है कि उद्देश्य के निमित्त साधन जुटाने के लिये उद्देश्य नहीं बनाये जाते।

उदाहरण के रूप में किसी एक देश में एक समाज रहता है। जैसे भारत में रहने वाला समाज हिन्दू है। हिन्दू समाज का कम से कम एक उद्देश्य तो है ही कि उसकी देश के प्रति भक्ति है। जिस किस उपाय से भी देश एक बना रहे, यह उद्देश्य तो है। यद्यपि हम इतने मात्र उद्देश्य को एक देश के समाज के लिये पर्याप्त नहीं समझते, परन्तु यह कम से कम हैं। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

यदि देश के नेता देश को धन-धान्य से पूर्ण करने के लिये देश विभाजन अथवा देश के घटकों में फूट और वैमनस्य उत्पन्न करने लगें तो वे उस परिवार के पुरखा जैसी बात करते हैं जो परिवार की सम्पन्नता और समृद्धि के लिये भाइयों-भाइयों में, बहन-भाइयों में, माँ-बेटों में और बाप-बेटियों में

झगड़े कराने लगे। जैसे इस प्रकार के परिवार को छोड़ देना ठीक रहता है वैसे ही ऐसे देश को छोड़ देना भी ठीक होता है। यदि परिवार के समक्ष केवल धनोपार्जन ही उद्देश्य हो तो परिवार टूटता है। ऐसे परिवार को टूटना ही चाहिये।

यही बात देश के समाज की है। जो लोग किसी देश के सम्मुख केवल धन-धान्य सम्पन्न होना कार्य मानते हैं वे किसी न किसी अवसर पर देश के टुकड़े करने का आयोजन करते हैं। धन सम्पदा के आधार पर संगठन न बनते हैं और न बने रह सकते हैं। चोर और डाकुओं के संगठन भी अस्थाई होते हैं और उनमें भी फूट पड़ने पर उसके परिणाम भयंकर होते हैं।

देश के नेता लोग कुछ 'स्लोगन' (समाघोष) चालू कर भ्रम उत्पन्न कर अपने अनुयाइयों को अपने साथ रखने का यत्न करते हैं। समाघोष किसी उद्देश्य के लिये भी होते हैं। यदि उद्देश्य श्रेष्ठ और सत्य पर आधारित हो तो समाघोष संगठन निर्माण करने में सफल होते हैं और संगठन को स्थाई रख सकते हैं परन्तु अधिकांश समाघोष मिथ्या, मनोद्गारों को उभारने और दूसरों की निन्दा करने के लिए चलाये जाते हैं। ऐसे समाघोष समय पाकर प्रभावहीन और हानिकर सिद्ध होने लगते हैं।

कुछ भी हो, हमारा यह सुविचारित मत है कि मिथ्या एवं युक्ति रहित समाघोष नेता की अनभिज्ञता और अदूरदर्शिता के सूचक होते हैं। ऐसे समाघोष संगठन को खोखला ही करते हैं।

जब समाघोष विपक्षियों से चुराये गये हों तो संगठनकर्ता अपने संगठन की जड़ों में तेल देकर विपक्षियों का समर्थन करने वाले ही सिद्ध होते हैं।

सिद्धान्त रूप से हमने यह लिखा है कि प्रत्येक संगठन का धन-धान्य के अतिरिक्त भी कुछ उद्देश्य होना चाहिये। धन-धान्य के आधार पर बने संगठन टूट जाते हैं।

हमने यह भी लिखा है कि संगठन का उद्देश्य यदि धन-सम्पदा एकत्रित करने के अतिरिक्त हो, तो जितना वह हितकर और कल्याणकारी होगा, उतना ही संगठन भी सुदृढ़ होगा और तब मतभेद फूट का कारण नहीं होगा। फूट प्रेरणा और उपदेशों तक ही सीमित रहेगी। इस अवस्था में मत परिवर्तन उद्देश्य के लिये होगा।

हमने एक बात और लिखी है कि उद्देश्य होते हुए भी समाघोषों द्वारा संगठन स्थिर रखने में बहुत सावधानी का प्रयोग करना चाहिये। समाघोष मिथ्या न हों, युक्तियुक्त हों, दूसरों को अपशब्द कहने वाले न हों, और सत्य आधार पर स्थित हों।

समाघोषों में एक बात यह भी ध्यान रखने की है कि विपक्षियों के समाघोष चुराये जायेंगे तो उससे विपक्षियों का ही समर्थन होगा और अपनी आलोचना होगी।

हम भारत में हिन्दू समाज को अपना समाज मानते हैं। इसलिये नहीं कि यह किसी प्रकार का आर्थिक संगठन है, वरंच इस कारण कि हिन्दू संगठन अर्थोपलब्धि से बहुत ऊँचा है। एक शब्द में हम यह कह सकते हैं कि इस संगठन की जो संस्कृति है वह मानव कल्याण के लिये है।

हिन्दुओं को हम प्राचीन आर्य अर्थात् वैदिक संस्कृति का वर्तमान स्वरूप मानते हैं। इस संस्कृति के कारण ही इस हिन्दू, भारतीय अथवा आर्य, संगठन को टूटने नहीं देना चाहते। हिन्दू समृद्ध है अथवा निर्धन, हम इस संगठन को इस कारण स्वीकार अथवा अस्वीकार करना नहीं चाहते।

जैसे किसी परिवार का संगठन इस कारण चलता हो कि उसे एक पाठशाला चलानी है तो परिवार में आर्थिक विषयों पर मत-भेद होते हुए भी पाठशाला के कारण परिवार रखना पड़ता है। यही बात हिन्दू समाज के विषय में हमारे मन में है।

हां, यदि मतभेद हिन्दू संस्कृति के विषय में हो तब तो घर से बाहर होने की बात हो जायेगी।

ऐसी स्थिति आज अँग्रेजों द्वारा चलायी गयी शिक्षा पद्धति से उत्पन्न हो गयी है। इस शिक्षा ने हिन्दु परिवारों में ही हिन्दू के विषय में मत-भेद पैदा कर दिया है। परिणाम यह हुआ है कि लोग हिन्दू परिवार (समाज) को छोड़ कर बाहर जा रहे हैं।

अतः यह आवश्यक हो गया है कि हिन्दू की परिभाषा स्पष्ट की जाये। भारत हिन्दुस्तान नहीं। भारतीय हिन्दू नहीं। ये दोनों कथन इस बात के सूचक हैं कि कुछ लोग मैकॉले की शिक्षा के प्रभावाधीन हिन्दू परिवार (समाज) छोड़ कर बाहर हो गये हैं।

कुछ हमारे जैसे लोग हैं जो वैदिक, आर्य, भारतीय और हिन्दू को पर्यायवाची मानते हैं। उनके लिये भी यह आवश्यक है कि अपने और अपने परिवार के लोगों के लिये इन शब्दों का अर्थ स्पष्ट करें।

हमारा यह मत है कि यह (हिन्दू, भारतीय, आर्य) संगठन कोई आर्थिक संगठन नहीं है। यह भौगोलिक सगठन भी नहीं है।

यद्यपि इस संगठन के लिये धन-सम्पदा रखना हितकर है; साथ ही इस संगठन का अपना घर (देश) होना भी आवश्यक है, तदपि इस संगठन का आधार धन-सम्पदा अथवा देश नहीं है।

वैदिक संस्कृति भारतीय अथवा हिन्दु संस्कृति के नाम से प्रसिद्ध है। हिन्दु समाज का अस्तित्व इसी के आधार पर है। क्या इसे विनष्ट होने दें ?

हां ! यदि इस में कुछ दूषित, मिथ्या अथवा अहितकर तत्त्व आ गया हो तो इसे छोड़ना ही ठीक रहेगा। तब इसके स्थान पर इससे कुछ श्रेष्ठ लाकर रखना होगा। यह नहीं कि हिन्दु संस्कृति को मिटाकर इसके स्थान पर अर्थ-व्यवस्था उद्देश्य बना दिया जाये। यदि ऐसा किया गया तो संस्कृति तो विनष्ट होगी ही; साथ ही समाज विखण्डित हो जायेगा। देश और जाति के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे।

हिन्दु संस्कृति क्या है ? इस विषय में हम अनेक बार पहले लिख चुके हैं। यहां हम हिन्दु समाज में रहते हुए उन राजनीतिक संगठनों को सचेत करना करना चाहते हैं जो राजनीतिक लाभों के लिये सस्कृति को शुद्ध आर्थिक रूप देने का यत्न कर रहे हैं।

उन राजनीतिक संगठनों को हम कुछ नहीं कहते जो अपने को न हिन्दु-स्तानी समझते हैं और न आर्य। हमारा संकेत उन संगठनों के विषय में ही है जो हिन्दू का नाम लेते हैं। उनको समझ लेना चाहिये कि हिन्दु संगठन का आधार सांस्कृतिक है। देश का राज्य अहिन्दुओं के हाथ में चले जाने पर भी यह संगठन रहा है और रहना चाहिये।

हमारे विचार में देश में इस समय अहिन्दु राज्य उपस्थित है। हम इस अहिन्दु राज्य में भी हिन्दु संस्कृति जीवित रखना चाहते हैं।

हिन्दु समाज के लिये अपना राज्य आवश्यक समझते हुए भी हम राज्य के अभाव में संगठन को मरने नहीं देना चाहते। यही हमारा आशय है।

इसका अर्थ यह है कि हिन्दु संस्कृति के आधार को छोड़कर राजनीतिक आन्दोलन अहिन्दू आन्दोलन है। धन-सम्पदा अर्थात् अर्थ अकेला भी उद्देश्य नहीं है। अर्थ की उपलब्धि भी तब तक ही हितकर है जब तक यह संस्कृति की पोषक है।

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

जो व्यवहार अपने अनुकूल प्रतीत न हो, उसको दूसरों के साथ व्यवहार में न लाना, यही धर्म का सर्वस्व है। जो संगठन जैसा व्यवहार अपने साथ पसन्द नहीं करते, परन्तु स्वयं दूसरों के साथ वैसा करना चहते हैं, वे अधर्मी हैं तथा साम्प्रदायिक हैं।

ब्रह्म सूत्रों में प्रकृति का विस्तृत वर्णन

●

श्री गुरुदत्त एम० एस-सी०

यह बात निर्विवाद है कि व्यास मुनि के ब्रह्म सूत्रों में 'जिसे वेदान्त दर्शन भी कहते हैं' जीवात्मा और प्रकृति का वैसे ही वर्णन है जैसा कि परमात्मा का है।

महर्षि व्यास किस प्रकार प्रकृति का वर्णन करते हैं, यह इस लेख का विषय है।

प्रकृति का वर्णन आरम्भ करने से पहले महर्षि एक भ्रम का निवारण कर रहे हैं। कदाचित् अपनी दीर्घ दृष्टि से वह यह जान गये थे कि इस भारत में श्री स्वामी शंकराचार्य जैसे तर्कहीन व्यक्ति पैदा होंगे जो यह घोषणा करते फिरेंगे कि उपनिषद् ग्रन्थों में केवल परमात्मा का ही वर्णन है और उसका सार यह है —

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर: ।"

श्री स्वामी शंकराचार्य जी ब्रह्म से अभिप्राय केवल परमात्मा का लेते हैं। इस भ्रममूलक सिद्धान्त का खण्डन करने के लिये जीव और प्रकृति का प्रसंग आरम्भ करने से पूर्व महर्षि व्यास ने यह घोषित कर दिया था :

"स्मृत्यनवकाशदोषप्रसंग इति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात् ।।"

—(वे० द० २-१-१)

इसका अन्वय इस प्रकार है :—

स्मृति, अनवकाश, दोषप्रसङ्गा, इति, चेत्, न, अन्य, स्मृति, अनवकाश दोष प्रसङ्गात् ।।

अनवकाश के अर्थ हैं न दिखायी देने वाला, अनुपस्थित इत्यादि। सूत्र का अर्थ यह बनता है कि स्मृति (मनुष्यकृत) ग्रन्थों में किसी विषय का न उपस्थित होना दोष कहो, तो यह नहीं। कारण यह कि दूसरे ग्रन्थों में इसकी अनुपस्थिति होने से।

अभिप्राय यह है कि किसी विषय का किसी ग्रन्थ में न होना ग्रन्थ का दोष नहीं। जो विषय इसमें वर्णन किया है, किसी अन्य में अनुपस्थित हो सकता है।

मानिये किसी उपनिषद् में परमात्मा का ही उल्लेख है। उसमें लिखा है कि इस जगत् का स्रष्टा परमात्मा है तो इसमें जगत् के उपादान कारण का न होना ग्रन्थ में दोष नहीं; किसी अन्य ग्रन्थ में परमात्मा का उल्लेख नहीं भी हो सकता।

अतः कई उपनिषदों में यह लिखा है कि सत् से जगत् की सृष्टि ऐसे ही है जैसे सोने से भिन्न भिन्न भूषण बनाये जाते हैं। यह छान्दोग्य उपनिषद ६ १- १, २, ३, ४, ५, ६ और ७ में लिखा है। इसमें बनाने वाले अर्थात् निमित्त कारण का उल्लेख नहीं है।

सूत्रकार का कहना है कि इसका अर्थ यह नहीं कि परमात्मा है ही नहीं। कारण यह कि किसी अन्य ग्रन्थ में अथवा इसी ग्रन्थ के किसी अन्य स्थल पर प्रकृति का अनवकाश हो सकता है।

इतना लिखकर तुरन्त यह लिख दिया :—

'इतरेषां चानुपलब्धेः ॥'' (वे० द० २-१-२)

इतरेषाम् का अर्थ है इससे अन्य। परमात्मा के अतिरिक्त के 'न उपलब्धेः' न उपलब्ध होने से (भी यह नहीं समझना चाहिये कि उसका कहीं उल्लेख हैं ही नहीं)। इनका किसी एक स्थान पर अनवकाश (न लिखा होना) दोष नहीं। यह किसी अन्य ग्रन्थ अथवा स्थान पर लिखा हो सकता है।

इतरेषां···इस अर्थात् परमात्मा से अन्य। परमात्मा से अन्य का स्पष्ट अभिप्राय प्रकृति और जीव है।

यह बात सूत्र (२-१-४) में स्पष्ट कर दी गयी है। यह सूत्र है :—

''न विलक्षणत्वादस्य तथात्वं च शब्दात् ॥'' (वे०द० २-१-४)

वे (परमात्मा से इतर) विलक्षण न होने से इस (जगत्) के जैसे ही हैं। वेद प्रमाण से भी ऐसा ही पता चलता है।

अर्थात् प्रकृति और जीव कार्य जगत् के जैसे ही गुण रखते हैं।

इतना तो वर्णन किया दूसरे अध्याय के प्रथम पाद में और फिर इसी अध्याय के द्वितीय पाद में प्रकृति के विषय में विस्तार से लिखा है—

''रचनानुपपत्तेश्च न अनुमानम् ॥'' (वे० द० २-२-१)

रचना=जगत् की रचना; अनुपपत्तेश्च=(स्वयं) न हो सकने से;

न अनुमानम्=यह अनुमान कि अपने आप बन गयी है, ठीक नहीं।

अर्थात् सूत्रकार कहता है कि जगत् की रचना अपने आप नहीं हुई। स्वत: होने का अनुमान करने वाले गलत हैं। कारण यह कि उनका अनुमान अप्रतिष्ठित है। अप्रतिष्ठित से अभिप्राय यह है कि जो पूर्व सिद्ध न हुआ हो। कोई वस्तु बिना किसी के बनाये बनती नहीं। इस कारण जगत् रचना करने वाला भी कोई चेतन है। इसका उपदान कारण भी है।

इसके बाद सूत्रकार कहता है कि जगत् रचना स्वभाव से भी नहीं है। सूत्र है:—

"प्रवृत्तेश्च॥" (ब्र० सू० २-२-२)

और प्रवृत्ति अर्थात् स्वभाव से भी नहीं। नहीं पूर्व सूत्र से लिया है। कारण यह कि ऐसे कहीं देखा नहीं जाता। अनुमान से यह सिद्ध नहीं।

नास्तिक कहते हैं कि जैसे बच्चे को देखकर स्वत: मां के स्तनों में दूध उतर आता है, 'दूध अचेतन है' इसी प्रकार अचेतन जगत् की रचना होती है।

सूत्रकार कहता है कि यह भी नहीं। कारण यह कि मां चेतन है। चेतन के स्तनों से ही दूध टपकने की सम्भावना है। मृत शव से दूध नहीं टपकता।

और नास्तिकों की एक अन्य युक्ति का खण्डन किया है। वे कहते हैं कि ऊंचाई से जल नीचे गिरता है। इसमें सूत्रकार का कहना है कि जल ऊंचाई तक चेतन शक्ति के प्रभाव से ही पहुंचता है। यदि वह ऊंचाई तक चेतन द्वारा न ले जाया जाये तो वह नीचे गिर नहीं सकता।

इस विषय में सूत्र है:—

"पयोऽम्बुवच्चेत्तत्रापि॥" (ब्र०सू० २-२-३)

इन और अन्य सूत्रों में यह प्रकट कर कि जगत् का निमित्त कारण काई है, सूत्रकार लिखता है—

"अङ्गित्वानुपपत्तेश्च॥" (ब्र० सू० २-२-८)

इसका अर्थ स्वामी शंकराचार्य इस प्रकार करते हैं —

इतश्च न प्रधानस्य प्रवृत्तिरवकल्पते। यदि सत्वरजस्तमसामन्योन्य-गुणप्रधानभावमुत्सृज्य ········।

इससे भी प्रधान (प्रकृति) की प्रवृत्ति से (सृष्टि रचने की कल्पना) नहीं की जा सकती। क्योंकि सत्व, रज: और तम: की एक दूसरे के असम भाव करने से प्रधान होता है।

अभिप्राय यह कि प्रकृति के प्रत्येक परमाणु में तीनों गुणों के परस्पर

संतुलन करने पर साम्यावस्था स्वतः टूट नहीं सकती।

इसमें भी सूत्रकार ने एक प्रबल प्रमाण दिया है। वह इस प्रकार है—

"व्यतिरेकानवस्थितेश्चानपेक्षत्वात् ।।" (ब्र० सू० २-२-४)

इसका अर्थ यह है कि प्रकृति के किसी कण में जैसा है उससे विपरीत स्थिति नहीं हो सकती, जब तक किसी चेतन की अपेक्षा न हो।

Every particle of matter continues in a state of rest or motion with a constant speed in a straight line unless compelled by a force to change the state.

— Newton's first law of motion.

इस सूत्र में प्रकृति के एक परमाणु के भीतर की अवस्था बतायी है। परमाणु में तीन गुण सत्व, रजस् और तमस् हैं। ये साम्यावस्था में होते हैं।

साम्यावस्था भंग होने पर प्रकृति में परिवर्तन होने लगते हैं। यह जगत् रचना का आरम्भ है। ईश्वर यह अवस्था भंग करता है। ईश्वर चेतन है और जगत् का निमित्त कारण है।

ईश्वर का जगत् रचना में निमित्त कारण होना इस कारण भी माना जा सकता है कि —

'अन्यथानुमितौ च ज्ञशक्तिवियोगात् ।।" (ब्र० सू० २-२-६)

अनुमान लगाने वाले की बात कि प्रकृति में साम्यावस्था स्वतः भंग होती है, ठीक नहीं। क्योंकि भंग होने से जो कुछ रचना हुई है, वह किसी ज्ञानवान शक्ति के अभाव में नहीं हो सकती थी।

प्रकृति जड़ है। ज्ञानवान् नहीं हो सकती, अतः जगत् रचना जैसा सुव्यवस्थित कार्य किसी ज्ञानवान् शक्ति के वियोग (अभाव) में नहीं हो सकता था।

यहाँ तक तो सूत्रकार ने यह बताया है कि प्रकृति से स्वतः जगत् रचना नहीं हो सकती थी, परन्तु आगे उन लोगों के मत का खण्डन किया है जो कहते हैं कि प्रकृति है ही नहीं। सब ईश्वर ही है, जो कार्य जगत् में परिणित हुआ है। सूत्रकार लिखता है :—

"विप्रतिषेधाच्चासमञ्जसम् ।।" (ब्र० सू० २-२-१०)

और उपादान कारण और कार्य परस्पर विरोधी होने से असमंजस हो जायेगी।

विप्रतिषेधात् का अर्थ है कि परस्पर विरोधी होने से। असमंजस

का अभिप्राय है अयुक्तिसंगत। अभिप्राय यह कि यदि किसी चेतन निमित्त कारण के अतिरिक्त किसी उपादान अचेतन को नहीं मानेंगे तो बात अयुक्तिसंगत हो जायेगी।

युक्ति यह है कि कारण तथा कार्य में मूल रूप समानता होनी चाहिये। स्वर्णकार और भूषण में असमञ्जस है, समानता नहीं। इस कारण सुनार ही भूषण नहीं बना। सुनार ने भूषण बनाया है। बनाने वाले और कार्य जगत् में मूल गुणों में समानता नहीं होती, परन्तु स्वर्ण और भूषण के मूल गुणों में समानता है मूल पदार्थ एक होने से।

बहुत सुन्दरता से जगत् के उपादान कारण 'प्रकृति' को सिद्ध किया गया है। जगत् के मूल गुणों और प्रकृति के मूल भूत गुण में समानता होने से प्रकृति जगत् का उपादान कारण है। मूल गुण का ऊपर वर्णन किया है। सूत्र २-२-४ में बताया है कि प्रकृति में जड़त्व है। बिना किसी चेतन के आक्षेप के इसमें न तो गति उत्पन्न होती है और न ही गति में भेद। अर्थात् जड़त्व (inertia) इसका गुण है। यही जड़त्व गुण जगत् में पाया जाता है।

इसके बाद सूत्रकार, प्रकृति में साम्यावस्था भग होने पर क्या होता है, इसका वर्णन करता है। लिखा है :—

'महद्दीर्घवद् वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम् ॥'' (ब्र० सू० २-२-२१)

इस सूत्र का अन्वय इस प्रकार है :—

महत्, दीर्घवत् वा, ह्रस्व, परिमण्डलाभ्याम्।

अर्थ है .... महत् से दीर्घ बनने की भान्ति अथवा ह्रस्व से परिमण्डल बनने की भान्ति।

भान्ति, क्या ? वही जो उक्त सूक्त में बताया है। अर्थात् (प्रतिषेधात् असमञ्जस) गुणों में विरोध मानने पर असमञ्जस होगा।

प्रकृति के गुणों में साम्यावस्था (balanced state) भंग होने पर महत् प्रथम परिणाम है।

सांख्य दर्शन में यह लिखा है—सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृति प्रकृतेर्महान् ... ... । (सां० १-६१)

साम्यावस्था भंग होने पर महत् बनता है। प्रकृति का जड़त्व महत् में भी विद्यमान होता है। महत् से दीर्घ बनते हैं।

दीर्घ और परिमण्डल वैशेषिक दर्शन के पारिभाषिक शब्द हैं। महत् में तो प्रकृति की भान्ति पृथक् पृथक् परमाणु होते हैं, परन्तु जब परमाणुओं

में गुणों की परस्पर साम्यावस्था भंग होती है तो गुण आपस में आकर्षण-विकर्षण (attraction-repulsion) न करते हुए पड़ोस के परमाणुओं के गुणों में आकर्षणादि करने लगते हैं। इसमें द्वयणुक, त्रयणुक इत्यादि बनने लगते हैं। इन द्वयणुकों अथवा त्रयणुकों को दीर्घ कहते हैं।

महत् से दीर्घ बनते हैं। दीर्घ में कुछ सत्व गुण प्रधान होते हैं, कुछ रजोगुण प्रधान और कुछ तमोगुण प्रधान। ये ह्रस्व कहलाते हैं। ह्रस्वों से परिमण्डल बनते हैं। ह्रस्वों को अहंकार कहते हैं।

अपने एक पूर्व लेख में यह बता चुके हैं कि अहंकार वर्तमान वैज्ञानिक भाषा में इलैक्ट्रोन, प्रोटोन और न्यूट्रोन (Electron, proton and neutron) कहलाते हैं।

इससे जो कुछ बनता है, वह वर्तमान वैज्ञानिक भाषा में ऐटम (atom) कहलाता है। इसे आर्य दार्शनिक भाषा में 'परिमण्डल' कहा जाता है।

इस प्रकार ब्रह्म-सूत्र (२-२-११) में यह वर्णन किया है कि महत् से दीर्घ बनने तक और ह्रस्वों से परिमडण्ल बनने तक मूल (जड़त्व) ज्यों का त्यों बना रहता है।

आदि प्रकृति से महत्, महत् से अहंकार (ह्रस्व) और अहंकारों से परिमण्डल बनते हैं और जड़त्व ज्यों का त्यों चला आता है।

सूत्रकार आगे बताता है कि जगत् रचना में चेतन प्राणियों (जीव जन्तुओं) की रचना कैसी होती है? सूत्रकार कहता है :—

"समवायाभ्युपगमाच्च साम्यादनवस्थितेः॥"

(वै० द० २-२-१३)

समवायाभि + उपगमात् + च + साम्यात् + अनवस्थितेः।

समवायाभि का अभिप्राय है सम्पर्क होने से। उपगमात् का अर्थ है समीप आने से। किनके समीप आने से? लिखा है कि साम्यात् अर्थात् समान स्थिति के पदार्थ समीप आने से।

ऐसा होने से क्या होता है? पूर्व सूत्र में लिखा है 'तद्भावः। अर्थात् जीवों की सृष्टि होती है।

इस सृष्टि के होने के समय "अनवस्थितेः' अर्थात् अनवस्था होने से। अवस्था में परिवर्तन हो जाने से।

परिमण्डल बनने के उपरान्त प्रकृति की अवस्था में परिवर्तन हो जाता है।

समान स्थिति के पदार्थ क्या हैं? परमात्मा तो जड़ प्रकृति की

समान स्थिति का पदार्थ हो नहीं सकता। एक अन्य समान स्थिति का पदार्थ है। इसका उल्लेख दूसरे अध्याय के प्रथम पाद में किया है।

वहां सूत्र है:—

"भोक्त्रापत्तेरविभागश्चेत् स्याल्लोकवत् ॥

(वे० द० २-१-१३)

भोक्त्रापत्तेः, अविभागः, चेत्, लोकवत्, स्यात्। इस सूत्र में संशय है और इसका समाधान भी। अभिप्राय यह है कि संशय है: मनुष्य अन्न का भोक्ता होने से अन्न ही है। अन्न अचेतन है, अतः मनुष्य भी अचेतन है। सूत्रकार इस संशय का उत्तर देता है यदि यह कहते तो लोक का उदाहरण देख लो।

लोक का उदाहरण यह है कि मनुष्य में दो भाग हैं। एक शरीर दूसरा वह तत्त्व जो उसके मरने पर उसमें से चला जाता है। इसमें देखा यह जाता है कि भोग करता है जीवात्मा, परन्तु बनता है शरीर। भोग करने वाला शरीर नहीं। कारण यह कि मरने पर शरीर भोग नहीं कर सकता। इस पर भी अन्न से बनता है शरीर। अन्न के अभाव में शरीर क्षीण होता हैं। इस कारण यह बात गलत है कि भोग करने वाला भोग के समान हो जाता है।

इसमें एक उदाहरण भी दिया जा सकता है। एक मकान मालिक अपने मकान के फर्श टूट जाने पर सीमेण्ट, रेत बजरी से मरम्मत करता है। इससे मकान बनता है, परन्तु फर्श बनाने की आवश्यकता मालिक मकान को होती है।

इस प्रकार लोकवत् कहकर भोग करने वाले और शरीर दोनों में भेद कर दिया है।

+ + +

अन्तर्राष्ट्रीय हलचल

श्री आदित्य

कम्बोडिया इस समय भूमण्डल के देशों के ध्यान का केन्द्र बना हुआ है। यह हम अपने पिछले (दो मास पूर्व के) अंक में लिख चुके हैं कि कम्बोडिया और लाओस ने उत्तरी वियतनाम को दक्षिणी वियतनाम पर आक्रमण करने के लिये अड्डे निर्माण करने की स्वीकृति दे रखी थी।

यह किसलिये ? क्या इसलिये कि ये दोनों देश चाहते थे कि दक्षिणी वियतनाम पर उत्तरी वियतनाम की विजय हो जाये।

ऐसा प्रतीत होता है कि कम्बोडिया और लाओस निष्पक्ष थे। यह इस बात से स्पष्ट हो गया है कि जब युद्ध समाप्त हुआ तो उन्होंने उत्तरी वियतनाम वालों को अपने अड्डे उठा लेने को कहा था। वे अपने देश में युद्ध नहीं चाहते थे और यदि उनको ये अड्डे बनाने न दिये जाते तो कम्युनिस्ट उनके देश पर अधिकार कर लेते। उन्होंने किसी अन्य देश से कम्युनिस्टों के खिलाफ़ सहायता मांगने की अपेक्षा कम्युनिस्टों को अड्डे बनाने की स्वीकृति दे दी।

युद्ध की ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी थी कि उत्तरी वियतनाम युद्ध जारी नहीं रख सकता था। इस कारण कम्युनिष्टों को अपने अपने देश में चले जाने को कह दिया गया। उन्होंने जाने से इन्कार किया तो कम्बोडिया में विप्लव हो गया। वहां का राज्य पलट गया। राजकुमार नरोत्तम सिंह नख को अपदस्थ कर दिया गया और वहां के मन्त्री-मण्डल ने नया प्रधान मन्त्री चुन लिया।

नये मन्त्री-मण्डल ने अमेरिका से सहायता मांगी। अमेरिका के राष्ट्रपति निक्सन ने अपने अधिकारों से दक्षिणी वियतनाम की सेनाओं को कम्बोडिया में बढ़ कम्युनिस्टों के अड्डों को विनष्ट करने की आज्ञा दे दी।

इस पर अमेरिका में कुछ लोगों ने राष्ट्रपति के विपरीत अभियान चलाया और दिन प्रतिदिन यह अभियान बल पकड़ता गया। कैंट स्टेट विश्व विद्यालय के चार लड़के युद्ध विरोधी अभियान करते हुए पुलिस की गोली से मार डाले गये। इस घटना ने आग पर तेल का काम किया।

ऐसा प्रतीत होता है कि अब कांग्रेस और सीनेट भी निक्सन की इस आज्ञा के विरुद्ध हो गयी है। इस परिस्थिति से डर कर अथवा युद्ध से अरुचि होने के कारण राष्ट्रपति निक्सन के सचिव मण्डल में भी मतभेद हो गया है। अमरीकी सीनेट ने तो युद्ध के लिये धन की स्वीकृति बन्द कर दी है।

इसका परिणाम यह होगा कि अमेरिकन सेनायें कम्बोडिया से वापिस हो जायेंगी और परिणाम-स्वरूप दक्षिणी वियतनाम से भी नियत समय से पूर्व वापिस बुला ली जायेंगी।

निक्सन के विपरीत अर्थात् वियतनाम में युद्ध के विपरीत अमेरिका में आन्दोलन तो वहां के वाम-पंथियों ने आरम्भ किया था। ये वहां 'रैडिकल्ज़' कहलाते हैं। इनकी संख्या बहुत कम है, परन्तु इन्होंने इतना हो-हल्ला मचाया और उसमें अमेरिकन सिपाहियों के मरने का इतना भयानक चित्र उपस्थित किया कि भोली भाली अमेरिकन जनता इन रैडिकल्ज़ के पीछे हो गयी।

विवश राष्ट्रपति को वियतनाम से सेनायें बुलानी पड़ीं। इस समय कम्बोडिया की समस्या उपस्थित हो गयी। इससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्ण अमेरिका भड़क उठा है।

यद्यपि 'गैलप पोल' में अभी भी निक्सन के पक्ष में बहुमत प्रतीत हुआ है, परन्तु शोर मचाने वाले इतना ज़ोर ज़ोर से हल्ला कर रहे हैं कि 'मौन बहुमत' पराजित होता प्रतीत हो रहा है।

अब कम्बोडिया और वियतनाम से अमेरिका अपने सिपाही वापिस बुला लेगा और फिर क्या होगा ? यह विचारणीय है।

ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तरी वियतनाम चीन के सिपाहियों की सहायता से लाओस, कम्बोडिया, थाईलैण्ड पर अधिकार कर वहां कम्युनिस्ट राजनीति लागू कर देगा। इसको कुछ वर्ष भी लग सकते हैं, परन्तु यह होगा, ऐसा समझ में आ रहा है।

तब बर्मा और मलाया (मलेशिया) कम्युनिस्टों से घिर जायेगा। इसके उपरान्त बर्मा के साथ असम, नेफ़ा, नागालैण्ड, मनिपुर इत्यादि भारत के क्षेत्रों पर कम्युनिस्ट राज्य स्थापित करने का यत्न किया जायेगा।

यह शेष भारत के लिये हितकर होगा अथवा अहितकर, इसमें मतभेद है। कम्युनिस्ट विचारधारा के लोग कहते हैं कि भारत के लिये यह सौभाग्य होगा। कम्युनिस्ट विरोधी धारा के लोग इसे भारत के लिये अहितकर मानते हैं।

कुछ ऐसे सरल चित्त व्यक्ति भी भारत में रहते हैं जो यह समझ रहे हैं

कि यदि चीन ने भारत पर आक्रमण किया तो रूस उसकी सहायता करेगा।

हमारा विचार इससे भिन्न है। हम समझते हैं कि न तो चीन भारत पर आक्रमण करेगा और न ही रूस भारत की सहायता के लिये आयेगा। आक्रमण करना कम्युनिस्टों का सिद्धान्त नहीं। कम्युनिस्ट-पड़ोसी देशों में विप्लव के लिये उसी देश के कुछ उपद्रवी लोग नियुक्त किये जाते हैं। उन उपद्रवी लोगों की धन से, शस्त्रास्त्रों से और शुभ सम्मति से कम्युनिस्ट देश सहायता करते हैं।

किसी भी देश में उपद्रवियों की संख्या अधिक नहीं होती। उनके विरोध के लिये देशभक्त सदा अधिक संख्या में होते हैं, परन्तु इन दोनों पक्षों के बीच में एक विशाल जन समूह होता है जो अनेक प्रकार के कारणों से प्रभावित होता है। इनमें मुख्य कारण हैं :—

(१) अपने धन-सम्पद और जीवन से मोह;

(२) अराजकता के समय जान-माल के छीने जाने का भय;

(३) कम्युनिस्टों के राज्य में यह आशा कि खाने-पीने के लिये सबको मिलेगा;

(४) समानता, विशेष रूप में अवसर मिलने की समानता का प्रलोभन;

(५) कुछ 'बुद्धिमान' नेताओं का यह आशा दिलाना कि उनके देश में वह कुछ नहीं होगा जो चीन अथवा रूस में कम्युनिज्म स्थापित होने के समय हुआ था।

(६) यहां कम्युनिज़म हो जाने पर रूस और चीन देश का शोषण नहीं करेंगे। इत्यादि।

इन कारणों और विचारों से देशभक्तों को पराजित कर दिया जाता है। इन विचारों को फैलाने में चीन और रूस अपार धन व्यय कर रहे हैं।

भारत में तो भारत सरकार भी कम्युनिज्म के पक्ष में अपना धन और अपनी शक्ति का व्यय कर रही है। देश का दुर्भाग्य यह है कि यहां अपने को कम्युनिज्म-विरोधी कहने वाली संस्थायें भी कम्युनिज्म के पक्ष में वातावरण बना रही हैं।

खैर, यह तो अन्तर्राष्ट्रीय हलचल का विषय नहीं। यह भारत देश की भीतरी राजनीति से सम्बन्ध रखता है। अन्तर्राष्ट्रीय हलचल में कम्बोडिया पर चीन से प्रभावित कम्युनिस्ट राज्य स्थापित होने पर एक बात अवश्य होगी। वह यह कि वहां प्राचीन हिन्दु संस्कृति के बचे-खुचे चिह्न विनष्ट कर दिये जायेंगे।

(शेष पृष्ठ २३ पर)

जनसंघ के नये समाघोष

श्री गुरुदत्त

जनसंघ के अध्यक्ष श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने बम्बई में, (और उसके पहले दिल्ली में भी) यह घोषणा की है कि वे अट्ठारह वर्ष की आयु के बालक-बालिकाओं को मतदाता सूची में स्थान दिलवाने के लिये और काम करने के अधिकार के विषय में आन्दोलन करेंगे।

ये 'नारे' जनसंघ हृदय से ठीक समझ लगाने लगा है अथवा ये केवल इन्दिरा गांधी के नारों की भान्ति ध्यानाकर्षण के हेतु हैं, कहना कठिन है। यों तो इन्दिरा गांधी भी कहती है कि उसने समाजवाद की घोषणा (सत्य हृदय से) देश के कल्याण के लिये की है। देखा जाये तो इन्दिरा गांधी ने इच्छा अथवा अनिच्छा से अपने समाघोषों को कार्यान्वित करने का यत्न भी किया है। इस पर भी वे समाघोष देश के हित में नहीं हो सकते, ऐसा अधिकांश विद्वानों का मत है। प्रश्न यह है कि क्या जनसंघ के अध्यक्ष भी वही कुछ कर रहे हैं ?

इस प्रश्न के कई पहलू हैं। प्रथम तो यह कि इन समाघोषों का अर्थ क्या है ? दूसरी बात यह कि क्या जनसंघ इन समाघोषों के पक्ष में है ? तीसरा यह कि ये समाघोष देश के लिए हितकर होंगे अथवा हानिकारक ? चौथी बात यह कि यदि ये केवल मात्र दिखावे के लिये हैं तो यह क्या कुछ हानि अथवा लाभ कर सकते हैं ? पांचवीं बात यह कि यदि ये दिखावे के लिये हैं तो क्या यह जनसंघ दल को किसी प्रकार का लाभ पहुंचा सकते हैं ?

जब मैं जनसंघ के किसी कार्य अथवा वक्तव्य की आलोचना करता हूं तो जनसंघ के नेता रुष्ट हो जाते हैं। उनके मन में यह संशय उत्पन्न हो जाता है कि मैं जनसंघ को हानि पहुंचाने के लिये ऐसा कर रहा हूँ। ऐसा समझने वाले बुद्धिमानों को मैं यह बता देना चाहता हूँ कि जब से जनसंघ की स्थापना हुई है तब से इसके पक्ष में सक्रिय कार्य करता रहा हूं। यद्यपि इसकी कुछ नीतियों से आरम्भ से ही मतभेद रहा है और उन नीतियों पर भी अपने

विचार प्रकट करता रहा हूं, परन्तु इस दल का विरोध तो दूर मैं इसको सक्रिय सहयोग देता रहा हूं।

जनसंघ का एक विशेष उद्देश्य है और वह उद्देश्य कांग्रेस की उस नीति का विरोधी है जो वह सन् १९१६ से देश में चला रही है। इस नीति का एक स्वरूप था मुसलमानों की तुष्टि करना और दूसरा स्वरूप था हिन्दुओं को पंगु बना मुसलमानों के मोहताज बना रखना।

सन् १९१६ के इतिहास का अध्ययन यह बताता है कि गोखले और फ़िरोज़शाह मेहता की कांग्रेस दुर्बल पड़ गयी थी। होम रूल लीग की राजनीतिक क्षेत्रों में धूम थी। होम रूल लीग में मिस्टर जिन्ना इत्यादि कुछ मुसलमान भी थे। इस कारण गोखले इत्यादि के उत्तराधिकारी मोतीलाल नेहरू, चमनलाल सीतलवाद इत्यादि नेताओं ने कांग्रेस को बलशाली बनाने के लिये मुसलमानों को प्रसन्न करने का लखनऊ पैक्ट स्वीकार किया था।

तदनन्तर श्री तिलक को राजनीतिक क्षेत्रों में छोटा करने के लिये सन् १९१९ में ब्रिटिश सरकार की भक्ति का सूचक प्रस्ताव पास किया था।

सन् १९२०-२१ में देशभक्तों के विरोध पर भी खिलाफ़त आन्दोलन का समर्थन कर मुसलमानों को प्रसन्न करने का यत्न किया था। इसके उपरान्त सन् १९२२ से लेकर १९४७ तक मुसलमानों के अगणित फ़सादों में पहल करने पर भी गांधी, जवाहर और कांग्रेस हिन्दुओं को डांट-डपट कर मुसलमानों को प्रसन्न करने का यत्न करती रही।

फिर सन् १९४६-४७ के कलकत्ता, नोआखली, बिहार, उत्तर प्रदेश, दिल्ली पंजाब इत्यादि स्थानों पर खुल कर मुसलमानों के पाकिस्तान के समर्थन में अग्नि-काण्ड, हत्यायें, अपहरण और बलात्कार पर भी मुसलमानों की खुशामद कर कांग्रेस हिन्दु विरोधी व्यवहार अपनाती रही थी। सन् १९४७ के उपरान्त गांधी जी की हत्या के समय श्री सावरकर और श्री माधवराव सदाशिव राव गोलवालकर को लपेटने का यत्न और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबन्ध लगाने का कृत्य भी मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिये किया गया था।

यह सब पृष्ठ भूमि थी जनसंघ की स्थापना की। इसका अर्थ यह है कि हिन्दुओं के न्यायोचित अस्तित्व की रक्षा के लिये जनसंघ की स्थापना की गयी थी।

हिन्दु महासभा का समर्थन क्यों नहीं किया गया ? यह एक पृथक् प्रश्न है। इसका वर्तमान लेख से सम्बन्ध नहीं है। कभी किसी अन्य लेख में इस पर मत व्यक्त किया जायेगा। जब जनसंघ की स्थापना हुई तो जनसंघ ने अपने को एक पूर्णांगी राजनीतिक दल प्रकट करने के लिये सांस्कृतिक, आर्थिक

और राजनीतिक, तीनों पहलुओं पर कार्य करने का यत्न किया।

जनसंघ ने सांस्कृतिक दृष्टि से क्या कार्य किया है, यह स्पष्ट नहीं है। न तो जनसंघ के प्रामाणिक साहित्य में और न ही इसके प्रवक्ताओं के वचनों में संस्कृति के स्वरूप का कभी दिग्दर्शन हुआ है। कहने का अभिप्राय यह है कि जनसंघ की स्थापना का मुख्य उद्देश्य कि हिन्दु समाज के कांग्रेस द्वारा पददलित किये जाने का विरोध किया जाये भली भान्ति नहीं हो सका।

मैं और कोई भी हिन्दू नहीं चाहता कि मुसलमानों के उचित अधिकारों पर छापा डाला जाये और उनकी मज़हबी रस्मो-रवायात का विरोध किया जाये। परन्तु हिन्दू क्या है और हिन्दू की किस बात पर अंग्रेजी राज्य ने, तदनन्तर उसकी उपज कांग्रेस ने आघात किया था, इस विषय में न तो जनसंघ के नेताओं ने कभी ध्यान दिया और न ही इस जटिल प्रश्न पर कोई दृढ़ मत व्यक्त किया। जनसंघ में प्रायः ऐसे लोग आगे लाये जाने लगे जो हिन्दू संस्कृति के विषय में कुछ नहीं जानते थे। उनमें से अधिकांश को तो यह भी ज्ञात नहीं था कि जनसंघ की स्थापना किसलिये हुई है।

आरम्भ से ही जनसंघ ने अपने आप को एक प्रगतिशील दल प्रकट करने के लिये देश की आर्थिक व्यवस्था और राजनीतिक गतिविधियों में अपनी आवाज़ उठाई।

प्रथम अधिवेषन में ही ज़मींदारियों के विरुद्ध आवाज़ उठाना जनसंघ का प्रथम अर्थ-सम्बन्धी प्रस्ताव था। मैं उस समय भी उस प्रस्ताव के विरुद्ध था और अपनी अकेली आवाज़ मैंने उस समय उठायी थी। पर कौन सुनता था नक्कारखाने में तूती की आवाज़।

मैं ज़मींदारियों को बनाये रखने के पक्ष में नहीं था, परन्तु उसके सरकार द्वारा लेकर किसानों में बांट देने के पक्ष में भी नहीं था। मैं एक तो उचित प्रतिदान देकर लेने के पक्ष में था और दूसरे, उसे लेकर किसी उपकारी कार्य में ही लगाने के पक्ष में था। सबसे बड़ी बात यह थी कि मैं ज़मींदारी वर्जित करने के पक्ष में नहीं था। उन ज़मींदारियों को सामान्य खेती-बाड़ी में परिवर्तित करने के पक्ष में था जिनका निर्माण किसी अन्याय के आधार पर हुआ था। मैं चाहता था कि इसके लिये किसी एक आयोग अथवा कई आयोगों को नियुक्त कर जांच करायी जाये, परन्तु उस समय किसी के पास सुनने के लिये समय ही नहीं था।

परिणाम यह हुआ कि जनसंघ ने यह नीति स्वीकार की कि भूमि रखने पर सीमा बांधी जाये। पहले सीमा जमींदारियों पर आघात कर ही निश्चय की गयी। बाद में बड़े-बड़े फार्मों को हटाने के लिये सीमा संकुचित की गयी

श्रौर तदनन्तर सीमा तीस एकड़ तक आ गयी।

कोई पूछ सकता है कि तीस एकड़ भी क्यों ? इसे भी तो बिना मजदूर लगाये जोता-बोया नहीं जा सकता ?

इसी प्रकार जायदाद लेने के प्रतिदान पर बात थी। जनसंघ का प्रस्ताव था कि जमींदारों को, भूमि के मूल्य स्वरूप नहीं, बल्कि गुजारे के लिये उनको कुछ दे दिया जाये।

यही बात बाद में चली है। जब देहाती भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति सरकार द्वारा लेने की बात थी तो जनसंघ प्रतिकार के विषय में किसी अदालती चाराजोई के विरुद्ध था।

बैंकों के राष्ट्रीयकरण के समय भी जनसंघ श्री बलराज मधोक के विरुद्ध था ? जनसंघ मधोक के द्वारा संसद के अधिकारों के विषय में सर्वोच्च न्यायालय में दायर याचिका के विरुद्ध क्यों कोलाहल कर रहा था ?

यह सत्य है कि जनसंघ बैंकों के राष्ट्रीयकरण पर प्रसन्न था और इस प्रसन्नता के विपरीत कार्य करने वालोंको कुचल डालना चाहता था।

सामान्य जनसंघ-सदस्य भले ही कुछ दूसरी बात जानते हों अथवा कहते हों, परन्तु इस बात का क्या उत्तर है कि मधोक जी के विरूद्ध जनसंघ की कार्यकारिणी थी ? उन्होंने कौनसी सिद्धान्तात्मक भूल की थी ? सत्य तो यह है कि जनसंघ में कुछ ऐसे नेता बन गये थे जो आर्थिक विषय में भारतीय दृष्टिकोण नहीं जानते थे। रूस और चीन में चल रही आर्थिक गतिविधियों पर मुग्ध हो जनसंघ को भी उसी मार्ग पर ले जाना चाहते थे।

मैं जानता हूं कि सामान्य सदस्य बैंकों के राष्ट्रीयकरण के परिणामों को समझता नहीं था, परन्तु नेतागण इसके पक्ष में थे और क्योंकि बलराज मधोक की सर्वोच्च न्यायालय में याचिका से दूसरी बात का संकेत मिलता था, इस कारण बलराज पर अनुशासन की कार्यवाई की बात हो रही थी।

अब इन्दिरा गांधी की श्री वाजपेयी जी से झड़प हो गयी है और इन्दिरा गांधी का ज़ोर जोर से चिल्लाने का आधार, उसका समाजवाद को तेज़ी से लाने की घोषणा है। हमारे नेता श्री वाजपेयी इस बात में भी उसे मात करना चाहते हैं। भला जनसंघ के वर्तमान नेताओं को कहां सहन हो सकता है कि समाजवाद में इन्दिरा बाज़ी ले जाये।

अत: अठारह वर्ष मतदाताओं की आयु (उद्रत समाजवादियों) का समाघोष घोषित कर दिया है। अभिप्राय यह कि अट्ठारह वर्ष के बालक-बालिकाओं को राज्य कार्य में मत देने का अधिकार हो।

इस तीन वर्ष की रियायत से कुछ हानि होने वाली है अथवा नहीं, यह पृथक् प्रश्न है। यहाँ प्रश्न यह है कि अट्ठारह वर्ष के युवक को तो मतदान का अधिकार हो, सत्रह के युवक को क्यों नहीं? और फिर ग्यारह अथवा दस वर्ष के बालक को क्यों नहीं?

क्या अट्ठारह वर्ष के बालक को राज्य कार्य की सूझ-बूझ होती है?

यहां तो समस्या यह है कि श्री वाजपेयी जी की आयु के लोग भी राज्य-कार्य के विषय में सर्वथा अनभिज्ञ हैं और यह महानुभाव अट्ठारह वर्ष के बालकों को यह अधिकार दिलाने के लिये आन्दोलन चलाने की बात कर रहे हैं। जैसे और सब बात सम्पन्न हो गयी है और केवल मताधिकार का विषय ही शेष रह गया है।

बात इस प्रकार है कि उन देशों में, जहां अभी कम्युनिज्म नहीं, वहां कम्युनिस्ट अव्यवस्था उत्पन्न करने के लिये इस प्रकार के भौंडे समाघोष प्रदान कर युवकों को किसी अनुभवी और विद्वानों के विरुद्ध करने का यत्न कर रहे हैं। श्री वाजपेयी और वर्तमान जनसंघ भी देश को उसी कढ़ाही में भून डालना चाहता है जिसमें कम्युनिस्ट भून रहे हैं।

श्री वाजपेयी और जनसंघ के बुद्धिमानों का एक अन्य उदाहरण दे दें तो ठीक रहेगा। नागपुर अधिवेशन के समय श्री जवाहर लाल नेहरू के विरुद्ध अविश्वास की घोषणा करने का प्रस्ताव मैंने रखा था। उस समय वह अस्वीकार नहीं किया गया। इस पर भी यह सबकी सम्मति थी कि प्रत्येक सदस्य व्यक्तिगत रूप में नेहरू जी की आलोचना कर सकता है, परन्तु दल के रूप में नेहरूजी के विरुद्ध नहीं हो सकता। यह सन् १९६२ के चीन के आक्रमण के उपरान्त की बात है।

इसके कुछ काल उपरान्त मैंने एक सार्वजनिक सभा में श्री नेहरू जी की आलोचना करते हुए कहा था कि कश्मीर के विषय में और डा० मुखर्जी के प्रति नेहरू जी का पूर्ण व्यवहार देश-द्रोह के तुल्य है। इस पर श्री बाजपेयी उसी सभा में तुरन्त ही मेरे बाद अपने भाषण में कहने लगे कि नेहरू जी को देश-द्रोही कहना जनसंघ की नीति नहीं है।

जब मैंने, पब्लिक में ही एक सदस्य का दूसरे सदस्य की बात का इस प्रकार विरोध करने और जनसंघ का नाम लेकर कहने पर आपत्ति की तो श्री वाजपेयी जी ने यह बात कही थी कि मैं ऐसा कहूंगा और बार-बार कहूंगा।

इन नेहरू-भक्त श्री वाजपेयी जी का आज कम्युनिस्टों और सोशलिस्टों के देश-घातक समाघोषों के लिये आन्दोलन करना समझ में नहीं आ सकता।

यही बात सबके काम पाने के अधिकार की है। यह भी कम्युनिस्ट समाघोष है। इस विषय में पुनः कभी लिखूंगा।

एक समय था कि श्री जवाहरलाल के अपने को कम्युनिस्ट घोषित करने पर कांग्रेस और गांधी उसका समर्थन करते थे। आज श्री वाजपेयी जी के कम्युनिस्टों के विघटनकारी समावोषों को कहते हुए भी उनके प्रति जनसंघ का समर्थन देख वही सन् १९४६ का दृश्य आंखों के सामने आने लगता है। उससे जो कुछ हुआ था और इससे जो कुछ हो सकता है, यह विचार करने का विषय है।

(पृष्ठ १७ का शेष)

इसको सम्पन्न करने में हिन्दुस्तान के हिन्दु ही साधन बने रहे हैं। भारत में सरकार हिन्दु नहीं है। यह हिन्दु विरोधी है; इस पर भी इस सरकार को अभी तक अधिकांश हिन्दुओं का समर्थन प्राप्त है।

जैसा हमने बताया है कि चीन लाओस, कम्बोडिया और थाईलैण्ड के मार्ग से भारत में आना चाहता है। इसी प्रकार हमारा यह मत है कि इस बढ़ रही सत्ता को रोकने के लिये प्रथम प्रयत्न यह होना चाहिये कि चीन का तथा उसके समर्थकों का यहां प्रभाव कम करना चाहिये। रूस और चीन का धन यहां नहीं आना चाहिये। इन दोनों देशों से व्यापार अथवा अन्य प्रकार से लेन-देन उनकी मुद्रा में होना चाहिये। रुपये में नहीं होना चाहिये।

इसके अतिरिक्त कम्युनिस्टों से सहायता लेने वाले दल का बहिष्कार करना चाहिये और अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में हमारा सम्बन्ध अधिक से अधिक स्वतन्त्र देशों से होना चाहिये।

जहां-जहां से भी भारत को कम्युनिज्म के विपरीत सहायता मिले, वहां वहां से मानयुक्त और अपने अस्तित्व को आघात पहुंचाये बिना सहायता लेनी चाहिये।

दक्षिणी पूर्वी एशिया में कम्युनिज्म के घातक प्रभाव को देख कर हमें अपनी नीति निर्माण करनी चाहिये।

अपराधी कौन ?

—श्री सचदेव

१४ मई को लोक सभा में जन संघ के अध्यक्ष श्री अटल बिहारी वाजपेयी और भारत की प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के बीच कुछ ही मिनटों के लिए घोर विवाद हुआ। इसके लिए अवसर उस समय उपस्थित हुआ जब श्री अटलबिहारी देश में साम्प्रदायिक झगड़ों पर अपने विचार व्यक्त कर रहे थे। इन विचारों पर कम्मुनिस्ट सदस्यों ने भारी शोर मचाया और प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी की झड़प श्री अटल जी से हो गयी।

हमारा विचार है कि ऐसी उग्र झड़प यदि पहले कभी हुई थी तो श्री नेहरू के काल में डॉ० मुखर्जी के साथ एक बार हुई थी। यदि यह कहा जाये कि वर्तमान झड़प उससे अधिक उग्र थी तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। यह स्वाभाविक भी था। इस बार झड़प में एक ओर एक नारी थी और विषय भी अति उग्र था। विषय था एक हिन्दु का किसी हिन्दु के पक्ष में बोलना और दूसरा पक्ष मुसलमान का था।

हिन्दु-मुसलमान फसाद इस देश में नए नहीं हैं। इनका आरम्भ सातवीं शताब्दी से हुआ है, जब मुसलमानों ने भारत पर आक्रमण आरम्भ किये थे। इस पर भी फसादों का वर्तमान रूप तो सन् १९०६ से आरम्भ हुआ है। तब ब्रिटिश सरकार ने यह निश्चय किया था कि भारत में प्रजातन्त्रात्मक राज्य होगा और मुसलमानों को मुसलमान होने के नाते विशेषाधिकार मिलेंगे। आज स्वराज्य काल में कानून से तो विशेषाधिकार नहीं रहे, परन्तु मुसलमान "ब्लैक मैल" का अपने लिए विशेषाधिकार चाहते हैं।

वर्तमान रूप में झगड़े में पक्ष भी बदल गये हैं। सातवीं शताब्दी में तो पक्ष थे तातारी, मुगल, ईरानी राज्य सत्ता और भारत में शासक वर्ग। परन्तु विदेशीय शासकों ने इस्लाम का आश्रय लेकर उन आक्रमणों को मजहबी रंग दिया। उससे पूर्व मुसलमानों ने अपने आक्रमणों को अन्य देशों में भी मजहब का रंग दिया था और वही रंग यहाँ हिन्दुस्तान में भी दिया गया; पीछे इस झगड़े में पक्ष हो गए हिन्दुस्तान के मुसलमान शासक और हिन्दुस्तान की

जनता। ये झगड़े उस प्रकार निश्चय नहीं हो सके जैसे कि मिश्र, फिलस्तीन, यूनान और उत्तरी अफ्रीका के अन्य देशों में हुए थे। वहां एक पक्ष समाप्त हो कर केवल इस्लाम पक्ष ही रह गया था। यहां हिन्दुस्तान में दोनों पक्ष बने रहे। इसमें कारण कई थे। एक प्रबल कारण था हिन्दु अर्थात् हिन्दुस्तान के निवासी अन्य देशों के मुसलमानों के प्रतिपक्षियों से भिन्न आचार-विचार के लोग थे, इस कारण ये फसाद समाप्त नहीं हुए। समय व्यतीत होने के साथ पक्ष बदलते रहे। जब मुसलमानों को राज्य सत्ता निःशेष हुई तो फ़साद शांत हो रहा प्रतीत हुआ, परन्तु अंग्रेजों ने इससे लाभ उठाने के लिए इसमें उनका पक्ष ले लिया।

फसाद तो पहले भी था। अंग्रेज ने मुसलमान का पक्ष लेकर अपना राज्य सुदृढ़ करने का यत्न किया। सन् १९०६ में ब्रिटिश सरकार ने स्पष्ट रूप में पक्षपातपूर्ण व्यवहार अपनाया।

सन् १९१६ में इस विवाद में एक अन्य पक्ष आ कूदा। यह थी यहां की इण्डियन नैशनल कांग्रेस। उसने यह समझा कि झगड़ा तो है फिर क्यों न अपनी दुर्बल हो रही स्थिति को बलवान् बनाने के लिए इससे लाभ उठाया जाए। अतः काँग्रेस ने इस वर्ष लखनऊ में यह निश्चय किया कि मुसलमानों को कांग्रेस में आकर्षित करने के लिए उनका पक्ष लिया जाये। कांग्रेस में भी एक हिन्दु नेता पण्डित मदन मोहन मालवीय ने डट कर इसका विरोध किया था, परन्तु मैकॉले की विचारधारा से प्रभावित अधिकांश कांग्रेसी मुसलमान के पक्ष में हो गए।

कांग्रेस का 'मुसलमान परस्त पक्ष' बलवान् किया गांधी जी ने। ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि सन् १९१६ में और फिर १९२० में भी कांग्रेस को इस्लाम के विशेषाधिकारों के पक्ष में गांधी जी को धकेल कर ले जाने वाले पण्डित मोती लाल जी थे। मोती लाल जी ने गांधी जी को धमकी दी थी कि यदि उन्होंने पण्डित मदन मोहन मालवीय का साथ दिया तो उनको भी एनिबिसैंट की भांति हिन्दुस्तान की राजनीति से बाहर कर दिया जायेगा। इसी कारण ही इसके बाद महात्मा गांधी जी ने भारत की राजनीति में खिलाफत के झगड़े को ला खड़ा किया था। सन् १९२५ में हिन्दु महा सभा के विरुद्ध अभियान में वे आ खड़े हुए थे और फिर सन् १९३२ से मुहम्मद अली जिन्ना के पीछे भागते फिरे थे। यह सब पण्डित मोती लाल जी के दबाव में कहिये अथवा परामर्श से कहिए, इसके कारण हुआ। पण्डित मोतीलाल जी के उपरान्त उनके सुपुत्र और वर्तमान प्रधान मंत्री के पिता जवाहर लाल जी ने गांधी जी का पथ-प्रदर्शन अपने हाथ में ले लिया। और ये महानुभाव भी अपनी नेतागिरी को

स्थिर रखने के लिए मुसलमानों का पक्ष लेते रहे और हिंदुओं को डरा-धमका कर कि यदि उनको यहां पर सुख-सुविधा से न रहने दिया गया तो भारत की स्वतन्त्रता छिन जायेगी ।

अब श्रीमती इन्दिरा गांधी हैं । यह पण्ड़ित मोतीलाल की पोती और पण्डित जवाहर लाल जी की सुपुत्री हैं । भला यह उसी नीति का अवलम्बन क्यों न करें जो इनके पूर्वजों ने स्वीकार की थी ? यह भला क्यों न अपनी राज्य-गद्दी को सुरक्षित रखने के लिये हिन्दु-मुसलमान झगड़े का लाभ उठायें ?

यह है समस्या । और प्रधान मन्त्री का लोक सभा में मुसलमानों का पक्ष लेकर श्री अटल विहरी से झड़प लेना तो समझ में आने वाली ही बात है ।

इस झड़प की एक झांकी यहाँ लिख दी जाये तो पाठकों के लाभ की बात होगी । उनका ज्ञान-वर्धन होगा ।

भारतीय जन संघ ने एक पुस्तिका छपवायी है । नाम है "अपराधी कौन?" इस पुस्तिका के शीर्षक का भी एक इतिहास है । जब से जनसंघ की स्थापना हुई है तब से ही गांधी तथा नेहरूवादी कांग्रेसी इसके विरोधी रहे हैं । जनसंघ की स्थापना में कारण भी यही था कि कांग्रेस, स्वराज्य से पूर्व और पश्चात्, देश की नीति को हिन्दु समाज के विरुद्ध कर रही है । वास्तव में कांग्रेस की हिन्दु विरोधी नीति के विरुद्ध ही जनसंघ का मुख्य मोर्चा था और नेहरू परिवार का उसके विरुद्ध होना स्वाभाविक ही था । यह उनकी बपौती है। जनसंघ ने हिन्दू हितों की रक्षा की है अथवा नहीं, यह तो एक पृथक् प्रश्न है । परन्तु काँग्रेस का विरोध अवश्य किया है । इस कारण कांग्रेस और विशेष रूप में नेहरू परिवार जनसंघ की इस नीति को सहन नहीं कर सकते और नहीं कर रहे। वे महात्मा गांधी जी की हत्या से आज तक जनसंघ को अपने कोप का भाजन बनाते रहे हैं । इन कांग्रेसियों की गाँधी जी के साथ कितनी सहानुभूति है, यह यहाँ उल्लेखनीय नहीं । परन्तु उस हत्या का बहाना बना जनसंघ को दोष देना काँग्रेसियों का और जवाहर लाल जी नेहरू और श्रीमती इन्दिरा गाँधी का एक मुख्य कार्य हो गया है । जनसंघ अपने को दोष-मुक्त सिद्ध करने के लिए विवश होकर यह प्रश्न करने लगा है कि 'दोषी कौन ?' हम समझते हैं कि जनसंघ ने यह सफलता पूर्वक सिद्ध किया है कि वह दोषी नहीं है ।

इस पुस्तिका में उस ऐतिहासिक दिन की लोक सभा की कार्यवाही भी छपी है । श्री अटल जी का पूर्ण व्याख्यान और उस पर प्रतिपक्षियों की झड़प का

पूर्ण वर्णन इसमें है। मुख्य झड़प इस प्रकार हुई।

श्री अटल जी ने अपने उक्त भाषण में कहा था :—

सात-आठ सौ साल तक मार खाने की परम्परा थी। वे कहते हैं कि हम शुरू नहीं करेंगे। हिन्दु पहल नहीं करेंगे। हिन्दु अपने हाथ से चिंगारी नहीं लगायेंगे (सदन में शोर हो गया कदाचित् कम्युनिस्टों ने कहा कि भारतीय के रूप में बोलो, मानो भारत में हिन्दु नहीं) हां, हां, मैं एक भारतीय के नाते बोल रहा हूं .... ।

डॉ० मैत्रयी बोस (दार्जिलिंग) परमात्मा का धन्यवाद है कि मैं हिन्दु नहीं हूं।

श्री अटलविहारी बाजपेयी :—अगर आप हिन्दू होतीं तो हिन्दू समाज के लिए लज्जा की बात होती। (फिर शोर। सरकारी कांग्रेस और जनसंघ के सदस्यों में खूब नोक-झोंक हुई ....)

श्रीमती इन्दिरा गांधी:—मैं किसी को टोकना पसन्द नहीं करती और मैंने सभी सदस्यों को कहा है कि वक्ता की सुनें। किन्तु मैं एक बात श्री वाजपेयी जी को कहना चाहती हूँ कि वह इस अवसर का उपयोग ऐसी बातें कहने के लिए कर रहे हैं जिनसे सभी अल्प-संख्यकों की गहरी चोट पहुंचेगी।

श्री बाजपेयी:—यह अपनी अपनी राय का सवाल है। मैं आपसे सहमत नहीं हूँ।

श्रीमती इन्दिरा गांधी:—मैं एक क्षण और लूंगी (व्यवधान)। मैं वस्तुतः अपनी राय प्रकट कर रही हूँ। (व्यवधान) मुझे यह कहने का अधिकार है कि उनका भाषण देश में बुरा वातावरण पैदा करेगा। मुझे इस बात की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करने का हक है। यह केवल मुसलमानों का सवाल नहीं है। यह बौद्धों, जैनियों, ईसाइयों और अन्य अल्प संख्यकों (व्यवधान) तथा हरिजनों और पिछड़े वर्गों का भी सवाल है।

श्री बाजपेयी :—मैं प्रधान मन्त्री को बोलने का अवसर नहीं दूंगा। उन्होंने कोई व्यवस्था का प्रश्न नहीं उठाया। वह इस प्रकार नहीं बोल सकतीं।

कुछ देर बाद श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा और इन्दिरा गांधी में झड़प होने लगी तो श्री वाजपेयी जी ने कहा, उपाध्यक्ष महोदय, दो महिलाओं के झगड़े में मेरा क्या होगा ? .... (हंसी)

श्रीमती इन्दिरा गांधी :- मैं एक औरत के नाते नहीं बोल रही। मैं बड़े आवेश में और सारे भारतीय राष्ट्र की ओर से बोल रही हूं।

श्री वाजपेयी :— आप अल्प मत की सरकार की प्रधान मन्त्री हैं त्याग पत्र दीजिये और निकल जाइये। (व्यवधान) जिन्होंने अपनी पार्टी को ही तोड़ दिया वे राष्ट्र में एकता की बात करती हैं।

वाद-विवाद काफी रुचिकर रहा, परन्तु ईश्वर का धन्यवाद ही करना चाहिये कि श्री वाजपेयी ने साम्प्रदायिक समस्या का सुझाव उपस्थित नहीं किया। आप यही कहते रहे ····· प्रश्न यह है कि हम साम्प्रदायिकता से किस तरह लड़ना चाहते हैं ? भारतीय जनसंघ एक असाम्प्रदायिक राज्य के आदर्श में विश्वास करती है। (हंसी) यह हंसने की बात नहीं है। जिन्होंने मुस्लिम लीग के साथ गठ बन्धन कर लिया, वह हमारे ऊपर आक्षेप करने का दुस्साहस न करें। कांच के महल में बैठने वाले दूसरों पर पत्थर फैंकने की हिमाकत न करें। ·········।

इस प्रकार श्री वाजपेयी जी ने वह फार्मूला उपस्थित करने से परहेज किया जो वह पब्लिक में कहते रहे हैं। यदि आप संसद में भी वही कुछ कह डालते जो आप पब्लिक में कह चुके हैं तो यह इतिहास का एक पन्ना बन जाता।

आपने कुछ महीने हुए कहा था कि मुसलमानों में झगड़ा निबटाने का उपाय उनसे रोटी- बेटी का सम्बन्ध बनाना है।

वह सुझाव वाजपेयी जी के मस्तिष्क की उपज नहीं है। इसका भी एक इतिहास है। जब से मुसलमान आक्रमण आरम्भ हुए, हिन्दुओं की लड़कियों को मुस्लिम परिवारों में देने का आग्रह चलता रहा है। अंतर यह है कि तब यह आग्रह मुसलमानों की ओर से बल-छल और धन के प्रलोभन में था और अटल जी का आग्रह एक हिंदू की ओर से स्वेच्छा से है।

मुसलमान यह चाहते हैं कि कुछ हिन्दू नेता इस बात का प्रचार करें, जिससे उनके आग्रह की प्रतिक्रिया सुखद् हो जाये।

एक बार पहले भी यह प्रश्न उपस्थित हुआ था। यह सन् १६१६ की बात है। अमृसर कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर "Hindu Muslim Unity" का आग्रह हुआ था और कुछ एक नेताओं की कान्फ्रेंस बुलायी गयी थी। इस "Unity" के लिए मौलाना मुहम्मद अली जी यही सुझाव दिया था जो कुछ मास पूर्व श्री वाजपेयी जी ने दिया है। साथ ही वह यह चाहते थे कि मुसलमानों में लड़कियों की मांग अधिक है अतः हिन्दु पूरी कर दें तो सुलह हो सकती है। मुसलमानों को चार-चार पत्नियां चाहियें।

(शेष पृष्ठ ३० पर)

अस्तित्व की रक्षा

(समापन किश्त)

श्री विद्यानन्द 'विदेह,

हिन्दु, हिन्दी और हिन्दुस्थान—यह त्रित ही हिन्दु जाति के अस्तित्व की रक्षा का मूल सूत्र है। यह सूत्र न साम्प्रदायिक नारा है, न मूर्खों का स्वप्न है। मेरी दृष्टि में यह एक साधनीय साध भी है और साध्य भी है। पाकिस्तान का इस्लामी राज्य होना साम्प्रदायिकता नहीं है। ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया विधानसम्मत क्रिश्चियन राज्य हैं, फिर भी उन्हें कोई साम्प्रदायिक राज्य नहीं कहता है। यानि भारत को हिन्दु-राज्य घोषित किया जाये तो उसमें किसी को साम्प्रदायिकता की गन्ध क्यों आती है? यदि हिन्दुस्थान हिन्दु राज्य नहीं है, यदि हिन्दुस्थान के निवासी हिन्दु राष्ट्र के तनू में समवेत नहीं हैं, यदि हिन्दी हिन्दुस्तान की सम्पर्ककारक और सांस्कृतिक भाषा नहीं है, तो फिर अपने ही देश में हिन्दुओं का कोई अस्तित्व और वर्चस्व न रह पायेगा।

तर्क, विवाद और समाधान निरर्थक नहीं तो दुर्बल और नपुंसक अवश्य हैं। पृथ्वी की प्रथम प्रभात से लेकर आज तक चमत्कार शक्ति, संगठन और संकल्प का ही रहा है। मुट्ठी-भर अंगरेजों ने इस त्रित के आश्रय से ही समस्त भूमण्डल पर संसार के सबसे बड़े साम्राज्य की स्थापना की थी और बड़ी शान से उसका संचालन किया था। पाकिस्तान और पंजाबी सूबे का निर्माण इसी त्रित का चमत्कार है। हिन्दु-जाति के नेता अपने संकल्प को जगायें, अदम्यता के साथ हिन्दु जाति का आन्तरिक संशोधन करते हुए हिन्दु-संगठन को अडिग और अजेय बनायें। सम्पूर्ण हिन्दु-जाति के संकल्प को संकलित करें। संकल्प और संगठन ही इस जाति को सर्वशक्त बना सकेंगे। और जिस दिन यह जाति सर्वशक्त और सम्पन्न बन जायेगी, उसी दिन इसकी सारी आपदायें पलायन करेंगी और इसके सर्वनाश पर तुले हुए सभी वर्ग उसी दिन इसके हितैषी मित्र बन जायेंगे।

हिन्दु-जाति के सभी वर्गों के प्रचारकों, कथाकारों, नेताओं तथा संन्यासियों को पेशेवरी से सर्वथा मुक्त होकर मिशनरी भावना से कार्य करने का यह युगधर्म है। इस दिशा में सक्रिय पग उठाने में आर्यसमाज को ही पहल करनी होगी। आर्यसमाज जब इंजिन बन कर साधनापथ पर दौड़ेगा तो ही हिन्दु-वर्गों के डिब्बे भी दौड़ेंगे। इस जाति की रक्षा की ज्वाला को यदि कोई प्रज्वलित कर सकेगा तो मेरी दृष्टि में वह केवल आर्यसमाज है। हिन्दु-महासभा नाम शेषमात्र है। सनातनधर्म वह अजगर है जिसे हिलाना सरल कार्य नहीं है। आर्यसमाज ही है जिसे चेताया और जगाया जा सकता है। सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभायें इस दिशा में भागीरथ-प्रयास कर रही हैं। पर इस विशालतम कार्य के लिये उसके साधन न्यूनातिन्यून हैं। आर्यसमाज कार्यकर्त्ताओं की अक्षत सेना खड़ी कर सकता है, बशर्तेकि सनातनधर्म उसे साधनों से आपूर-भरपूर भरदे। सनातनधर्म के साधन और आर्यसमाज के साधक मिलकर इस साध को बहुत तीव्र गति से सिद्ध कर सकते हैं। दोनों ही मेरी पुकार को सुनें और एकतन होकर कार्य में जुटें। अपनी दोनों भुजाएँ उठाकर मैं दोनों का आह्वान करता हूँ।

उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान् निबोधत।

उठो, जागो और लक्ष्यों की सिद्धि करके ही दम लो।

—●—

(पृष्ठ २८ का शेष)

एक आर्य-समाजी नेता के कारण मौलाना साहब की सुलह-सफाई की बात चल नहीं सकी थी।

हमारा यह कहना है कि यह सुझाव तो उपस्थित है ही, परन्तु हिन्दुओं को अपने भाग्य को सराहना चाहिये कि अटल जी ने हिन्दुओं का पक्ष लेते हुए संसद में यह भारतीयकरण का उपाय उपस्थित नहीं किया।

कुछ भी हो, उस दिन एक भारतीय ने यह अनुभव तो किया कि हिन्दु नाम का भी कोई प्राणी भारत में रहता है।

साम्प्रदायिकता : कौन कितने गहरे पानी में ?

श्री यतीन्द्र भटनागर

देश में आज साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक उपद्रवों को लेकर बड़ी चर्चा, शोर और विवाद हो रहा है। सत्तारूढ़ कांग्रेस दल की सर्वोच्च सत्ता, कार्यसमिति ने भी अपनी बैठकों में साम्प्रदायिकता की कड़ी निन्दा की है, साम्प्रदायिक संस्थाओं की कारगुजारियों की कड़ी आलोचना की है और उन पर प्रतिबंध लगाने की मांग भी बुलन्द की गई है। इस मांग का प्रमुख लक्ष्य राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को बनाया गया है, परन्तु साथ ही जमाते-इस्लामी जैसी संस्थाओं का भी नाम लिया गया है।

कांग्रेस संगठन ने अन्य लोकतंत्री और धर्मनिरपेक्ष दलों के साथ मिल कर हर स्तर पर साम्प्रदायिकता विरोधी अभियान चलाने का जैसे संकल्प किया है। कांग्रेस के महासचिव श्री हेमवतीनंदन बहुगुण ने उन लोकतंत्री और धर्मनिरपेक्ष दलों में से कुछ के नाम भी गिनायें हैं – कुछ साम्प्रदायिक और गैर-लोकतंत्री दलों के भी नाम लिये हैं—जिनके साथ उनका सहयोग हो सकता है और जिनके साथ नहीं हो सकता। इस अभियान का मैं पूरा समर्थन दे सकता हूं और इसकी सफलता की कामना कर सकता हूं क्योंकि रामराज, अहिंसा, बुद्ध और गांधी जी के इस देश में सहनशील, धर्म-सहिष्णु नागरिकों के होते हुए साम्प्रदायिक दंगे और हत्यायें हमारे लिए कलंक हैं।

इन सारी बातों के बाद भी प्रश्न यह रह जाता है कि साम्प्रदायिकता क्या है और साम्प्रदायिक कौन हैं ?

श्री बहुगुण पूरी तरह उन दलों की सूची नहीं दे सके, या देने की इच्छा नहीं की, जो साम्प्रदायिक हैं और जो नहीं हैं, जो लोकतंत्री हैं और जो नहीं हैं। साम्प्रदायिक संगठनों के नाम गिनाते हुए वे मुस्लिम लीग और अकाली दल पर रुक गये। उनका कहना था कि मैं कोई सूची तो दे नहीं रहा हूं और लोकतंत्री दलों की सूची देते हुए भी वे कम्युनिस्ट पार्टी का नाम लेते

हुए कुछ हिचकिचाये जरूर थे, यह दल धर्म निरपेक्ष है इसमें उन्हें संदेह बिलकुल नहीं है।

लीग और जमात

कांग्रेसी नेताओं और कार्यसमिति की लम्बी और बिल्कुल स्पष्ट चर्चाओं में भी यह तय नहीं हो पाया कि साम्प्रदायिक संगठनों पर प्रतिबंध लगाने की राय सभी की है. या अधिकांश की है। एक ओर जहां श्री फखरुद्दीन अली अहमद ने मुस्लिमों की पूरी सुरक्षा न होने की शिकायत करते हुए उस सम्प्रदाय के वोट कांग्रेस को कम मिलने का कारण इसी सरकारी उदासीनता को बताया, वहां वे मुस्लिम लीग को केवल जनसंघ के बराबर रखने को तैयार हुए। जमाते इस्लामी का तो शायद उन्होंने कोई उल्लेख नहीं किया।

वैसे बहुत उग्र धर्मनिरपेक्षवादी भी जनसंघ को इतना साम्प्रदायिक नहीं मानते हैं कि इस पर प्रतिबंध लगाने की बात करें। प्रतिबंध के लिए वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की ओर इशारा करते हैं।

सवाल यह है कि कौन साम्प्रदायिक है और कौन नहीं ?

इस देश को धर्मनिरपेक्ष और लोकतंत्र घोषित करने का निश्चय किसका था ? निश्चय ही उस समय जब यह घोषणा हुई, कम्युनिस्ट पार्टी का देश के संविधान निर्माण में कोई हाथ नहीं था, कोई योग नहीं था। इसीलिए शायद वे अब संविधान तोड़ने की बात कर सकते हैं।

दूसरी ओर भारत के विभाजन के बाद भी इस देश में जो बहुसंख्यक हिन्दू रह गये हैं उन्होंने ही, राष्ट्रवादी विचारों के अन्य धर्मावलम्बियों के सहयोग से, जिसके बिना भी वे यह काम कर सकते थे, भारत को धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्री देश घोषित किया। पाकिस्तान में जहां मुसलमानों का ही अपार बहुमत है, और जिसकी स्थापना ही दो-राष्ट्र सिद्धान्त पर हुई, कोई भी उस देश को धर्मनिरपेक्ष मानने को तैयार नहीं बल्कि उसे इस्लामी देश माना गया है।

हज पर अपार व्यय

देश में अनेक क्षेत्रों में एक बार फिर चर्चा चल पड़ी है कि देश में हजारों व्यक्ति धार्मिक तीर्थयात्रा के नाम पर क्यों देश का लाखों रुपया विदेशी मुद्रा में लेकर हज करने जाते हैं ? सरकार को विदेशी मुद्रा की कमी के दिनों में भी उन्हें रोकने का साहस नहीं हुआ जबकि अन्य मुस्लिम देश हज करने वालों की संख्या केवल प्रतीक रूप में रखते हैं, सांकेतिक रूप में भेजते हैं।

अमरोहा आदि स्थानों पर पाकिस्तान विरोधी एक फिल्म 'प्रेम-पुजारी' का प्रदर्शन रोक देना पड़ा क्योंकि पाकिस्तान के प्रेमियों ने इसका विरोध किया था, सिनेमाघर पर पत्थर फेंके गये, परदा जला दिया गया। पाकिस्तान मुस्लिम देश है और उसने भारत पर हमला किया था, बल्कि अनेक बार हमले किये हैं। कोई देशभक्त उस पाकिस्तान विरोधी फिल्म का विरोध नहीं करता।

इस तरह के कांड पर आम प्रतिक्रिया क्या होनी चाहिए?

इस तरह के कांड क्या साम्प्रदायिकता की परिभाषा में नहीं आते?

कम्युनिस्ट पार्टी के नेता हैं श्रीपाद अमृत डांगे। वे प्रेस क्लब के एक भोज में अतिथि के रूप में, विशिष्ट अतिथि के रूप में, जाकर कहते हैं कि वेदों में नरबलि की प्रथा थी। उसके प्रमाण में वे न जाने कौन से वेद की, किसकी व्याख्या पर आधारित उक्तियां, मन्त्र और श्लोक देने को तैयार हो जाते हैं।

क्लब में वैसे ही सहनशील सभ्य सदस्यों को ही प्रधानता होती है और प्रेस क्लब में तो और भी अधिक है। इसलिए श्री डांगे के वक्तव्य को विशेष चुनौती नहीं दी गई। दो सदस्यों ने नाम के लिए विरोध अवश्य किया और उनसे प्रमाण देने को कहा।

क्या यह वेदों को मानने वालों की सहनशीलता का उदाहरण नहीं? किसी और धर्म की किसी पुस्तक के बारे में इस प्रकार अनर्गल बात कोई कह कर तो देखे, विशेष रूप से कुरान के बारे में।

अभी साप्ताहिक हिन्दुस्तान में एक विश्वविद्यालय के आचार्य ने, जो उर्दू के बहुत पक्षपाती और उसकी खूबियों के प्रेमी हैं, दुख के साथ इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाया है कि मुसलमानों द्वारा प्रकाशित किसी भी पत्र या पत्रिका में कभी भी हिन्दुओं के त्यौहारों या राम अथवा कृष्ण के बारे में कोई भी लेख नहीं निकलता। हिन्दुओं और अन्यों की पत्र-पत्रिकाओं में सदा ही ईद आदि के बारे में चित्र और लेखादि निकलते रहते हैं। अब सहनशीलता और साम्प्रदायिकता का नमूना आमतौर पर कौन पेश करता है यह सोचने की बात है।

रही नेताओं के, शासकों के साम्प्रदायिकता सम्बन्धी विचार। वह तो उनके आचरण से प्रगट होते हैं। क्या कांग्रेस उच्च सत्ता ने, या प्रधानमंत्री अथवा कांग्रेस अध्यक्ष ने चुनाव में टिकट की बांट के समय दिल से साम्प्रदायिक विचारों को बिल्कुल दूर रखकर उम्मीदवारों का चयन किया है?

क्या मुस्लिम बहुल इलाके से मुस्लिम, जाटों के इलाके से जाट, और इसी प्रकार जातीय तथा साम्प्रदायिक आधार पर टिकट नहीं बांटे ? क्या वोट लेने के लिए ऊंचे सिद्धान्त की बातों को भूलकर इसी प्रकार का नीचे स्तर का प्रचार नहीं किया जाता ? क्या अल्पसंख्यकों पर समान सामाजिक कानून लागू करने में इसीलिए हिचक नहीं होती कि उनके वोट न मिलने का खतरा है ? क्या यह तथ्य नहीं कि विधिमंत्री स्वर्गीय श्री गोविन्द मेनन मुसलमानों के लिए भी एक समान सामाजिक कानून बनाने के लिए प्रधान न्यायधीश श्री हिदायतुल्ला की अध्यक्षता में एक समिति की स्थापना की बात कह कर भी दबाव के कारण उससे मुकर नहीं गये थे ? यदि यह सब सच है तो फिर साम्प्रदायिकता की व्याख्या और साम्प्रदायिक व्यक्तियों की शनाख्त क्या फिर से नहीं होनी चाहिए ?

कोई भी स्वाभिमानी देश और वहां की उदार जनता अपने किसी भी अल्पसंख्यक का बाल भी बाँका नहीं देखना चाहेंगे। इस देश ने ईरान से आने वाले सुन्दर पारसियों को न केवल बसाया बल्कि उनकी ऐसी रक्षा की कि वे पूरी तरह अपने धार्मिक रीति-रिवाजों को बनाये रख कर एक अलग ही जाति के रूप में अभी तक रह रहे हैं। क्या केरल में दो हजार वर्ष पुराने यहूदियों की जाति और इनके धार्मिक स्थान अभी तक सुरक्षित नहीं हैं। क्या भारत में मुसलमानों की संख्या बढ़ी नहीं है। क्या पाकिस्तान से हजारों हिन्दू बराबर भाग कर भारत नहीं आ रहे हैं ? फिर भी उसकी प्रतिक्रिया के समय बहुसंख्यक संयम से काम नहीं ले रहे हैं ?

ये कुछ प्रश्न हैं जिन पर विचार करने के बाद ही किसी को किसी सम्प्रदाय के विरुद्ध विषवमन करना चाहिए। इन पर विचार के बाद ही किसी को किसी संस्था पर प्रतिबंध लगाने की बात सोचनी चाहिए।

एक बात और ! धार्मिक स्थानों पर हथियारों को जमा करना एक गंभीर अपराध समझा जाना चाहिए, चाहे वह मस्जिद में हो या गुरुद्वारे में अथवा मंदिर या गिरजे में। सरकार के पास इससे निबटने का कोई उपाय हो तभी उसके नेता अपना दिल टटोल कर सार्वजनिक रूप से कुछ कहने का साहस करें।

(दैनिक हिन्दुस्तान से साभार)

—★—

सांप्रदायिकता—वास्तविक परिवेश में

श्री अशोक गुप्त

कुछ दिन पूर्व दिल्ली में कई दलों द्वारा सांप्रदायिकता और सांप्रदायिक दंगों के विरुद्ध निकाले गए एक जलूस को देखने का अवसर मिला। नाचते-गाते, सांप्रदायिकता के विरुद्ध नारे लगाते, जलूस में भाग लेने वाले लोग चले जा रहे थे। विभिन्न नारे वे लोग लगा रहे थे :

"हिन्दु मुस्लिम सिख ईसाई
आपस में हैं भाई भाई;"
"फिरकापरस्ती छोड़ दो,
आर. एस. एस. को तोड़ दो"
"जनसंघ मुर्दाबाद।"

सांप्रदायिक दंगे समाप्त होने चाहिएं, इस विषय पर दो मत नहीं हैं। प्रत्येक बुद्धिजीवी और साधारण व्यक्ति सांप्रदायिकता को समाप्त होते देखना चाहता है। मगर जलूस देख कर मेरे मन में प्रश्न उठा कि क्या जलूस में भाग लेने वालों की दृष्टि में केवल हिंदु सांप्रदायिकता ही इन दंगों के लिए उत्तरदायी है ? क्या भारत में मुस्लिम सांप्रदायिकता नाम की कोई चीज नहीं है या यदि है तो क्या दंगे होने में उसका कोई हाथ नहीं है ?

पिछले कुछ वर्षों में भारत में सांप्रदायिक दंगों में असाधारण वृद्धि हुई है। अभी हाल में हुए अहमदाबाद, भिवाण्डी और जलगाँव के दंगों ने तो सांप्रदायिक सद्भाव की कमर ही तोड़ दी है। प्रश्न उठता है कि आखिर ये दगे क्यों होते हैं ? इनके पीछे क्या मनोवृत्ति काम कर रही है ?

प्रायः पाठ्य पुस्तकों को बदलने की मांग उठाई जाती है। कहा जाता है कि वर्तमान पाठ्य पुस्तकें सांप्रदायिक विद्वेष फैलाती हैं। इतिहास की पुस्तकों में तो जो कुछ प्राचीन काल में घटित हुआ, वही वर्णित होता है। पाठ्य पुस्तकें बदलने का अर्थ क्या है। क्या औरंगजेब को कट्टर धर्मान्ध और हत्यारे के स्थान पर न्याय-प्रिय, ईमानदार और सर्वप्रिय राजा चित्रित किया जाना

चाहिए ? क्या मानसिंह, जयसिंह और जयचन्द को राणा प्रताप, शिवाजी और पृथ्वीराज चौहान से महान् सिद्ध किया जाएगा ? क्योंकि उन्होंने आक्रामक मुगलों से समझौते किये थे। पाठ्य पुस्तकें बदल कर इतिहास को झुठलाया नहीं जा सकता। और जो मुसलमान केवल हठधर्मी होने के कारण मुहम्मद गोरी और औरंगजेब को अपना पूर्वज मानेंगे उन्हें राष्ट्रीय नहीं कहा जा सकता।

दंगों का आरम्भ

एक प्रश्न यह भी है कि दंगों का आरम्भ किन के द्वारा किया जाता है। गृह मंत्रालय की हाल की एक रिपोर्ट के अनुसार एक विशिष्ट अवधि में हुए २३ दंगों में से २२ दंगों का प्रारम्भ उन लोगों ने किया जो अल्पसंख्यक समुदाय के माने जाते हैं। यह एक निश्चित बात है कि अल्पसंख्यक समुदाय के बहुसंख्यक व्यक्ति दंगे नहीं चाहते। उनमें ऐसे बहुत से लोग हैं जो मेहनत करके अपने परिवार का पालन करते हैं, मगर एक वर्ग अवश्य है जो दंगे भड़काता है।

अल्पसंख्यकों के कुछ नेता नहीं चाहते कि वे अपने को राष्ट्रीय जीवन का एक अंग बनायें। वे यह चाहते हैं कि मुसलमान अलग-थलग बने रहें और कठमुल्ले उनके नेता बने रहें। अपनी नेतागिरी बचाने के लिए मुसलमानों की सांप्रदायिक भावनाएं वे भड़काते रहते हैं। ये सांप्रदायिक भावनायें क्या हैं ? मुनीर कमीशन ने १९५३ में पंजाब में हुए दंगों पर अपनी रिपोर्ट में कहा है कि एक इस्लामी राज्य की स्थापना का भूत मुसलमानों के सर पर सदियों से सवार रहा है और अब भी वे अपने उस शानदार अतीत को याद करते हैं जब इस्लाम अरब से आरम्भ हो कर तूफान की भांति आगे बढ़ रहा था।

अन्य कारण

कुछ राजनीतिक दल भी अल्पसंख्यकों को, कुछ वोटों के लालच में भड़काते और उनमें असुरक्षा की भावना पैदा करते रहते हैं। जो कार्य स्वतंत्रता से पूर्व अंग्रेजों ने किया, वही कार्य स्वतंत्रता के पश्चात कांग्रेस कर रही है। पिछले २२ वर्ष से अल्पसंख्यकों के मन में यह बिठाने का प्रयास किया जा रहा है कि केवल कांग्रेस के हाथ ही उनका भविष्य सुरक्षित है। उन्हें यह बताया जाता है कि जनसंघ और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसी संस्थाएं उनकी शत्रु हैं और उनका अस्तित्व समाप्त करना चाहती हैं।

यदि कोई मुसलमान जनसंघ में आता है तो काफिर कह कर मुसलमानों द्वारा उसका तिरस्कार किया जाता है। सबके लिए समान कानून की बात को

व्यक्तिगत प्रश्न कह कर टाल दिया जाता है। मुसलमानों को अल्पसंख्यक वर्ग कह कर उनके लिए नौकरियों में स्थान सुरक्षित करने की बात की जाती है मानो केवल मुसलमान होने के कारण उनके प्रति भेद-भाव किया जा रहा है। आज वे यह समझने लगे हैं कि भारतीय बनने से मुसलमान बने रहना अच्छा है।

तथ्यों से आंख न मूँदें

तथ्य चीख चीख कर यही कह रहे हैं कि सांप्रदायिकता बढ़ती जा रही है। धर्मनिरपेक्षता के नाम पर मुसलमानों की सांप्रदायिकता की ओर से आंखें मूंद लेना फैशन बन गया है। हिंदु सांप्रदायिकता को बुरा कहने वाले को धर्म-निरपेक्ष और मुस्लिम सांप्रदायिकता की बात करने वाले को सांप्रदायिक हिंदु कहा जाता है। मेरा मंतव्य हिन्दु साँप्रदायिकता का किसी भाँति भी समर्थन करना नहीं है। सांप्रदायिकता चाहे वह कोई भी हो, समाज के अस्तित्व के लिए खतरनाक है। किन्तु हिन्दु सांप्रदायिकता की निन्दा करने और अल्पसंख्यक समुदायों की सांप्रदायिकता को प्रश्रय देने से सांप्रदायिक सद्भाव कभी स्थापित नहीं हो सकता।

सांप्रदायिकता क्या है ?

सांप्रदायिकता समाज के लिए खतरनाक कोढ़ है यह सब मानते हैं। मगर आखिर सांप्रदायिकता है क्या जिसके पीछे इतना शोर मचाया जाता है। भारतीय संविधान के अनुसार प्रत्येक नागरिक को अपने धर्म पर चलने और संस्थाएँ आदि बनाने का मूलभूत अधिकार प्राप्त है। केवल धर्म विशेष के आधार पर बनी सभी संस्थाओं को सांप्रदायिक संस्थाएँ नहीं कहा जा सकता। यदि ऐसा किया गया तो आर्य समाज, सनातन धर्म सभा, जैन समाज, मुस्लिम लीग आदि सब संस्थाओं को सांप्रदायिक घोषित करना होगा। ऐसा करना साधारण नागरिक की धार्मिक स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने के समान होगा।

आज के संदर्भ में सांप्रदायिक संस्थाएं उन्हें कहा जा सकता है जो दलीय और संप्रदाय के हितों को राष्ट्रीय हितों के ऊपर रखती हों और एक संप्रदाय विशेष के लोगों में असंतोष और असुरक्षा की भावना पैदा करने का प्रयास करती हों। इस कसौटी पर कस कर ही किसी संस्था की सांप्रदायिकता के विषय में निर्णय किया जा सकता है।

इस विचार को लेकर चलने और ईमानदारी से सांप्रदायिक सदभाव पैदा करने का प्रयास किये जाने पर ही इन दैनंदिन होने वाले सांप्रदायिक झगडों को रोकना संभव हो पायेगा।

काँग्रेस द्वारा मुसलमानों को बरगलाया जाता है

●

श्री मुहम्मद अशरफ कोया, कानपुर

(भारतीयकरण के प्रश्न पर दिल्ली के सुप्रसिद्ध साप्ताहिक हिन्दुस्तान ने एक परिचर्चा चालू की हुई है। अनेक लोगों के विचार उसमें प्रकाशित हो चुके हैं। इंदिरा कांग्रेस के महामंत्री श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा के विचारों पर व्यक्त की गई प्रतिक्रिया को यहां अविकल रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। —सम्पादक)

बहुगुणा के अनुसार 'भारतीयकरण का नारा अनेकता में एकता पर हमला है।' भारतीयकरण का तात्पर्य है कि प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखता हो, पहले भारतीय होगा और भारत के प्रति निष्ठावान रहेगा। अर्थात अनेक (सम्प्रदाय, धर्म, जाति के अनुसार) होते हुए भी एक (भारतभूमि) के प्रति निष्ठावान हो कर अपनी एकता का प्रमाण दे कर 'अनेकता में एकता' के सिद्धान्त की पुष्टि होगी न कि उस पर हमला।

इस्लाम पर भारतीय विचारों की गहरी छाप है। ऐसा न कह कर यदि बहुगुणा जी यह कहते कि इस्लामी जीवन पर भारतीय विचारों की छाप है, तो ठीक था क्योंकि इस्लाम धर्म-ग्रन्थ में अभी तक कोई परिवर्तन ही नहीं हुआ है। आप आगे लिखते हैं 'अकबर की हिन्दुओं के साथ वैवाहिक सम्बन्धों की नीति से और भी परिवर्तन होने लगे। दोनों वर्ग एक-दूसरे के निकट आने लगे।' क्या इकतरफा वैवाहिक सम्बन्ध 'नीति' कहलायेंगे? एक-दूसरे के निकट आने का कारण एक तो दबाव था दूसरा भारतीय जीवन-दर्शन। इस में सन्देह नहीं कि भारतीय मुगल शासकों ने हिन्दू-कन्याओं से विवाह किए। उदाहरण के तौर पर स्वयं अकबर का विवाह जोधाबाई से तथा अन्य मुस्लिम शासकों का विवाह राजपूत कन्याओं से हुआ था, परन्तु क्या श्री बहुगुणाजी अथवा अन्य कोई इस बात का एक भी उदाहरण प्रस्तुत कर सकता है जब किसी मुस्लिम कन्या का विवाह किसी राजपूत राजा, हिन्दू युवक या अन्य सम्प्रदाय के किसी युवक से हुआ हो बिना दूसरे के धर्म परिवर्तन के।

ताजा उदाहरण यह है कि भारत के राष्ट्रपति स्व. डा. जाकिर हुसैन ने अपनी नातिन का विवाह बिहार के उच्च जातीय ब्राह्मण के साथ होना तब

तक स्वीकार नहीं किया, जब तक उस लड़के ने इस्लाम धर्म को स्वीकार नहीं कर लिया। मैं ऐसा कह कर स्वर्गीय राष्ट्रपति की देशभक्ति पर शंका नहीं कर रहा हूं। मुस्लिम वर्ग के सर्वश्रेष्ठ नागरिक की हैसियत ने भी उन्हें अपने सम्प्रदाय के समक्ष घुटने-टेकने को मजबूर कर दिया, यह व्यक्त करने का प्रयत्न कर रहा हूं।

श्री बहुगुणा के अनुसार 'हममें से कुछ लोग आज-कल मुसलमानों के भारतीयकरण का नारा लगा रहे हैं जैसे कि वे भारतीय हैं ही नहीं।'

'अगर दाढ़ी ही सब कुछ होती तो बकरा शेख हो गया होता'—पुरानी कहावत है। मात्र भारत में जन्म लेने से ही कोई व्यक्ति भारतीय नहीं कहा जा सकता वरन् उसे भारतीय कहलाने के लिए भारत के प्रति निष्ठावान होना ही चाहिए। अब रही बात मुसलमानों के भारतीयकरण की। मुस्लिम सम्प्रदाय का एक बहुत बड़ा वर्ग अपने को भारतवासी मानता है और समय-समय पर इसका प्रमाण भी पेश करता है। परन्तु इस सम्प्रदाय के कुछ लोग ऐसे हैं जो इस कसौटी पर खरे नहीं उतरते। परन्तु खेद इस बात का है कि इस सम्प्रदाय का एक बड़ा वर्ग कोई भी बात स्वयं नहीं सोचता। उस से जो बात कही जाती है, तुरन्त, बिना तर्क के, मान लेता है। उसकी इसी कमजोरी का कुछ लोग फायदा उठाते हैं। उदाहरण के लिये : अभी कुछ माह पूर्व जब उत्तर प्रदेश में मध्यावधि चुनाव हुए तब कानपुर क्षेत्र से मुस्लिम मजलिस के एक विधायक के जीतने की खुशी में शहर की खास सड़कों से जुलूस निकाला गया जिस में एक व्यक्ति नारा लगा रहा था—अबे हिन्दुओ! देख लो मजलिस की क्या शान है!' और जुलूस इसे दोहरा रहा था। मैं ने जुलूस के एक व्यक्ति से पूछा कि यह नारा क्यों लगा रहे हो, तो उसने जवाब दिया कि आगे से आ रहा है हम तो सिर्फ दुहरा रहे हैं।

जैसा कि सभी को मालूम है इज़राइल में अलकसा मस्जिद के जल जाने पर भारत में जगह-जगह सभाएं हुईं, और इस के फलस्वरूप हड़तालें हुईं, काले झण्डे लहराये गये, दुकानें बन्द रखी गईं, परन्तु क्या कोई कह सकता है कि पाकिस्तान के भारत पर हमले के समय एक भी प्रदर्शन हुआ था।

मैं पुनः कहता हूँ कि आम मुसलमान को इन बातों में दिलचस्पी नहीं होती, उसे बरगलाया जाता है, उसकी कमी का कुछ लोग फायदा उठाते हैं।

ये सारी बातें कह कर बहुगुणा जी थोड़े-से वोट (अल्पसंख्यकों के) समेटने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहे हैं। यह सिर्फ एक राजनीतिक भाषण है जिसे उन्होंने सन १९७२ के आम चुनावों को दृष्टिगत रख कर दिया।

प्रतिबन्ध किस पर लगे ?

श्री आनन्दकुमार अग्रवाल

जब कोई कायर प्रतिद्वन्द्वी से भागकर भी पीछा नहीं छुड़ा सकता तब वह आंखें मूंदकर प्रतिद्वन्द्वी पर अन्धाधुन्ध वार करने की प्रक्रिया पर विश्वास करता है और धैर्य खो बैठता है। उसका परिणाम स्पष्ट है कि कुछ देर और जीवित रह पाता उसकी अपेक्षा तत्काल मौत के मुंह में समा जाता है। वैसे भी किसी महापुरुष ने कहा है कि कायर दिन में कितने बार ही मरता है परन्तु वीर पुरुष जीवन में एक बार ही मरता है।

अभी हाल ही में सत्तारूढ़ लोगों ने (उसे दल की संज्ञा न देना श्रेयस्कर है जिसका न कोई सिद्धान्त है और न ही कोई लक्ष्य ही। किसी तरह 'ब्रेक फेल गाड़ी' की भांति किसी को बचाते किसी को धंसाते चले जा रहे हैं।) अपनी दिल्ली बैठक में प्रस्ताव पारित कर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबंध लगाने के लिए उपाय ढूंढने का निश्चय किया है। छींका टूटा कि बिल्ली झपटी। भिवण्डी और जलगांव में दंगा होने की देर थी कि आर० एस० एस० पर प्रतिबंध की चर्चा चल पड़ी। श्री गुरुजी द्वारा तत्कालीन गृहमंत्री सरदार पटेल को दिए गए आश्वासन की बात निकाली जाने लगी। श्री विद्याचरण शुक्ल, गृहराज्यमंत्री (संघ प्रतिबंध के लिये अहर्निश परेशान) रायपुर की प्रेस कांफ्रेंस में हाल ही में कहते हैं—आर० एस० एस० के सरसंघ चालक द्वारा दिया गया सरदार पटेल को आश्वासन सरकार के पास सुरक्षित है।

श्री गुरुजी ने साफ साफ कह दिया कि सरकार को कोई आश्वासन नहीं दिया गया था। हाथ कंगन को आरसी क्या? संघ की ओर से सारा पत्र-व्यवहार प्रतिबंध उठते ही प्रकाशित कर दिया गया था और उसे अब पुनः प्रकाशित कर दिया गया है।

अब जरा इन्दिरा सरकार के गद्दी पर आसीन लोगों द्वारा जनता को दिए गए आश्वासनों का मुआयना क्यों न किया जाय। **इनके पुरखों द्वारा दिए गए रामराज्य के स्वातंत्रोपरान्त के आश्वासन का तो दिवाला पिट गया। 'हिन्दी-चीनी भाई' और 'हिन्दी रूसी भाई-भाई' के** भयानक परिणाम भुगतने

पड़ रहे हैं उससे न जाने कब मुक्ति मिलेगी ! परमेश्वर ही जाने । किसी समय गृहमंत्री और अब रेलमंत्री नन्दा जी के भ्रष्टाचार निवारण के आश्वासन अधर में लटकते ही नहीं रहे बल्कि 'सदाचार' की तख्तियां सरकारी कार्यालयों में लगवाकर रुपये दो रुपये की घूस से जो काम चलता रहा, उसका भाव 'सदाचार' लिखकर बढ़ा दिए ।

इन्दिरा गांधी के गरीबी दूर करने का अभियान क्या संघ विरोधी अभियान हो गया ? अरे, इस चह्वाण साहब की बात तो और निराली है । चीन के आक्रमण के समय मेनन से रक्षा मंत्रालय छीन कर इन्हें सौंपा गया । महाराष्ट्र के तत्कालीन मुख्यमंत्रित्व से विदा लेते हुए पूना नागपुर की जन-सभाओं में लाखों के जन-समूह के समक्ष कहा था—'जब तक दुश्मन को देश की धरती से खदेड़ नहीं दूंगा, महाराष्ट्र की धरती पर पैर नहीं रखूंगा ।' क्या हुआ इस आश्वासन का ? इन्दिरा जी कहते नहीं थकतीं—'मैं कम्युनिस्ट नहीं हुई हूं. न ही होऊंगी । फिर साम्प्रदायिकता और देशद्रोहिता दोनों के मूर्तिमन्त प्रतीक मुस्लिम लीग और कम्युनिस्टों से अभी हाल ही के केरल के उपचुनाव में इन्दिरा कांग्रेस से गठजोड़ कैसे हुआ ?

इन्दिरा जी और उनके समर्थको ! याद रखो भारतवासियों को अन्धा समझना यह सिद्ध होने वाला है कि ऐसा व्यक्ति दृष्टिदोष का रोगी है । कब तक सबको भुलावे में रखा जायगा ? तथ्य तो एक दिन खुलकर ही रहने वाले हैं । साम्प्रदायिक दंगे आर० एस० एस० कराता है तो फिर संघ स्थापना के पूर्व (सन् १९२५) दंगे कौन कराता था ? यदि मुस्लिम साम्प्रदायिकता के प्रति भी वही रुख अपनाना है तो जमायते इस्लामी ही क्यों, मुस्लिम लीग, मुस्लिम मशावरात, इतहाते मुसलमीन, जमीयत-उल-उलेमा, तामीरे-ए-मिल्लत और प्लेबिसाइट फ्रंट जैसी संस्थाओं पर क्यों प्रतिबंध नहीं लगाते ? वह नमकहराम शेख अब्दुल्ला को स्वतत्र कश्मीर के लिए खुले आम सम्मेलन बुलाकर आह्वान करने वाले पर प्रतिबंध क्यों नहीं लगाते ? इन्हें नक्सलवादी बड़े प्रिय हैं इसीलिए तो सघ की असामान्य राष्ट्रनिष्ठा पर कोपदृष्टि और अराजकता फैलाने तथा कानून को अपने हाथ में लेकर आगे बढ़ने वाले नक्सलवादी निःशंक रहते हैं । इन्दिरा जी को तो केन्द्र शासन को सीधी चुनौती देने वाली तथा केन्द्र के आदेश का खुले आम विरोध करने वाली सरकारें पसन्द हैं । तमिलनाडु की सरकार इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है । साम्प्रदायिक दंगे पसन्द तो ये स्वय करते हैं वरना मुस्लिम लीग से समझौता कर चुनाव लड़ते क्यों ? पाकिस्तान से निरन्तर हिन्दुओं के निष्क्रमण के प्रति कड़ा रुख क्यों नहीं अपनाते ? हिन्दु और मुसलमान के लिए अलग-अलग कानून क्यों बनाये रखते ? धार्मिक स्थानों

को अस्त्रागार के रूप में प्रयोग करने से रोकते क्यों नहीं ?

जिस देश को कर्ज की अदायगी के लिए कर्ज लेना पड़े किन्तु जिसके नेता ऐशोआराम में लीन हों, जिस देश के नेताओं को अपनी सीमाओं का अज्ञान होने कारण उसे विवादग्रस्त मानते हुए चुप्पी साधकर उसे खो देने में कोई हानि प्रतीत न हो, जिन नेताओं की पसन्द राष्ट्रद्रोही हो, और देशभक्त घृणा के पात्र हों, जिनके शौर्य (?) का प्रतीक स्वतंत्रता के पश्चात १॥ लाख वर्ग-मील भूमि पड़ोसियों द्वारा दबा लिया गया हो; जिनकी नीतिमत्ता (?) के फलस्वरूप संसार में भारत मित्रविहीन हो गया हो, जिन्होंने अपने 'सत्कर्मों' से भारतीयों की विश्व में यह हालत कर दी कि तन्जानिया, युगाण्डा, कीनिया, बर्मा, सिलोन से शरणार्थी होकर भारतीय चले आ रहे हों; जो पाकिस्तान से मैत्री के इच्छुक हैं किन्तु ३ हजार हिन्दू प्रतिदिन लूट-खसोट, व्यभिचार, अत्याचार के शिकार होकर भारत की सीमा में प्रवेश कर रहे हैं; जिनकी छत्रछाया में नक्सलियों की लूटपाट, हत्या का क्रम देश भर में चल रहा है; जिनसे नैपाल, भूटान और सिक्किम जैसे भारत के अभिन्न अंग स्परूप देश भी सम्बन्ध विच्छेद करने के लिये आतुर ही नहीं, प्रखर शत्रुराष्ट्र चीन के सहयोग के आकांक्षी हैं—ऐसे भारत को दीन, हीन, दुख-दैन्य-दारिद्रयपूर्ण बनाने में अग्रगामी नेताओं के चेहरे पर से नकाब हट रहा है ।

यह प्रतिबन्ध कहीं भस्मासुर सिद्ध होकर न रह जाय । बकरे की मां आखिर कब तक खैर मनायगी ! यह तो भविष्य ही बतायगा कि आने वाली पीढ़ियां इन्हें उसी तरह माफ नहीं कर सकती, जिस तरह शताब्दिओं बाद भी आज तक मानसिंह, जयचन्द और जयसिंह को नहीं कर सकीं । सत्ता के मदमत्तों को नहीं मालूम कि जिस सीढ़ी पर वे चढ़ रहे हैं वह दिशाहीन, अन्धकारमय मार्ग को प्रशस्त कर रही है । संघ का स्वयसेवक ही क्या, प्रत्येक हिन्दू की वाणी इन्हें ललकार कर पूछ रही है —

> गोपाल राम के नामों पर कब मैंने अत्याचार किया,
> कब दुनियां को हिन्दू करने मैंने नर संहार किया ।
> कोई बतलाए काबुल में जाकर कितनी मस्जिद तोड़ीं,
> भूभाग नहीं शत शत मानव के हृदय जीतने का निश्चय ।।
> हिन्दू तन-मन, हिन्दू जीवन, रग रग हिन्दू मेरा परिचय ।।

संघ पर प्रतिबंध की बात बच्चों की बात पर जैसे हँसी आती हो, कुछ इसी भांति है क्योंकि :—

> रोक सकेंगे नहीं विरोधक संघ शक्ति का प्रबल प्रवाह ।
> यह मानस से आती गंगा रोकोगे क्या इसकी राह ।।

और जब ध्येय की उच्चता पर अटल विश्वास हो तब स्वर फूट पड़ते हैं–

'क्या कभी किसने सुना है सूर्य छिपता तिमिर भय से
क्या कभी सरिता रुकी है बांध से बन-पर्वतों से ?

शासन इसी से यदि समझ जाय कि संघ के स्वयंसेवक राष्ट्र के प्रति ध्येयनिष्ठ ही नहीं सर्वस्वार्पण की किस प्रकार तैयारी रखते हैं तो इस सिंह के मुंह में हाथ डालने के खतरे से बच सकते हैं। जिस भावना और जिस आधार को लेकर यह हिन्दूराष्ट्र का मन्त्र लेकर चला है वह भारतवर्ष के वैभवकाल में विश्व के मानव को जो कल्याणकारी मार्ग हम प्रशस्त करते थे, पुन: उसी जगद्गुरु का स्थान इस भूखण्ड को प्राप्त हो, जिसे हम सर्वप्रकार से पुण्यभू, मातृभू, पितृभू और कर्मभू मानते हैं।

अब भी आंखें खोलिए और समझिए कि राष्ट्रहित में स्वतित को विलीन कर प्रतिबंध किन पर आवश्यक है। इस पर बार बार विचार करिए क्योंकि प्रतिबंध की बात उन लोगों के लिए कितनी नगण्य है यह स्वयं ही कर देखिए, जिनके हृदय में प्रखर राष्ट्रभक्ति की ज्योति इस तरह प्रज्वलित हो रही है कि-

'तेरा वैभव अमर रहे मां, हम दिन चार रहें न रहें'

—●—

समाचार समीक्षा

सरकारी न्याय का नमूना

लगभग ६ मास पूर्व नई दिल्ली के विट्ठल भाई पटेल भवन में एक सभा हुई थी, जिसमें वीर अर्जुन के सम्पादक श्री के. नरेन्द्र एव संसद सदस्य श्री बलराज मधोक ने भी भाषण दिये थे। उसी समय उन दोनों के भाषणों की पर्याप्त आलोचना-प्रत्यालोचना हुई और यह भी सुना गया था कि सरकार श्री मधोक पर साम्प्रदायिकता भड़काने के आरोप में मुकदमा चलाना चाहती है। इसकी तीव्र प्रतिक्रिया भी हुई, किन्तु उफान शान्त-सा हो गया।

अब ६ मास बाद सरकार के कानून विभाग ने सलाह दी है कि मुकदमा चलाया जा सकता है। और आलोचकों को दबाने के लिए उतावली कांग्रेस सरकार ने श्री के० नरेन्द्र एवं श्री मधोक की गिरफतारी के वांरट निकलवा दिए। श्री नरेन्द्र को तो बन्दी बना लिया गया किन्तु श्री मधोक की, दिल्ली से बाहर होने के कारण प्रतीक्षा की जा रही थी।

प्रश्न गिरफ्तारी का नहीं है। हम पूछना चाहते हैं कि जिन उत्तेजक भाषणों से ६ मास की अवधि तक जब कोई साम्प्रदायिकता नहीं भड़की तो क्या अब ६ मास बाद उसके भड़कने की कोई सम्भावना हो सकती है ? और दूसरी बात, क्या एक साधारण सी बात कि 'अमुक कार्य के अमुक भाषण के अमुक अंश के आधार पर अभियोग दायर किया जा सकता है अथवा नहीं' इतनी-सी बात की छान-बीन अथवा निर्णय करने में सरकार को ६ मास लगते हैं ? इसमें हमें एक चुटकला स्मरण हो आता है। सुनते हैं किसी देशी रियासत में किसी स्थान पर आग लग गई, अधिकारियों ने मुख्यालय को तार द्वारा इसकी सूचना दी। छः मास बाद मुख्यालय से तार का उत्तर तार द्वारा ही प्राप्त हुआ कि 'आग बुझा दी जाय।'

इसी प्रकार की कहानियां 'अंधेर नगरी चौपट राजा' के नाम से भी सुनने को मिलती हैं।

डा० तेलो मास्करेन्हास की रिहाई

सन् १९५९ में पुर्तगाल के तानाशाह सालाजार के आदेश से डा० मास्करेन्हास को छल से बन्दी बना कर उन्हें पुर्तगाल ले जाया गया, जहाँ उन्हें आजीवन कारावास की सजा सुना कर कालकोठरियों में यातना सहने के लिये भेज दिया गया था। उनका अपराध था गोवा को पुर्तगालियों से मुक्त कराने के लिये आन्दोलन करना। ११ वर्ष पुर्तगालियों की जेल में कठोर यातना सहने के बाद विगत २९ मई को उन्हें पुर्तगाली राष्ट्रपति मार्शल एंटोनिया कार्कानास की जन्म शताब्दि के उपलक्ष्य में कारावास से मुक्त कर दिया गया।

कहने को तो जन्म शताब्दि का उपलक्ष्य है, किन्तु सारा विश्व जानता है कि उनकी मुक्ति के लिये क्या क्या नहीं किया गया। न केवल भारत ने इसके लिये प्रयत्न किया अपितु सभी स्वतन्त्रता प्रिय देशों के प्रतिनिधियों को इसके लिये प्रेरित किया गया। तब कहीं दबाव में आकर पुर्तगाल सरकार ने मास्करेन्हास को मुक्त कर स्वयं पाप से मुक्ति पाई है।

डा० मास्करेन्हास का जन्म १८९९ में गोवा के एक सम्भ्रान्त ईसाई परिवार में हुआ। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा पुर्तगाल में हुई और स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त वे कानून की शिक्षा के लिये १९२० में पुर्तगाल के कोयंबरा विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हो गये। जिस तानाशाह सालाजार ने उनको बन्दी बना कर आजीवन कारावास का दण्ड दिलवाया, डा० मास्करेन्हास उस सालाजार के कोयंबरा विश्वविद्यालय में शिष्य रह चुके हैं और सालाजार उन दिनों उनसे बहुत प्रभावित भी था। तानाशाह बनने पर उसने डा० मास्करेन्हास को पुर्तगाल सरकार की सेवा में नियुक्त करवा दिया था। किन्तु जब १९४८ में वे पुर्तगाल से स्वदेश लौटे तो गोवा में पुर्तगाली साम्राज्य के अत्याचारों ने उनके हृदय को विदीर्ण कर दिया। उन्होंने इससे मुक्ति का व्रत लिया और वे गोवा से बम्बई चले गए। वहां से इन्होंने पुर्तगाली भाषा में 'रिसूजे गोवा' अर्थात् गोवा का पुनरुत्थान नामक पत्रिका प्रकाशित की। १९५५ से १९५८ तक डा० मास्करेन्हास ने आकाशवाणी से पुर्तगाली भाषा में गोवा मुक्ति आन्दोलन के लिए भाषण भी प्रसारित किये।

मुक्त होने के बाद अपने देशवासियों के नाम जो सन्देश उन्होंने भेजा है उसमें कहा है-मैं पूर्णतया थक गया हूं। किन्तु मुझे आशा है कि मैं शीघ्र ही अच्छा हो जाऊंगा। इतने लम्बे समय तक जेल में रहने के बाद मुझे यह विश्वास करना कठिन मालूम पड़ता है कि मैं मुक्त हूं। पुर्तगाली जेलों में मेरा

स्वास्थ्य बिगड़ गया है परन्तु अब नये मुक्त वातावरण में शीघ्र ही ठीक हो जाऊंगा।

डा० मास्करेन्हास पुर्तगाली कारावास से तो मुक्त हो गए हैं किन्तु उनको भारत आने के लिए फिर पुर्तगाल सरकार के साथ एक और संघर्ष करना पड़ेगा।

पश्चिमी बंगाल के पश्चिमी राज्यपाल

गत मास कलकत्ता के कतिपय सम्भ्रान्त नागरिक अपने प्रदेश के राज्यपाल श्री धवन के पास इस उद्देश्य से गए थे कि उन्हें ईश्वर विद्यासागर समिति का संरक्षक बनाया जाय। श्री धवन ने अपनी धवल यश:कीर्ति को अत्यधिक धवलित (?) करते हुए समागत नागरिकों से पूछा कि "विद्यासागर कौन थे ?" यद्यपि उन्होंने संरक्षक बनने से इन्कार नहीं किया अपितु बड़ी सरलता से कहा कि समिति का संरक्षक बनने से पूर्व वे जानना चाहेंगे कि श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कौन थे। इसे लज्जास्पद कहें अथवा हास्यास्पद कि देश के किसी प्रदेश का प्राथमिक कक्षा का विद्यार्थी जिस व्यक्ति के विषय में पूर्ण ज्ञान रखता है, उससे एक प्रदेश का राज्यपाल, न केवल राज्यपाल अपितु भूतपूर्व उच्चायुक्त अपने देश के पिछली शताब्दि के शिक्षाशास्त्री के विषय में अनभिज्ञ है। क्या इसी महान् (?) ज्ञान के आधार पर ही श्री धवन महाशय को विदेश में उच्चायुक्त और स्वदेश में एक बहुत बड़े प्रदेश का राज्यपाल नियुक्त किया गया था ?

श्री धवन की धवल यश:पताका की धवलिमा की एक और घटना भी प्रकाश में आई है। विगत २५ मई को जब वे कलकत्ता उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को शपथ ग्रहण करवा रहे थे, उस समय भी उनके मुख से जो वाणी मुखरित हुई है, उसमें उन्होंने भारत के वकीलों को आलसी की संज्ञा से विभूषित किया और साथ ही यह भी कहा कि वकीलों और जजों में शिक्षा का अभाव है। परिणाम-स्वरूप कलकत्ता हाईकोर्ट बार लाइब्रेरी क्लब और बार एसोसियेशन ने दो प्रस्तावों द्वारा इस पर गम्भीर रोष व्यक्त किया है तथा निश्चय किया है कि श्री धवन जब तक अपने इस कृत्य के लिए सार्वजनिक क्षमायाचना नहीं करते वे हर क्षेत्र में उनका बायकाट करेंगे।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि पश्चिमी बंगाल में राष्ट्रपति शासन लागू होने पर श्री धवन की नियुक्ति के बाद उन्होंने प्रदेश की समस्याओं को सुलझाने की अपेक्षा उलझाया अधिक है। प्रदेश में शांति और व्यवस्था की स्थापना में वे नितान्त असफल सिद्ध हो रहे हैं।

इसमें भी किसी को तनिक भी सन्देह नहीं कि धवन महाशय मार्क्स और लेनिन के भक्त हैं। तभी तो गांधी की मूर्ति के स्थान पर वे लेनिन की मूर्ति की स्थापना का सुझाव देते हैं। न केवल इतना, जब उन्होंने राष्ट्रपति शासन के रूप में प्रदेश के शासन का भार सम्भाला था तो यही इच्छा व्यक्त की थी कि वे उस कुख्यात मार्क्सवादी कम्युनिस्टों के बहुमत मोर्चे को पुनः सत्तारूढ़ देखने के लिए प्रयत्नशील रहेंगे।

स्पष्ट है कि धवन नहीं चाहते कि कम्युनिस्टों के पुनः सत्तारूढ़ होने पर उनकी वह दशा हो जो भूतपूर्व राज्यपाल श्री धर्मवीर की हुई थी। और यह भी स्पष्ट है कि अपनी आन के लिए वे देश की शान को मिट्टी में मिलाने से नहीं हिचकते।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संरसंघचालक श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर ने अपने एक लिखित वक्तव्य में कहा है कि कुछ सप्ताहों से सरकार ने अपने तन्त्र के माध्यम से राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के विरुद्ध एक अभियान छेड़ा हुआ है। यह अभियान राजनीतिक उद्देश्य से प्रेरित है। राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघ एक विशुद्ध सांस्कृतिक संगठन है और उसे राजनीति से लेना-देना नहीं है। हमारे कतिपय नेताओं का यह स्वभाव-सा बन गया है कि जब कभी और जहां कहीं दुर्भाग्यवशात् साम्प्रदायिक दंगे हों वे उनका दोष संघ के मत्थे मढ़ने का प्रयत्न करते हैं। कौन नहीं जानता है कि जब कभी ऐसे दंगे होते हैं उनमें भाग लेने वाले लोगों के विरुद्ध पुलिस केस दायर किये जाते हैं, उन पर न्यायालय में मुकद्दमा चलाया जाता है और जो अपराधी सिद्ध होते हैं उन्हें दण्ड दिया जाता है। किन्तु आज तक एक भी उदाहरण नहीं मिला कि जब संघ अथवा उसके स्वयं सेवकों को ऐसे मामले में अपराधी अथवा उत्तरदायी सिद्ध किया जा सका हो। समय-समय पर इन दंगों की न्यायिक जांच करने के लिये आयोग भी बैठाये गये। उन्होंने सरकार को अपनी रिपोर्ट दी, किन्तु जहां तक मेरी जानकारी है एक भी आयोग ने ऐसे किसी दंगे के लिये सघ को दोषी अथवा उत्तरदायी नहीं ठहराया। अतः इन दंगों के लिये संघ को दोषी ठहराने का प्रयत्न मिथ्यारोपण से अधिक कुछ नहीं है।

जहां तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्य का सम्बन्ध है वह, जाति, पन्थ, भाषा, क्षेत्र एवं उपासना पद्धति की सभी भावनाओं से ऊपर है। उसका एकमेव लक्ष्य हिन्दुओं के अन्दर स्वस्थ सामाजिक चेतना एवं समष्टिभाव का संचार करते हुए उन्हें अनुशासन बद्ध बनाना है। हमारे कार्य में घृणा के लिये कहीं स्थान नहीं है हमारा धर्म हमें अन्य मतों से घृणा करना नहीं सिखाता।

अतः हम उसका प्रचार ही कैसे कर सकते हैं ।....

सरकारी प्रवक्ताओं की इस खोज की ओर भी मेरा ध्यान गया है कि संघ उन 'आश्वासनों' का पालन नहीं कर रहा जो उसने १९४९ में संघ पर से प्रतिबन्ध हटाने के पूर्व भारत सरकार को दिये थे । मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि संघ ने कभी किसी को कोई आश्वासन नहीं दिया था । संघ पर से प्रतिबन्ध बिना शर्त हटाया गया था । हमने केवल इतना किया था कि अपने अलिखित संविधान को लिपिबद्ध कर दिया था । .. सरकारी क्षेत्रों में संघ के गैरराजनीतिक चरित्र को प्रतिबन्ध उठने के समय संघ द्वारा सरकार को दिये गये आश्वासनों का अंग बताना फैशन सा हो गया है । संघ अपने जन्म काल से ही गैर राजनीतिक दल है क्योंकि यह उसका अपना निर्णय था। वस्तुतः स्वर्गीय सरदार पटेल के साथ मेरा पत्र-व्यवहार इस बात का साक्षी है कि सरदार पटेल इस बात के लिये बड़े उत्सुक थे कि संघ राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण करे और कांग्रेस के समर्थन में अपनी शक्ति लगाये । मेंरे नाम ११ दिसम्बर १९४८ के पत्र में उन्होंने लिखा था—'मेरा पूर्ण विश्वास है कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ वाले अपने देश प्रेम को कांग्रेस में मिल कर ही निभा सकते हैं अलग होकर या विरोध करके नहीं । 'यदि सरकार को कोई शिकायत हो सकती है तो वह इतनी ही कि हमने अपने गैर राजनीतिक चरित्र का परित्याग करने के उसके आग्रह को अमान्य किया । ...

मैं पुनः कहता हूं कि संघ चरित्र निर्माण में लीन एक विशुद्ध सांस्कृतिक संगठन है । अच्छा हो कि राजनीतिज्ञ अपनी असफलताओं को हम पर आरोपित न करें । संघ की स्थापना सरकारी कृपा से नहीं हुई थी, न उसका कार्य और प्रगति सरकारी अनुग्रह पर निर्भर है । मातृभूमि की निस्वार्थ सेवा की उत्कट भावना से प्रेरित सहस्रों कार्यकर्त्ताओं ने अपने जीवन इसको अर्पित किये हैं और उसे एक स्वस्थ संगठन के रूप में खड़ा किया है । अनर्गल प्रचार एवं प्रतिबन्ध की धमकियां संघ को राष्ट्रसेवा के पथ से कदापि विचलित नहीं कर पायेंगी ।

देवी इन्दिरा का नया पैंतरा

इससे पूर्व भी हम बता चुके हैं कि पण्डित नेहरू जब तक प्रधानमन्त्री अथवा किसी अन्य सरकारी या गैर सरकारी पद पर आसीन रहे उनके मुख पर झिड़कियां और जेब में त्यागपत्र सदा विद्यमान रहा । एक हाथ सदा जेब में ही रहा मानो त्यागपत्र अब निकला । देवी इंदिरा की स्थिति इससे कुछ भिन्न होने से वह त्यागपत्र की धमकी देने में असमर्थ हैं । क्योंकि वह जानती हैं कि एक बार भी उसने त्यागपत्र का नाम लिया तो कोई भी उसको यह

कहने वाला नहीं कि इसे थोड़े समय के लिये स्थगित रखिये। उन्होंने अपनी ओछी प्रसिद्धि के लिये नया पैंतरा चुना है। जब से उन्होंने अपना नया सगठन बनाया है एक वर्ष से कम की इस अवधि में वे दो बार कह चुकी हैं कि मुझे मारने की धमकी दी जारही है। प्रथम वार तो उन्होंने गोलमोल भाषा का प्रयोग किया था, इस बार स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि जनसघ अथवा संघ ने मुझे धमकी दी है। पुरुलिया में जब कुछ लोगों ने उन पर पत्थर बरसाये तो तब भी उन्होंने जनसघ का नामोच्चार किया। प्रतीत होता है कि जनसंघ के भय से देवी इन्दिरा रात्रि को पूरी नींद भी नहीं सो पाती होंगी।

लाखों रुपये खर्च कर हजारों की उपस्थिति के लिये दिल्ली के चांदनी चौक घंटा घर पर देवी इंदिरा की जो सभा की गई, उसमें भी उन्होंने कहा—'मुझे पूरी उम्मीद है कि दिल्ली के लोग खासकर यहां के नौजवान शाखाओं की चाकू, तलवार और लाठी की ट्रेनिंग से अपने को दूर रखेंगे। क्यों कि ऐसी ट्रेनिंग बुज़दिली की निशानी है।' और वीरत्व की निशानी है हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्थान के समर्थकों की तन-मन-धन एवं शासन से निन्दा, भर्त्सना एवं ताड़ना करना। ●

नये सरक्षक सदस्य

४०. श्री अनिल कुमार तांदले
६/३/६१२/४ बिहाईण्ड जिला परिषद्, खैरताबाद, हैदराबाद-४

४१. सौ० इन्दिरा वामन राव मासुरकर,
वार्ड नं० १ मु० पो०—खापा
ताल्लुका सावनेर, जिला नागपुर (महाराष्ट्र)

४२. श्री विश्मभर प्रसाद
विश्व सदन, न्यू डाक बंगलो रोड, पटना।

४३. श्री हरी कृष्ण गुप्त,
१२३ मुकर्जी मार्ग, कोआपरेटिव बैंक के पास,
ब्यावरा, जि. राजगढ़ (मध्य प्रदेश)

४४. श्री निरजंन मुखर्जी।
सर्वे एवं अनुसंधान उपविभाग क्र० १,
पोस्ट बड़वाहा, जिला खरगोन (मध्य प्रदेश)

४५. श्री बाबू लाल गुप्त, एडवोकेट
झंडा चौक, मुरैना (मध्य प्रदेश)

कुछ अत्यन्त रोचक व प्रेरणाप्रद पुस्तकें

जो प्रत्येक को पढ़नी चाहियें

श्री सावरकर साहित्य

आजन्म कारावास (सम्पूर्ण)	१५.००
1857 War of Independence	35.00
प्रतिशोध (नाटक)	४.००
मोपला-गोमान्तक	३.००
अमर सेनानी सावरकर	२.५०
हिन्दुत्व	२.००

श्री बलराज मधोक साहित्य

जीत या हार	३.००
हिन्दू राष्ट्र	१.५०
श्यामाप्रसाद मुखर्जी : जीवनी	६.००
भारत की सुरक्षा	४.००
भारत और संसार	६.००
भारत की विदेश नीति	४.००
भारतीय जनसंघ एक राष्ट्रीय मंच	१.५०
Indian Nationalism	1.50
What Jana Sangh Stands For	1.50
Nationalism Democracy and Social Change	1.50
Kashmir Centre of New Alignments	15.00
India's Foreign Policy And National Affairs	3.00

डा० रामलाल वर्मा

दिल्ली से कालीकट	५.००

श्री तनसुखराम गुप्त

हिन्दुत्व का अनुशीलन	४.००

श्री गुरुदत्त साहित्य

अन्तिम यात्रा	१.००
समाजवाद एक विवेचन	१.००
गाँधी और स्वराज्य	१.००
भारत में राष्ट्र	१.००
वन्दे मातरम् (नाटक)	२.००
भारत गान्धी नेहरू की छाया में	४.००
देश की हत्या (उपन्यास)	३.००
भग्नाश ,,	३.००
छलना ,,	७.००
धर्म संस्कृति और राज्य	८.००
जमाना बदल गया (नौ भागों में)	२०.००
महर्षि दयानन्द	२.००
श्रीमद्भगवद्गीता–एक अध्ययन	१५.००
धर्म तथा समाजवाद	६.००
युगपुरुष राम (किशोरों के लिए)	२.००
India in the Shadow of Gandhi and Nehru	20.00

श्री पी० एन० ओक

भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें	१०.००
भारत में मुस्लिम सुल्तान	१०.००
Some Blunders of Indian Historical Research	15.00

Hansraj Bhatia

Fatehpur Sikri is a Hindu City	10.00

श्री गुरुदत्त का सम्पूर्ण साहित्य हमारे सदन से उपलब्ध है। १० रुपये की पुस्तकों पर डाक व्यय फ्री; २० रुपये की पुस्तकों पर १० प्रतिशत छूट।

भारती साहित्य सदन सेल्स

३०/९०, कनाट सरकस, (मद्रास होटल के नीचे), नई दिल्ली-१

परिषद् के प्रकाशन

५. धर्म तथा समाजवाद

समाजवाद क्या है तथा धर्मवाद क्या है ? दोनों की विस्तृत विवेचना तथा समाजवाद का युक्तियुक्त खण्डन इस पुस्तक का विषय है । लेखक का मत है कि दोनों विपरीत दिशा में ले जाने वाले तन्त्र हैं ।

मूल्य रु० ६.००

लेखक श्री गुरुदत्त

कुछ अन्य प्रकाशन

६. भारत में राष्ट्र लें० श्री गुरुदत्त मू० सजिल्द रु० २.५०
पाकेट संस्करण रु० १.००

७. समाजवाद एक विवेचन ,, मूल्य (केवल पाकेट सं०) १.००

८. गान्धी और स्वराज्य ,, मूल्य (केवल पाकेट सं०) १.००

९. भारतीयकरण एक अध्ययन सं० अशोक कौशिक मूल्य ८.००

१०. प्रजातन्त्र अथवा वर्ण व्यवस्था ले० श्री गुरुदत्त
मूल्य रु० ४.०० (पाकेट में २.००)

वितरक

भारती साहित्य सदन सेल्स

३०।९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे) नई दिल्ली-१

उपर्युक्त सभी पुस्तकों का लाभांश तथा उनकी रायल्टी परिषद् के उद्देश्यों के प्रचार तथा प्रसार पर व्यय की जाती है ।

संरक्षक सदस्य

१ केवल एक सौ रुपये भेजकर शाश्वत संस्कृति परिषद् के संरक्षक सदस्य बनिये। यह रुपया परिषद् के पास आपकी धरोहर बनकर रहेगा।

शाश्वत संस्कृति परिषद् का उद्देश्य

विशुद्ध भारतीय तत्त्वदर्शन पर सम्यक् गवेषणा करना तथा उसका प्रचार करना एवं उनके आधार पर राष्ट्र के सम्मुख सभी समस्याओं का सुलझाव प्रस्तुत करना।

संरक्षक सदस्यों को सुविधाएं

१. परिषद् के नवीनतम प्रकाशन तथा आगामी सभी प्रकाशन आप विना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। नवीन प्रकाशन हैं— १. भारतीयकरण एक अध्ययन (मूल्य ८ रु०) तथा २ इतिहास में भारतीय परम्पराएं (मूल्य १० रुपये)। आगामी प्रकाशन हैं–वर्ण-व्यवस्था तथा प्रजातन्त्र (मूल्य ४ रु०); राष्ट्रीयकरण (मूल्य ४ रु०); ब्रह्मसूत्र हिन्दी विवेचना (मूल्य २५ रु०) एवं अन्य।

२. परिषद् की पत्रिका शाश्वत वाणी आप जब तक सदस्य रहेंगे प्राप्त कर सकेंगे।

३. परिषद् के पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ (सूची इसी अंक में अन्यत्र देखें) आप २५ प्र०श० छूट के साथ प्राप्त कर सकेंगे।

४. जब भी आप चाहेंगे एक मास की पूर्व सूचना देकर अपनी धरोहर वापिस ले सकेंगे। धन मनीआर्डर द्वारा भेज सकते हैं।

शाश्वत संस्कृति परिषद्

३०।९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे)-नई दिल्ली-१

भारतीय संस्कृति परिषद् के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं शक्तिपुञ्ज मुद्रणालय, दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित

अगस्त, १९७० वर्ष १०—अंक ८ रजि० क्र० ६६८६/६०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत संस्कृति परिषद् के प्रकाशन

१. इतिहास में भारतीय परम्पराएं
ले० श्री गुरुदत्त

पाश्चात्य इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास को जो गलत-सलत करने का षड्यन्त्र रचा था तथा उनके अनुगामी भारतीय इतिहासकार जो उस गलत इतिहास को लोगों के गले उतार रहे हैं, इसकी व्याख्या इस पुस्तक में है । लेखक ने अत्यन्त ही कुशलता तथा युक्ति से उनकी मान्यताओं का खण्डन कर इतिहास की भारतीय परम्पराओं का दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया है ।

मूल्य रु० १०.००

२. श्रीमद्भगवद्गीता एक अध्ययन
ले० श्री गुरुदत्त

प्राय: प्रत्येक मनीषी ने गीता पर विवेचना लिखने का प्रयास किया है । परन्तु इस विवेचना की अपनी विशेषता है । लेखक की मान्यता है कि गीता में जो ज्ञान का भण्डार है, वह कर्म की प्रेरणा के निमित्त है ।

मूल्य रु० १५.००

३. भारत गान्धी नेहरू की छाया में
ले० श्री गुरुदत्त

लगभग २५० उद्धरणों के आधार पर रचा गया यह ग्रन्थ नेहरू जी की राजनैतिक जीवनी है । प्राय: उद्धरण श्री नेहरू की अपनी रचनाओं में से लिये गये हैं । यह पुस्तक चित्र का बिल्कुल दूसरा और वास्तविक रूप दर्शाती है ।

मूल्य १०.०० (सम्पूर्ण पाकेट संस्करण ४.००)

४. धर्म संस्कृति तथा राज्य
ले० श्री गुरुदत्त

तीनों की विवेचना, तीनों का परस्पर सम्बन्ध, यह इस पुस्तक का विषय है । अत्यन्त ही सरल भाषा में यह पुस्तक लिखी गयी है, परन्तु विषय अत्यन्त ही गम्भीर है ।

मूल्य रु० ८.००

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।
ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता
प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

सम्पादक
अशोक कौशिक

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१
फोन : ४७२६७

मूल्य
एक अङ्क रु. ०.५०
वार्षिक रु. ५.००

सम्पादकीय

अपने घर की बात

इसी लेख श्रृंखला में हमने विगत मास यह लिखा था कि हिन्दू दल की राजनीति और अर्थ-व्यवस्था हिन्दू संस्कृति की पोषक होनी चहिये।

आज हम हिन्दू संस्कृति के विषय में अपने विचार व्यक्त करना चाहते हैं। संस्कृति का सम्बन्ध संस्कारों से है। संस्कार, आचार एवं विचार की उपज होते हैं। हिन्दू आचार उन विचारों के आधार पर बने हैं जो वेदादि शास्त्रों ने जाति में प्रचारित किये थे। इन विचारों को परिपुष्ट करने के लिये एक हिन्दू के व्यक्तिगत जीवन में अथवा जाति के सामूहिक जीवन में कई उत्सव, व्यवहार एवं रीति-रिवाज़ चलाये गये थे। उदाहरण के रूप में जन्म से मरण तक सोलह सस्कार और उनके द्वारा वेद मन्त्रों का ज्ञान एवं यज्ञ, कथा, कीर्तन इत्यादि।

यहां हम इतना स्पष्ट कर दें कि ये संस्कार जैसे यज्ञोपवीत, विवाह एवं अन्त्येष्टि हैं, इनकी रूप-रेखा तथा इनमें वेद-मन्त्र गान, इसे संस्कृति नहीं कहते। ये तो संस्कृति के पोषण के लिये हैं। संस्कृति का स्वरूप इनसे पृथक् है। जैसे चित्र और कलाकार की तूलिका दो भिन्न वस्तुएँ हैं। तूलिका चित्र नहीं हो सकती। इसी प्रकार

हिन्दू जीवन के भिन्न-भिन्न रीति-रिवाज और उनके प्रचलन के समय वेद गान, संस्कृति नहीं, वरंच तो तूलिका मात्र हैं जिनसे संस्कृति का चित्र हम मानवों के मन पर अंकित एवं प्रतिष्ठित करते हैं।

हिन्दू संस्कृति उन विचारों पर आधारित है जो वेदादि शास्त्रों में लिखे हैं। शास्त्रों में वाक्य बाहुल्य होने पर भी और इनके अनेक अर्थों के होने पर भी संस्कृति का स्वरूप अर्थात् वह धुरी जिसके चारों ओर चक्रापित विचार दिखायी देते हैं, बहुत कम, सरल और स्थिर हैं।

यद्यपि बौद्ध मत से प्रभावित मध्यकालीन हिन्दू लेखकों तथा मैक्समूल्लर इत्यादि युरोपीय विद्वानों ने वेदादि ग्रन्थों के अर्थ करने में बहुत अनर्थ किया है तदपि वैदिक विचार सरणि संक्षिप्त, सरल और स्पष्ट है। इसी विचार सरणि को वास्तविक संस्कृति अथवा संस्कृति का स्रोत कहा जा सकता है। इन विचारों की धुरी को जान लेने पर ही संस्कृति को समझा जा सकता है।

जिसे हिन्दू संस्कृति का मूल कहा जाता है, वह प्रथम तत्त्व है :

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥ (भ०-गी०—१५-१)

ऊपर मूल वाला और नीचे को लटकी शाखाओं वाला एक पेड़ है। इस पेड के पत्ते वेदों के मन्त्र हैं। पेड़ का मूल अविनाशी है। जो विद्वान् इस मूल को समझता है, वह ही ज्ञाता कहा जाता है।

इसी विचार को उपनिषद्कार ने इस प्रकार लिखा है:—

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं, भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोंकार एव, यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव॥ (माण्डू० उ०—१)

अर्थात् — ओं अविनाशी है। यह सब उसी का व्याख्यान है। भूत, वर्तमान और भविष्य सब कुछ वही है और जो कुछ कालातीत है, वह भी वही ओंकार है।

अनेक स्थानों पर परमात्मा तत्त्व का अस्तित्व और उसका इस जगत् का मूल होना माना गया है।

इसी प्रकार एक अन्य विचार है: —

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥
(भ० गी०— १५-१६ १७)

अर्थात् संसार में दिखायी देने वाले दो पदार्थ हैं। एक क्षर (नाशवान) है और दूसरा अक्षर (अविनाशी) है। क्षर सर्वभूत है और अक्षर शरीर के हृदय की गुहा में स्थित अविनाशी है।

इस अविनाशी से उत्तम एक अन्य पुरुष है। वह परमात्मा कहा गया है। तीनों लोकों मे प्रवेश कर सबका पालन करता है, वह ईश्वर है। अर्थात् प्रथम विचार में जो परमात्मा कहा है, उससे पृथक एक शरीर में रहने वाला अविनाशी (जीवात्मा) है।

इसका एक अन्य ढंग से भी वर्णन किया गया है :—

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्तः शरीरिणः
अनाशिनोऽप्रमेयस्व तस्माद्युध्यस्व भारत ॥
(भ० गी०२-१८)

प्राणी का शरीर नाशवान है। इसमें जीवात्मा नित्य है। वह नाशरहित है और अप्रमेय है।

दूसरा हिन्दू विचार यह है कि जीवात्मा अविनाशी है। मरने के समय देह नष्ट होती है, जीवात्मा नहीं।

एक तीसरा विचार है जो इस प्रकार है:—

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥
(भ०-गी०--१३- २१)

जीवात्मा प्रकृति में स्थित इसका भोग करता हुआ प्रकृति से उत्पन्न त्रिगुणों के संग में आने से अच्छी और बुरी योनियों में जन्म लेता है।

अर्थात् जीवात्मा प्रकृति में रहता हुआ जैसे कर्म करता है, वैसा ही फल पाता है।

एक चौथा विचार है जो हिन्दू संस्कृति का मूलाधार है। वह है :—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥
(भ०-गी०—४-१३)

परमात्मा ने गुण, कर्म, स्वभाव से चार विभागों में मनुष्य समाज बनाया है। यही बात महाभारत में भी लिखी है।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च द्विजसत्तम।
ये चान्ये भूतसङ्घानां सङ्घास्तांश्चापि निर्ममे ॥
(शान्ति०—१८८-४)

अन्यान्य प्राणियों के समुदायों के साथ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की भी सृष्टि परमात्मा ने ही की।

अभिप्राय यह कि मनुष्य गुण, कर्म और स्वभाव से चार वर्णों में विभक्त है। यही हिन्दुओं की विशिष्टता है।

यद्यपि इन विभागों में भेद-भाव करना अथवा नहीं करना, यह पृथक बात है और इस भेद भाव का क्या रूप हो सकता है, यह भी अपने अपने विचार की बात है। परन्तु वर्ण-व्यवस्था जन्म से नहीं अपितु गुण, कर्म और स्वभाव से मानी जाती थी।

एक पांचवां विचार हिन्दू संस्कृति की मूल धुरी के रूप में यह है:—

तेषां तु समवेतानां मान्यौ स्नातकपार्थिवौ।
राजस्नातकयोश्चैव स्नतको नृपमानभाक्॥ मनु० २-१३९।

सब के एक स्थान पर सम्मिलित होने पर स्नातक (विद्वान) और राजा दोनों सम्मानित होने चहियें परन्तु स्नातक और राजा के परस्पर मिलने पर राजा को विद्वान् का सम्मान करना चाहिये।

इसका अभिप्राय यह है कि शक्तिशाली से शक्तिशाली राजा को भी विद्वान् के सम्मुख शीश झुकाना चाहिए।

इसी भाव का वर्णन एक अन्य प्रकार से किया है:—

ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च।
त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये॥
अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम्।
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते॥

(मनु०-- १२- ११२,११४)

ऋक्, यजु; और साम वेदों के ज्ञाता तीन विद्वानों की समिति भी धर्म-निर्णय करने में सक्षम हैं।

किन्तु व्रतों से हीन, वेद से रहित एक सहस्र विद्वान केवल जाति से श्रेष्ठ होने पर भी धर्म का निर्णय नहीं कर सकते।

इसका आशय यह है कि एक सहस्र मूर्खों से वेदों के ज्ञाता तीन विद्वान् अधिक प्रतिष्ठित हैं।

हिन्दू विचारधारा की एक अन्य धुरी है। वह है :—

सत्यं वद धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। --- प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः।

(तैत्तिरीय- -- १-११-१)

इसका अभिप्राय है कि सत्यभाषण एवं धर्माचरण करते हुए ज्ञान उपलब्ध करने में आलस्य नहीं करना और अपने सन्तति सूत्र का उच्छेद नहीं होने देना। यह हिन्दू विचारधारा की एक विशेष धुरी है।

इसी प्रकार एक अन्य धुरी है—

परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।।
धर्म सँस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।। (भ० गी० ४-८)

इन कुछ एक विचार-धुरियों पर निर्मित आचरण को हिन्दू संस्कृति कहते हैं। यदि इनको संक्षेप में लिखा जाये तो वह इस प्रकार होगा—

(१.) आत्मवाद.
(२.) पुनर्जन्म और कर्म फल.
(३.) वर्णाश्रम धर्म.
(४.) विद्वानों के प्रति श्रद्धा और निष्ठा.
(५.) सनातन धर्मों का पालन.
(६.) जीवन के प्रत्येक कार्य में धर्मानुसार आचरण.
(७.) विद्वानों द्वारा दी धर्म-व्यवस्था पर श्रद्धा.
(८.) चरित्र की महिमा.
(९.) सदा साधुओं की रक्षा का यत्न और दुष्टों के विनाश का प्रयत्न.

यह व्यवस्था हिन्दू वेदादि शास्त्रों की है। यह सर्वथा युक्तियुक्त और मानव कल्याण की सूचक है।

हिन्दू संस्कृति ही मानव संस्कृति है।

भारतीयकरण के सन्दर्भ में

'भारतीयकरण: एक अध्ययन' की प्रशंसा एवं समालोचना पर अनेक पत्र एवं सदेश हमें प्राप्त हुए हैं। किन्तु कतिपय पाठकों का विचार है कि विशेषांक में कुछ भ्रान्तियां रह गई हैं। यद्यपि हमारी ऐसी धारणा नहीं है और हम समझते हैं कि विशेषांक का प्रत्येक लेख परस्पर परिपूरक ही है। उन पाठकों से जिन्हें इस विषय में भ्रान्ति है, हमारा निवेदन है कि वे विशेषांक के लेखों का पुनरावलोकन करें। हम समझते हैं इससे उनकी भ्रान्ति का निवारण हो जावेगा।

—सम्पादक

अन्तर्राष्ट्रीय हलचल

●

श्री आदित्य

●

इंगलैण्ड के निर्वाचन परिणाम

इस वर्ष जून में इंगलैण्ड में राजनीतिक भूकम्प आया है। वहां पिछले सात वर्ष से समाजवादी सरकार थी और वह यथा शक्ति समाजवादी राज्य चला रही थी। यह ठीक है कि वह सरकार पूर्ण रूप से इंगलैण्ड में समाजवाद नहीं ला सकी, परन्तु इसमें सरकार अर्थात् समाजवादी नेताओं का दोष नहीं था। यदि वे अपने देश में पूर्ण रूप से समाजवाद नहीं ला सके तो यह इस कारण कि प्रजातन्त्रात्मक राज्य की कुछ असमर्थतायें होती हैं।

इस पर भी समाजवादी सरकार ने इगलैण्ड की समाज में कुछ परिवर्तन तो किये ही थे। एक नवीन परिवर्तन यह किया था कि राज्य निर्माण में मतदाता की आयु इक्कीस वर्ष से कम कर अट्ठारह वर्ष कर दी थी।

एक दो परिवर्तन और भी हुए थे। उदाहरण के रूप में गर्भपात को एक फोड़ा-फुंसी के आपरेशन के स्तर पर ला दिया है तथा समलैंगिक सम्भोग को लड़के-लड़कियों में बिना विवाह के सम्बन्धों के स्तर पर ला रखा है। आर्थिक दिशा में वे कुछ अधिक नहीं कर सके। अर्थात् वे कर्मचारियों के हड़ताल करने के अधिकार को सीमित करना चाहते थे। यह वे कर नहीं सके। कई आर्थिक निकायों के राष्ट्रीयकरण को रद्द करने पर वे विवश हुए थे।

इन सब असफलताओं और सफलताओं पर भी वहां की समाजवादी सरकार और उसके पक्षपाती पुनः समाजवादी सरकार बनने की ही आशा कर रहे थे।

पुस्तकें लिखने वाले, पौल (मत का अनुमान) लगाने वाले और कहे जाने वाले राजनीतिक विद्वान सबके सब गलत सिद्ध हुए हैं और इनकी भविष्य-वाणियों के विपरीत टोडी दल वाले समाजवादियों से ४३ मत अधिक लेकर सफल हो गये हैं। इतना ही नहीं, इंगलैण्ड के हाउस आफ़ कौमन्स में भी आधे से अधिक सदस्य इस दल के हैं।

यह वहां के ही जानकर लोगों को विस्मय में डालने वाली बात नहीं, वरंच संसार भर के प्रजातन्त्रवादी देशों को चकित करने वाली सिद्ध हुई है। अमेरिका, जापान, फ्रांस और अन्य प्रजातन्त्र समाजवादी देशों को इस अप्रत्याशित कलाबाज़ी का कारण समझ नहीं आ रहा।

आज से एक वर्ष पूर्व विलसन की (समाजवादी) सरकार बदनाम हो रही थी। उस समय इंगलैण्ड की आर्थिक स्थिति अत्यन्त डांवाडोल हो रही थी। ऐंगियुला (Anguilla) की घटना के कारण और यूनियनों में सुधार के विषय में पग लौटाने के विषय पर लोग समझने लगे थे कि विलसन की सरकार टूटेगी।

परन्तु इसके उपरान्त विलसन की कुछ नीतियों ने इन बदनामियों को धो डाला था। विलसन ने आर्थिक क्षेत्र में और वेतन तथा कीमतों को निश्चित कर, पौण्ड का अवमूल्यन कर तथा भारी कर लगाकर घाटे के बजट को लाभ के बजट में बदल दिया था। इससे वहां के अर्थ शास्त्री और राजनीतिक पण्डित यह समझने लगे थे कि विलसन ने इंगलैण्ड को बचा लिया है और इसके साथ ही समाजवादी सरकार का जीवन लम्बा कर लिया है।

जहां एक वर्ष पूर्व मत संग्रहकर्त्ता यह कह रहे थे कि विलसन का दल २९.८ प्रतिशत से अधिक मत प्राप्त नहीं कर सकेगा, वहां अब निर्वाचनों के पूर्व वही मत संग्रहकर्त्ता यह समझने लगे थे कि विलसन का दल अपनी ख्याति के शिखर पर है।

निर्वाचन नियमानुसार मई १९७१ में होने वाले थे, परन्तु उक्त मत संग्रह-कर्त्ताओं (Poll takers) और अन्य लेखकों के अनुमानों से उत्साहित हो विलसन ने निर्वाचन दस महीने पहले ही कर लेने का निश्चय कर लिया।

विलसन ने आवश्यकता से अधिक आत्म विश्वास और उत्साह प्रकट किया और अनुदार दल के नेता मिस्टर टैड हीथ उदासीन थे। उसकी ख्याति भी आवश्यकता से कम समझी जाती थी।

निर्वाचनों के एक दो दिन पूर्व राजनीतिक पण्डित हीथ की पराजय की घोषणा कर रहे थे। उनका विचार था कि सरकार का बचत का बजट बनाकर विलसन ने इंगलैण्ड पर एहसान किया है।

परन्तु पांसा पलटा और निर्वाचन परिणामों के निकलने पर सब मतसंग्रह-कर्त्ताओं की भविष्यवाणियां आर्थिक तथा राजनीतिक पण्डितों के कथन असत्य सिद्ध हुए। टैड हीथ की पार्टी एक सुखद बहुमत से सफल हो गयी।

वही लोग जो विलसन की विजय और टैड हीथ की पराजय की भविष्यवाणियां कर रहे थे, अब वे विलसन के निर्वाचनों की तिथि में दोष

निकालने लगे हैं अथवा इंगलैण्ड की जनता को मूढ घोषित करने लगे हैं।

भिन्न भिन्न प्रवक्ता इस निर्वाचन के अप्रत्याशित परिणामों में कई प्रकार के कारण बता रहे हैं।

हमारा विचार है कि जहां तक आर्थिक प्रश्नों का सम्बन्ध है, किसी राज्य का बजट सन्तुलित होता है अथवा घाटे का होता है, जनता को उतना प्रभावित नहीं करते जितना कि सुख-सुविधाओं की कीमतें प्रभावित करती हैं।

विलसन ने भारी कर लगा कर, वेतन वृद्धि में रोक लगाकर और पौण्ड का अवमूल्यन कर बचत का बजट तैयार कर दिखाया, परन्तु इसका इतना प्रभाव नहीं हुआ जितना कि आवश्यक पदार्थों की बढ़ती हुई कीमतों का।

सुना है कि टैड हीथ के प्रचार की दिशा यह थी कि यदि अब के लेबर दल सरकार बना सका तो बढ़े हुए करों से डब्बल रोटी का दाम तीन शिलिंग हो जायेगा। बस का टिकट एक शिलिंग हो जायेगा और टेलीफोन के एक 'काल' का दाम एक शिलिंग हो जायेगा। इसके साथ ही जब कि पौण्ड का दाम दस शिलिंग रह गया है तो वस्तुओं के दाम वास्तव में दुगुने हो जायेंगे।

हम समझते हैं कि इस बात ने इंगलैण्ड के वोटरों पर बहुत प्रभाव डाला है। वस्तुओं के मूल्य प्रत्येक घर के बजट से सम्बन्ध रखते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि हीथ अपनी बात को विशेष रूप में स्त्री मतदाताओं को भली भांति समझा सका है और स्त्रियों ने समाजवादियों का तख्ता उलट दिया है।

एक अन्य भी कारण है। यह कारण कोई युरोपियन माने अथवा न माने, परन्तु परमात्मा के न्याय पर विश्वास रखने वालों को यह कारण निश्चित प्रतीत होता है।

हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि सार्वजनिक आन्दोलन (Mass Movements) रोटी, कपड़े के आधार पर नहीं चलते। उनका सम्बन्ध अन्तरात्मा की आवाज़ पर निर्भर होता है। सन् १९२० में महात्मा गांधी की आवाज़ भारत के कोने कोने में क्यों गूंज उठी थी? कारण यह कि उसकी आवाज़ की पृष्ठ भूमि में राम धुन थी। उस राम धुन की गूंज अब इन्दिरा गांधी के समाजवाद से विलीन हो रही है और वह आन्दोलन (Mass movement) नहीं चल सकता जो सन् १९२० में गांधी चला सका था। अब लाठी मूवमैण्ट चल पड़ी है।

प्रायः ऐसा होता है कि अन्तरात्मा की आवाज़ कानों को सुनायी नहीं देती। यह अन्तरात्मा से अन्तरात्मा को ही पहुंचती है। जवाहर लाल जैसे पाश्चात्य और समाजवादी सभ्यता के उपासकों को राम धुन व्यर्थ और प्रभावहीन प्रतीत हुई है, परन्तु गांधी जी की आवाज़ जन मानस को प्रेरित

करने वाली थी।

हमारा विचार है कि इस आवाज़ ने इंगलैण्ड के निर्वाचनों में भी अपना प्रभाव दिखाया है। समाजवादी शासन ने इंगलैण्ड में नैतिक पतन को कानून की सहमति देकर मानव अन्तरात्मा को आन्दोलित कर दिया है और समाजवादी सरकार का तख्ता उलटा दिया है।

यह ठीक है कि नास्तिक और समाजवादी इसको नहीं मानेंगे। ये इस प्रकार की घटनाओं का कारण रुपये-पैसों में आंकते हैं। परन्तु यह तो अन्धे की भांति अन्धेरे में टटोलने के तुल्य ही है।

भारत में भी समाजवादियों का ज़ोर हो रहा है। यहां भी समाजवादी, यद्यपि किसी अन्य क्षेत्र में, न्याय का गला घोंट कर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। यहां भी कुछ वैसी घटना होने वाली है जैसी इंगलैण्ड में हुई है। जनमत समाजवादी सरकार से उपराम हो रहा है और यह सम्भव प्रतीत होता है कि सामान्य जनता के जाने बिना उनकी अन्तरात्मा अपने नेताओं से बग़ावत खड़ी कर दे।

अन्याय और अत्याचार का अदृश्य प्रभाव अदृश्य अन्तःकरण पर होता है और इससे इतिहास निर्माण करने वाली घटनायें होती हैं। तब मूर्ख लोग वास्तविक स्थिति को स्वीकार किये बिना अण्ट-शण्ट सफ़ाइयां देने लगते हैं।

रूस में यौन अनैतिकता

प्रत्यक्ष रूप में कम्युनिस्ट यौनाकर्षण और यौन-क्रियाओं को चाय-पानी पीने के समान मानते हैं। अतः स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में जहां कहीं भी ढीलापन आता है तो कम्युनिस्ट इसे एक सामान्य घटना मान अवहेलना करने का यत्न करते हैं।

एक समय रूस में, लैनिन के काल में, विवाह के रिवाज को अनावश्यक समझ इसको रजिस्टर कराने का नियम उड़ा दिया गया था, परन्तु इसके एक दो वर्ष के उपरान्त ही पुनः विवाह पद्धति और विवाह को रजिस्टर कराने का नियम बनाया गया। इसके साथ ही तलाक का भी नियम बनाया गया।

तदनन्तर स्टालिन के काल में तलाक अधिक होने लगे तो उसके नियमों को कड़ा कर दिया गया। प्रेम-प्रलाप तथा पति-पत्नी में मोह कम्युनिस्ट विचारधारा में पूंजीपतियों के हथकण्डे समझे जाते हैं। उनका विचार है कि पुरुष में सम्पत्ति रखने की प्रवृत्ति ही स्त्री पर अधिकार रखने की प्रेरणा देती है।

परन्तु राज्य में व्यवस्था के विचार से रूस ने विवाह पद्धति को पुनः चालू किया और तलाक की पद्धति को चलाया ।

स्टालिन के काल में तलाक के नियम कठोर कर दिये गये और फिर रूस में ऐसे फ़िल्म, नाटक, चित्र अथवा लेखों पर प्रतिबन्ध है जिनसे यौन उत्तेजना बने । इस पर भी वहां की सरकार को यह सन्देह हुआ कि पूर्ण राज्य में यौन अनियमितता व्यापक रूप में विद्यमान है । इस पर लैनिनग्राड के दो समाज-शास्त्रियों ने युवक और विवाह के नाम पर एक खोज की और उन्होंने कुछ आंकड़े किये ।

अनुसन्धान करने वाले हैं ए० जी० खारचेव (A. G. Kharchev) और एस० आई० गोलोड (S. I. Golod) ।

इन समाज शास्त्रियों ने अपना अन्वेषण ६२० युवक-युवतियों पर किया है । उनकी जांच-पड़ताल का यह परिणाम है कि नया पोच बड़ी आयु वालों से अधिक स्वतन्त्रता अर्थात् अनियमितता का व्यवहार कर रहा है ।

उदाहरण के रूप में उनका कहना है कि विद्यार्थी लड़कों में ५३ प्रतिशत और लड़कियों में ३८ प्रतिशत ऐसे हैं जो विवाह से पूर्व यौन सम्बन्ध को स्वीकार कर चुके हैं । स्नातकों में जो अपनी जीविका उपार्जन कर रहे हैं, उनमें ८१ प्रतिशत स्त्रियां विवाह से पूर्व यौन सम्बन्ध में दोष नहीं मानतीं, जहाँ, लड़की साथी से प्रेम करती हो । पचास प्रतिशत से अधिक स्त्रियों ने स्वीकार किया कि इक्कीस वर्ष से पूर्व यौन सम्बन्ध बना चुकी थीं और पुरुषों में पचास प्रतिशत से कम थे जिन्होंने यौन सम्बन्ध सोलह से अट्ठारह वर्ष की आयु में बना लिया था ।

इन्हीं समाजशास्त्रियों का कहना है कि स्टालिन के काल में तलाक देना कठिन कर दिया गया था, परन्तु जब १९६५ में तलाक देने के नियमों को ढीला किया गया तो एकाएक तलाकों की संख्या बढ़ गयी । सन् १९६९ में तलाक देना और सुगम किया गया तो तलाक संख्या एक वर्ष में ६,००,००० हो गयी है ।

कुछ मास पूर्व हमने इसी लेख शृंखला में अमेरिका में यौन नियमों की शिथिलता के विषय में लिखा था । यदि उन आंकड़ों से इन आंकड़ों की तुलना की जाये तो स्पष्ट हो जायेगा कि रूस में अनियमित सम्बन्ध अमेरिका से अधिक ही हैं, कम नहीं हैं ।

अभी रूस में उतना उत्तेजक वातावरण नहीं जितना कि अमेरिका में है । इस पर भी विवाह के अतिरिक्त यौन सम्बन्ध रूस में अधिक हैं और अमेरिका में उतने नहीं हैं ।

युरोप के लोग मूर्खों की भांति एशिया के देशों में वेश्यावृत्ति की तो निन्दा करते हैं, परन्तु अपने देशों में चल रही 'नाइट क्लबों' और उद्यानों और सड़कों के अन्धेरे कोनों में यौन सम्बन्धों को सहन करते हैं। इन बातों के होने पर भी बिना विवाह के यौन सम्बन्ध व्यापक है। यह दुर्व्यवस्था क्यों उत्पन्न हो रही है ? इसकी ओर इनका ध्यान जाता है तो कह देते हैं कि इन विषयों में भली भांति और खुल कर युवक-युवतियों को शिक्षा दी जानी चाहिये।'

एक अमेरिका है जहां नग्न नृत्य और क्लबों की भरमार है। वहां गर्भ निरोध गोलियां चौदह-पन्द्रह वर्ष की लड़कियां खाने लगती हैं। वहां अनियमित सम्बन्ध कम नहीं हुआ। और दूसरी ओर रूस है, वहां उत्तेजक साहित्य एवं कला वर्जित है। इस पर भी वहां इस प्रकार के सम्बन्ध भारी संख्या में बनते-बिगड़ते हैं।

हमारा यह सुनिश्चित मत है कि ये दोनों उपाय दोषपूर्ण हैं। जब तक यौन सम्बन्धों की पवित्रता को स्वीकार कर इसकी महिमा युवक-युवतियों पर अंकित नहीं की जाती तब तक यह अव्यवस्था कम नहीं होगी।

ये सम्बन्ध न तो नंगे बाज़ारों में और क्लबों में घूमने से कम होंगे और न ही सरकारी हुक्म से कम होंगे। इनके लिये विवाहित सम्बन्ध की पवित्रता और इस पवित्र सम्बन्ध से श्रेष्ठ सन्तान की प्राप्ति की बात जब तक मन पर अंकित नहीं होती, तब तक यह दोष कम नहीं हो सकता।

भारत में अभी भी अविवाहित यौन सम्बन्ध इतने व्यापक नहीं जितने कि युरोपीय देशों में हैं। इसमें कारण यह है कि अभी भी विवाह को धर्म-मार्ग दिखाने वाला कार्य माना जाता है।

ब्रह्म सूत्रों में प्रकृति का विस्तृत वर्णन

(पूर्व लेख के आगे)

श्री गुरुदत्त

हमने अपने पूर्व लेख में यह बताया था कि प्रकृति से महत् बनता है। महत् में दीर्घ बनते हैं। विशेष परिस्थिति में दीर्घ ह्रस्व हो जाते हैं और ह्रस्वों से परिमण्डल बनते हैं।

परिमण्डलों के संयोगों से पंच भूत बनते हैं और उन पंच भूतों से प्राणी का शरीर बनता है। इस शरीर में इसी के (साम्यात्) समान स्थिति के पदार्थ के साथ आ जाने से क्या होता है ?

यह अगले सूत्र में लिखा है:---

नित्यमेव च भावात् ॥ वै० द० -- २-२-१४

च=और। नित्यमेव = नित्य ही। भावात्= सृष्टि होती है।

यहां एक विचित्र बात स्वामी शंकराचार्य जी ने की है। इन दो सूत्रों में प्राणियों की उत्पत्ति का वर्णन किया है। लिखा है:—

समवायाभि+उपगमात्+साम्यात्; अर्थात् समान स्थिति के पदार्थों के समीप अर्थात सम्पर्क में आ जाने से और अव्यवस्थिति=अव्यवस्था हो जाने से प्राणी की सृष्टि होती है।

समान स्थिति के पदार्थ क्या हैं ? यह हमने अपने पूर्व लेख में बताया है कि अणु समान जीवात्मा से अभिप्राय है।

परन्तु स्वामी शंकराचार्य इन सूत्रार्थों में से चेतन से जड़ की उत्पत्ति का वर्णन करने का यत्न करते हैं। आपका कहना है कि:—

यथा कारणे विद्यमानानामपि पारिमाण्डल्यादीनामनारम्भकत्वमेवं चैतन्यस्यापीत्यस्यांशस्य समानत्वात्।

(शं० भा० - -२-२-११)

अर्थात् जैसे कारण में विद्यमान भी पारिमण्डल होने पर अनारम्भक है। वैसे ही चैतन्यता भी।

अर्थात् पारिमण्डलों का आरम्भ नहीं है। इसी प्रकार प्राणियों में चेतनता का आरम्भ नहीं। यह वाक्य स्वामी जी ने सूत्र (२-२-११) के भाष्य में लिखा है।

स्वामी जी इससे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि जैसे महत्, दीर्घ, ह्रस्व और पारिमण्डल बनते नहीं, कारण रूप में यह पहले विद्यमान थे, वैसे प्राणी की चेतनता पहले ही विद्यमान होने से निर्माण नहीं हुई। ये दोनों पक्ष समान हैं। यह कथन अयुक्त है। चेतनता पहले थी, परन्तु यह जड़ता में नहीं बदली। जड़ तो सूक्ष्म से स्थूल हुआ है। गति हीन से गतिशील हुआ है। परन्तु वह चेतनता नहीं। ईक्षण न होने से इससे यह सिद्ध नहीं हुआ कि चेतनता से अचेतनता अर्थात् परमात्मा से जड़ जगत् बन गया।

स्वामी जी ने न तो कहीं ऐसी युक्ति दी है कि जगत् बनते समय चेतनता कैसे विलुप्त हो गयी और न ही इस प्रक्रिया का कहीं किसी वेदान्त शास्त्रों से प्रमाण दिया है। चेतन से अचेतन कैसे बना; यह न युक्ति से सिद्ध है और न प्रमाण से।

हमारा मत स्पष्ट है कि चेतन तत्त्व और अचेतन तत्त्व पृथक पृथक और अनादि एवं अव्यक्त हैं। चेतन तत्त्व दो प्रकार के हैं। दूसरी प्रकार का चेतन तत्त्व (जीवात्मा) प्रकृति के साम्यात् सम-स्थिति के पदार्थ बताये हैं। इनकी समान स्थिति इसी कारण मानी गयी है कि प्रलय काल में जहां प्रकृति—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः।।

(मनु०-१-५)

तमोभूत होती है वहां जीवात्मा भी सुषुप्ति अवस्था में होते हैं। इस कारण इनको सम स्थिति के पदार्थ मानते हैं।

परन्तु अद्वैतवादी यह मानते हैं कि प्रकृति तो है ही नहीं। जगत् है। यह जड़ है। अर्थात् चेतन परमात्मा जड़ में बदल जाता है।

स्वामी जी का कहना है कि जैसे पारिमण्डल अनारम्भ से हैं वैसे चैतन्यता भी अनारम्भक है।

यह कथन सूत्रकार के कथन के भी विपरीत है। सूत्रकार कहता है कि कारण और कार्य के मूल गुणों में समानता होती है। अतएव एक ही चेतन (परमात्मा) से दो परस्पर विरोधी (जड़ और चेतन शरीर और आत्मा) कैसे हो गये ? ऐसा कहीं प्रमाण भी नहीं है।

वेदान्त दर्शन में परिमण्डलों से आगे की प्रकृति के परिणामों का वर्णन है।

अगला सूत्र है :—

रूपादिमत्त्वाच्च विपर्ययो दर्शतात् ।।

(वे०- द०- - २- २-१५)

रूपादिमत्त्वात्— रूप, रस, गन्धादि गुणों से ही (विपर्य:) बनना बिगड़ना देखा जाने से (यह सिद्ध होता है कि इस समय पंच महा भूत बने)।

यहाँ बात बहुत संक्षेप में कही गयी है। इसको अधिक विस्तार से वैशेषिक दर्शन में वर्णन किया है। उसके सम्बन्धित सूत्र और उनके अर्थ हम यहां पाठकों के ज्ञान के लिये लिख देते हैं। वैशेषिक दर्शन का चौथा अध्याय का प्रथम आह्निक इसी विषय में है। इसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है—

तस्य कार्यलिङ्गम् ।। वैशे० द०–४-१-२

तस्य (प्रकृति का) लिङ्ग कार्य जगत् है। जगत् को देखकर हमें इसके कारण प्रकृति का ज्ञान होता है। जैसे धुआँ अग्नि का लिङ्ग है। धुएं से अग्नि का ज्ञान होता है ऐसे ही कार्य जगत् से प्रकृति का होना सिद्ध होता है।

कारणाभावात् कार्याभाव: । वै० द०- ४ १ ३

कारण का अभाव मानोगे तो कार्य का अभाव भी मानना पड़ेगा। क्योंकि कार्य है, अत: कारण भी है। जगत् के होने से ही प्रकृति का होना सिद्ध होता है।

अनित्यइतिविशेषत: प्रतिषेघमाव: ।। वैशे० द०- ४-१- ४

अनित्य + इति + विशेषत: प्रतिषेघमाव: ।

विपरीत भाव वाले विशेष अनित्य हैं।

जहां प्रकृति को नित्य कहा है, वहां विशेषों को विपरीत भाव वाले होने से अनित्य माना है।

विशेष किसको कहते हैं ? यह निम्न सृष्टि-क्रम से पता चल जायेगा।

प्रकृति → महत् → अहंकार → इन्द्रियां और मन
| ↓
| भूत → स्थूल भूत → प्राणी शरीर
| ↑ ↑
|——→ पंचतन्मात्रा आत्मा
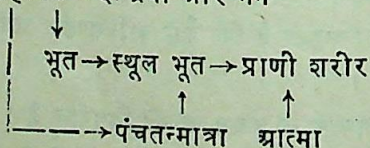
प्रकृति से अहंकारों पर्यन्त अविशेष कहलाते हैं। कारण यह कि उन में रूपादि गुण नहीं होते। अहंकार के उपरान्त बनने वाले पदार्थ विशेष कहलाते हैं। कारण यह कि उनमें अपने अपने विशेष गुण रहते हैं। इन विशेषों का ज्ञान देने से वैशेषिक दर्शन नाम पड़ा है।

यही बात वेदान्त दर्शन के सूत्र २-२-१५ में लिखी है। रूपादि गुण

बदलते रहते हैं। इसी कारण ये बनते-बिगड़ते दिखायी देते हैं। यह रूपादि गुणों में पदार्थ अनित्य हैं।

इससे आगे वैशेषिक दर्शन में लिखा है:—

अविद्या ।। वैशे०— ४-१-५

जो अनित्य है, उनका ज्ञान अविद्या है। अर्थात् विशेषों का ज्ञान अविद्या कहलाता है। इनके रूपादि गुण अनित्य होने से।

आगे है:-

महत्यनेकद्रव्यवत्त्वादुरूपाच्चोपलब्धिः ।।

(वैशे०- द०- ४-१- ६)

महति —अनेक—द्रव्यवत्त्वात्—रूपात्—च— उपलब्धिः।

और महत् से अनेकों रूप वाले द्रव्यों की उपलब्धि होती है।

अर्थात्— विशेषों से ही जगत् के अनेकानेक पदार्थ बनते हैं। वर्तमान विज्ञान से भी यह पारिमण्डलों से बनते दिखायी देते हैं।

और भी लिखा है:—

सत्यपिद्रव्यत्वे महत्वे रूपसंस्काराभावाद् वायोरनुपलब्धिः ।।

(वैशे०- द०- ४-१-७)

सति— अपि—द्रव्यत्ये —महत्वे— रूप संस्कार—अभावात्—वायोः— अनुपलब्धिः।

महत् में से उत्पन्न (परिणाम स्वरूप) होने वाला द्रव्य पन भी रूप और संस्कार के होने से वायु की अनुपलब्धि (प्रकट होती है)।

अभिप्राय यह कि महत् से जो द्रव्य उत्पन्न होता है (अहंकार), उसमें वायु अर्थात् गति न होने से रूपादि गुण नहीं होते।

वायु ही गति का कारण है। वायु का अर्थ यहां पंच भौतिक वायु नहीं, वरंच वह वायु है जिसे अरुण मुनि के पुत्र उद्दालक ने याज्ञवल्क्य से पूछा था— काप्य ! तत्सूत्रं येनायं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि संदृब्धानि भवन्तीति। ⋯ ⋯ (बृ० उ०—३-७-१)

हे काप्य ! क्या तू उस सूत्र को जानता है, जिससे यह लोक-परलोक सारे प्राणी संग्रथित हो रहे हैं ?

याज्ञवल्क्य ने कहा था :—

स होवाच वायुर्वै गौतम। तत्सूत्रं वायुना वै। .... (बृ० उ०—३-७-२)

'हे गौतम (उद्दालक) वायु ही वह सूत्र है⋯।'

इसके अगले मन्त्रों में बताया है कि वह वायु जगत् के सब पदार्थों के

भीतर भी और बाहर भी है। वह जगत् के पदार्थों को जलाती है।

यह वायु है जो जगत् में गति उत्पन्न करती है। यह ईश्वरीय शक्ति है। इसी वायु का अभिप्राय इस सूत्र में है जिसका अभाव अहंकारों में पाया जाता है। इसी कारण उनमें रूप और गुण नहीं।

हमने बताया है कि अहंकारों से पारिमण्डल बनते हैं। पारिमण्डल में तेजस् अहंकार, वैकारी और भूतादि अहंकारों के चारों ओर घूमने लगते हैं। इस कारण पारिमण्डल में रूप और गुण उत्पन्न हो जाते हैं।

इसके आगे लिखा है :-

अनेकद्रव्यसमवायाद्रूपविशेषाच्च रूपोपलब्धिः ॥

(वैशे० द०—४-१-८)

पारिमण्डलों के संयोगों से बने द्रव्यों से रूप विशेष बनते हैं।

तेन रसगन्धस्पर्शेषु ज्ञानं व्याख्यातम् ॥

(वैशे० द०—४-१-९)

उस (वायु मे से उत्पन्न गति) से रस, गन्ध, स्पर्श का ज्ञान होने लगता है।

तस्याभावादव्यभिचारः ॥ (वैशे० द०—४-१-१०)

तस्य+अभावात्+अव्यभिचारः ।

उस (वायु) के अभाव से दोष नहीं (उत्पन्न होते)। यहां दोष का अभिप्राय है कार्य जगत् के कारण पारिमण्डल और कार्य जगत् के द्रव्य, जो बनने-बिगड़ने वाले हैं।

अगला सूत्र है :—

संख्याः परिमाणानिपृथक्त्वं संयोगाविभागौपरत्वापरत्वे कर्म च रूप द्रव्यसमवायाच्चाक्षुषाणि ॥ (वैशे० द०—४-१-११)

संख्या और परिमाण, संयोग और वियोग पृथक-पृथक होना, दूर होना तथा समीप होना और कर्म रूप का द्रव्य में संयोग दिखायी देने लगता है।

इस स्तर पर रासायनिक क्रियायें और प्रतिक्रियायें तथा शारीरिक समीप आना तथा दूर होना इन्द्रियगोचर हो जाते हैं।

आगे लिखा है :—

अरूपिष्वचाक्षुषाणि ॥ (वैशे० द०—४-१-१२)

जिनका रूप नहीं तो इन्द्रियगोचर भी नहीं।

और अन्त में लिखा है :—

ऐतेन गुणत्वे भावे च सर्वेन्द्रियं ज्ञानं व्याख्यातम् ॥ (वैशे० द०—४-१-१३)

इससे गुणत्व और भाव (होने) में सब इन्द्रियों के ज्ञान की बात कही

गयी है। अर्थात् रूप और गुणों का ही ज्ञान इन्द्रियों को होता है। रूप और गुण गति से उत्पन्न होते हैं और गति वायु (ईश्वरीय शक्ति) से बनती है। इसका अर्थ यह है कि कार्य जगत् के द्रव्यों में रूप और गुण परमात्मा ही उत्पन्न करता है।

वैशेषिक दर्शन का यह पूर्ण आह्निक हमने इस कारण दिया है कि वेदान्त दर्शन के सूत्र (२-२-१५) की व्याख्या बता दी जाये। साथ ही हमारा यह उद्देश्य था कि वेदान्त दर्शन के प्रणेता महर्षि व्यास, कणाद के वैशेषिक दर्शन को अमान्य नहीं करते, वरंच उसके कथन को स्वीकार करते हैं।

यदि यहां यह भी लिख दिया जाये कि स्वामी शंकराचार्य वेदान्त दर्शन के इसी सूत्र के भाष्य में कणाद को किस प्रकार गलत समझे हैं तो पाठकों की ज्ञान वृद्धि होगी। श्री शंकराचार्य जी लिखते हैं—

सावयवानां द्रव्याणामवयवशो विभज्यमानानां यतः परो विभागो न संभवति ते चतुर्विधा रूपादिमन्तः परमाणवश्चतुर्विधस्य रूपादिमतो भूतभौतिकस्यारम्भका नित्याश्चेति यद्वैशेषिका अभ्युपगच्छन्ति स तेषामभ्युपगमो निरालम्बन एव।

अर्थात् —अवयवशः (क्रम से) विभाजित होने वाले सावयव (रूप, गुण वाले), जहां से आगे विभक्त नहीं हो सकते। वह चार प्रकार के रूपादि वाले परमाणु भूतों और भौतिक (जगत्) के आरम्भक हैं। वे नित्य हैं। यह निरालम्बन आधार है।

यह श्री शंकराचार्य जी ने कणाद का मत बताया है और इसमें वह वैशेषिक दर्शन का प्रमाण देते हैं 'सदकारणवन्नित्यम्। (वैशे० द०-४-१-१) हमने इस सूत्र का अर्थ ऊपर दिया है। इसके वह अर्थ नहीं बनते जो श्री शंकराचार्य जी ने लगाये हैं। मिथ्या अर्थ लगाकर कणाद के उद्धरण देने से श्री स्वामी जी ने वैशेषिक दर्शन को नास्तिकों का ग्रन्थ प्रसिद्ध करना चाहा है।

ऐसी कोई बात नहीं। यदि इससे कुछ पता चलता है तो यही कि स्वामी शंकराचार्य जी न केवल वैशेषिक दर्शन से अनभिज्ञ थे वरंच ब्रह्म सूत्रों के अर्थ लगाने में भी अयोग्य सिद्ध हुए हैं।

वैसे तो और भी प्रकृति का वर्णन ब्रह्म सूत्रों में है। हम समझते हैं कि इतने मात्र से इस बात का खण्डन हो जाता है कि वेदान्त दर्शन और वैशेषिक दर्शन परस्पर विरोधी हैं।

आचार्य बङ्किम—एक राष्ट्रीय मेधा

श्री अश्विनी कुमार वर्मा

बङ्किम चन्द्र चटर्जी (चट्टोपाध्याय) जब १८५८ में जदुनाथ बोस के साथ कलिकाता विश्वविद्यालय द्वारा बी० ए० के उपाधि के लिए पास माने गए और जब ब्रिटिश शासकों ने उन्हें डिप्टी कलक्टरी के पद पर आसीन किया, तब किसी ने सोचा भी नहीं था कि यह व्यक्तित्व राजकीय सेवा में रहते हुए भी सम्पूर्ण ब्रिटिश साम्राज्य के लिए चुनौती सिद्ध हो जायेगा। ब्रिटिश शासक यह समझ रहे थे कि जो परिवेश भारत की नयी पीढ़ी के लिए वे रच रहे थे उस परिवेश में से निकल कर आना किसी भी भारतीय नवयुवक के लिए अत्यन्त दुष्कर हो जावेगा। परन्तु नियति का यह भी एक गहरा व्यंग्य था कि सुनियोजित शिक्षा पद्धति की प्रथम परिणति ही चैतनिक जगत् में उस पद्धति के विरुद्ध गंभीर विद्रोह का स्वर लेकर उठ खड़ी हुयी। और यह भी नियति का गहरा व्यंग्य है कि 'राष्ट्रीय विद्यालयों' के प्रणेता गांधी के अपने शिष्य ही जब शासक के रूप में आये तो उस विद्रोह के राष्ट्रीय स्वर को कुचलते हुए ब्रिटिश योजनान्तर्गत प्रसरित विदेशी पद्धति की शिक्षा के परिवेश के परिपोषी बन बैठे। और सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवन में छाए धुंध के मध्य में इसी कारण दिशा बोध के लिए वह नक्षत्र आज भी आशा का केन्द्र प्रतीत होता है।

बङ्किम और पश्चिमी चिंतन

१९ वीं शताब्दी में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के माध्यम से जब ब्रिटेन भारत में पैर जमा चुका और इसे पूर्णतः उपनिवेश के रूप में परिणत करने की योजना बना रहा था, तब ब्रिटेन को ऐसा अनुभव हुआ कि 'भारतीय मानस को आसानी से पराभूत नहीं किया जा सकता। और इस दृष्टि से उन्होंने योजना बनायी कि जब तक सम्पूर्ण भारतीय चिंतन को सुनियोजित कार्य द्वारा विश्रृंखलित नहीं कर लिया जाता तब तक इस देश पर राज्य करना उनके लिए असम्भव हो जायेगा। उधर सम्पूर्ण योरोप को भी ऐसा अनुभव हुआ कि चिन्तन के क्षेत्र में नवोदित योरोप का विश्व में 'सांस्कृतिक साम्राज्य'

तब ही स्थापित हो पायेगा जबकि अन्य प्राचीन संस्कृतियों के धारक राष्ट्रों का सांस्कृतिक रूप से विनाश कर दिया जाये। इसके लिए योरोप ने अपनी सांझी संस्कृति का किसी अति सम्पन्न प्राचीन संस्कृति से सम्बन्ध कायम करना अत्यन्त आवश्यक समझा। इस रूप में 'ग्रीक संस्कृति' उन्हें 'मां' स्वरूप लगी। इसी कारण १८ वीं शताब्दी और विशेषकर १९ वीं शताब्दी में पश्चिमी लेखकों में 'हिन्दू संस्कृति' पर ग्रीक प्रभाव दिखाने की अत्यधिक ललक दिखलाई पड़ती है। २० वीं शताब्दी तक आते-आते तो पश्चिमी लेखक भारतीय संस्कृति पर आक्रमण करना अपना जन्म सिद्ध अधिकार मानने लगे। आचार्य बङ्किम ने अपनी क्षिप्र मेधा के बल पर इस सारी स्थिति को मानो सूंघ सा लिया और एक अजीब सी घृणा सम्पूर्ण पश्चिमी जाति के प्रति उनके मन में जाग उठी। अत्यधिक उद्वेलित अंतःकरण को लेकर अपने लेखन द्वारा परतन्त्र होती हुई भारत की नवीन मेधा को सचेत करने के लिए उन्होंने अपनी कमर कस ली। उपन्यासों के साथ सीधे चिंतन के क्षेत्र में बङ्किम के उतरने का रहस्य भी यही है। (सम्भवतः हिन्दी के बहुत कम पाठक जानते होंगे के बङ्किम के सारे उपन्यासों के परिणाम से अधिक उनके चिंतनात्मक लेखक का परिमाण है।) बङ्किम जानते थे **'अभिघोषात्मक राष्ट्रवाद' की अपेक्षा 'चिंतनात्मक राष्ट्रवाद' अधिक प्रखर तथा अधिक स्थायी होता है।** और इस दृष्टि से अपने समकालीन पश्चिमी लेखकों का उत्तर देना तथा देशवासियों को चिंतन के क्षेत्र में दिशा बोध करना उन्होंने अपना पुनीत कर्त्तव्य समझा। इतिहास, धर्म, दर्शन, काव्य, समाज विज्ञान, आईन एवं साहित्य की अन्य सभी विधाओं पर उन्होंने लेखनी उठायी और एक विशुद्ध राष्ट्रीय दृष्टि वे भावी लेखकों को प्रदान कर गए।

उन्होंने योरोप में इण्डोलाजी सम्बन्धी अध्ययन के विकास का गहरा अध्ययन किया। एक सजग मस्तिष्क के नाते अपने समकालीन मैक्समूलर, मोनियर विलियम्स, हार्नलि, बेबर आदि के मंतव्यों को वे अच्छी प्रकार समझ रहे थे। इसी कारण वेबर के विषय में वे 'कृष्णचरित्' में एक स्थान पर लिखते हैं :—

'किन्तु पंडित यदि मूर्ख के समान कथन करे तब क्या किया जावे? विख्यात बेबर महोदय यद्यपि पंडित कहे जाते हैं, परन्तु हमारा मत तो यह है कि बेबर ने जब संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ किया था वह समय भारतवर्ष के लिए अत्यन्त अशुभ रहा होगा। जर्मनी के अरण्यवासियों के वंशधरों के लिए भारतवर्ष का प्राचीन गौरव एक असह्य कथा हो उठी है। इसी कारण

भारतवर्ष की सभ्यता अत्यधिक आधुनिक है इसे ही प्रमाणित करने में वे सदा लगे रहते हैं ....'

(बङ्किम रचनावली पृ० ४१३)

बङ्किम ने भारतीय विद्या के पश्चिमी लेखकों की आलोचना करते समय द्विविध शैली का आश्रय लिया। जहाँ एक ओर व्यङ्ग्यात्मक शैली में उनकी विद्वत्ता का उपहास किया, वहाँ उनके जातिगत मनोविज्ञान का भी विश्लेषण किया। ठीक उन्हीं की शैली में उनको उत्तर देना वे उचित समझते थे। उनकी आलोचना शैली पर आक्रमण करते हुए 'कृष्णचरित्र' में एक जगह लिखते हैं :

'विलायती विद्या का एक लक्षण यह है कि वे लोग जो वस्तु अपने यहाँ जैसी देखते हैं, ठीक वैसी ही अन्य देशों में देखना चाहते हैं। अपने यहाँ 'मूर' के अतिरिक्त अगौरवर्ण जाति क्योंकि उन्होंने देखी नहीं अतः इस देश में आकर हिन्दुओं को भी उन्होंने 'मूर' कहना प्रारम्भ कर दिया। उसी प्रकार 'एपिक' के अतिरिक्त पद्य में आख्यान ग्रंथ अपने यहाँ वे जानते नहीं अतः 'महाभारत' और 'रामायण' को भी उन्होंने 'एपिक' मानने का सिद्धांत स्थिर कर दिया। और काव्य कहते ही उसकी ऐतिहासिकता को नष्ट सा मान लिया'।

(कृष्ण चरित्र पृ० ४१२)

आने वाले भारतीय विद्वानों के समक्ष आलोचना की एक अत्यधिक सुन्दर शैली वे प्रस्तुत कर गए हैं। दुर्भाग्य से बङ्किम, अरविंद, लाला हरदयाल दयानन्द आदि जैसे विद्वानों को स्वातन्त्र्योत्तर भारत की शिक्षा में कोई समुचित स्थान नहीं दिया गया। 'सांस्कृतिक युद्ध' की लड़ाई लगभग १९५० तक आते आते समाप्त सी हो गयी।

जातीय गौरव और बङ्किम :

'वंदे मातरम्' और जातीय गौरव स्वतन्त्रता की लड़ाई के काल में पर्यायवाची रहे। पर इस पर्यायवाचित्व के पीछे राष्ट्रवादी उपन्यासकार बङ्किम ही प्रमुख नहीं वरन् सशक्त राष्ट्र की कल्पना का चितेरा 'चिंतक' बङ्किम भी है। यह कहा जा सकता है कि दूसरा बङ्किम पहले की अपेक्षा कहीं सशक्त है। बङ्किम चाहते थे कि जातीय गौरव की वह सशक्तता सम्पूर्ण जाति के चिंतन में आ जाए। और यह चिंतन का सशक्त भाव जाति के भूत और भविष्य के सगौरव, सयथार्थ परिकल्पना के साथ आये। इसी दृष्टि से उन्हें जहाँ जहाँ यह दीखा कि पश्चिमी लेखक राष्ट्रीय चिंतन को इन-इन स्थानों से तोड़ने का प्रयास कर रहे हैं वहां वहां उन्होंने जाति को सचेत करना प्रारम्भ

किया। इन लेखकों को मुंहतोड़ उत्तर देना भी प्रारम्भ किया।

दर्शन

मैक्समूलर ने 'भारत के षड्दर्शन' (सिक्स सिस्टेम्स ग्रॉफ इंडिया) में सांख्य पर चोट करते हुए वेदांत को भारत का 'मूल दर्शन' (नेटिव फिलासफी) सिद्ध करना प्रारम्भ किया। उसका परिणाम बङ्गाल ग्रादि पर वेदांत की ग्रंधभक्ति के रूप में स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगा। बङ्किम ने तुरंत सारी स्थिति का ग्राकलन कर 'सांख्य दर्शन' नाम का एक निबंध लिखा। ग्रौर वहाँ ग्रत्यधिक जोर देकर उन्होंने लिखा :

'देशी पंडित गण सचराचर के व्याख्याता सांख्य दर्शन पर उतना मनोयोग नहीं करते। परन्तु भारतवर्ष में सांख्य दर्शन की जो कीर्ति है वह ग्रन्य दर्शनों को तो ग्रलग रखिए; ग्रन्य किसी शास्त्र की भी देखने को नहीं मिलती।'

(सांख्य दर्शन–बं० रचना पृ० २२१)

इसी के ग्रागे वे लिखते हैं :

'जो हिन्दू लोगों के पुरावृत का ग्रध्ययन करना चाहते हैं वे सांख्य दर्शन का ग्रध्ययन किए बिना उसका सम्यक् ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। क्यों न हो, हिन्दूसमाज की पूर्वकालीन गति सांख्य दर्शन द्वारा प्रदर्शित पथ पर ही हुई दीखती है। जो वर्तमान हिन्दूसमाज का भी चरित्र जानना चाहते हैं वे सांख्य का ग्रध्ययन करें।' (सांख्य दर्शन–बं० रचना पृष्ठ २२२)

ग्रौर यहीं पर सांख्य के प्रणेता के प्रति श्रद्धाञ्जलि ग्रर्पित करते हुए वे जातीय गौरव से ग्राप्यायित हो कह उठते हैं :

'केवल इतना ही कहा जा सकता है कि उस प्रकार के बुद्धिशाली व्यक्तित्व इस पृथ्वी पर बहुत कम ही जन्म लेते हैं।

(सांख्य दर्शन–बं० रचना पृष्ठ २२४)

इसी प्रकार का जातीय ग्रभिमान, निरुक्तकार यास्क के नाम का स्मरण करते हुए उन्हें हो उठता है। वे एक ग्रन्य स्थान पर लिखते हैं :

'इस प्रसङ्ग में यास्क क्या कहते हैं जरा सुनिए। **वे ग्रत्यन्त प्राचीन निरुक्तकार हैं कोई ग्राधुनिक योरोपीय पंडित नहीं।'**

(वेदेर ईश्वरवाद–बं० रचना पृ० ८१७)

राजनीति

उनके समय के पश्चिमी लेखकों ने यत्र तत्र लिखना प्रारम्भ कर दिया कि भारतीयों को राजनीति का ज्ञान नहीं था। ग्रौर यही हिन्दुग्रों की दासता का कारण है। उस समय तक चाणक्य के ग्रर्थशास्त्रादि ग्रंथ प्रकाशित नहीं

हुए थे । परन्तु फिर भी बङ्किम इस अपमान को सह नहीं सके । परिणाम स्वरूप हिन्दुओं की पराधीनता के कारणों का वर्णन जहाँ उन्होंने 'भारतवर्षेर पराधीनता और स्वाधीनता' नामक निबंध में किया, वहाँ हिन्दुओं के राजनीति न जानने का प्रत्याख्यान 'प्राचीन भारतवर्षेर राजनीति' नामक निबंध में किया । वे लिखते हैं :—

'महाभारत के सभापर्व में देवर्षि नारद युधिष्ठिर को प्रश्नों के बहाने कुछ राजनीति विद्या का उपदेश करते हैं । प्राचीन भारत में 'राजनीति विद्या' कितनी अधिक उन्नति को प्राप्त कर चुकी थी, उसका परिचय भी वहाँ मिल जाता है । मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दू राजनीति से कहीं अधिक परिचित थे । प्राचीन रोम और आधुनिक योरोपीय लोगों को छोड़ कर किसी जाति ने भी इस विद्या का इतना उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त नहीं किया ।

('प्राचीन भारतवर्षेर राजनीति'-बं० रचना० पृष्ठ २४५)

धर्म

बङ्गाल उनके काल में ब्रिटिश राजनीति का केन्द्र था । बङ्गाल के क्रांतिकारी मस्तिष्क के ईसाईकरण की एक बृहद् योजना का कार्यान्वयन ब्रिटिश राजनीतिज्ञों तथा प्रशासकों द्वारा हो चला था । स्वयं आक्सफोर्ड पद्धति से पढ़कर निकले हुए संभ्रांत कहे जाने वाले हिन्दू धर्म-परित्याग की चर्चा चला रहे थे । बङ्किम जब कभी अफसरों के क्लबों में उठते बैठते तो उनका इस प्रकार के लोगों से सीधा सम्पर्क आता । उनका मन इस सारी स्थिति को देखकर व्यथित रहने लगा । विशेषकर सेवामुक्त होने के पश्चात् कलिकाता विश्वविद्यालय की 'विद्या परिषद्' (सीनेट) में जब वे चुन लिए गए, तब नवयुवा पीढ़ी पर इस प्रचार का घातक प्रभाव उन्हें स्वयं देखने को मिला । वे चिल्ला पड़े :—

"जातीय धर्म का पुनरुद्धार हुए बिना भारतवर्ष का मङ्गल कभी भी संभव नहीं यह मेरा दृढ़ विश्वास है ।"

(हिन्दूधर्म—बं० रचना पृ० ७७६)

परन्तु उन्होंने यह बात किसी अंधविश्वास के आधार पर नहीं कही । वे हिन्दू राष्ट्र धर्म में प्रविष्ट दुर्बलताओं को खूब समझते थे । उनका उन्होंने सम्यक् विश्लेषण किया था । परन्तु सारी दुर्बलताओं के बावजूद भी वे धर्म परित्याग की बात को सहन नहीं कर सकते थे । एक स्थान पर वे कहते हैं :-

'हिन्दू धर्म का एकबारगी ही परित्याग कर देना एक स्थिति है. और हिन्दू धर्म के सारभाग को लेकर समाज जिस प्रकार भी चलाया जा सके,

उन्नत किया जा सके उस स्थिति का अवलंबन करना एक दूसरी ही बात है। एक बारगी ही धर्मपरित्याग करना मैं घोरतर अनिष्टकारी स्थिति मानता हूँ। जो हिन्दूधर्म के परित्याग करने की बात करते हैं उनसे मेरा एक प्रश्न है कि क्या हिन्दू धर्म को छोड़कर किसी अन्य धर्म को चलाना उचित है, या समाज को पूर्णत: धर्मविहीन रखना उचित है ?' (हिन्दू धर्म-बं० रचना पृ० ७७८)

और इस दृष्टि से अनुप्राणित जातीय गौरव से परिपूर्ण बङ्किम 'गीताधर्म' 'श्रीमद्भागवत्' 'कृष्ण चरित्र' 'देवतत्त्व' 'वैदिक धर्म' और 'तत्त्वज्ञान' जैसे गंभीर विषयों पर समाज की सारी स्थिति को सम्मुख रखते हुए लिखने में तल्लीन हो गए। **भारत के मस्तिष्क को जागरित किए बिना शक्ति संचय की सारी क्रियाएँ अन्ततोगत्वा निरर्थक सिद्ध हो जावेंगी यह वे खूब जानते थे।** आत्मविश्लेषी, आत्मगौरव से परिपूर्ण तथा प्राचीन एवं नवीन ज्ञान की स्वागतकारिणी हिन्दूजाति ही सबल राष्ट्र का कारण बन सकती है, ऐसा उनका अपना दृढ़ विश्वास था। आज की राजनीति कुछ भी कहे पर स्वतंत्रता के लिये हुए बलिदानों का नब्बे प्रतिशत बलिदान इसी भावना से प्रेरित था। इससे इनकार नहीं किया जा सकता। और बङ्किम उस प्रेरणा के इस दृष्टि से प्रखरतम स्रोत कहे जा सकते हैं।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का ग्राह्वान

(शासन-सत्ता की सुख-शैया पर ग्राजीवन ग्रासीन रहने के दुःस्वप्न में प्रधानमंत्री इंदिरागांधी की रूस-भक्ति तथा कम्युनिस्ट-प्रेम की कुख्याति में एक कड़ी संघ विरोधी ग्रभियान की भी जुड़ गई है। वे संघ पर प्रतिबन्ध लगाने को कृतसंकल्प हैं। उनकी इस दुराशा को मृग-मरीचिका सिद्ध करना देश भक्त जनता का पुनीत एवं राष्ट्रीय कर्त्तव्य है। इस प्रसंग में संघ की दिल्ली शाखा की ग्रोर से प्रसारित पत्रक के उपयोगी ग्रशों को पाठकों की जानकारी के लिए हम यहां उद्धृत कर रहे हैं—सपादक)

विगत कुछ महीनों से राष्ट्रीय स्वयसेवक संघ के विरुद्ध सुनियोजित ढंग से प्रचार की प्रलयंकर ग्रांधी चलाई जा रही है। ग्राज तक किसी भी साम्प्रदायिक उपद्रव में संघ ग्रथवा उसके एक भी स्वयंसेवक को दोषी नहीं सिद्ध किया जा सका है। किन्तु फिर भी प्रत्येक दगे का लांछन संघ पर लगाने का कुत्सित प्रयास किया जा रहा है। दिल्ली में फोटोग्राफर-कांड से लेकर सार्वजनिक स्थानों पर शारीरिक ड्रिल पर रोक लगाने के ग्रादेश तक जो ग्रशोभनीय एवं नाटकीय दृश्य खड़े किये जा रहे हैं, उनका एकमात्र उद्देश्य संघ के विरुद्ध ग्रनर्गल प्रचार की ग्राँधी को बल प्रदान करना ही है।

राष्ट्रीय स्वयसेवक संघ का कार्य देश की जागरूक जनता के लिए नया ग्रौर ग्रपरिचित नहीं है। विगत ४५ वर्षों से संघ उत्कट राष्ट्रभक्ति से परिपूर्ण, चारित्र्य सम्पन्न एवं ग्रनुशासनबद्ध समाज के निर्माण की साधना में लीन है। सस्ती प्रचार लिप्सा एवं सत्ता-राजनीति से ग्रलिप्त रहकर संघ ने धैर्यपूर्वक एक-एक हिन्दू ग्रन्तःकरण को जोड़कर दैनिक सस्कारों के द्वारा एक ऐसी तरुण-शक्ति को खड़ा किया है जो ग्रासेतु हिमाचल फैली हुई मातृभूमि के कण-कण के प्रति ग्रनन्य भक्ति भावना से ग्रोतप्रोत है ग्रौर संकट का समय ग्राने पर उसकी रक्षार्थ ग्रपने सर्वस्व की ग्राहुति देने के लिये संन्नद्ध है।

जब जब राष्ट्र के सम्मुख सकट की घड़ी ग्रायी है, यह संघशक्ति ग्रपने सम्पूर्ण सामर्थ्य को बटोर कर उस संकट का निराकरण करने के लिये दौड़ी है। मातृभूमि के विभाजन के फलस्वरूप जब लक्षावधि हिन्दू ग्रपना सर्वस्व गंवाकर निराश्रित हो खण्डित भारत की शरण के लिये ग्राये, उस समय सघ

के स्वयसेवकों ने न केवल उनको सुरक्षित भारत पहुंचने में सहायता दी अपितु व्यापक पैमाने पर सहायता कार्य को आयोजित कर उनके जख्मों पर सहानुभूमि का मरहम लगाया और उन्हें अपने भविष्य का पुनर्निर्माण करने में सहयोग प्रदान किया। उन्ही दिनों जब गांधी जी के प्राणों पर समाजविरोधी तत्वों की ओर से संकट उत्पन्न हुआ तब कांग्रेस के वरिष्ठ नेताओं की प्रार्थना पर गांधी जी की प्राणरक्षा का दायित्व संघ के स्वयंसेवकों ने सहर्ष स्वीकार किया और भंगी कालोनी में उनकी कुटिया पर निरन्तर पहरा दिया था। १९४६ में अन्तरिम सरकार क शपथ ग्रहण समारोह के समय मुस्लिम लीगी गुण्डों ने नेहरू जी एवं सरदार पटेल के प्राणों पर भी संकट लाने की कोशिश की थी। उस समय दिल्ली के सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता स्व० ला० देशबन्धु गुप्त के अनुरोध पर संघ के पांच-छह सौ स्वयसेवकों ने जाकर इन राष्ट्रीय नेताओं की मुस्लिम लीगी गुण्डों से रक्षा कर उन्हें नियोजित स्थान पर पहुंचाया था। महान् दार्शनिक स्व० डा० भगवानदास ने कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया था कि १९ दिसम्बर,१९४७ को केन्द्रीय सरकार के सभी मन्त्रियों एवं सैकड़ों प्रमुख हिन्दू अधिकारियों की हत्या करके लाल किले पर पाकिस्तान का परचम फहराने तथा पूरे भारत पर अधिकार जमाने के लीग के षड्यन्त्र की समय रहते सरकार को सूचना देकर संघ के स्वयंसेवकों ने ही देश की निवोदित स्वतःत्रता की रक्षा की थी।

२४ अक्तूबर, १९४७ को जब आक्रमणकारी पाकिस्तानी सेनायें श्रीनगर के निकट पहुंच चुकी थीं और भारत की सेनाओं के पहुंचने में देर थी, तब कश्मीर के महाराजा स्व० श्री हरिसिंह की पुकार पर संघ दौड़ा गया और तीन दिन तक संघ के स्वयंसेवकों ने श्रीनगर की रक्षा के लिये अपने प्राणों को दांव पर लगा दिया था। भारतीय सेनाओं के उतरने लिये जम्मू में हवाई अड्डे का निर्माण भी संघ ने किया था।

१९६२ में देश पर चीन का आक्रमण हुआ। इस आपत्तिकाल में संघ का एक-एक स्वयंसेवक जन-जागरण एवं रक्षाकोष के लिये धनसंग्रहं के कार्य में जुट गया। राष्ट्रीय संकट की उस वेला में स्व० नेहरू के आह्वान पर राष्ट्रीय एकात्मकता का परिचय देने के लिये समाज की स्वयंसिद्ध शक्ति के प्रतीक-स्वरूप सघ के गणवेशधारी स्वयसेवकों का एक दस्ता २ जनवरी १९६३ को गणतन्त्र दिवस की परेड में सम्मिलित हुआ था। १९६५ में जब पाकिस्तान ने हमारे देश पर आक्रमण किया तब स्व० लालबहादुर शास्त्री के निमन्त्रण पर सरसंघचालक श्री गुरुजी दिल्ली आये और राष्ट्र की उस संकट वेला में संघ के सम्पूर्ण सामर्थ्य को राष्ट्रार्थ समर्पित कर दिया। उस समय संघ

के स्वयंसेवकों ने जिस तत्परता के साथ श्री गुरुजी के इस आश्वासन का निर्वाह किया, यह किसी को स्मरण दिलाने की आवश्यकता नहीं है।

जब जब राष्ट्र के किसी भी भाग पर अकाल या बाढ़ जैसी कोई दैवी आपत्ति टूटी, संघ के स्वयंसेवक अपनी सम्पूर्ण करुणा और सहानुभूति को बटोर कर अपने आपत्तिग्रस्त देशबान्धवों के सहायतार्थ पूरी शक्ति से दौड़े। असम की बाढ़ हो या बिहार का सूखा, राजस्थान का अकाल हो या आन्ध्र का तूफान, कोयना का भूकम्प हो या पूना का जल-प्लावन, सब जगह संघ के स्वयंसेवक सहायता की अग्रिम पंक्ति में गये।

संघ की प्रखर राष्ट्रभक्ति उसकी अनुशासन भावना एवं सर्वस्वार्पणी निःस्वार्थ साधना की सराहना समय-समय पर मातृभूमि के अनेक श्रेष्ठ पुत्रों ने की है। नेता जी सुभाषचन्द्र बोस ने १९२७ में संघ संस्थापक स्व० डा० हेडगेवार से लम्बी वार्ता के पश्चात् गदगद होकर कहा था—"डाक्टर, मैं निश्चिन्त हो गया हूं कि राष्ट्र के पुनर्निर्माण का यही एकमेव सत्य मार्ग है।' महामना मालवीय १९२९ में नागपुर शाखा को देखकर भावविभोर हो उठे। उन्होंने विस्मित होकर कहा था, "मुझे अब तक कोई दूसरी संस्था नहीं मिली जहां रुपये से अधिक महत्व मानव अन्तःकरण को दिया जाता हो।" गांधीजी ने १९३० में एक संघ शिविर का सूक्ष्म निरीक्षण करने के पश्चात् संघ की सामाजिक समता, उत्कृष्ट राष्ट्रभक्ति एवं अनुशासन की भावना की मुक्त कंठ से सराहना की थी। १७ सितम्बर १९४७ को दिल्ली में भंगी कालोनी की संघ शाखा के स्वयंसेवकों को सम्बोधित करते हुए भी उन्होंने अपनी उस धारणा को दोहराते हुए कहा था, "**मैं आपके अनुशासन, अस्पृश्यता के सर्वथा अभाव एवं कठोर सादगी से अत्यन्त प्रभावित हुआ हूं। मेरी दृढ़ आस्था है कि जो संगठन सेवा और आत्म त्याग के उच्च आदर्श से अनुप्राणित है उसकी प्रगति को कोई नहीं रोक सकता।**" १९४८ में लखनऊ की एक सार्वजनिक सभा में बोलते हुए लोहपुरुष सरदार पटेल ने संघ के स्वयंसेवकों की देशभक्ति की मुक्तकंठ से सराहना की थी। १९४७-४८ के संकटपूर्ण काल में संघ के स्वयंसेवकों की भूमिका का गुणगान करते हुए भारतरत्न स्व० डा० भगवानदास ने लिखा था कि "**यदि संघ न होता तो आज भारत सरकार न होती और पूरा भारत पाकिस्तान बन गया होता।**"

आज जब कि राष्ट्र की सीमाओं पर दो प्रबल शत्रु आक्रमण के लिये सिद्ध बैठे हैं, देश के भीतर उनके हस्तक योजनाबद्ध ढंग से सक्रिय हैं, उनसे प्रेरित एवं सहायता प्राप्त विदेशनिष्ठ तत्व खुल कर मैदान में उतर पड़े हैं, माओ जिन्दाबाद, पाकिस्तान जिन्दाबाद के नारे खुले आम लगते हैं, सशस्त्र

हिंसा के द्वारा आतंक एवं अराजकता की स्थिति उत्पन्न की जा रही है, संविधान को ध्वस्त करने की घोषणा खुले आम की जा रही है, शान्तिप्रिय नागरिकों का जानमाल और सम्मान असुरक्षित हो गया है, देश में विघटनकारी एवं पृथकतावादी शक्तियां बलवती हो रही हैं और इस विषम स्थिति में देश का शासन ऐसे राजनीतिक हाथों में पहुंच गया है जो अपनी सत्तालिप्सा की पूर्ति के लिये इन राष्ट्रविरोधी एवं विघटनकारी पृथकतावादी तत्वों के समर्थन का बन्दी बन गया है, जिसके फलस्वरूप देश की राजनीति अवसरवादी, अनैतिक सत्ता-संघर्ष के पंक में बुरी तरह फंस गयी है। ऐसे संकट के समय में कश्मीर से कन्याकुमारी तक और कच्छ से असम तक फैली हुई यह राष्ट्रनिष्ठ अनुशासित शक्ति ही भारतीय राष्ट्रवाद के मेरुदण्ड के रूप में विद्यमान है। किन्तु राष्ट्र का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि सत्ता पर निरंकुश एकाधिकार प्राप्त करने के लोभ में देश की प्रधानमंत्री स्वयं भी इन राष्ट्रविरोधी एवं विघटनकारी शक्तियों द्वारा राष्ट्रवाद के प्रहरी—राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विरुद्ध बिछाये गये कुचक्र की अगुआ बन गयी हैं। वे अपनी अब तक की आर्थिक विफलताओं तथा माओ भक्तों के हिंसक आतंक को रोकने के संकल्प के अभाव से जनता का ध्यान हटाने के लिये संघविरोधी अनर्गल प्रचार को बल प्रदान कर रही हैं तथा सत्ता के साधनों का दुरुपयोग कर संघ के बारे में सन्देह एवं आतक का वातावरण उत्पन्न करने का प्रयत्न कर रही हैं।

इस समय राष्ट्र बहुत ही संकटपूर्ण स्थिति से गुजर रहा है। समय की पुकार है कि हम सभी अपने छोटे-मोटे मतभेदों एवं संकुचित निष्ठाओं को राष्ट्र भक्ति की पावन गंगा में डुबोकर अपने सम्पूर्ण साहस, निर्भीकता एवं कर्मशक्ति को बटोरकर खड़े हों। हमें तनिक भी सन्देह नहीं कि इस एकता एव साहस के बल पर संघ राष्ट्र के समक्ष खड़ी सभी चुनौतियों को परास्त कर एक गौरवशाली, स्वावलम्बी, सामर्थ्य सम्पन्न एवं तेजस्वी भारत का निर्माण करने में अवश्यमेव सफल होगा।

यह देश (हिन्दुस्थान) धर्मशाला तो नहीं है कि कोई भी आए और बिस्तर बिछाकर आसन जमा ले। जिनका इतिहास, परम्परा, समाज, धर्म, संस्कृति, विचार तथा हित-सम्बन्ध एक होते हैं वे ही राष्ट्र कहलाते हैं।

—डा० के० ब० हेडगेवार

अपराधी कौन ?

श्री सचदेव

पिछले अंक में तो हम जनसंघ की ही बात करते रहे थे । वे अपराधी हैं भी नहीं । उन्होंने अपनी "अपराधी कौन ?" नाम की पुस्तिका में भी यही सिद्ध किया है । तेईस दंगों की जांच की गयी और उन दंगों में से बाईस के आरम्भ करने वाले मुसलमान थे । उनमें जनसंघ का अथवा उसके किसी अधिकारी व कार्य कर्त्ता का नाम नहीं आया ।

परन्तु क्या इसमें मुसलमान दोषी हैं ? हमारा विचार है कि नहीं। मुसलमानों ने तो सन् १९४६ में अपनी इच्छा पाकिस्तान में जाकर बसने की प्रकट कर दी थी । उनको ऐसा किसने नहीं करने दिया ? जिसने ऐसा करने की स्वीकृति नहीं दी, वास्तविक दोषी वह है ।

तनिक पाकिस्तान के निर्माण के इतिहास पर दृष्टिपात किया जाये तो हमारे कहने का आशय स्पष्ट हो जायेगा । मुसलमान बेचारे व्यर्थ ही बीच में पिस रहे हैं ।

सन् १८८४ में सर सैयद अहमद मुसलमानों को इस्लामी राज्य का उत्तराधिकारी मानते थे और उस नाते वह अंग्रेज़ी सरकार से मुसलमानों के लिये विशेषाधिकार चाहते थे । ऐसा करने में भला सर सैयद साहब का क्या दोष हो सकता था ? कौन नहीं चाहता कि उसे जन्नत में जगह मिले ? यह देखना तो खुदाबन्द करीम का काम है कि जन्नत में जगह मांगने वाले के अमाल इस काबिल हैं कि उसे वहां जगह अता की जाये ।

अतः यदि किसी अनधिकारी को जन्नत में जगह मिलती है तो हम इसमें उस अनधिकारी का दोष नहीं मानते । दोष खुदाबन्द करीम का मानते हैं। अंग्रेज़ ने सर सैयद अहमद साहब को सिर-आँखों पर बिठाया। वे, सैयद साहब, हमारा मतलब है कि उनके हम-मज़हबों के कंधे पर बैठ स्वयं जन्नत तक जाने की सैर करना चाहते थे । अतः उनका भी कुछ अधिक दोष नहीं था ।

दोष तो उस जन्नत में रहने वालों का था जिन्होंने खुदाबन्द करीम को

स्वीकृति दी कि अनधिकारी के लिये जन्नत का द्वार खोल दिया जाये ।

देखिये, हम नास्तिक नहीं जो परमात्मा को दोष देने लगे हैं। यह तो एक तुलना की बात है। जन्नत था हिन्दुस्तान। इसमें विशेषाधिकार चाहते थे सर सैयद के हम-मज़हब। हिन्दुस्तान की अंग्रेज़ी सरकार जो सन् १८८४ में यहां थी, यहां की खुदावन्द करीम थी। और इस देश के मुसलमानों के अतिरिक्त रहने वाले थे यहां के निवासी।

हमने दोष यहां के रहने वालों को दिया है कि उन्होंने अंग्रेज़ों को सर सैयद अहमद के मज़हब व मिल्लत वालों को विशेषाधिकार क्यों देने दिया?

सन् १९१६ में कांग्रेस ने कह दिया कि वह भारत की एक प्रतिनिधि संस्था है और उस समय के अल्लाह ताला अर्थात् अंग्रेज़ सरकार द्वारा एक अनधिकारी को विशेष अधिकारों से विभूषित करना स्वीकार करते हैं। हमारा कहना है कि यदि यह दोष है (कि मुसलमानों को विशेषाधिकार दिये गये थे) तो दोषी कांग्रेस थी। अधिकार पाने वाले और अनधिकारी के कन्धे पर सवार हो स्वर्ग का रस लेने वाले का दोष नहीं। दोष स्वर्ग के रहने वालों का था कि उन्होंने क्यों ये विशेषाधिकार प्रदान किये।

बहुत कम लोगों को ज्ञात है कि वर्तमान प्रधानमंत्री के पितामह इन विशेषाधिकारों को भारतवासियों की ओर से दिलाने वालों में प्रमुख थे।

खिलाफ़त के विषय को भारत की राजनीति में स्थान दिलवाने वालों में भी पण्डित मोतीलाल जी का विशेष हाथ था। पण्डित जी ने गांधी जी को धमका कर अथवा किसी प्रकार का प्रलोभन देकर खिलाफ़त के पक्ष में कर लिया था और यह एक अन्य खास रियायत मुसलमानों को देने के लिये देश को तैयार कर लिया। तदनन्तर पाकिस्तान माना। गांधी जी और कांग्रेस पाकिस्तान मान नहीं रहे थे। कारण यह कि वह समझते थे कि हिन्दू और मुसलमान इस प्रकार मिले जुले समुदाय हैं तो फिर पाकिस्तान कहां कैसे बनाया जा सकेगा?

सन् १९४५ में जिन्ना साहब के घर पर गांधी जी ने भेंट की। गांधी जी पाकिस्तान की मांग अयुक्ति संगत मानते थे। इसमें दोष किसका था? जिन्ना साहब का नहीं। अंग्रेज़ का भी नहीं। दोनों जन्नत का मज़ा चाहते थे। एक लड़-झगड़ कर और दूसरा पहले के कन्धे पर सवार हो कर। जन्नत के रहने वाले बातें बनाते रहे और जन्नत में रहने का अधिकार देते गये।

पाकिस्तान बनना कांग्रेस और उनके विचार के हिन्दुओं की सम्मति से हुआ था। पाकिस्तान मुसलमानों का अपना देश था जिसमें गैर मुसलमान को प्रवेश नहीं मिलना था। पाकिस्तान मांगा था भारत भर के मुसलमानों के

एक बहुत बड़े अंश ने । यह कहा जाता है कि मुस्लिम लीग को मुसलमानों के ६० प्रतिशत से ऊपर मत मिले थे और मुस्लिम लीग निर्वाचन लड़ी थी पाकिस्तान के प्रश्न पर ।

इस अवस्था में पाकिस्तान मानना अनिवार्य था । महात्मा गांधी अवश्य सन् १९४७ मई मास तक कहते रहे कि पाकिस्तान उनके शव पर बनेगा, परन्तु वह न केवल स्वयं माने, वरंच कांग्रेस कमेटी से पाकिस्तान को स्वीकार करने वाला प्रस्ताव पारित करवाने में सहायता देने के लिए, वहां अपने व्रत को भंग कर जा पहुंचे थे ।

ऐसी अवस्था में देश के साढ़े चार करोड़ मुसलमानों को यदि उनके मुंह मांगे जन्नत में जाने से किसी ने रोका था तो अपराधी वही था ।

मुसलमानों को मुहब्बत से, प्यार से और पुलिस एवं सेना की रक्षा का आश्वासन देकर किसी ने रहने के लिये कहा था तो क्या ये श्रीमती इन्दिरा गांधी जी के स्वर्गीय पिता पण्डित जवाहर लाल जी और उनकी विचारधारा के मानने वाले कांग्रेसी नहीं थे ?

मुसलमान बेचारे तो सन् १९४६ में अपनी इच्छा स्वर्ग में जाकर रहने की प्रकट कर चुके थे । अपराधी वे थे जिन्होंने उनको उस मुंह मांगे स्वर्ग में जाने से रोका था । यह ठीक था कि जाने वालों के लिये जाने की स्वीकृति थी, परन्तु उनको यहां रहने का निमन्त्रण क्या कांग्रेस ने नहीं दिया था ? जब दिया था और अब वे अपने विशेषाधिकार चाहते हैं तो फिर अपराधी मुसलमान कैसे हो गये ?

प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी और उसके दल के लोग जब हिन्दू-मुसलमान दंगों पर दुःखी होते हैं तो वे सम्प्रदायवादियों को दोष क्यों देते हैं ? यह अपराध तो वास्तव में उनका, उनके पिता-पितामहों का है जिन्होंने एक इतने बड़े समुदाय को अपने स्व निर्मित स्वर्ग में जाने से रोक रखा है । यदि इस अपराध के प्रतिकार में वे कहीं छुट-पुट झगड़ा करते हैं तो उनको दोषी नहीं कहा जा सकता । अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि उनके साथ जो कांग्रेस ने किया था, उससे छटपटाते हुए वे कहीं रोष का प्रदर्शन कर बैठते हैं । वे अपराधी कैसे हो गये ?

श्रीमती इन्दिरा गांधी भी सत्य कहती हैं कि दोषी हिन्दू हैं । यह इस प्रकार कि सन् १९१६ में कांग्रेस के विकृत व्यवहार के उपरान्त हिन्दुओं ने कांग्रेस का जी भर कर समर्थन किया है । अब सन् १९७० में भला हिन्दू किस मुख से कांग्रेस और नेहरू परिवार को दोषी कह सकते हैं ? अभी सन् १९६७ में भी हिन्दुओं ने एक बहुत बड़ी संख्या में कांग्रेस को मत दिया है ।

श्रीमती इन्दिरा गांधी जी ने निर्वाचनों के कुछ ही पहले गो-हत्या को बन्द कराने की मांग करने वाले जलूस पर गोली वर्षा कर सौ के लगभग लोगों की हत्या करा दी थी और इस घटना की जांच कराने से भी इन्कार कर दिया था। इनके दो मास उपरान्त निर्वाचनों में एक हिन्दू बाहुल्य क्षेत्र में इन्दिरा गांधी को ढाई लाख मत मिले थे और उनके गो रक्षक प्रतिद्वन्द्वी को चालीस-पचास हजार।

जब हिन्दु, कांग्रेस और नेहरू परिवार पर इतने फिदा हैं तो भला वाजपेयी जी अपराधी किसको कह रहे हैं ?

हम तो समझते हैं कि जैसे पाकिस्तान बनाने में अँग्रेज अपराधी नहीं कहे जा सकते, उन्होंने हिन्दु समर्थित इण्डियन कांग्रेस की अनुमति से ही पाकिस्तान बनवाया था, इसी प्रकार आज हिन्दु-मुसलमान फसादों के लिये कांग्रेस अथवा इन्दिरा गांधी जी को अपराधी कहना ठीक प्रतीत नहीं होता। कारण यह कि सवा पांच सौ संसद सदस्यों में पांच सौ के लगभग हिन्दु सदस्यों के बहुमत से विश्वास प्राप्त प्रधान मंत्री को किसी भी घटना के लिये अपराधी कैसे कहा जा सकता है ?

श्री बाजपेयी ने कहा था कि श्रीमती इन्दिरा गांधी अल्प मत वाले दल की नेता हैं। यह बात कुछ जंची नहीं। कारण यह कि श्रीमती गांधी तथा उसके दल पर संसद के बहु संख्यक सदस्यों का विश्वास सिद्ध हो चुका है।

इण्डिकेट कांग्रेस ने कुछ दलों से समझौता कर रखा है तो क्या यह संविधान में वर्जित है ?

वस्तु स्थिति यह है कि जनसंघ अभी तक अल्प मत में है। इसके ढंग पर विचार करने वाला अन्य कोई दल नहीं। स्वतन्त्र पार्टी भी इसके समाज-वादी नारे को संशय से देखता है। देश के अधिकांश समाचार पत्र जनसंघ को दूषित विचार धारा वाला दल मानते हैं।

ऐसी अवस्था में श्रीमती इन्दिरा गांधी को, उनके मुसलमानों का पक्ष लेकर हिन्दुओं को अथवा जनसंघियों को अपराधी कहने का अधिकार, हिन्दुओं ने और संसद के बहु संख्यक सदस्यों ने दे रखा है। और तो और, हिन्दुओं में सजीव और पढ़ी-लिखी, बुद्धिशील आर्य समाज भी तो जनसंघ के पक्ष में नहीं है। तो यह फिर किसको अपराधी कह रहे हैं ?

मुसलमान इन दंगों में अपराधी नहीं। कारण यह कि उनकी पृथकतावादी मनोवृत्ति और अपने लिये विशेषाधिकार रखने की आकांक्षा को जानते हुए और उनके इसकी स्पष्ट रूप में घोषणा करते हुए उनको अपने प्रिय देश में जाने से रोकने वाली हिन्दू समर्थित कांग्रेस थी। यदि अब वे अपनी सुख-

सुविधा के लिये कहीं छटपटा बैठते हैं तो उनको दोष देना युक्तियुक्त नहीं।

इन दंगों के लिये इन्दिरा गांधी तथा उसके समर्थक दोषी हैं, परन्तु इनको समर्थन प्राप्त है हिन्दुओं का। इस कारण हम समझते हैं कि दोषी वे भी नहीं अपितु उनका समर्थन करने वाली हिन्दू जनता है।

इन दंगों में दोषी कौन है ? इसमें हमारा एक मत है।

हम समझते हैं कि इस देश में एक विशिष्ट मानव समुदाय बसता है। जो कोई भी उसे गाली देता अथवा पीटता है, वह उससे ही प्यार करता है। वह अपने सहायकों और अपने से सहानुभूति रखने वालों से घृणा करता है।

यदि कोई युरोप में बैठा इस समुदाय के पूर्वजों को मूर्ख गवार और मिथ्या भाषी कह देता है तो यह उनको विद्वान मानता है और यदि कोई अपने देश में रहने वाला इन युरोपियन तथाकथित विद्वानों को अनपढ़ और पक्षपाती सिद्ध करने का यत्न करता है तो यह समुदाय उस अपने देशवासी को मूर्ख और अल्प शिक्षित मानने लगता है।

हमारी सम्मति में यदि भारत में हो रहे हिन्दु-मुसलमान दंगों के लिये कोई उत्तरदयायी है तो यह समुदाय ही है।

अपराधी हिन्दू नाम का समुदाय है। यह समुदाय हिन्दुस्तान में रहता है, परन्तु अपने को हिन्दुस्तानी नहीं कहता। अब तो भारतीय भी कहने में संकोच अनुभव करने लगा है। कारण यह कि भारत नाम भारतीय जनसंघ ने भगवा रंग दिया है। यह अपने को राम-कृष्ण का अनुयाई मानता है, परन्तु राम-कृष्ण के अस्तित्व को नहीं मानता।

लोग कदाचित् विश्वास नहीं करेंगे, परन्तु यह है सत्य कि अपनी प्रार्थनाओं में नित्य 'रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीता राम' गाने वाला महात्मा गांधी रघुकुल भूषण सीता के पति राम को एक मिथ्या कल्पित व्यक्ति मानते थे।

परन्तु गांधी के नाम को हिन्दु अब अपने प्रातः स्मरण में सम्मिलित करने लगे हैं। बात वही है जो हिन्दुओं के पूर्वजों की निन्दा करे अथवा उनको न माने, वह हिन्दुओं का प्रात: स्मरणीय हो जाता है।

वास्तविक दोषी यह हिन्दू समाज है। अत: जनसंघ की पुस्तिका 'अपराधी कौन ?' का उत्तर है वर्तमान हिन्दू समाज।

इन्दिरा गांधी को सन् १९६७ में ढाई लाख मत देने वाला समाज हिन्दू; कांग्रेस को पिछले चार पंच-वर्षीय निर्वाचनों में निरन्तर बहुमत में संसद में भेजने वाला समाज हिन्दू है। इस कारण इन दंगों में दोषी भी हिन्दू है, अन्य कोई नहीं हो सकता।

शेख अब्दुल्ला की फरमाइश

श्री आनन्द कुमार अग्रवाल

'हम भारत या पाकिस्तान की गोद में बैठे रह कर स्वतंत्रता नहीं पा सकते। हमें अपनी आज़ादी छीननी होगी। भारत ने बरतानिया सरकार से लड़ कर आजादी प्राप्त की और अल्जीरिया ने फ्रांस से। उसी प्रकार हम भी आजाद हो सकते हैं अगर हमारे पास ताकत हो।' यह शेखी किसी विदेशी प्रवक्ता ने नहीं अपितु इसी पवित्र भारत भूमि के भार स्वरूप इसी के अन्न-जल-वायु द्वारा पोषित देश के वर्तमान कर्णधारों और उनके पूज्य पूर्वजों द्वारा शौर्यपूर्ण (?) कृत्य के लिए दिए गए खिताब 'शेरे कश्मीर' के नाम से सुविदित शेख अब्दुल्ला ने पिछले दिनों श्रीनगर में हुए सर्वदलीय लोक सम्मेलन में बघारी।

१५ मार्च १९६८ को जुम्मे की नमाज के लिए हजरत बल की मसजिद में एकत्रित कश्मीरियों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने फरमाया था—'भारत ने कश्मीर को जबरन दखल कर रखा है। उसे आजाद कराने के संघर्ष में या तो हम कामयाब होंगे या फिर दुनिया के नक्शे से ही मिट जायेंगे। इसलिए हर इम्तहान के लिए आप सबको तैयार रहना चाहिए। पता नहीं आने वाले दिनों में किस-किस परिस्थिति में से गुजरना पड़े।'

विगत पाकिस्तानी दौरे के दिनों में एक इण्टरव्यु लाहौर के सरकारी दैनिक 'मशरिक' के द्वारा अब्दुल्ला जी का लिया गया। उसमें आपने फरमाया—'कश्मीर की मिसाल तो उस खूबसूरत औरत से दी जा सकती है जिससे दो आदमी, जो आपस में हमसाये (पड़ोसी) भी हों शादी करना चाहते हैं। इन दोनों आदमियों का इश्क इस औरत से इतना बढ़ चुका है कि कत्ल व गारतगरी की नौबत आती रही है। हम कश्मीरी अवाम अपने दोनों आशिकों से मुहब्बत करते हैं, हम अपने चाहने वालों से नफरत कर भी कैसे सकते हैं लेकिन बहरहाल एक औरत एक ही वक्त में दो खाविन्दों की बीवी नहीं हो सकती। कश्मीर-यह सोच रहा है कि अपने दोनों आशिकों में से किसे राजी रखा जाये।

ये वही शेख साहब हैं जो २७ नवम्बर, १९४७ को कश्मीर के प्रधानमंत्री की हैसियत से गर्जना करते हुए कहते थे 'अब कश्मीर भारत का एक अन्तर्मुक्त अंग है और कश्मीर की इज्जत ही भारत की इज्जत है।' २२ नवम्बर १९४९ को इन्होंने खुले-आम कहा था कि 'हमारे राज्य ने अपना भाग्य महात्मा गांधी के भारत, नेहरू के भारत के साथ जोड़ दिया है।' २२, फरवरी, १९५० को मद्रास की एक सार्वजनिक सभा में फिर फरमाया—'हम सदा भारत के साथ रहेंगे। पाकिस्तान के साथ कभी नहीं।' १ जुलाई, १९५० को आप कश्मीर रेडियो पर घोषणा करते हैं कि 'भारत के साथ कश्मीर का विलय अन्तिम है।' २४ दिसम्बर, १९५० को बताया—'कश्मीरियों की जान और इज्जत बचाने के लिए भारत के सभी क्षेत्रों के नौजवानों ने अपना खून बहाया था।.. यह बात भारत के मुसलमानों के ही हित में है कि कश्मीर भारत के साथ रहे।' १२ अप्रैल, १९५२ को जम्मू की एक सभा में बोलते हुए आपने कहा था— 'भारत और कश्मीर का जो सम्बन्ध है, जिसे असंख्य शहीदों ने अपने पवित्र खून से सींचा है, वह अटूट है। संसार की कोई भी शक्ति हमें एक दूसरे से अलग नहीं कर सकती।.... हमने अपनी स्वतन्त्र इच्छा से भारत के साथ रहने का फैसला किया है।'

इतनी घोषणाएं सिद्ध करती हैं कि यह आदमी अब जनमत का इतना पिट्ठू इसीलिए है क्योंकि धैर्य छूटा जा रहा है और सत्ता के लिये लपलपाती जीभ पर रोक लगा पाने में असमर्थ है। न जाने इतनी सारी बातें कह डालने के बाद अब ये बार बार रट लगाये हुए हैं...मैंने भारत से सम्बन्ध नहीं छोड़ा। मैं ८ अगस्त, १९५३ के पहले के अपने कथन पर अटल हूं पर उसकी पुष्टि जनमत से होनी चाहिए थी।... इसीलिए नेशनल कान्फ्रेंस के नेता बख्शी गुलाम मुहम्मद ने १२ अक्टूबर, ६८ को कहा कि शेख अब्दुल्ला ने ९ जनवरी १९६८ को अपनी रिहाई के तुरन्त पश्चात् घोषणा की थी कि ८ अगस्त, १९५३ से पहले मैंने जो वक्तव्य दिए हैं उन पर मैं अभी भी कायम हूं। फिर कश्मीर लोक सम्मेलन (१९६८) के उद्घाटक श्री जयप्रकाश नारायण के इस सुझाव को मान लेने में क्या दिक्कत है कि भारतीय संघ में ही रहकर कोई उपाय निकाला जाय।"

जो शेख अब्दुल्ला आज संयुक्त राष्ट्र संघ से इस मामले में हस्तक्षेप की और स्वतन्त्र कश्मीर के लिए मामला उठाने का हामी भरता है वही किसी समय में २५ मार्च १९६८ को श्रीनगर में स्वतन्त्र फोरम की ओर से किए गए स्वागत में बोलते हुए कहता था— 'भारत कश्मीर में जनमत-गणना करवाने को वचनबद्ध है। लेकिन अगर यह आशंका हो कि ऐसा करने से उसकी शांति

भंग हो जाएगी, तो कश्मीरियों का मत जानने के लिए और उपाय सोचे जाने चाहिएं। लेकिन यह तो मानना पड़ेगा कि कश्मीरियों को यह तय करने का बुनियादी हक है कि वे भारत के साथ रहें या पाकिस्तान के साथ रहें या दोनों से ही आजाद होकर रहें। लेकिन मुझे शिकायत यह है कि भारत कश्मीरियों के इस बुनियादी हक की प्रतिज्ञा से मुकर गया है। मेरा मकसद इसी को हासिल करने के लिए कश्मीरियों का संघर्ष आरम्भ करने का है। इस सम्बन्ध में पाकिस्तान की उपेक्षा नहीं की जा सकती। उसके दखल में कश्मीर का एक तिहाई हिस्सा है, जहां कोई १६ लाख कश्मीरी हैं।'

६ मार्च, १९६८ को आपने फरमाया था—'१९६५ के भारत-पाक संघर्ष (भारत पर पाकिस्तान का आक्रमण नहीं।) के बाद कौन कह सकता है कि कश्मीर की समस्या के हल से पाकिस्तान को अलग रखा जा सकता है?'

लोक सम्मेलन १९६८ का वह वक्तव्य ऐसे अवसर पर कैसे भुलाया जा सकता है जिसमें श्री जयप्रकाश नारायण जी शेख साहब को समझा पाने में असमर्थ हो गए थे। किन्तु उसी सम्मेलन में कश्मीर अवामी ऐक्शन कमेटी के अध्यक्ष ने घोषणा की थी कि 'कश्मीर की सही जगह पाकिस्तान में है।'

शेख अब्दुल्ला का मत चाहे पाकिस्तान के पक्ष में हो या 'स्वतन्त्र कश्मीर' के लिए 'करो या मरो' का हो, लेकिन यह अवश्य है कि भारत के पक्ष में कदापि नहीं है। यह भारत के ऊपर उत्तरपूर्व सीमा संकट का पूर्ण लाभ उठाना चाहता है। इस बहाने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण व्यक्ति के नाते अपने आपको प्रस्तुत करने के लिए उसे भारत माता के उन्नत शीष नन्दनवन कश्मीर की भौगोलिक महत्ता पाकिस्तान, चीन, भारत, अफगानिस्तान रूस की सीमाओं को छूने के कारण एशिया महाद्वीप पर आधिपत्य के उत्सुक देशों को आकर्षित करने में देर नहीं लगती। तात्पर्य यह कि इस व्यक्ति की किसी बात का भरोसा नहीं।

भारत की सिमटती सीमाओं के संकट को देखते हुए लगता है कि सीमाप्रान्त, सिन्ध तथा पंजाब और बंगाल का आधा हिस्सा देखते देखते भारत से भिन्न और अभिन्न शत्रु राष्ट्र का क्षेत्र हो गया। आज कश्मीर की ऐसी स्थिति है कि वहां भारत के राष्ट्रपति के नाम पर जगह नहीं खरीदी जा सकती। ऐसी घटना अभी हाल में हो चुकी है। श्रीनगर के आकाशवाणी केन्द्र को कश्मीर रेडियो की संज्ञा दी जाती है। आज दो तिहाई कश्मीर भारत के कब्जे में है किन्तु वहां ३७० धारा लागू कर विशेष स्थिति कायम रखी गई है?

(शेष पृष्ठ ४० पर)

साहित्य समीक्षा

"अट्ठारह सौ सत्तावन और स्वामी दयानन्द" लेखक—श्री वासुदेव शर्मा; प्रकाशक भारतीय लोक समिति, आर्य समाज मार्ग, करौल बाग, नई दिल्ली-५; पृष्ठ संख्या १२४, मूल्य दो रुपए।

जैसा कि पुस्तक के नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें महर्षि की जीवनी के उन पृष्ठों को अनावृत्त करने का 'प्रयास' किया गया है जो अभी तक न केवल आर्य समाजियों अपितु अन्यान्य अनेक महर्षि प्रेमियों के लिए भी रहस्य-मय ही थे। यहां पर 'प्रयास' शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया कि इससे उनकी उक्त अवधि के क्रिया-कलापों पर पूर्ण प्रकाश नहीं पड़ता अपितु केवल एक सूचना सी पाठक को प्राप्त होती है। इससे जिज्ञासा में वृद्धि होती है। क्योंकि पृष्ठ पूर्णतया अनावृत्त नहीं हो पाए। इसलिए रहस्य अभी बना हुआ है। तदपि प्रस्तुत पुस्तिका के लेखक ने संकेत किया है कि उनके अतिरिक्त भी विद्वान लोग इस दिशा में प्रयत्नशील हैं। और हमें अब इस प्रकार की आशा सी होने लगी है कि न केवल समाज सुधारक के रूप में अपितु देश को दासता की शृंखला से मुक्त करने के प्रयास में भी महर्षि दयानन्द का नाम इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों में समुज्ज्वल होने वाला है।

प्रस्तुत पुस्तिका में उपसंहार सहित ग्यारह परिच्छेद हैं। किन्तु जिस विषय विशेष को उद्देश्य बना कर पुस्तक की रचना की गई है उसके लिये उसमें केवल १४ पृष्ठों का एक परिच्छेद "स्वातन्त्र्य क्रान्ति में महर्षि का योगदान" के नाम से है। अर्थात् पुस्तक को लगभग दशांश से कुछ ही अधिक। पुस्तक को हाथ में लेते समय जो प्रफुल्लता मन में होती है, पृष्ठ पलटने पर वह कुछ क्षीण हो जाती है। हमारी यह धारणा आलोचनात्मक नहीं, भावनात्मक है।

लेखक का कथन है कि महर्षि ने अपने स्वरचित जीवन चरित्र में वर्षानुवर्ष अपनी तमाम गतिविधियों का उल्लेख किया है और अपनी साधारण से साधारण बात और निम्न से निम्नतर कृत्य को भी नहीं छिपाया है। किंतु यदि उन्होंने कोई बात प्रकट नहीं की तो वह है सन् १८५७ से १८५९ तक अर्थात् तीन वर्षों का जीवन इतिहास। इन तीन वर्षों के सम्बन्ध में उन्होंने स्वरचित

जन्मचरित्र (सम्भवतया जीवनचरित्र) में इतना ही लिखा है कि वह यह तीन वर्ष नर्मदा नदी के तट पर फिरते रहे।'

लेखक के इस कथन से गुत्थी और भी उलझती है। जो महर्षि प्रकट रूपेण अंग्रेजी शासन का विरोध करता हो और अन्त तक करता रहा हो उसने यदि विवादग्रस्त तीन वर्षों में किसी महान् षड्यन्त्र में भाग भी लिया हो तो उस समय नहीं तो कम से कम ५-१०-१५ वर्ष बाद तो उस पर प्रकाश डाला होता। हम नहीं समझ पा रहे कि १८५७ की चिनगारी वर्षों तक भी रहस्यमय ही रही है और उस षड्यन्त्र का भेद खुल जाने की आशंका से महर्षि ने उन वर्षों की गतिविधि का उल्लेख न किया हो।

महर्षि दयानन्द के विरोधी इसका अन्यथा अर्थ भी प्रकट कर सकते हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि इन रहस्यमय वर्षों की रहस्यमता का बार-बार उल्लेख न कर तथ्यों को तीव्रता से प्रकट किया जाय। इसी प्रकरण में तात्या टोपे की समाधि के विषय में जब नवीन तथ्य प्रकट हो सकते हैं तो क्या कारण है कि महर्षि के जीवन के ये तीन वर्ष उजागर नहीं हो पा रहे।

देश भर में आर्य समाजों का जाल बिछा है। न केवल इतना, आर्य समाज एवं आर्य समाजियों के अतिरिक्त भी महर्षि के भक्तों की अपार संख्या है। वे सब मिलकर यदि प्रयास करें तो कोई कारण नहीं कि महर्षि के जीवन का यह तथ्य प्रकट न हो सके। कोई यह समझे कि धर्म निरपेक्ष देश का इतिहासकार अथवा अन्ध श्रद्धालु आर्यसमाजी इस विषय में गवेषण कर तथ्य प्रकट करेगा तो मैं इसे मृग मरीचिका ही समझूंगा। धर्म निरपेक्ष इतिहासकार का यह विषय नहीं और अन्ध श्रद्धालु आर्यसमाजी को अभी भी खण्डन-मण्डन से अवकाश नहीं मिला है।

आज के इस वैज्ञानिक एवं प्रबुद्ध पाठकों के युग में ऋषिबोध के लिए शिवलिंग पर मूषक-नर्तन की घटना का बारम्बार उल्लेख कर अपना पाण्डित्य बघारने वाले आर्य-समाजियों की कमी नहीं है। मूर्ति पूजा खण्डन में अपठित एवं अविज्ञ वर्ग के सम्मुख यह तर्क काम करता होगा, वहां वे उसका उल्लेख करें, किन्तु सुपठित वर्ग के सम्मुख ऐसे कुतर्क प्रस्तुत कर वे अपने पक्ष को दुर्बल ही करेंगे। हमारी तो यही धारणा है कि आर्य समाज खण्डनात्मक प्रवृत्ति को छोड़ कर यदि मण्डनात्मक प्रवृत्ति अपनाए तो इससे समाज एवं देश का हित होगा।

हम समझते हैं कि हमारा स्वर समीक्षात्मक नहीं आलोचनात्मक हो गया है। उसका कारण यही है कि पुस्तक गवेषणात्मक न हो कर प्रचारात्मक हो

गई है। अन्यथा हमारा बार-बार यही कथन है कि वर्मा जी का प्रयास सराहनीय है। और पुस्तिका प्रचारात्मक होते हुए भी नितान्त पाठनीय है। अन्त में हम अपनी बात की पुनरावृत्ति करते हैं कि इस दिशा में गवेषणात्मक अध्ययन द्वारा तथ्य प्रस्तुत करने की नितान्त आवश्यकता है। आशा है अधिकारी विद्वान् इस ओर ध्यान देकर देश हित के भागी बनेंगे।

'अणुव्रत' साधना विशेषांक

नैतिक जागरण के अग्रदूत के रूप में पत्रिका जगत में अणुव्रत 'पाक्षिक' का न केवल स्थान है अपितु 'महत्वपूर्ण' स्थान है। प्रस्तुत साधना विशेषांक से यह सोलहवें वर्ष में प्रविष्ट हो रहा है। भले ही सांसारिक दृष्टि से उसका तारुण्य प्रारम्भ हो रहा हो किन्तु विचारों की दृष्टि से आरम्भ से ही अणुव्रत पत्रिका प्रौढ़त्व प्राप्त कर चुकी है। और इस साधना विशेषांक ने तो उस प्रौढ़त्व में और भी प्रांजलता की प्रतिस्थापना कर दी है। ४०० पृष्ठों के इस बृहदाकार विशेषांक के ११८ विज्ञापनों को निकाल भी दिया जाय तो भी पौने तीन सौ से अधिक पृष्ठों की पठनीय सामग्री उसमें विद्यमान है। पठनीय से हमारा अभिप्राय नितान्त रूपेण एवं अवश्यमेव पठनीय से है। विषय के विशेषज्ञ अनेक विद्वानों के लेख इस विशेषांक में समाहित हैं। पाठक साधना विषयक गहन गम्भीर लेखों को पढ़ता-पढ़ता सहसा ऊब न जाय सम्भवतया इस भय से विशेषांक में कहानी, कविता, अकविता, मुक्तक, तुक्तक और चतुष्पदी का समावेश किया गया है। न्यूनाधिक विशेषांक सुन्दर है पठनीय एवं मननीय है अतः संग्रहणीय भी। समय-समय पर विविध विशेषांक प्रकाशित कर ज्ञान-पिपासा तृप्त करने का सद्प्रयास अणुव्रत-परिवार सदा करता रहा है। अतः बधाई और धन्यवादाई है।

पृष्ठ ३७ का शेष)

विधि की किताबों में किसी नियम के लागू होने के क्षेत्र का उल्लेख इस प्रकार है—It extends to the whole of India except the State of Jammu & Kashmir.

अपेक्षा तो ऐसी है कि तत्काल ही शासन की आंख खुले और इन मजहब के दीवानों, 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारे बुलन्द करने वालों, चीन और रूस के दलालों तथा इसी तरह के राष्ट्र के घातक तत्वों पर तत्काल अंकुश लगाया जाय। तथा भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों की तरह ही सामान्य स्थिति के लिए कारगर कदम उठाया जाय जिससे कि पुनः कभी शेख अथवा उसके जाति-भाइयों को इस प्रकार के अनर्गल प्रलाप का दुस्साहस न हो सके।

समाचार समीक्षा

मुस्लिम साम्प्रदायिकता के बढ़ते चरण

गतमास देश के सभी प्रमुख समाचार पत्रों में यह समाचार प्रकाशित हुआ था कि दिल्ली में धर्मनिरपेक्ष राज्य की राजधानी दिल्ली में, देवी इंदिरा की वर्तमान नगरी दिल्ली में मुस्लिम लीग की स्थापना हो गई है। क्यों न हो ? देवी जी के समर्थक, अंकटाड की बैठक में देवी इंदिरा सरकार के प्रतिनिधि की हैसियत से हिन्दुओं को निकृष्ट कहने वाले लोक सभा के भूतपूर्व उपाध्यक्ष और वर्तमान देवी इन्दिरा की किचनकैबिनेट के सदस्य मियां खाडिलकर जब बम्बई में ८ जुलाई को यह घोषणा कर सकते हैं कि 'मुस्लिम लीग साम्प्रदायिक संगठन नहीं है तथा उसे जनसंघ के साथ नहीं जोड़ा जा सकता' तो किसमें वह ताकत है कि जो मुस्लिम लीग जैसी खाडिलकर विश्वविद्यालय की सनद-यापता संस्था को साम्प्रदायिक, देशघातक अथवा देश विभाजक कह सके ?

किन्तु कहने वाले कहते हैं। और इंडिकेटी कहते हैं। एक इंडिकेटी मुस्लिम लीग की साम्प्रदायिकता को जनसंघ की साम्प्रदायिकता से नहीं जोड़ना चाहते तो दूसरे इंडिकेटी उसे जनसंघ की साम्प्रदायिकता की ही भांति खराब समझते हैं। वे दूसरे इंडिकेटी हैं दिल्ली के मीरमुश्ताक अहमद और मियां शिवचरण गुप्त। लोग इन कांग्रेसियों को नेता कहें और भले ही अभिनेता कहें किन्तु हम इन्हें दुमुंहा ही कहेंगे। दुमुंहा सर्प दोनों ओर से डसने का प्रयत्न करता है। जहां मियां खाडिलकर मुस्लिम लीग को राष्ट्रीय संगठन मानते हैं वहां मीर मुश्ताक और मियां शिवचरण गुप्त उसे जनसंघ जैसा कट्टर साम्प्रदायिक संगठन।

मुस्लिम लीग के विषय में आज जो लोग स्पष्टीकरण दे रहे हैं अथवा उसकी व्याख्या कर रहे हैं, हमें उनकी ईमानदारी पर सन्देह है। क्योंकि मुस्लिम लीग के प्रदुर्भाव से पाकिस्तान निर्माण तक का इतिहास मुस्लिम लीग का खुला चिट्ठा है। ऐसी संस्था की जो हिमायत करते हैं अथवा उसका नाम लेकर स्वयं को नेता बर्ग में सम्मिलित करना चाहते हैं इन आस्तीन के सांपों से सावधान रहने की आवश्यकता है।

भविष्य में झूठ नहीं बोलूंगी

देवी इन्दिरा गांधी ने गृह मंत्रालय की संसदीय सलाहकार समिति में जनसंघ के सदस्यों को यह आश्वासन दिया है कि वह भविष्य में यह असत्य

भाषण नहीं करेंगी कि संघ अथवा जनसंघ वाले उन्हें मारने की धमकी देते रहते हैं।

समिति की बैठक में बार-बार जब उनको विवश किया गया कि वे उन पत्रों को प्रकाशित करें अथवा रघुबरदयाल आयोग और न्यायधीश कपूर की रिपोर्ट प्रकाशित करें तो देवी इन्दिरा को यह आश्वासन देना पड़ा कि वे भविष्य में झूठ नहीं बोलेंगी।

रिपोर्ट प्रकाशित करने की मांग करने वालों को भले ही इस आश्वासन से तसल्ली हो गई हो किन्तु हम समझते हैं कि यह जनभावनाओं के साथ खिलवाड़ है। उपयुक्त तो यही होता कि जनसंघी सदस्य रिपोर्ट प्रकाशित करने की अपनी मांग पर दृढ़ रहते। इससे जहां असत्य आरोपों का उद्घाटन होता वहां जनसंघी सदस्य आश्वासन के अहसान से भी बच जाते।

इसी समिति में देवी इन्दिरा ने मियां खाडिलकर के मुस्लिमलीग को दिए-गए प्रमाण पत्र से अपनी असहमति भी प्रकट की। उनका कहना था कि खाडिलकर का मत सरकारी दृष्टिकोण नहीं है।

एक सु-समाचार

राष्ट्रीय विचारों के साहित्यकारों की संस्था भारतीय साहित्यकार संघ के तत्त्वावधान में जुलाई मास के प्रथम सप्ताह में 'उत्तराखण्ड पर्वतीय साहित्य कला सम्मेलन' का आयोजन किया गया। यह सम्मेलन तीन उपवेशनों में सम्पन्न हुआ। प्रथम उपवेशन में उद्घाटन, जिसमें वही मंत्रियों एवं उच्चाधिकारियों की चकाचौंध किन्तु अवशिष्ट दो उपवेशनों में कुछ विधायक कार्य हुआ। इस अवसर पर उत्तराखण्ड के साहित्य, कला एव संगीत आदि पर गवेषणा पूर्ण निबन्ध पढ़े गए, विचार मन्थन हुआ और इस प्रकार के सम्मेलन की उपयोगिता को समझ कर इसे स्थायी रूप देने का प्रयास किया गया। भविष्य के लिए योजना बनाई गई कि उत्तराखण्ड के लुप्त साहित्य की खोज की जाय और सुप्त साहित्य एवं साहित्यकारों पर गवेषणा की जाय। पर्वतीय लोक कला संगीत-नृत्यादि पर भी गवेषणा एवं प्रोत्साहन की योजना बनाई जावेगी।

हम समझते हैं कि इस सम्मेलन का आयोजन कर भारतीय साहित्यकार संघ ने उत्तराखण्डवासियों पर जो उपकार किया, वह सराहनीय एवं प्रशंसनीय है। अब तक इस प्रकार के अछूते विषयों पर भारतीय साहित्यकार संघ अनेक गोष्ठियां एवं सम्मेलन सम्पन्न कर चुका है।

परिषद् के प्रकाशन

५. धर्म तथा समाजवाद

समाजवाद क्या है तथा धर्मवाद क्या है ? दोनों की विस्तृत विवेचना तथा समाजवाद का युक्तियुक्त खण्डन इस पुस्तक का विषय है। लेखक का मत है कि दोनों विपरीत दिशा में ले जाने वाले तन्त्र हैं।

लेखक हैं श्री गुरुदत्त मूल्य रु० ६.००

कुछ अन्य प्रकाशन

६. भारत में राष्ट्र लें० श्री गुरुदत्त मू० सजिल्द रु० २.५०
पाकेट संस्करण रु० १.००

७. समाजवाद एक विवेचन ,, मूल्य (केवल पाकेट सं०) १.००

८. गान्धी और स्वराज्य ,, मूल्य (केवल पाकेट सं०) १.००

९. भारतीयकरण एक अध्ययन सं० अशोक कौशिक मूल्य ८.००

१०. प्रजातन्त्र अथवा वर्ण व्यवस्था लें० श्री गुरुदत्त
मूल्य सजिल्द रु० ४.००
(पाकेट में) २.००

वितरक

भारती साहित्य सदन सेल्स

३०।९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे) नई दिल्ली-१

उपर्युक्त सभी पुस्तकों का लाभांश तथा उनकी रायल्टी परिषद् के उद्देश्यों के प्रचार तथा प्रसार पर व्यय की जाती है।

पाकेट संस्करण सम्पूर्ण हैं संक्षिप्त नहीं हैं। आर्डर देते समय कृपया स्पष्ट लिखें किस संस्करण की पुस्तक भेजी जाये।

संरक्षक सदस्य

१ केवल एक सौ रुपये भेजकर शाश्वत संस्कृति परिषद् के संरक्षक सदस्य बनिये। यह रुपया परिषद् के पास आपकी धरोहर बनकर रहेगा।

शाश्वत संस्कृति परिषद् का उद्देश्य

विशुद्ध भारतीय तत्त्वदर्शन पर सम्यक् गवेषणा करना तथा उसका प्रचार करना एवं उनके आधार पर राष्ट्र के सम्मुख सभी समस्याओं का सुनभाव प्रस्तुत करना।

संरक्षक सदस्यों को सुविधाएं

१. परिषद् के नवीनतम प्रकाशन तथा आगामी सभी प्रकाशन आप विना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। नवीन प्रकाशन हैं—१. भारतीय-करण एक अध्ययन (मूल्य ८ रु०) तथा २ इतिहास में भारतीय परम्पराएं (मूल्य १० रुपये)। आगामी प्रकाशन हैं–वर्ण-व्यवस्था तथा प्रजातन्त्र (मूल्य ४ रु०); राष्ट्रीयकरण (मूल्य ४ रु०); ब्रह्मसूत्र हिन्दी विवेचना (मूल्य २५ रु०) एवं अन्य।

२. परिषद् की पत्रिका शाश्वत वाणी आप जब तक सदस्य रहेंगे प्राप्त कर सकेंगे।

३. परिषद् के पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ (सूची इसी अंक में अन्यत्र देखें) आप २५ प्र०श० छूट के साथ प्राप्त कर सकेंगे।

४. जब भी आप चाहेंगे एक मास की पूर्व सूचना देकर अपनी धरोहर वापिस ले सकेंगे। धन मनीआर्डर द्वारा भेज सकते हैं।

शाश्वत संस्कृति परिषद्

३०।६० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे)-नई दिल्ली-१

भारतीय संस्कृति परिषद् के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं शक्तिपुत्र मुद्रणालय, दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/६०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित

सितम्बर, १९७० वर्ष १०—अंक ६ रजि० क्र० ६६८६/६०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

भारतीय संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत संस्कृति परिषद् के प्रकाशन

१ इतिहास में भारतीय परम्पराएं — ले० श्री गुरुदत्त

पाश्चात्य इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास को जो गलत-सलत करने का षड्यन्त्र रचा था तथा उनके अनुगामी भारतीय इतिहासकार जो उस गलत इतिहास को लोगों के गले उतार रहे हैं, इसकी व्याख्या इस पुस्तक में है। लेखक ने अत्यन्त ही कुशलता तथा युक्ति से उनकी मान्यताओं का खण्डन कर इतिहास की भारतीय परम्पराओं का दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया है।

मूल्य रु० १०.००

२. श्रीमद्भगवद्गीता एक अध्ययन — ले० श्री गुरुदत्त

प्राय: प्रत्येक मनीषी ने गीता पर विवेचना लिखने का प्रयास किया है। परन्तु इस विवेचना की अपनी विशेषता है। लेखक की मान्यता है कि गीता में जो ज्ञान का भण्डार है, वह कर्म की प्रेरणा के निमित्त है।

मूल्य रु० १५.००

३. भारत गान्धी नेहरू की छाया में — ले० श्री गुरुदत्त

लगभग २५० उद्धरणों के आधार पर रचा गया यह ग्रन्थ नेहरू जी की राजनैतिक जीवनी है। प्राय: उद्धरण श्री नेहरू की अपनी रचनाओं में से लिये गये हैं। यह पुस्तक चित्र का बिल्कुल दूसरा और वास्तविक रूप दर्शाती है।

मूल्य १०.०० (सम्पूर्ण पाकेट संस्करण ४.००)

४. धर्म संस्कृति तथा राज्य — ले० श्री गुरुदत्त

तीनों की विवेचना, तीनों का परस्पर सम्बन्ध, यह इस पुस्तक का विषय है। अत्यन्त ही सरल भाषा में यह पुस्तक लिखी गयी है, परन्तु विषय अत्यन्त ही गम्भीर है।

मूल्य रु० ८.००

(शेष सूची कवर पृष्ठ ३ पर देखें)

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।। ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता
प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

सम्पादक
अशोक कौशिक

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१
फोन : ४७२६७

मूल्य
एक अङ्क रु० ०.५०
वार्षिक रु० ५.००

सम्पादकीय

नक्सली और उनके साथी

भारत में व्यापक रूप में राजनीतिक दृष्टि-कोण से हिंसा-कार्य आरम्भ हो चुका है। इन राजनीतिक-हिंसकों को नक्सली कहा जाता है। यह विशेष नाम इस कारण दिया गया है कि दो वर्ष पूर्व बंगाल राज्य के एक नक्शाल बाड़ी ज़िले में तत्कालीन राज्य सरकार के संरक्षण में कुछ लोगों ने बल-पूर्वक लूट-खसूट मचानी आरम्भ की थी। ऐसा करने वाले थे तो सामान्य नैतिक अपराधी ही, किन्तु इनकी विशेषता यह थी कि राज्य सरकार इन्हें संरक्षण दे रही थी। जो कार्य सरकार करे वह राजनीतिक ही कहा जाता है। इस कारण यह आन्दोलन राजनीतिक कहलाया।

इससे पहले बंगाल राज्य की उसी सरकार ने व्यापार, उद्योग और शासन क्षेत्र में घेरावों को प्रश्रय दिया था। किसी उद्योग में, व्यापार अथवा शासन संस्थान में, कुछ लोग मिलकर उद्योग, व्यापार अथवा शासन में उच्चाधिकारी अथवा मालिक का घेराव कर लेते थे अर्थात् उसको उठने-बैठने यहाँ तक कि टट्टी-पेशाब के लिये जाने से भी रोकते थे। घेराव करने वाले कुछ माँगें करते थे और जब तक वह अधिकारी उन माँगों को स्वीकार नहीं करता था तब तक

उस व्यक्ति को बन्दी बनाये रखा जाता था।

ऐसी अनियमित बात होती थी। जनता सरकार से कहती थी कि यह कानून के विपरीत है। सरकार कहती थी कि घेराव कानून के विपरीत नहीं है। मुकद्दमा न्यायालय में गया और न्यायालय ने निर्णय दिया कि घेराव कानून से वर्जित है। इस निर्णय के बाद भी घेराव होते रहे। यहाँ तक कि राज्य सरकार ने पुलिस को कह दिया कि मालिक और कर्मचारियों के झगड़े में वह हस्तक्षेप न करे। एक राज्य मन्त्री ने तो स्पष्ट घोषणा कर दी कि न्यायालय का निर्णय मान्य नहीं, और घेराव चल सकते हैं।

इस सब प्रक्रिया में केन्द्रीय सरकार मुख देखती रही। संसद में विपक्षी दल वाले कोलाहल करते रहे। परन्तु कांग्रेसियों के कानों में जूँ तक नहीं रेंगी। इनमें वे कांग्रेसी भी सम्मिलित थे जो आज इन्दिरा गांधी के दल से बाहर हो गए हैं। इस अराजकता की भयावह स्थिति में एक भी कांग्रेसी ने इन्दिरा गांधी की सरकार से त्याग-पत्र नहीं दिया।

मोरार जी देसाई के मन्त्रीमण्डल से निकाले जाने से भी कम महत्व नक्शालबाड़ी काण्ड को दिया गया। निर्जलिंगप्पा की इस आज्ञा की कि संजीव रेड्डी को मत दिया जाये, की अवहेलना अपेक्षा दूसरों की सम्पत्ति लूटना कम अपराध माना गया।

घेराव और नक्शालबाड़ी क्षेत्र की लूट फैल कर देश-व्यापी हो गयी है। इन्दिरा गांधी की कांग्रेस इसकी मौखिक निन्दा करती है। दोनों कम्युनिस्ट पार्टियाँ इसकी सराहना करती हैं। संसोपा और प्रसोपा तो स्वयं इसको अपना शस्त्र बना चुकी हैं।

आज सरकारी अथवा कुछ अधिक भूमि रखने वालों की भूमि छीनी जा रही है। कल नगरों में मकान वालों के मकानों पर अधिकार होगा; तदनन्तर बड़े मकान वाले को बाँट कर प्रयोग करने वाले पैदा हो जायेंगे। फिर दो पलंग वालों से एक पलंग छीन लिया जायेगा। दो कमीज़ अथवा कोट वालों से कमीज़, कोट छीन लिया जायेगा। और भूखे-नंगों की प्यास इससे भी बुझेगी नहीं। वे इससे भी अधिक कर सकते हैं। किसी दम्पती के चार बच्चे हैं तो दो मार डाले जा सकते हैं। वे आवश्यकता से अधिक माने जा सकते हैं।

जब कामनाओं के पीछे मनुष्य चल पड़े और उन कामनाओं की पूर्ति का गुण और कर्म से सम्बन्ध न रहे तो जो कुछ भी हो जाये वही कम है।

इस सब कुछ के होते हुए भी मूर्ख कांग्रेसी और सत्ताधारी कांग्रेस दल इन कुकृत्यों को राजनीति का नाम देकर उनको दण्डित करना नहीं चाहते हैं। अर्थात् जब राजनीति के नाम पर कोई अपराध किया जाये तो वह अपराध नहीं रहता।

वास्तव में आज भारत देश में बुद्धि का दिवाला निकल चुका है। यह नहीं कि देश में कोई बुद्धिमान है ही नहीं। बुद्धिमान तो पर्याप्त संख्या में हैं, परन्तु निर्बुद्धियों की संख्या उनसे बहुत अधिक है और इस कथित प्रजातन्त्र राज्य में बहुमत की चलती है। जब भी जनसाधारण को प्रत्यक्ष रूप में लाभ की बात बतायी जाती है तब साधारण लोग, जिनमें मूर्खों की संख्या अधिक है, अपने मत उस पक्ष में देते हैं।

यही मुख्य समस्या है। प्रजातन्त्र में सर्वसाधारण की चलती है। सर्वसाधारण वैसा सूझ-बूझ वाला नहीं होता, जैसे विद्वान लोग होते हैं। परन्तु चलती उन अविद्वानों की ही है। उसका कारण यह है कि सर्वसाधारण में उनकी संख्या अधिक है। नेतागण यह बात समझ गये हैं और वे सर्वसाधारण को नारों के बल पर प्रभावित कर अपनी ओर लगा लेते हैं।

प्रजातन्त्र के इस दोष को महात्मा गांधी के आन्दोलनों और उनकी लोकप्रियता ने प्रोत्साहन दिया है। कहा जाता है कि गांधी जी तो भले आदमी थे, वे अहिंसावादी थे, उनका नाम इस आन्दोलन से जोड़ना ठीक नहीं। हमारा यह कहना है कि गांधी जी के आन्दोलनों और वर्तमान नक्शालियों के आन्दोलनों में सैद्धान्तिक त्रुटि एक ही है।

वास्तविक त्रुटि यह है कि गांधी जी मिथ्या, अस्वाभाविक और असम्भव नारे लगा कर सामान्य बुद्धि के लोगों को अपने पीछे लगा लेते थे और जब समझदार लोगों को गांधी जी के नारे पसन्द नहीं होते थे तो सर्वसाधारण के बल पर उन नेताओं को विवश किया जाता था कि वे गांधी जी की बात मान जायें।

सन् १९१९, १९२०, १९२१, १९३०, १९४२ के सब आन्दोलन मिथ्या नारों के बल पर थे और उन लोगों के मुख बन्द किये गए जो महात्मा जी को सचेत करते थे कि वे भूल कर रहे हैं। चतुर नेता सर्वसाधारण के बल पर विपक्षियों का मुख बन्द कर देते थे। कुछ विपक्षी नेता अपनी नेतागीरी के लोभ में गांधी जी की जय-जयकार में सम्मिलित हो जाते थे और बहुत कम थे ऐसे जो अपने-आपको जनता के इस मदात्य के सम्मुख झुकने नहीं देते थे। ये लोग सार्वजनिक जीवन से निकाल बाहर कर दिये जाते थे। इनमें से कभी कोई विरोधी भी हो जाते थे और फिर देश को अपार हानि पहुँचाते थे। ऐसे लोगों में मिस्टर जिन्ना का नाम प्रमुख है। उसे धक्के दे-देकर, अपमानित कर कांग्रेस से निकाला गया और कालान्तर में वही मुस्लिम लीग का स्तम्भ बना।

इसके विपरीत भी उदाहरण हैं जो कांग्रेस से बाहर निकाले गये, परन्तु देश-द्रोही नहीं बने। उनकी शुभ सम्मति का लाभ नहीं उठाया गया। क्योंकि

एक वर्ष में स्वराज्य की आशा दिलाने वाले धोखेबाज और मूर्ख देश में विद्यमान थे। सर्वसाधारण इसकी असम्भाव्यता को समझ नहीं सके और गांधी की जय-जयकार में पण्डित मालवीय, डाक्टर सप्रू, डाक्टर जयकार इत्यादि को कांग्रेस से निकाल दिया गया। लाला लाजपत राय भी कांग्रेस से इसी दोष के लिये निकाले गये थे और चरित्रहीन, बुद्धिहीन, ज्ञानहीन एवं अनुभवहीन लोग सर्वसाधारण के कंधों पर चढ़े हुए आगे आ गये।

यही अब भी हो रहा है। नारों के बल पर सामान्य जनता को भड़का कर देश में उपद्रव उत्पन्न किया जा रहा है। सन् १९२० से चला हुआ भारत में यह वाद कि जनता-जनार्दन विद्वानों से ऊपर है अथवा विद्वान वह है जो जनता को अधिक धोखा दे सकता है, अब सन् १९७० में सर्वसाधारण नक्शालियों, कम्युनिस्टों, संसोपा, प्रसोपा इत्यादि समुदायों के हाथ में आ गया है और देश में छीना-झपटी आरम्भ हो गयी है। इसकी सीमा कहाँ है यह कहना कठिन है। इसकी असीमता की एक झलक हम ऊपर दे आये हैं।

वर्तमान स्थिति में क्या होगा और क्या हो सकता है, इसका समाधान तो रातनीतिक दल बना रहे हैं, परन्तु वे दल भी मिथ्या घोषों द्वारा सर्वसाधारण को धोखा देने का यत्न कर रहे हैं।

हम न तो राजनीतिक नेता हैं और न ही किसी प्रकार के महात्मा हैं। हम तो जनता को केवल शुभ सम्मति ही दे सकते हैं। हमारी सम्मति यह है कि पूर्व इतिहास से लाभ उठाओ। इन नारेबाजियों से देश में भयानक दुर्व्यवस्था उत्पन्न हो गई है। यह मत समझो कि यदि तुम किसी अन्य के विपरीत अन्याय को सहन करते हो तो कल को वही अन्याय करने वाले तुम्हारे साथ भी अन्याय नहीं करेंगे। विना परिश्रम के किसी को बल-पूर्वक कुछ भी प्राप्त करने की स्वीकृति दोगे तो वही व्यक्ति कल को तुम्हारी बहू-बेटियों अथवा प्रियजनों का भी हरण कर लेगा। जैसा करोगे वैसा भरोगे, यह सिद्धान्त अटल है।

जिस देश अथवा समाज में मूर्खों, धूर्तों और ठगों की महिमा बन जाती है, उसमें विद्वान रह नहीं सकते। वे भी विनष्ट होते हैं। जैसे सूखी लकड़ियों के ढेर में एक गीली लकड़ी भी जल कर राख हो जाती है वैसे ही मूर्खों की मण्डली में एक-आध भले व्यक्ति का अन्त होगा।

जब किसी समाज में मूर्खों की चले और विद्वानों की अवहेलना हो तो कल्याण की आशा नहीं हो सकती।

विद्वानों की संख्या किसी भी देश अथवा समाज में कम होती है। परन्तु भले लोग दुष्टों से संख्या में सदा अधिक होते हैं। इस स्वाभाविक सत्य को भी

कोई नहीं भूल सकता कि जैसा तुम दूसरों के साथ करोगे वैसा वे तुम्हारे साथ करेंगे।

अतः वर्तमान रोग का उपचार एक ही है कि भले और विद्वानों को संगठित हो जाना चाहिये। उनको शक्ति संचय करनी चाहिये और मूर्खों, दुष्टों तथा धोखेबाजों को परास्त करना चाहिये।

भले ही बुद्धिमान और विद्वान समाज में कम हों और अविद्वान तथा सरल-चित्तों की संख्या अधिक हो, परन्तु भले लोगों की संख्या गुण्डों और दुष्टों से सदा अधिक होती है। उपाय यह है कि विद्वान लोग साहस पकड़ कर भलाई के केन्द्र-बिन्दु पर भले लोगों को एकत्रित करें। जो प्रलोभन धूर्त और चतुर लोग जनता को दिखा-दिखाकर अपने पीछे लगा रहे हैं, भले और विद्वानों को उन प्रलोभनों का आश्रय त्याग कर सत्य, न्याय और भलमानसाहत का घोष करना चाहिये।

उदाहरण के रूप में भूमि-हीनों को भूमि मिलनी चाहिये, यह मिथ्या और अन्याय-युक्त नारा है। नारा यह होना चाहिये कि भूमि से उपज करने वाले और अधिक उपज करने वाले को अधिक-से-अधिक भूमि दिलायेंगे।

इसी प्रकार एक नारा है कि अठारह वर्ष के किशोर को मताधिकार दिलायेंगे। यह भी मिथ्या और अयुक्तिसंगत नारा है। नारा यह होना चाहिये कि वोट का अधिकार अमुक योग्यता वाले को देंगे। योग्यता आयु से नहीं नापी जाती। इसका आधार शिक्षा और अनुभव है।

वर्तमान राजनीतिक दल अपनी चमड़ी बचाने के लिये वही कर रहे हैं जो धूर्त कर रहे हैं। यही विनाश का मार्ग है।

श्रेय की साध्यता

श्री मोहनलाल श्रीवास्तव

कौन ऐसी जाह्नवी को पूज्य कहता,
शोण-मल-उच्छिष्ट जिसमें बह रहा है ?
कौन ऐसी मानवी को ध्येय कहता,
रक्त में जिसके दनुज छल बह रहा है ?

व्यक्ति जब आराध्य की सीमा बना हो,
ध्येय की संपूज्यता कैसे रहेगी ?
शक्ति ही जब साधुता का अर्थ होगा,
सत्य की अविभक्त पूजा क्या रहेगी ?

हम चले हैं सम्बलों को मान देकर,
किन्तु वे यदि लक्ष्य अपने को समझते।
भूल उनकी दोष हम सब का नहीं है,
आज दिखते कल अगर दुर्लक्ष रहते ॥

जो सरल सुकुमार त्यागी विचलते हैं,
स्नेह की जिनकी सरलता सूखती है।
जो सुखद छल के करों से छल गए हैं,
साध्य पथ पर आँख जिनकी दूखती है ॥

है प्रणाम उन्हें हमारा वार शत रे,
मांगलिक मन से उन्हें मेरा नमन है।
वे न समझें मैं अकेला रह गया हूँ,
साथ देने के लिए मेरा तपन है ॥

★

अन्तर्राष्ट्रीय हलचल

श्री आदित्य

पश्चिमी एशिया में युद्ध-विराम की सम्भावना

इस्राईल और अरब देशों में चल रहे संघर्ष का किनारा अब दिखायी देने लगा है और बड़े-बड़े राजनीतिक अखाड़ेबाज सुख का सांस लेने लगे हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका के 'स्टेट सेक्रेटरी' विलियम रॉजर्स ने एक प्रस्ताव रखा है और सन् १९४८ से लेकर १९७० तक के काल में यह पहला अवसर है कि मिस्र ने इस्राईल से एक मेज़ पर बैठकर बात करना स्वीकार किया है। इस स्वीकारोक्ति में अरबों को यह मानना पड़ा है कि इस्राईल एक देश है। उसकी नियमित सरकार इस्राइली है और उससे दोनों देशों में सीमा-बंदी के विषय में बातचीत होगी।

लोग इसको मिस्र की प्रथम पराजय समझ रहे हैं। इस बातचीत के प्रस्ताव को स्वीकार कर मिस्र ने अपने हठ को छोड़ दिया प्रतीत होता है कि इस्राईल राज्य नाम का कोई राज्य है ही नहीं। इस्राईल को एक बात माननी पड़ी है कि तीन महीने तक किसी प्रकार की आक्रामक कार्यवाही नहीं की जायेगी। साथ ही यह बात भी इस्राईल को माननी पड़ेगी कि सन् १९६७ के युद्ध के उपरान्त बनी सीमायें नहीं रह सकतीं।

इस्राईल एक-दो अपवादों को छोड़कर शेष सीमा पर बातचीत करने के लिये तैयार था। अतः इस्राईल को भी एक सीमा तक झुकना पड़ा है। वह यह कि अब पूर्ण सीमा पर वार्त्तालाप होगा। इस्राइलियों को यह आशा नहीं थी कि मिस्र एक मेज़ पर बैठकर बात करने के लिये तैयार होगा। कारण यह कि बातचीत करने के लिये इस्राईल ने इतनी बार प्रस्ताव किया था और मिस्र इत्यादि अरब देशों ने उसके प्रस्ताव को इतनी बार ठुकरा दिया था कि इस बार भी वही बात होने की आशा की जा रही थी।

कुछ ही दिन पूर्व इस्राईल के प्रधान मन्त्री गोल्डा मायर ने पैरिस की पत्रिका 'L. Express' के संवाददाता को कहा था—

"यह कहा जाता है कि नासिर सार्वजनिक रूप में वार्त्तालाप स्वीकार नहीं कर सकता, परन्तु हमने पाँच, दस, बीस बार और अभी दो सप्ताह पूर्व पर्दे के पीछे बातचीत करने का प्रस्ताव किया है, परन्तु इसकी किंचित् मात्र भी प्रतिक्रिया नहीं हुई।"

इस्राईल के सुरक्षा मन्त्री मोशो डायान तो सर्वथा निराश थे और उसने नब्बे सैकिण्ड के भाषण में कह दिया था, "इच्छा करने से शान्ति स्थापित नहीं होती और युद्ध का आगामी दौर निकट भविष्य में आरम्भ होने वाला है।"

इस प्रकार के विचार इस्राईल के थे, परन्तु नासिर का व्यवहार भी तो यही बताता था। नासिर १६ दिन तक मास्को में वार्त्तालाप के लिये टिका रहा। इससे किसी प्रकार की शांति-वार्त्ता की आशा धूमिल होती जा रही थी। यह विचार किया जा रहा था कि इस्राईल पर अन्तिम आक्रमण की तैयारी हो रही है।

अब इस्राईल और अरब गणराज्य दोनों के रॉजर्स प्रस्ताव को स्वीकार करने पर भूमण्डल की दृष्टि आगामी वार्तालाप पर लग गयी है। लोग आशा करने लगे हैं कि सम्भावित युद्ध टल गया है और नब्बे दिन का युद्ध-विराम लम्बा होगा और इस्राईल को सीमित किया जा सकेगा।

इस आशा के विपरीत कुछ ऐसा भी कहा जाता है कि यह शांति वार्त्ता हिटलर के युद्ध आरम्भ करने से पूर्व म्युनिख की वार्त्ता सिद्ध होगी। इस विचार के लोग यह समझ रहे हैं कि नासिर रॉजर्स के प्रस्ताव को स्वीकार करने से पूर्व रूस से उस समय की बात विचार कर आया है, जब यह वार्त्तालाप असफल होगी और असफल होने की सम्भावना ही अधिक है।

तानाशाही या तो पूर्ण रूप में विजयी होते हैं अथवा सर्वथा पराजित। उनके लिये बीच का मार्ग है ही नहीं। नासिर के लिये रूस की सैनिक शक्ति आश्रय होने से आंशिक रूप में असफल होने की तो बात ही नहीं हो सकती। अतः नासिर के लिए पूर्ण सफलता की आशा की जा सकती है अथवा असफल होने पर हिटलर की भाँति संसार छोड़ने की बात विचार की जा सकती है।

एक अन्य युक्ति दी जाती है और उससे यह समझाने का यत्न किया जा सकता है कि क्यों नासिर ने अब संधि-वार्त्ता आरम्भ करनी स्वीकार की है और पहले नहीं की थी? यह कहा जाता है कि पहले मिस्र दुर्बल था और एक दुर्बल विजयी से संधि-वार्त्ता करके निस्सन्देह घाटे में रहता है। अब नासिर ने रूस

की सहयता से ऐसी स्थिति प्राप्त कर ली है कि वह अपने को इस्राईल के बराबर समझने लगा है और अब संधि-वार्त्ता दो बराबर की शक्तियों में होगी और सफल भी होगी।

कुछ भी हो, यह वस्तु-स्थिति है कि अरबों में मुख्य राज्य वार्त्तालाप के लिये तैयार हो गये हैं। अरबों में भी कुछ अभी तैयार नहीं, परन्तु उनमें मुख्य नासिर तैयार है। वैसे तो सब-के-सब इस्राईली भी तैयार नहीं। उनकी संसद में भी एक दल सुलह-वार्त्ता के पक्ष में नहीं है। वे रॉजर्स के प्रस्ताव में मीन-मेख निकाल रहे हैं। न मानने वाला दल लघु मत में है और उनके बिना भी गोल्डा मायर को पर्याप्त समर्थन प्राप्त है।

हमारा विचार है कि प्रथम, यह वार्त्तालाप सफल नहीं होगा। दूसरे, इससे मध्य-पूर्व में शान्ति स्थापित नहीं होगी।

यह झगड़ा देशों का तथा राजनीतिक लाभों का नहीं। यह झगड़ा विचारधाराओं का है। इस क्षेत्र में विचारधाराओं का झगड़ा तब आरम्भ हुआ था जब हज़रत ईसा के मरने के लगभग पचास वर्ष उपरान्त ईसाई मत की नींव पड़ी थी। किसी ने यह विख्यात कर दिया कि हज़रत ईसा को यहूदियों ने फाँसी दिलवायी है, अतः यहूदियों के विपरीत, ईसा को महापुरुष मानने वालों में रोष उत्पन्न हो गया। इस रोष में ही ईसाई मत की नींव पड़ी और उसी रोष का परिणाम है कि दो सहस्र वर्ष तक यहूदी भूमण्डल के देशों में मारे-मारे फिरते रहे हैं। यहूदियों के विपरीत वह रोष अभी भी समाप्त नहीं हुआ।

मध्य पूर्व के क्षेत्र में पुनः विचारधाराओं के संघर्ष का केन्द्र तब बना जब मुहम्मद साहब के उपरान्त दूसरे खलीफा साहब ने जहाद का झण्डा ऊँचा किया। इस्लामी जहाद ने मोराको, स्पेन, भूमध्य सागर का पूर्ण दक्षिणी तट, अरब और फिलिस्तीन इत्यादि पर अधिकार कर लिया। तब से यह संस्कृति संघर्ष चलता आ रहा है। इस्लाम ने न तो ईसाइयों को इस क्षेत्र में वापस आने दिया और न ही यहूदियों को यहाँ पाँव जमाने दिया।

द्वितीय विश्व-युद्ध के उपरान्त यहूदियों ने फिलिस्तीन में जैरुसलम के समीप एक छोटा-सा राज्य स्थापित कर लिया और तबसे अरब देशों ने तीन बार इस देश पर आक्रमण किया और तीनों बार पराजय का मुख देखा। अन्तिम आक्रमण सन् १९६७ जून मास में हुआ था और उसमें इस्राइलियों ने अपने क्षेत्र से तीन गुणा बड़ा अरबों का क्षेत्र अपने अधिकार में कर लिया है।

यह संघर्ष शुद्ध सांस्कृतिक और पवित्र है, परन्तु इससे राजनीतिक लाभ उठाने के लिये अमेरिका, इंगलैण्ड, फ्रांस और रूस ने समय-समय पर एक अथवा

दूसरे पक्ष को सहायता दी है।

अब सन् १९६७ के युद्ध के उपरान्त रूस खुलकर अरबों की सहायता करने लगा है। एक बार रूस की सहायता से रूसी प्रभाव इस क्षेत्र में बढ़ा तो फिर भूमध्य सागर और इण्डियन महासागर में भी रूस की पहुँच सुगम हो जायेगी। सबसे बड़ी बात यह होगी कि ईरान और कवैत के तेल-स्रोतों पर कम्युनिस्ट पंजा पहुँच जायेगा। किसी भी भावी संघर्ष में रूस की यह स्थिति स्वतन्त्र देशों के लिये महान् भय का कारण हो जायेगा।

हमारा यह विचार है कि रॉजर्स का यह प्रस्ताव अरबों और इस्राइलियों में सुलह नहीं करा सकेगा। अरबों और इस्राइलियों में एक बार पुनः युद्ध होगा। यह युद्ध कितना विस्तृत और भयंकर होगा, कहना कठिन है। इसकी भयंकरता इस बात पर निर्भर करती है कि इस्राइलियों को उस युद्ध में इंगलैण्ड, अमेरिका और फ्रांस कितनी सहायता करता है। यदि इन स्वतन्त्र देशों ने इस्राईल की खुले आम सहायता की घोषणा न की तो युद्ध सामान्य-सा होगा, अन्यथा पूर्ण भूमण्डल पर इस युद्ध की लपटें छा सकती हैं। रूस इसमें इतनी दूर तक जा चुका है कि उसके लिए वापस होना कठिन होगा। हाँ, और आगे न बढ़े अर्थात् अपने सैनिकों को युद्ध क्षेत्र में न भेजे, यह तब ही सम्भव हो सकेगा जब रूस की यह समझ में आ जायेगा कि उसके सैनिक इस्राइली क्षेत्र में अकेले इस्राइलियों से नहीं, वरंच भूमण्डल के सब स्वतन्त्र देशों से युद्ध मोल ले रहे हैं।

यह भी सम्भव है कि स्वतन्त्र देश युद्ध के लिये तैयार न हो सकें। तब युद्ध न केवल अरबों के पक्ष में समाप्त होगा, वरंच पूर्ण विश्व में कम्युनिज़्म का बोल-बाला हो जायेगा।

अमेरिका और इंगलैण्ड की इस्लामी राज्यों की सहायता के परिणाम का यह कुफल संसार को चखना होगा।

(पृष्ठ १८ का शेष)

वामपंथियों का यह स्वभाव है कि वे विपक्षियों को मूर्ख, अनपढ़ एवं हीन-दीन प्रकट किया करते हैं। उनके कहने से कोई मूर्ख नहीं हो जाता। ज्ञानवान् और अज्ञानवान् को पहचानने के लिये कसौटी ऊँचे स्वर में किये गए समाघोष नहीं होते। इसकी कसौटी प्रमाण और युक्ति है।

क्या यह सन् १९७२ के निर्वाचनों में हो सकेगा ? क्या इस दृष्टि से दो दल बन सकेंगे ?

★

भारत में आगामी पंचवर्षीय निर्वाचन

श्री गुरुदत्त

पिछले मास एक धीमी-सी आशा बनती दिखायी दी थी कि कम्युनिस्टों के विपरीत एक सीधा मोर्चा भारत में बन सकेगा। वह आशा यद्यपि सर्वथा मिट नहीं गयी; इस पर भी कुछ क्षीण अवश्य हुई है।

कांग्रेस (संगठन) की कार्यकारिणी ने एक प्रस्ताव पारित किया था कि इन्दिरा गांधी की सरकार को अपदस्थ करने के लिये सब प्रजातन्त्र में विश्वास रखने वाली पार्टियों का एक संसदीय संयुक्त दल बनाया जाये। क्योंकि इन्दिरा का मुख्य आश्रय कम्युनिस्ट हैं, अतः उन्हें दल में सम्मिलित न किया जाये।

इस प्रस्ताव को स्वतन्त्र दल और जनसंघ ने स्वीकार कर लिया था, परन्तु स्वतन्त्र दल और कांग्रेस (संगठन) दल के भीतर से ही इस प्रस्ताव का विरोध होने लगा है। विरोध में नारा यह है कि जनसंघ एक साम्प्रदायिक दल है; इस कारण इसके साथ मिलकर संयुक्त मोर्चा नहीं बनाना चाहिये।

इस स्थिति में कोई ऐसा मोर्चा बन सकना असम्भव प्रतीत होता है जो इन्दिरा सरकार को आगामी निर्वाचनों में अपदस्थ कर सके। यदि किसी कारण से इन्दिरा की कांग्रेस दुर्बल हुई भी तो उसकी स्थानापन्न सरकार कांग्रेस (संगठन) अथवा जनसंघ बना सकेगी, कठिन प्रतीत होता है। स्वतन्त्र के लिये तो और भी कठिन है। यदि प्रजातन्त्रात्मक पद्धति मानने वाले दल अपने को एक सुदृढ़ संयुक्त दल में एकत्रित न कर सके तो निस्सन्देह कोई अति दुर्बल सरकार बनेगी जिसमें कम्युनिस्ट एक प्रबल दल होगा और देश कम्युनिस्ट हो जायेगा। सम्भव यह है कि संसद भंग कर कोई नवीन (सोवियत संघ से मिलता-जुलता) राज्य यहाँ स्थापित हो सके।

क्या भारत में कम्युनिस्टों की संख्या इतनी बढ़ गयी है कि वे देश का राज्य निर्वाचनों के द्वारा अथवा सशस्त्र क्रान्ति द्वारा हथिया सकेंगे ?

हम समझते हैं कि उनकी संख्या तो कुछ अधिक नहीं, परन्तु प्रजातन्त्रवादी

दल समझ ही नहीं पा रहे कि वे क्या चाहते हैं ? इसमें एक विश्वव्यापी कारण है। वह कारण उपस्थित है प्रजातन्त्रात्मक राज्यों में। इसे महाभारत के लेखक ने इस प्रकार वर्णन किया है—

> अकस्मात् क्रोधमोहाभ्यां लोभाद् वापि स्वभावजात् ॥
> अन्योन्यं नाभिभाषन्ते तत्पराभवलक्षणम् ।
> जात्या च सदृशाः सर्वे कुलेन सदृशास्तथा ॥
> न चोद्योगेन बुद्ध्या वा रूपद्रव्येण वा पुनः ।
> भेदाच्चैव प्रदानाच्च भिद्यन्ते रिपुभिर्गणाः ॥
> तस्मात् संघातमेवाहुर्गणानां शरणं महत् ॥
>
> (शा० १०७–२९, ३०, ३१, ३२)

इसका अभिप्राय यह है कि अकारण उत्पन्न हुए क्रोध, मोह और लोभ से संघ (democracy) के लोग परस्पर लड़ पड़ते हैं और आपस में बातचीत भी बन्द कर देते हैं। तब उनकी पराजय होती है।

सब लोग जाति और कुल में समान हो सकते हैं, परन्तु परिश्रम, बुद्धि, रूप और सम्पत्ति में सबका समान होना सम्भव नहीं। इन सब कारणों से शत्रु लोग इनको धन देकर समूचे संघ (democracy) में फूट डलवा सकते हैं।

अन्त में महर्षि व्यास जी इच्छा करते हैं कि एक गणराज्य में संघ बुद्धि रहना आवश्यक है।

ठीक यही बात आज भारत में हो रही है। हमने यूरोप की नकल कर यहाँ प्रजातन्त्रात्मक राज्य स्थापित किया। इस राज्य में हमने सबको समानाधिकार देने का निश्चय किया, परन्तु सबकी समान नागरिकता कर देने पर भी सबकी बुद्धि और सबका परिश्रम समान नहीं हुआ। और परिणाम सामने है।

देश के सब बड़े-बड़े दलों और सब बड़े-बड़े नेताओं को शत्रुओं द्वारा क्रय किया जा रहा है। किसी को धन देकर, किसी को विदेशों में भ्रमण का अवसर देकर, किसी को सत्ता का लोभ देकर। अन्य प्रलोभन भी हैं। शत्रु वर्ग देश में काम, क्रोध, लोभ और मोह उत्पन्न कर भेद पैदा कर रहे हैं।

परिणाम यह है कि भारत में ऐसा कोई राज्य नहीं, जहाँ अनेक राजनीतिक दल नहीं। इनमें से प्रायः दल व्यक्तियों के स्वार्थ के कारण बने हुए हैं और ये दल किसी भी बात पर एकमत नहीं हो सकते। भारत की राजनीति में सबसे बड़ा दोष बहुदलीय समाज है।

प्रजातन्त्र राजनीति में कार्य-दिशा अधिक दल बनने की है और नेता तथा जनता एक होने के स्थान विभक्त होने में लाभ समझ रहे हैं।

कांग्रेस के दो दल हुए। इसमें कोई सैद्धान्तिक मतभेद नहीं है, वरंच व्यक्तिगत स्वार्थ और पद-लोलुपता ही मुख्य कारण है।

इन्दिरा गांधी को अपना प्रधानमन्त्री पद भय में प्रतीत हुआ तो वह श्री मोरार जी देसाई को अपदस्थ कर कांग्रेस से बाहर निकालने में सफल हो गयी। परन्तु अपने पद के लोभ में श्रीमती प्रधानमन्त्री को रूस और कम्युनिस्टों की गोद में जा बैठना पड़ा। इसी प्रकार कांग्रेस (संगठन) का पूर्ण व्यवहार अपने नेतापन को बनाये रखने के लिये है। प्रत्यक्ष रूप में उनका सैद्धान्तिक मतभेद इन्दिरा दल से नहीं है। अपनी-अपनी नेतागीरी और सरकारी पद को बनाये रखने का संघर्ष है।

जनसंघ के भीतर भी पद और शक्ति का संघर्ष है। यह संघर्ष कुछ भी सूझ-बूझ रखने वालों को दिखायी देता है और इनमें भी ऐसे नेतागण हैं जो लोभ, मोह, क्रोध और काम वश परस्पर भेद खड़ा करते रहते हैं।

एक विचित्र स्थिति संसोपा और प्रसोपा की है। दोनों में सैद्धान्तिक मतभेद कहां है, इसको देखने के लिये ऐटामिक माईक्रोस्कोप ही पता कर सके तो कर सके। इस पर भी पिछले दस वर्ष से अधिक काल से ये पृथक्-पृथक् होकर लड़ रहे हैं।

कम्युनिस्टों में भी मतभेद इसी कारण है कि शत्रुओं ने उनमें से कइयों को धन का लोभ देकर कई उपदल बना रखे हैं। C.P.I. है, C.P.(M) है, नक्सलाईट है, फॉरवर्ड ब्लाक है इत्यादि।

महर्षि व्यास जी के कथनानुसार प्रजातन्त्र में फूट एक स्वाभाविक अवगुण है।

भारत में ही नहीं, वरंच इस समय भूमण्डल में मानव-समाज दो गुटों में विभक्त होता चला जा रहा है। एक गुट, मानव अर्थ-व्यवस्था को राज्य के नियंत्रण में रखना चाहता है और दूसरा स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था के पक्ष में है। हम समझते हैं कि यह मानव-समाज के कल्याण में है कि भूमण्डल के लोग अर्थ-व्यवस्था के इस व्यवधान को समझें और भावी विश्व-संघर्ष में अपना स्थान निश्चित करें। हमें ऐसा दिखायी देता है कि भूमण्डल-भर के देशों में आर्थिक व्यवस्थाओं पर संघर्ष चल पड़े हैं। कोई देश नहीं है जहां यह संघर्ष किसी-न-किसी स्तर पर कार्य न कर रहा हो।

सम्भव है किसी विश्व-व्यापी युद्ध के बिना ही संघर्ष प्रजातन्त्र की पराजय में समाप्त हो। कारण हम बता चुके हैं। प्रजातन्त्र के कुछ नैसर्गिक दोष हैं। उनकी उपस्थिति में प्रजातन्त्र में फूट अवश्यम्भावी है। प्रजातन्त्रात्मक देश कम्युनिस्टों के विरुद्ध एक सांझा मोर्चा बना नहीं सकेंगे।

यह भी सम्भव है कि कम्युनिस्टों के सांझे भय का निवारण करने के लिये प्रजातन्त्रात्मक जातियाँ अस्थायी रूप में एक हो जायें। यदि यह हो सका तो निस्सन्देह कम्युनिस्ट पराजित होंगे। विश्व में भी और भारत में भी। परन्तु प्रथम तो प्रजातन्त्र दलों का एक सांझा मोर्चा बना सकना अथवा अस्थायी रूप में ही इन दलों का एक हो सकना सम्भव प्रतीत नहीं होता। यदि कहीं ये किन्हीं कारणों से एक स्थान पर इकट्ठे हो भी गये तो शीघ्र ही परस्पर लड़ पड़ेंगे और संसार को उन्नति की ओर ले जाने के स्थान पतन की ओर ही ले जाने के योग्य हो सकेंगे।

यही समझ में आ रहा था कि कम्युनिस्टों और इन्दिरा गांधी के साथ सांझे भय के निवारण के लिये प्रजातन्त्रात्मक दल एकत्रित हो जायेंगे, परन्तु इसमें भी सन्देह दिखायी देने लगा है। कारण वही है जो महाभारत के लेखक ने बताया है। प्रजातन्त्र पद्धति में सब समान स्वीकार किये जाते हैं, परन्तु वे होते नहीं। न तो बुद्धि में समानता होती है और न ही परिश्रम में। रूप और सम्पत्ति में भी समानता नहीं हो सकती। इस कारण शत्रु के लिये प्रजातन्त्रात्मक जनता में तथा नेताओं में फूट डलवा सकना सुगम हो जाता है।

जनसंघ साम्प्रदायिक है अथवा इन्दिरा गांधी का दल साम्प्रदायिक है, यह तो विचार का विषय है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कांग्रेस (संगठन) के नेतागण और स्वतन्त्र दल के नेतागणों को साम्प्रदायिकता कम्युनिज़्म से अधिक भयावह प्रतीत होने लगी है। यह केवल बुद्धि का चक्कर ही है जो ऐसा समझते हैं।

जहाँ तक साम्प्रदायिकता का सम्बन्ध है, हम जनसंघ को तो साम्प्रदायिक समझते ही नहीं। वास्तव में किसी निष्ठावान् हिन्दू का साम्प्रदायिक होना हम मान नहीं सकते। हाँ, महात्मा गांधी और उनके परिवार के कांग्रेसियों की मुस्लिम-परस्ती जनसंघ एवं हिन्दू-विचारधारा वालों में नहीं आ मिलती। ये मूर्ख लोग मुस्लिम-परस्ती को तो असाम्प्रदायिकता मानते हैं और संसार में सबके साथ समान भाव रखने वालों को साम्प्रदायिक मानते हैं।

खैर, जनसंघ को साम्प्रदायिक कह कर उससे असहयोग करने वाले अथवा असहयोग का प्रचार करने वाले निश्चय ही अपने किसी स्वार्थवश ऐसा कह रहे प्रतीत होते हैं। सम्भवतः झूठे नारों के बल पर प्राप्त की हुई उनकी नेतागीरी जनसंघ के कर्मठ कार्यकर्त्ताओं के सम्मुख भय में हो जाती है। स्वार्थियों के टोले में वे नारेबाजी से नेता-पद पा गये हैं। यहाँ वह रह नहीं सकता। सम्भवतः यही कारण है कि ये नेतागण जनसंघ में सांझा मोर्चा बनाने में सफल नहीं

हो सकते।

देश में सन् १९७२ में पंचवर्षीय निर्वाचन होने वाले हैं। इसमें राष्ट्रीय तत्त्वों और अराष्ट्रीय तत्त्वों में सीधी टक्कर होने वाली है। वाम-पंथी इसको समझते हैं, परन्तु दक्षिण-पंथी इसको समझ नहीं पा रहे। यही कारण है कि वाम-पंथी तो निस्संकोच भाव से कहते हैं कि वे वाम-पंथी हैं और दक्षिण-पंथी अपने को दक्षिण-पंथी कहने में भी संकोच अनुभव करते हैं।

आखिर दक्षिण-पंथी नाम में क्या दोष है? हमें तो केवल एक दोष दिखायी देता है कि वाम-पंथी इस शब्द को गाली के रूप में प्रयोग करते रहे हैं और सच्चे प्रजातन्त्रवादियों की भाँति दक्षिण-पंथी, लोभ अथवा मोह के कारण अपने नाम को भी छोड़ने के लिये तैयार हो गये हैं।

हिन्दू राष्ट्रवादी है। राष्ट्र है। राष्ट्र क्या होता है? क्या राष्ट्र किसी देश में रहने वालों के आचार-विचार और मान्यताओं का नाम नहीं? यदि है तो इन विषयों पर गाली देने वालों के भय से अपने आचार-विचार और मान्यताओं को भी छोड़ा जा सकता है क्या? यदि हम ऐसा करेंगे तो राष्ट्रीयता को हीन स्वीकार कर लेंगे।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ हिन्दू संगठन के लिये एक संस्था है, परन्तु इसी की उपज जनसंघ एक प्रजातन्त्रात्मक दल होने के कारण हिन्दू नहीं रहा। यह भारतीय हो गया है। जनसंघ वालों को राजनीति में हिन्दू नाम अस्पृश्य प्रतीत होने लगा है। अब विपक्षियों ने भारतीय शब्द पर भी आपत्ति करनी आरम्भ कर दी है। देखें, प्रजातन्त्रवादी जनसंघी अब कौनसा नाम आविष्कृत करते हैं? देश के गैर-हिन्दुओं में सम्भावित स्थान पाने के लोभ में हिन्दू नाम का त्याग किया गया है। दक्षिण-पंथी नाम भी इसी लोभ में छोड़ा गया है कि कदाचित् प्रसोपा, संसोपा इत्यादि लोग जनसंघ से मैत्री कर लेंगे। यह प्रजातन्त्रियों के स्वभाव में है। वे अपने मूल सिद्धान्तों का भी, लोभ मोह के कारण त्याग करने को उद्यत रहते हैं।

परिणाम यह है कि आगामी निर्वाचनों तक कम्युनिस्टों के विरुद्ध कोई मोर्चा बन नहीं सकेगा। कारण यह कि प्रजातन्त्र के सब अवगुणों को रखते हुए हम ऐसा कर नहीं सकेंगे।

कहीं, जैसा कि हमने बताया है, सांझे भय को देख ये दल एक मंच पर आ भी गये तो शीघ्र ही लड़ पड़ेंगे और फिर शत्रु को विजयी होने का अवसर दे देंगे।

प्रजातन्त्रवादियों के जितने मोर्चे बने हैं, सबमें फूट पड़ी है। इस कारण सबसे

प्रथम बात समझने की है कि प्रजातन्त्र कोई ऐसा नारा नहीं जिसके चारों ओर जनता एकत्रित हो सकेगी। अस्थायी रूप में यह हो सकता है, परन्तु यह मोर्चा शीघ्र ही भंग होगा और इसकी प्रतिक्रिया अति भयंकर होगी। वह प्रतिक्रिया प्रजातन्त्र के विरुद्ध ही नहीं होगी, वरंच अन्य उन मूल्यों के विपरीत भी होगी जिनको प्रजातन्त्रवादी छाती से लगाये होंगे।

वाम-पंथ और दक्षिण-पंथ का झगड़ा अधिक गम्भीर और चिरकाल का है। यह ठीक है कि ऊपर-ऊपर से देखने का यह झगड़ा आर्थिक प्रतीत होता है, परन्तु यह ऐसा नहीं है। यह झगड़ा जीवन-मूल्यों का है। जीवन केवल भोग-विलास के लिये ही है अथवा इसका कुछ अन्य उद्देश्य भी है? यह है तत्त्व का प्रश्न, जिसका दर्शन वाम-पंथ और दक्षिण-पंथ में दिखायी देता है।

सांस्कृतिक इतिहास से अनभिज्ञ लोग यह समझते हैं कि वाम और दक्षिण का झगड़ा कार्ल मार्क्स का बताया है और यह केवल आर्थिक विषयों के सम्बन्ध में है। ये लोग या तो अनभिज्ञ हैं अथवा धूर्त हैं। अनभिज्ञ इस कारण कि आर्थिक समस्या सांस्कृतिक वाम-पंथ वालों की उप-समस्या है। मूल समस्या वही है। क्या इस शरीर के अतिरिक्त प्राणी में कुछ अन्य है अथवा नहीं? यदि तो शरीर ही है तो शरीर का पालन-पोषण ही रह जाता है। शरीर की रक्षा को छोड़कर अन्य कुछ रह ही नहीं जाता। शरीर और अर्थ का घना सम्बन्ध है। यही कारण है कि अर्थव्यवस्था इस विचार के लोगों के प्रत्येक कार्य पर छा जाती है। ये लोग वामपंथी हैं। दूसरे वह हैं जो इस शरीर के अतिरिक्त किसी शक्ति की उपस्थिति शरीर और इस संसार में मानते हैं। उनके विचार से यह शक्ति दो प्रकार की है। एक शक्ति ज्ञानवान और सर्वव्यापक है। दूसरी चेतन तो है, परन्तु अल्प ज्ञान रखती है और केवल प्राणी के शरीर में काम करती है। इस विचार के लोग संसार में परोपकार को ही स्वार्थ मानने लगते हैं। उनके लिये जीवन यज्ञ-रूप हो जाता है और वे सबके कल्याण में ही अपना कल्याण मानने लगते हैं।

इस दृष्टि से हम यह समझते हैं कि विश्व में वर्तमान संघर्ष वाम-पंथियों और दक्षिण-पंथियों में है। अर्थ एवं राज्य-व्यवस्था तो इन दोनों पंथों के छोटे-छोटे अंश हैं।

भारत में आगामी निर्वाचनों में संघर्ष-धुरी भी यही होनी चाहिये। संघर्ष आर्थिक स्तर पर हो अथवा राजनीतिक स्तर पर, परिवार के स्तर पर हो अथवा जातीय स्तर पर, यह सांसारिक विषयों पर हो अथवा आध्यात्मिक विषयों पर, धुरी एक ही है। एक ओर वाम-पंथी होंगे और दूसरी ओर दक्षिण-पंथी।

(शेष पृष्ठ १२ पर)

स्वामी शंकराचार्य और महर्षि कणाद

श्री गुरुदत्त

स्वामी शंकराचार्य महर्षि कणाद को नास्तिक और भ्रान्त विचार का व्यक्ति मानते हैं। वेदान्त दर्शन के भाष्य में आप वैशेषिक दर्शन के प्रणेता कणाद की स्थान-स्थान पर हँसी उड़ाने का प्रयास करते हैं। ऐसे ही जैसे कोई विद्वान् किसी बालक के विषय में लिखे।

स्थानाभाव के कारण इस लेख में, स्वामी शंकराचार्य के महर्षि कपिल और कणाद के विषय में अनेक स्थानों पर अयुक्तिसंगत एवं अज्ञानपूर्ण सब कथनों को नहीं लिखा जा सकता। यहाँ हम एक-दो उदाहरण ही देंगे जिससे स्पष्ट हो जायगा कि स्वामी शंकराचार्य वैशेषिक दर्शन के विषय में या तो अनभिज्ञ थे या अपनी मान्यता को सिद्ध करने के लिये मिथ्या अभिप्राय लेते थे।

स्वामी जी ब्र० सूत्र २-१-११ के भाष्य में इस प्रकार लिखते हैं—

एवमप्यप्रतिष्ठितत्वमेव, प्रसिद्धमाहात्म्यानुमतानामपि तीर्थकराणां कपिलकणभुक्प्रभृतीनां परस्परविप्रतिपत्तिदर्शनात्।

चर्चा यह है कि अप्रतिष्ठित तर्क नहीं करना चाहिये। ऐसा करने से अनुमान प्रमाण असिद्ध हो जायेगा। इस सन्दर्भ में स्वामी जी सांख्य के प्रणेता कपिल मुनि और वैशेषिक के प्रणेता कणाद के विषय में उक्त प्रवचन कर रहे हैं। इस प्रवचन का अर्थ यह है—

वे (कपिलादि) भी अप्रतिष्ठित ही हैं, जिनका महात्मायन प्रसिद्ध समझा गया है। ऐसे कपिल और कणक भोक्ता (कणाद) में परस्पर विरोध देखने में आता है।

इन दोनों में परस्पर विरोध नहीं है। विरोध है इन दोनों का स्वामी शंकराचार्य के मत से।

इन दोनों दार्शनिकों के एकमत होने की बात तो एक अन्य लेख का विषय है। यहाँ हम श्री स्वामी शंकराचार्य और कणाद मुनि के विषय में ही लिखेंगे।

ब्रह्म सूत्र के एक अन्य सूत्र (२-२-१५) के भाष्य में श्री स्वामी शंकराचार्य जी ने तो कमाल ही कर दिया है।

ब्रह्म सूत्र २-२-१५ इस प्रकार है—

रूपादिमत्त्वाच्च विपर्ययो दर्शनात् ॥

रूपादिपन के होने से और उलटने की प्रक्रिया होने से देखा जाता है कि सृष्टि रचना होती है।

अर्थात् सृष्टि रचना तब होती है जब द्रव्यों में रूपादि गुण उत्पन्न हो जायें और पदार्थ बनते तथा बिगड़ते दिखायी देते हैं।

सृष्टिरचना-क्रम में प्रधान से महत् बनता है। महत् से अहंकार। अहंकारों से पंच महाभूत और उनमें जब अव्यवस्था होती है अर्थात् जब व्यवस्था बदलती है तो प्राणियों की रचना होती है। यह वेदान्त दर्शन में लिखा है।

सृष्टि-क्रम में प्रकृति, प्रधान, महत् और अहंकारों को 'अविशेष' (सामान्य) कहते हैं और पंच महाभूत, इन्द्रियाँ, मन, शरीर इत्यादि पदार्थों को 'विशेष' कहते हैं। पंच महाभूत बनने के पूर्व परिमण्डल बनते हैं। तदनन्तर परिमण्डलों के संयोग और वियोग तथा समीप और दूर होने से पंच महाभूत बनते हैं। इनसे शरीर बनता है और शरीर में एक 'अन्य' के सम्पर्क बनने से प्राणी की सृष्टि होती है। यह सब वेदान्त दर्शन (२-२-८,९,१०,११,१२) में लिखा है। इस सूत्र में लिखा है कि रूपादि गुणों वाले पदार्थों में जब बनना और बिगड़ना होता है तो सृष्टि-रचना होती है।

स्वामी शंकराचार्य जी इस सूत्र के भाष्य में लिखते हैं—

सावयवानां द्रव्याणामवयवशो विभज्यमानानां यतः परो विभागो न संभवति ते चतुर्विधा रूपादिमन्तः परमाणवश्चतुर्विधस्य रूपादिमतो भूतभौतिकस्यारम्भका नित्याश्चेति यद्वै शेषिका अभ्युपगच्छन्ति स तेषामभ्युपगमो निरालम्बन एव।

इसका अर्थ इस प्रकार है—(क्रम से) विभाज्य मान सावयव द्रव्यों का यहाँ से आगे विभाग नहीं हो सकता। वे चार प्रकार के रूपादि गुण युक्त परमाणु रूपादि विशिष्ट चार प्रकार के भूत और भौतिक के आरम्भक हैं। वे नित्य हैं। ऐसा जो वैशेषिक स्वीकार करते हैं, यह निराधार है। स्वामीजी का अभिप्राय यह है कि वैशेषिक दर्शन में चार प्रकार के रूप, गुण वाले भूतों के चार प्रकार के परमाणु माने गये हैं जो परमाणु नित्य (अविनाशी) हैं।

हमारा यह कहना है कि ऐसी बात वैशेषिक दर्शन में नहीं लिखी। स्वामी शंकराचार्य अपने मन से वैशेषिक के प्रणेता कणाद मुनि की निन्दा करने के लिये ऐसा लिख रहे हैं।

स्वामी जी यहाँ तक कह गये हैं कि—

यच्च नित्यत्वे कारणं तेरुक्तम्—'सदकारणवन्नित्यम्'

(वै० सू० ४ १-१) इति।

स्वामीजी कणाद मुनि के परमाणुओं के नित्य होने का वैशेषिक दर्शन से प्रमाण देते हैं (वै० सू० ४-१-१)।

ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामी जी का वैशेषिक का ज्ञान अत्यल्प था। वैशेषिक दर्शन के उक्त सूत्र का यह भाव नहीं है। यहाँ हम यह बात पहले ही बता देना चाहते हैं कि पूर्ण वैशेषिक दर्शन में परमाणु शब्द अथवा शब्द का भाव नहीं मिलता और स्वामी जो परमाणु की वैशेषिक के अनुसार परिभाषा लिखते हैं—

सावयवानां द्रव्याणामवयवशो विभज्यमानानां यतः—अर्थात् विभाज्य मान सावयव द्रव्यों का यहाँ से आगे विभाग नहीं हो सकता। यह वैशेषिक दर्शन में नही लिखा।

चार प्रकार के ऐसे परमाणु हैं। ऐसा भी वैशेषिक दर्शन में नहीं लिखा।

एक सूत्र है—

सदकारणवन्नित्यम्।

इसके अर्थ स्वामी जी इस प्रकार करते हैं—वह (परमाणु) सद कारण की भाँति नित्य है।

जैसा कि हमने लिखा है कि पूर्ण वैशेषिक दर्शन में परमाणु शब्द नहीं है। अतः यहाँ परमाणु से अभिप्राय नहीं है। इस सूत्र का अर्थ है—

सत् अकारणवत् नित्यम्।

सत् का अभिप्राय है प्रकृति। यह अन्य अकारणवत् पदार्थों की भाँति नित्य है।

यहाँ प्रकृति की नित्यता का घोष किया गया है और यह ऐसे ही नित्य है जैसे कि अन्य अकारण पदार्थ हैं। अन्य अकारण पदार्थ हैं परमात्मा तथा जीवात्मा।

वास्तव में पंच महाभूतों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म कण को परिमण्डल कहा जाता है। और परिमण्डल नित्य नहीं है। यह बना है, अतः नित्य नहीं हो सकता।

उक्त सूत्र में सत् का अर्थ प्रकृति ही है। यह अगले सूत्र (४-१-२) से स्पष्ट हो जाता है—

तस्य कार्यलिङ्गम्॥

तस्य अर्थात् उसका। जिसका उल्लेख ऊपर के सूत्र में आया है और जिसे सत् कहकर लिखा है। इसका लिंग कार्य जगत् है।

प्रकृति का लिंग कार्य जगत् है। हम कार्य जगत् को देखकर ही प्रकृति का अनुमान लगाते हैं। वैसे ही जैसे धुआँ देखकर अग्नि का अनुमान लगाया जाता है।

अपनी बात को पुष्ट करने के लिये कणाद मुनि अगला सूत्र इस प्रकार कहते हैं—

कारणाभावात् कार्याभावः ॥ (वै० द० ४-१-३)

कारण के अभाव में कार्य का भी अभाव होता है।

स्वामी जी का यह कहना कि वैशेषिक दर्शन के प्रणेता कणाद ने पञ्च भूतों के सूक्ष्म कणों (परिमण्डलों) को अनित्य लिखा है, अगले ही सूत्र को पढ़ने से यह गलत सिद्ध होता है। सूत्र है—

अनित्य इतिविशेषतः प्रतिषेधभावः ॥ (वै० द० ४-१-४)

विशेष (पचमहाभूत, इन्द्रियाँ, मन) ये अनित्य हैं। इनके निषेध भाव का अध्ययन करने से पता चलता है।

निषेध भाव का अर्थ है कि नाशवान होना। पंच भूत इन्द्रियाँ इत्यादि नाश को प्राप्त होती हैं। अतः ये अनित्य हैं।

जब इतने स्पष्ट शब्दों में वैशेषिक दर्शन में लिखा गया है तब भी कहना कि उस दर्शन में पंच महाभूतों के छोटे कणों को परमाणु माना है और वह नित्य है, स्वामी शंकराचार्य की इस दर्शन के विषय में अज्ञानता ही दर्शाता है। चार प्रकार के परमाणु हैं, जो नित्य हैं। यह वैशेषिक मत नहीं है। पंच महाभूतों के छोटे-से-छोटे कण को परमाणु नहीं कहते। कारण यह कि वह विभक्त हो सकता है। उसमें अहंकार के ह्रस्व (अणु समूह) संगठित मिलते हैं।

परमाणु तो मूल प्रकृति के सबसे छोटे कण का नाम है। ऐसा प्रत्येक कण त्रिगुणात्मक है।

संस्कृत का अध्ययन भारतीय-जाति की अनिवार्य आवश्यकता

डा० सुवालाल उपाध्याय 'शुकरत्न'

संस्कृत इस देश का शक्ति-स्रोत, जन-भावना के उदातीकरण की गंगा, राष्ट्रीय-ज्ञान की कुंजी, राष्ट्रैक्य का सनातनसूत्र और समस्त भारतीय-जाति का जीवन-सर्वस्व है। भारत एवं संस्कृत परस्पर अभिन्न हैं। इसको जाने बिना भारत के व्यक्तित्व, आत्मा और हृदय को समझना कठिन है। सच पूछा जाय तो संस्कृत के बिना भारत और भारतीय जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। श्री विवेकानन्द के शब्दों में, "संस्कृत शब्दों की ध्वनि मात्र से ही इस जाति को शक्ति, बल और प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।"

यद्यपि संस्कृत शब्द का प्रयोग एक भाषा के लिये होता है किन्तु संस्कृत शब्द के सुनने मात्र से वैदिक ऋषियों के मंत्र-दर्शन, योगियों और तत्त्वज्ञों की तत्त्व-चर्चा, पुराणों के सृष्टि सम्बन्धित रहस्य, कपिल, कणाद और गौतम आदि के दार्शनिक-विवेचन, पाणिनि, पतंजलि आदि के भाषा-सम्बन्धी अद्भुत विचार, चरक, सुश्रुत, कौटिल्य एवं आर्य भट्ट आदि के विविध विषयों के तलस्पर्शी विश्लेषण, कालिदास, जयदेव, श्रीहर्ष आदि महाकवियों के सुललित काव्यों और वास्तु, शिल्प, चित्र, संगीत आदि विविध कलाओं से लेकर, धार्मिक अनुष्ठानों, साधनाओं और लोक-व्यवहारों का एकसाथ बोध हो जाता है। भारतीय मनीषा का उच्चतम विकास संस्कृत में ही हुआ है। महायोगी अरविन्द के अनुसार, "संस्कृत-भाषा की प्राचीन एवं उच्चकोटिक रचनाएँ अपने गुण तथा उत्कर्ष के स्वरूप एवं बाहुल्य दोनों में, शक्तिशाली मौलिकता, ओजस्विता और सुन्दरता में, अपने सारतत्त्व, कौशल और गठन में, वाक्शक्ति के वैभव, औचित्य और आकर्षण में तथा अपनी भावना के क्षेत्र की उच्चता और विशालता में अत्यन्त स्पष्टतः ही विश्व के महान् साहित्यों के बीच अग्रपंक्ति में प्रतिष्ठित हैं।"

इस विशाल देश का प्रत्येक व्यक्ति संस्कृत से जुड़ा हुआ है। सूर्य के आलोक और चन्द्रमा की चाँदनी की भाँति यह सम्पूर्ण भारतीय-जीवन में व्याप्त है। भारत की समग्र प्रकृति और सामूहिक चेतना पर इसका अद्भुत साम्राज्य है। हज़ारों वर्षों की चिरन्तन साधना का सर्वोत्कृष्ट सार, भारत राष्ट्र की सारी तपश्चर्या, उसका सत्य दर्शन उसका गौरव, साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक राजनैतिक जीवन इसी के अगाध वांङ्मय में व्याख्यात हुआ है। फलतः भारतवर्ष का कुछ भी ऐसा नहीं, जो इस भाषा को जाने बिना समझा जा सके। अतः जो संस्कृत नहीं जानता उसे 'भारतीय-प्रतिनिधि' के रूप में स्वयं को प्रस्तुत करने में कठिनाई होगी। भारत राष्ट्र के इतिहास, जीवनादर्श, परम्परा और महान् संस्कृति के ज्ञान के लिये, संस्कृत-ज्ञान की उपेक्षा नहीं की जा सकती। स्वतन्त्र भारत के 'स्व' का साक्षात्कार सर्वोत्तम रीति से संस्कृत-ज्ञान के द्वारा ही हो सकता है।

संस्कृत उस मानसिक-साहस, राष्ट्रीय-चेतना और राष्ट्रीय स्वाभिमान की जन्मदात्री है, जिसे कुछ स्वार्थी तत्त्वों ने अंग्रेज़ी के कठोर लौह-पाश में जकड़ रखा है। संस्कृत का अध्ययन स्वतन्त्र-चिन्तन को जन्म देता है और देश-गौरव की भावना उत्पन्न करता है। संस्कृत तथा उसके द्वारा पोषित हिन्दी आदि अन्य भारतीय भाषाओं के साथ देश-भक्ति, आत्म-गौरव, राष्ट्रीय-समृद्धि और भारतीयता संबद्ध है। जब कि अंग्रेज़ी के साथ अंग्रेजियत, मानसिक-गुलामी तथा स्वतन्त्र एवं मौलिक चिन्तन का सर्वथा विनाश। यदि भारतीय-संस्कृति में से वे तत्त्व निकाल दिये जायँ, जिनका जन्म संस्कृत से हुआ है. तो भारतीय-संस्कृति नाम की कोई भी वस्तु शेष नहीं बचेगी। अतः यदि राष्ट्रीय-पाठ्यक्रम में संस्कृत को उचित स्थान नहीं दिया गया, तो देश की समृद्ध संस्कृति को नष्ट हो जाने का खतरा है।

वेद, उपनिषद, मनु, वाल्मीकि, व्यास, कालिदास अभी तक हमारे जीवन पर शासन कर रहे हैं। हमारे जीवन का जो-कुछ भी सारभूत है, जिन आदर्श गुणों से भारतीय-जीवन प्रगुणित है, वे सब संस्कृत भाषा में ही प्रत्यक्ष किये जा सकते हैं। संस्कृत ने इस देश को एक उत्कृष्ट जीवन-दर्शन और भव्य समृद्धि का युग प्रदान किया है और भारतीय जीवनादर्शों को बदलते जीवन-मूल्यों में निरन्तर निश्चित मान की ओर लौटाया है। संस्कृत-साहित्य से दूर हट कर भारत का सांस्कृतिक ह्रास ही नहीं बल्कि उसकी प्राण-शक्ति समाप्त हो जायगी।

भारतीयों का सारा जीवन ही संस्कृतमय है। प्रत्येक भारतीय के रात-दिन के व्यवहार में आधे से अधिक शब्द संस्कृत के ही रहते हैं। प्रातःकाल की

अरुणिम सुषमा के फैलते ही द्वारका से लेकर जगन्नाथपुरी तक एवं बदरीनाथ से लेकर रामेश्वरम् तक, कोटि-कोटि कण्ठों से संस्कृत-स्तोत्रों की मधुरता से पूर्ण प्रभु-अर्चना के एक-जैसे ही स्वर गूंज उठते हैं। हिमालय और केरल में उत्पन्न हुए बालक के जातकर्म, नामकरण एवं उपनयन वहाँ की मातृभाषा किंवा प्रादेशिक भाषा में नहीं होते। गुजरात और बंगाल के विवाह-संस्कार गुजराती व बंगला भाषा में नहीं किये जाते। पंजाब एवं आन्ध्र के शव-संस्कार के समय उनके प्रान्तों की भाषा का प्रयोग नहीं होता। इस प्रकार समस्त भारतीय स्पन्दनों में अच्छेद्य, अभेद्य सम्बन्ध से घुली-मिली संस्कृत भाषा के साथ भारतीयों का वैयक्तिक, कौटुम्बिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय-जीवन सर्वथा निगडित है। उनको संस्कृत का महत्व समझाना ही उसी प्रकार एक हास्यास्पद तथा अशोभनीय कल्पना है जैसे कि किसी पुत्र को उसकी माता का महत्त्व समझाना।

इस प्रकार हम भारतीय एक-दूसरे से हज़ारों मील दूर रहते हुए भी, संस्कृत-सूत्र से मणिमाला की तरह परस्पर गुंथे हुए हैं। संस्कृत-भाषा विभिन्न विचार और विश्वासों के बीच समन्वयात्मक परिस्थितियों को उत्पन्न करती हुई, देश और समाज में, हमारी अनुभूतियों, आवश्यकताओं और मनोवेगों में अन्तः-संवेदनशीलता को स्थापित करती है। जिसके कारण कार्य और विचारों में बाहरी भिन्नता होते हुए भी नागरिकों के चित्त में भावात्मक-ऐक्य सुस्थिर रहता है। संस्कृत के माध्यम से देश में जैसी एकता स्थापित हुई है, वह किसी अन्य माध्यम द्वारा सम्पन्न नहीं हुई। विदेशियों के सुदीर्घ शासन काल में भी यह सांस्कृतिक ऐक्य सुरक्षित बना रहा, असहिष्णु शासकों के दुर्घर्ष अत्याचार भी संस्कृत के ही कारण, भारतीय जनता की आत्मा को नहीं कुचल सके। संस्कृत के ही कारण हम आज तक अपने व्यक्तित्व और विशेषताओं के साथ जीवित हैं, अतः केवल भाषा की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि राष्ट्र के अस्तित्व के लिये भी संस्कृत का संरक्षण अत्यावश्यक है।

संस्कृत के अध्ययन का तात्पर्य है – उन सभी मान्यताओं को स्वीकार करना, जो मनुष्य को पूर्णतम और न्यायसिद्ध जीवन प्रदान करती हैं। यदि हम मनुष्य को जानना चाहते हैं, जो केवल दर्शन-शास्त्र का ही नहीं, प्रत्युत ज्ञान मात्र का उद्देश्य है, तो, संस्कृत-साहित्य का अध्ययन आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।

गणित और चिकित्सा-शिल्प और तर्क, विधि और कूटनीति के क्षेत्र में भी संस्कृत-भाषा के माध्यम से कभी भारत इतनी उन्नति कर चुका था कि इनमें से उनके आविष्कारों ने अरबों के माध्यम से यूरोप में पुनर्जागरण के बीज डाले।

विश्व के दर्शन और संस्कृति में हमारा योगदान इसी के द्वारा हुआ है। किसी समय इसकी ज्योति ने सारी दुनिया को प्रकाश दिया था—

'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥' (मनु)

सृष्टि और मनुष्य जाति का सुदीर्घ इतिहास भी संस्कृत में ही सुरक्षित है। समस्त संसार में, आध्यात्मिक विचारों का चरम उत्कर्ष केवल संस्कृत में ही प्राप्त किया जा सकता है। आध्यात्मिक अनुभवों से सम्बन्धित संस्कृत शब्दों के पर्यायवाची शब्द, संसार की किसी भी भाषा में प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। इसके अध्यात्म ग्रंथों ने सदैव विश्वमनीषियों को आकृष्ट और प्रभावित किया है। वैदिक परिभाषाओं, प्राकृतिक रहस्यात्मक वर्णन सूर्य, चन्द्र, हरीतकी आदि के विविध पर्यायवाची शब्दों से वैज्ञानिक भी अपने अनुसंधान में कुछ दुर्लभ संकेत प्राप्त कर सकते हैं।

संस्कृत-भागीरथी का अखंड प्रवाह पाली, प्राकृत अपभ्रंश से होता हुआ, आज तक समस्त भारतीय भाषाओं में बह रहा है। भारतीय भाषाओं में संस्कृत की ही अन्तःप्रेरणा व्याप्त है। आज भी उनका पोषण और संवर्धन संस्कृत द्वारा ही होता है। इन भाषाओं का शब्दकोष, साहित्यस्वरूप, कल्पना पारिभाषिक-वाक्य, अलंकार-शास्त्र आदि संस्कृत पर ही आधारित हैं। यही कारण है कि संस्कृत की सहायता से कोई भी उत्तर भारतीय, तमिल, तेलगू, कन्नड़, मलयालम, उड़िया आदि भाषाओं को सरलतापूर्वक सीख सकता है। इसी प्रकार दक्षिण और पूर्वोत्तर भारतीय हिन्दी आदि भाषाओं को। संस्कृत के अध्ययन से सभी भारतीय भाषाएँ एक-दूसरे के साथ जुड़ी हुई हैं। संस्कृत की पृष्ठभूमि और शाश्वत जीवनधारा को छोड़कर, कोई भी भारतीय भाषा, हमारी सांस्कृतिक-एकता की सुरक्षा और भारत को 'भारत' के रूप में स्थिरता प्रदान करने में समर्थ नहीं है। संस्कृत के आश्रय के बिना हिन्दी भी अपनी सार्वदेशिक राष्ट्रीय-संवेदना समाप्त कर देगी।

भारतीय-भाषाओं के कवि और लेखक कम्बन, ज्ञानेश्वर, चंडीदास, विद्यापति, सूरदास, तुलसीदास, तिरुवल्लुवर, पुरन्दरदास, कनकदास, रवीन्द्र, शंकर कुरुप आदि ने सर्वोच्च रूप में संस्कृत से प्राप्त ज्ञान-परम्परा द्वारा अपनी कृतियों को सजाया है। आधुनिक नव जागरण काल में भी संस्कृत ज्ञान से आलोकित दयानन्द, विवेकानन्द, तिलक, मालवीय आदि महापुरुषों के योगदान को कौन नहीं जानता।

वोटों की राजनीति से ऊपर उठकर, साम्प्रदायिक सद्भाव के लिये भी

सर्वज्ञ एक ही परमात्म-तत्त्व को खोजने वाले संस्कृत-तत्त्व-दर्शन का प्रचार अत्यन्त संतोषप्रद परिणाम उत्पन्न कर सकता है। वेदों से लेकर समूची संस्कृत-परम्परा परमात्मा की एकता का समर्थन करती रही है—

'एकम् सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' (ऋग्वेद), **'महाभाग्यात् देवताया एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते', 'यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति'** (गीता), **'बहुधाध्यागमैर्भिन्नाः पन्थानः सिद्धहेतवः। त्वय्येव निपतन्त्योघा जान्हवीया इवार्णवे'** (कालिदास) आदि।

'केवलाघो भवति केवलादी', 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्', 'यावद् भ्रियेत जठरं तावत स्वत्वं हि देहिनाम्। अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति' आदि सद्भावपुष्ट दुर्लभ सामाजिक आदर्श भी संस्कृत साहित्य में विद्यमान हैं, जो हिंसा और वर्ग-संघर्ष के समर्थक समाजवाद के अनुयायियों को हृदय-परिवर्तन और शान्ति के साथ क्रान्तिकारी परिवर्तनों का राजपथ दिखा सकते हैं।

भारत की इस अक्षय-निधि के शोध और अन्वेषण में विदेशी विद्वान् अपना समग्र जीवन अर्पित कर दें और हम अपनी ही धरोहर का सही मूल्यांकन नहीं कर पायें, इससे बढ़कर और हमारा दुर्भाग्य क्या होगा ? संस्कृत साहित्य में इतना ज्ञान भरा हुआ है कि यदि उसका सही मूल्यांकन करके संसार के सामने लाया जाय, तो इस राष्ट्र को एक नया गौरव मिल सकता है। इसकी उपेक्षा करने वाले यह भूल जाते हैं कि इस सर्व भाषाओं की जननी ने हमारे जीवन को कितना प्रभावित किया है।

फलतः इस आर्थिक और औद्योगिक युग में भी, राष्ट्रीय मौलिक प्रकृति और प्रवृत्ति के संरक्षण, राष्ट्रीय एकता की सिद्धि, भारतीय संस्कृति की सुरक्षा, आर्य-भाषाओं एवं राष्ट्रभाषा हिन्दी के पोषण तथा संवर्धन, सद्विचार और सद्-भावनाओं के प्रसार, अनुशासनहीनता की समस्या के समाधान, चरित्रवान्, नागरिक एवं नेताओं के निर्माण, स्वतंत्र चिन्तन की प्रेरणा तथा विश्व-शान्ति एवं विश्व-मैत्री के सदुद्देश्यों की जन-मन में प्रतिष्ठा के लिये संस्कृत के पठन-पाठन का राष्ट्रव्यापी प्रचार वांछनीय है।

नारी और वेद

●

श्री रामशरण वशिष्ठ

वेद में नारी के प्रति दृष्टिकोण पुरुष से समानता का है। वेद पत्नी को अर्द्धांगिनी कहता है। कई मन्त्रों में उसको सम्राज्ञी बताया है। कहीं पर उसको घर की ध्वजा कहा है और किसी स्थान पर उसे घर की शिला कहा है। और अथर्व० —२-३६-५ में एक खिली हुई कली कहा है।

धार्मिक क्षेत्र में स्त्री के अधिकार पुरुष के तुल्य हैं। कन्या ब्रह्मचारिणी रहती हैं, यज्ञोपवीत पहनती हैं, वेद का स्वाध्याय करती हैं और उन्नति करते-करते ऋषि-पद प्राप्त कर सकती हैं। कई स्त्रियाँ जैसे कि लोपामुद्रा, विश्ववरा, शषीघोषा, अपाला आदि वेद-मन्त्रों की द्रष्टा हुई हैं। यह वैदिक सभ्यता का ही प्रभाव था कि भारत में स्त्रियाँ बहुत विदुषी थीं। गार्गी-जैसी अनेक नारियाँ प्रसिद्ध हैं।

वेद में नारियों के प्रति इतना ऊँचा आदर्श था कि स्त्रियाँ यज्ञ आदि कार्यों में भाग लेती थीं और उनको यज्ञ करने का अधिकार था। अग्निहोत्र प्रातः-सायं पति-पत्नी सदा घरों में करते थे। (ऋ०—८-३१-५,६)

वेद कहता है—

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि।

(अथर्व०—६-१२२-५)

अर्थात्—इन शुद्ध, पवित्र यज्ञ की अधिकारिणी स्त्रियों को……। फिर ऋ०—१०-१०६-४ में आता है कि—

भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन्।

अर्थात्—यह वेदज्ञ की कन्या यज्ञोपवीत धारण करके बलवान् बन जाती है और दुष्ट स्वभाव वालों को उत्कृष्ट बना देती है।

कन्या के ब्रह्मचर्य धारण करने का (अथर्व० ११-५-१८ में) स्पष्ट है। वहाँ आता है कि—

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।

अर्थात्—ब्रह्मचर्य से कन्या युवा पति को प्राप्त करती है ।

इसी प्रकार ऋग्वेद के विवाह सूत्र (१०-८५-९ में) आता है—

सूर्यां यत् पत्यं शंसन्तीं मनसा सवितादात् ।

अर्थात्—सविता पिता ने सूर्या कन्या को उस पति को दिया जिसको वह मन से चाहती थी । इसका भाव यह है कि कन्या का विवाह भी उसकी इच्छा के अनुसार होता था ।

वैदिक मर्यादा के अनुसार पति घर का स्वामी और पत्नी सम्राज्ञी प्रबन्ध-कर्त्री होती है । वेद कहता है कि—

एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य ॥

(अथर्व०—१४-१-४३)

अर्थात्—तू पति के घर जाकर रानी बन । फिर एक और मन्त्र मे यह है—

सुवाना पुत्रान् महिषी भवाति गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु ॥

(अथर्व०—२-३६-३१)

अर्थात्—यह देवी पुत्रों को उत्पन्न करती हुई महारानी हो और पति को भाग्यवान करे ।

इससे यह प्रतीत होता है कि समाज में स्त्रियों का मान और आदर का भाव था । स्त्री-जाति के सम्बन्ध में ऐसे उत्तम भाव और किसी मत में नहीं पाये जाते ।

मनु महाराज भी लिखते हैं—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्ताऽफलाः क्रिया ॥

अर्थात्—जहाँ पर नारी का सत्कार होता है वहाँ पर देवता प्रसन्न होते हैं और जहाँ ऐसा नहीं होता वहाँ पर सारे काम असफल होते हैं ।

सांसारिक जीवन में भी स्त्रियों के अधिकारों का वेद में बहुत विस्तार से वर्णन पाया जाता है । राजा के चुनाव में स्त्रियाँ मतदान करती हैं (यजु० ९-२) । वह सेना में भी सेनापति बनती हैं और युद्ध करती हैं (यजु० १६-२४, तथा १७-४४)। वह यज्ञों में निमरातृत की जाती हैं और उनको आदर का स्थान दिया जाता है (अथर्व० ६-१२२-४ तथा ७-४७-१, २) । स्त्रियाँ सोम रस का पान भी करती है (यजु० ६-३४)। विद्वान स्त्रियाँ राज्य-कार्यों में भी भाग लेती हैं । वह न्यायाधीश बनती हैं । वह सभाओं में जाती हैं (१०-८६-१०) । वह

सत्संगों में जाती हैं (अथर्व० ६-६३) । वह मेलों में जाती हैं (ऋ० १०-८६-१०)। वह सुन्दर वस्त्र पहनती हैं। वह भूषण, रत्न आदि से सुसज्जित होती हैं। आञ्जण लगाती हैं (यजु० १२-५७ व अथर्व० १२-२-३१) । वह लाभदायक बूटियों के रसों का पान करती हैं, जिनसे गर्भ बना रहे (अथर्व० १४-२-७०) ।

जहाँ इस प्रकार नारियों के अधिकारों का वर्णन आता है, वहाँ पर वेद में नारी-धर्म का भी विस्तार से ब्यौरा मिलता है ।

पत्नी को पातिव्रत-धर्म का पालन आवश्यक है। ऋ० १-७३-३ में—'अनवद्या पतिजुष्टेव नारी' अर्थात् एक चरित्रवान् पत्नी पति को प्यारी लगती है और समाज में भी उसका आदर होता है ।

वेद की स्त्री को आज्ञा है (ऋ० १०-८५-४२)—

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिः मोदमानौ स्वे गृहे ।।

अर्थात्—तुम दोनों यहाँ रहो । जुदा न हों, सारी आयु-भर इकट्ठे रहो । अपने पुत्रों-पौत्रों में खेलते, हँसते अपने घर में रहो । यही भाव ऋ० ८-३१-८ में भी है—

पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः । उभा हिरण्यपेशसा ।।

अर्थात्—अपने पुत्र और कन्याओं में रहते हुए तुम दोनों अपनी आयु-भर प्रसन्न रहो और सोने के भूषण पहनो ।

पत्नी को आज्ञा है कि—

जाया पत्ये मधुमती वाचं वदतु शान्तिवाम् ।

अर्थात्—पत्नी को चाहिये कि पति को मधुर और शान्तिदायक बात कहे । पत्नी पति से एक मन वाली रहे और उसकी आज्ञा को माने ।

पत्युरनुव्रता भूत्वा ।। (१४-१-४२)

पति-पत्नी के प्रेम को वर्णन करता हुआ वेद कहता है कि—

इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दंपती ।

(अथर्व० १४-२-६४)

अर्थात्—हे इन्द्र ! इस जोड़े का आपस में ऐसा प्रेम हो जैसा कि चकवा-चकवी का। वेद दम्पति की तुलना इन शब्दों में करता है—

अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् ।

(अथर्व० १४-२-७१)

अर्थात्—मैं साम हूँ, तू ऋक् है । मैं द्यू-लोक हूँ, तू पृथिवी है । हम दोनों मिलकर एकतत्त्व होते हैं ।

इसके अतिरिक्त भार्या को घर के काम-काज में कुशलता रखनी चाहिये। वेद ने कहा कि घर का भार दोनों मिलकर उठा सकते हैं (ऋ० १-१७९-३)। घर को साफ-सुथरा रखना स्त्री का काम है (अथर्व० ९-३-२४)।

वधूमिव त्वा शाले यत्रकामं भरामसि ॥

अर्थात्—स्त्रियाँ भोजन बनाती हैं, जल लाती हैं (अथर्व० १०-३-१४)। बच्चों की पालना करती हैं और घर का सारा प्रबन्ध करती हैं।

स्त्रियों को वेद की आज्ञा है कि वह अपनी दृष्टि नीचे की ओर रखा करें। ऋ०—८-३३-१९ में आता है कि—

अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥

अर्थात्—हे स्त्री ! तू नीचे को देखा कर। ऊपर को दृष्टि न रख। अपने पाँवों को भली प्रकार रखा कर। कोई भी तेरे अंगों को न देख पावे, जो वस्त्रों के नीचे हैं। ऐसे तू ब्रह्मा हो जावेगी। इसी बात को अलंकारिक रूप से अगले मन्त्र में स्पष्ट किया है—

एषा प्रतीची दुहिता दिवो नृन्योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः ॥

(ऋ०—५-६-८०-२३)

कि उषा एक चरित्रवान् स्त्री की न्याई मनुष्यों में अपने मुख को नीचा रखती है। शरमाती है।

वेद ने स्त्री को यह भी आज्ञा दी है कि वह अपने गर्भ को छुपाये रखे और पति को भी चाहिये कि गर्भ की रक्षा करे।

पत्नी को आज्ञा है कि पति के दक्षिण की ओर बैठा करे।

(ऋ०—२-३६-६)

पत्नी पति से कहती है—

अभि त्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा।
यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥

(अथर्व०—७-३७-१)

अर्थात्—मैं अपने वस्त्र तेरे वस्त्र से बाँधती हूँ कि तू केवल मेरा ही रहे और किसी स्त्री की कीर्ति न किया करे।

वेद की इन सुन्दर आज्ञाओं पर चलकर आर्य जाति सुख और आनन्द का जीवन व्यतीत करती रही है। जबसे इस जाति ने इनको भुलाया है तबसे ही कष्ट पा रही है। गृहस्थ-जीवन का एक सुन्दर आदर्श वेद हमें बताता है।

★

विद्यार्थी अथवा युवक आन्दोलन

श्री सचदेव

इस युग का यह मुख्य लक्षण है कि युवक अपने को बड़ों से अधिक बुद्धिमान मानते हैं। वे कहते हैं कि वृद्ध-जन प्रायः लकीर के फ़क़ीर हो जाते हैं और उस लकीर से उनको युवक-वर्ग ही बाहर निकाल सकता है। युवक यह भी मानते हैं कि नया रक्त विकसित बुद्धि और साहस का सूचक है। आविष्कार और उन्नति बुद्धि और साहस के आश्रय चल सकते हैं। इसी को वे प्रगति का नाम देते हैं।

यह हेत्वाभास है। हेत्वाभास उस मिथ्या अनुभव अथवा अनुमान को कहते हैं जो हेतु की सिद्धि के लिये तर्क करने से दिखायी देता हो। इसे अंग्रेज़ी में 'सब्जैक्टिव थिंकिंग' कहते हैं। जब कोई व्यक्ति किसी हेतु अर्थात् किसी बात को सिद्ध करने के लिये तर्क-वितर्क करने लगे, तब इसे हेत्वाभास कहते हैं।

यही बात युवक-आन्दोलन में प्रतीत होती है। यह न केवल भारत में व्याप्त है, वरंच भूमण्डल के प्रायः सब देशों में है। इसका प्रदर्शन वहाँ अधिक है जहाँ प्रजातन्त्र है और उन देशों में बहुत कम दिखायी देता है जहाँ राजतन्त्र है। रूस एवं कम्युनिस्ट देशों में यह सबसे कम दिखायी देता है और अमेरिका तथा फ्रांस में सबसे अधिक है। युवक-आन्दोलन किसी एक देश की विशेषता नहीं, वरंच यह न्यूनाधिक सर्वत्र व्यापक है।

यह आन्दोलन स्वाभाविक ही है; यद्यपि इसके आधार में युक्ति थोथी है। सब स्वाभाविक बातें युक्तियुक्त नहीं होतीं। स्वभाव प्रकृति की देन है। इसी कारण संस्कृत भाषा में इसे प्रकृति का नाम दिया जाता है। अंग्रेज़ी में भी स्वभाव को नेचर कहते हैं। नेचर प्रकृति को भी कहते हैं। नेचर जड़ है। अतः जो कुछ स्वाभाविक होगा, वह प्रकृति की देन होने के कारण जड़त्व लिये होगा।

यह कथन ठीक प्रतीत नहीं होता। कारण यह कि प्रत्यक्ष रूप में तो युवक-आन्दोलन सजग और सक्रिय प्रतीत होता है। युवकों के बलवे, अग्नि-काण्ड, बम्ब, पिस्तौल और लूट-मार जीवन-युक्त प्रतीत होते हैं। इस पर भी ये जड़त्व

लिये हुए हैं। चेतन के लक्षण विस्फोट नहीं। इसका लक्षण ईक्षण करना है। अर्थात् बुद्धियुक्त योजनाबद्ध कार्य ही चेतनता का लक्षण है। जो कार्य बुद्धियुक्त योजना से आरम्भ हो चले और अन्त तक पहुँचे, वह कार्य ही चेतन द्वारा किया माना जाता है। अभिप्राय यह कि चेतन के कार्य में बुद्धि का समावेश आवश्यक है। जड़ भी कार्य करता है। जैसे पृथिवी में भूकम्प एवं विस्फोट, ज्वालामुखी इत्यादि फटने की घटनायें; ये सब प्रकृति के कार्य होते हैं।

अतएव स्वाभाविक कार्य ज्वालामुखी फटने की भाँति जड़त्व लिये होता है। चेतन के कार्य इस प्रकार नहीं होते। प्रश्न यह है कि युवक आन्दोलन स्वाभाविक होते हुए भी क्या बुद्धियुक्त है?

युवक आन्दोलन का आधार यह है कि नया आने वाला पुराने से अधिक विकासयुक्त और उन्नत होता है। यह सिद्धान्त प्रवाद मात्र है। कारण यह कि एक सिद्धान्त की भाँनि यह सर्वदा सत्य नहीं। अनेकों ऐसी नवीन बातें हैं जो प्राचीन से बिगड़ी दिखाई देती हैं। सुधार और बिगाड़ भी एक प्रासंगिक बात है। अपने-अपने प्रसंग में सुधार बिगाड़ भी हो सकता है। अतः नवीन सदा ही सुधार, उन्नति और विकास का प्रतीक होगा, यह सत्य नहीं।

यदि नवीन प्राचीन से उत्तम ही होता तो एक बालक की बात उसके पिता से अधिक मान्य हो जाती। गुरु शिष्य की अपेक्षा अल्प-शिक्षित माना जाता।

इस प्रसंग में हमारा कहना है कि न तो यह कोई सिद्धान्त है कि नवीन प्राचीन से उन्नत है और न ही ऐसा कोई नियम कि प्राचीन सदा ही ठीक होता है। अतएव यह सिद्धान्त नहीं कि युवक-आन्दोलन जो प्रगति के नाम पर चलाया जा रहा है, वह ठीक, उचित एवं कल्याणकारी है।

आन्दोलन जिस विषय को लेकर चलाया जाये उस विषय की अपनी श्रेष्ठता पर श्रेष्ठ और प्रगतिशील माना जायेगा और यदि उद्देश्य निकृष्ट होगा तो आन्दोलन भी दूषित एवं हानिकर होगा। इसके चलाने वाले युवक हैं अथवा बूढ़े हैं, यह इसके श्रेष्ठ अथवा निकृष्ट होने में मापदण्ड नहीं।

वस्तुस्थिति यह है कि युरोपियन भौतिकवाद ने भूमण्डल पर एक ऐसे असुर-वाद को जन्म दिया है जो विषय-भोग को आश्रय देने वाला सिद्ध हो रहा है। युवकों में विषय-भोग की इच्छा और सामर्थ्य बड़ी आयु वालों से अधिक होती है; इस कारण असुर समुदाय अर्थात् विषय-भोग की लालसा करने वालों में युवक अधिक संख्या में और सुगमता से सम्मिलित हो जाते हैं। ये लोग अपने नवीन होने के नाते ही इसमें सम्मिलित होते हैं और भोग के औचित्य एवं अनौचित्य के आधार पर नहीं।

उदाहरण के रूप में अमेरिका के विद्यार्थी 'को-ऐजुकेशन' (सह-शिक्षा) के विषय में, इकट्ठे होस्टलों में रहने और अन्य क्षेत्रों में भी सहचारिता के विषय में आन्दोलन कर रहे हैं। इस आन्दोलन में वह सड़कों पर निकल आते हैं और नागरिकों की तथा सरकारी सम्पत्ति का तोड़फोड़ करने लगते हैं। दोनों बातों का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं होता।

विद्यार्थी विश्वविद्यालयों की 'अकैडेमिक कौन्सिलों' (शिक्षा-परिषदों) में प्रातिनिध्य चाहते हैं। कभी-कभी वे किसी अध्यापक के हटाये जाने का भी विरोध करते हुए विद्यालय की सम्पत्ति को क्षति पहुँचाने लगते हैं।

हमारा यह कहना है कि यह ज्वालामुखी फटने के तुल्य कार्य है। इनमें कारण और परिणाम में किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता। आन्दोलन जवानी (शक्ति) कराती है, परन्तु आन्दोलनों का नेतृत्व सदा बुद्धि को करना चाहिये। बुद्धि युवकों में बड़ी आयु वालों से कम होती है। वे सब कार्य जिनमें बुद्धि का प्रयोग होता है उनमें प्राचीन प्रायः नवीन से अनुभवी प्रायः अनुभव-विहीनों से अधिक उपकारी होते हैं।

बुद्धि की कुशलता दो बातों पर निर्भर करती है। एक अनुभव और दूसरे बुद्धि की श्रेष्ठता, अर्थात् इसके प्रयोग का अभ्यास। दोनों बातें काल व्यतीत होने के साथ उन्नत होती हैं और अल्पायु में कम होनी अनिवार्य हैं।

अतः हम इस बात को नहीं मानते कि युवक बड़ी आयु वालों पर सुधार होते हैं। सुधार (improvement) का आयु से सम्बन्ध नहीं, वरंच बुद्धि की तीव्रता और ज्ञान के संचय करने पर निर्भर करता है। इन दोनों बातों के होने पर भी सुधार नीयत (intention) पर भी निर्भर करता है।

नीयत बिगाड़ने वाली सबसे प्रभावी बात भोग-विलास की प्रेरणा होती है। भोग-विलास से हमारा आशय केवल स्त्री-पुरुष सम्बन्ध से नहीं, यद्यपि यह सबसे प्रबल प्रेरणा है। इस पर भी सब इन्द्रियों के विषय मनुष्य को ठीक मार्ग से विचलित करने वाले होते हैं।

विषय-भोग करने के लिये हैं, परन्तु इनका भोग सीमा से बाहर हो जाये तो वे न केवल भोग करने वाले को हानि पहुँचाने लगते हैं, वरंच समाज में भी अव्यवस्था उत्पन्न करने वाले हो जाते हैं।

भोगों की सीमा बाँधने में व्यक्ति और समाज दोनों का विचार आवश्यक है। कुछ भोग हैं जो व्यक्तिगत ही होते हैं। उनका प्रयोग और उनकी सीमा तो व्यक्ति के अपने विचार की बात है, परन्तु जहाँ भी भोग व्यक्ति की सीमा पार कर किसी दूसरे व्यक्ति से सम्बन्ध बनाते हैं वहाँ उन भोगों को भोगने के लिये

व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं है।

उदाहरण के रूप में एक व्यक्ति अपनी साग-भाजी में लाल मिर्च डालकर खाता है, दूसरा नीम्बू निचोड़ कर लेता है, तीसरा भोजन में पुदीने की चटनी खाता है। भोजन केवल खाने वाले से सम्बन्ध रखता है, इसका किसी दूसरे से सम्बन्ध नहीं। इस कारण भोजन के निर्वाचन में खाने वाले को स्वतन्त्रता है।

परन्तु जब एक व्यक्ति विवाह करता है तो उसका सम्बन्ध न केवल करने वाले से होता है, वरंच उस सन्तान से भी होता है जो उस लड़की से उत्पन्न होती है। अतः विवाह के विषय में मनुष्य सर्वथा स्वतन्त्र नहीं है। उसको उन सामाजिक नियमों का पालन करना पड़ता है जिनका सम्बन्ध स्वस्थ, बुद्धिशील और सबल समाज के घटक निर्माण करने से है। साथ ही उसे अपने विवाह के साथी की इच्छाओं का भी पालन करना पड़ता है।

अतः हमारा यह मत है कि युवक-आन्दोलन में यह बात सर्वथा असिद्ध है कि युवक वृद्धों से अधिक युक्तियुक्त, उन्नत, प्रगतिशील एवं हितकर व्यवहार अपनाने की योग्यता रखते हैं। साथ ही यह भी विचारणीय है कि जो आन्दोलन युवक चला रहे हैं, वह उनके व्यक्तिगत जीवन तक ही सीमित प्रभाव रखता है अथवा उस आन्दोलन का प्रभाव विद्यार्थी-समाज तथा पूर्ण समाज पर भी होता है।

देखने में तो यह आता है कि दस-बीस युवकों के मस्तिष्क में एक बात को चालू करना ठीक समझ आता है। किन्तु उसको करने के लिये वे नारा लगा देते हैं कि युवकों की भी सुननी चाहिये। एक विचार दिया जाता है कि नवीन प्राचीन से श्रेष्ठ होता है। इस विचार से प्रभावित सामान्य विद्यार्थी युवक होने के नाते युवकों का साथ देने लगते हैं। सामान्य जनता भी उन युवकों के साथ सहानुभूति रखती है। वह भी तो वर्तमान युग के उन नास्तिक मीमांसकों के प्रभाव में होती है जो यह कहते हैं कि समय व्यतीत होने के साथ मानव प्रगति कर रहा है। परिणाम यह होता है कि दस-बीस बिगड़े मस्तिष्क वालों की बात का समर्थन, उनके आन्दोलन का विषय देखे बिना उनके युवक (अल्पवयस्क) होने के नाते होता है।

हमारा इसमें यह कहना है कि युवक-आन्दोलन के नाम से चलाया जाने वाला आन्दोलन न केवल अनर्गल है, वरंच हानिकर भी। इससे प्रगति नहीं हो रही। शिक्षा में अवनति हो रही है। शिक्षा में वास्तविक दोष की ओर से ध्यान हटाकर फूहड़ बातों की ओर लगाया जा रहा है। प्रगति तो होती नहीं, वरंच समाज की गाढ़े पसीने की कमाई नाली में बहायी जा रही है।

हम आन्दोलनों के विरुद्ध नहीं हैं, परन्तु आन्दोलन किसी बात को लेकर होना चाहिये। उस बात का विचार करने वाले युवक भी हो सकते हैं और प्रौढ़ भी। उस बात का निर्णय करने वाले सदा विद्वान, अनुभवी और वयस्क लोग ही होने चाहियें।

आन्दोलन चलाने वालों को इस बात का विचार रखना चाहिये कि युवकों का एक क्षण भी व्यर्थ न जाये। वह उनके लिये निर्धारित कार्य में व्यग्र होना चाहिये।

विद्यार्थी-आन्दोलन तो युवक-आन्दोलन से भी अधिक अयुक्त व्यवहार है। विद्यार्थी एवं युवक अपने खाने-पीने और अपने परिश्रम का फल पाने में स्वतन्त्र हैं। उनकी शिकायत समझ में आ सकती है, अपनी पढ़ाई के विषय में। प्राध्यापकों के विषय में और अन्य पढ़ाई-सम्बन्धी प्रबन्धों के विषय में सम्मति देना भी ठीक है। परन्तु उसके लिये आन्दोलन करना उनका अधिकार नहीं हो सकता।

कठिनाई यह है कि शिक्षा को सरकार का काम चलाने का एक साधन माना गया है। देश का राज्य विद्यार्थियों की शिक्षा को अपने लाभ के लिये निश्चय करता है। राज्य प्रजातन्त्रात्मक अर्थात् दल-गत होता है। इस कारण सरकारी हित उस दल का हित हो जाता है जो सत्तारूढ़ है। इससे वे दल जो सत्तारूढ़ नहीं, अनुचित उपायों से विद्यार्थियों और शिक्षा को अपने दल के हित में प्रयोग करना चाहते हैं। इससे युवक और विद्यार्थी-आन्दोलन चलाये जाते हैं। आन्दोलन का हिंसात्मक हो जाना भी इसी कारण है। सत्तारूढ़ दल अपनी सत्ता के आश्रय अपनी नीति चलाता है। जो दल सत्ता में नहीं, वह सत्ता की शक्ति का विरोध करने के लिये युवकों और विद्यार्थियों द्वारा हिंसात्मक आन्दोलन चलाते हैं।

रोग का मूल है शिक्षा का एक सरकारी विभाग होना तथा सरकार के लिये स्नातक निर्माण करना। जब तक यह रहेगा, वर्तमान अयुक्तिसंगत स्थिति रहेगी।

सरकार शिक्षा से अपना अधिकार हटायेगी नहीं और विपक्षी दल विद्यार्थियों से हिंसात्मक कार्य कराये बिना नहीं रहेंगे। रोग का मूल है यह और इसकी चिकित्सा ही इन आन्दोलनों को शान्त कर सकती है।

अतः युवक एवं विद्यार्थी-आन्दोलन कुछ भी आधार नहीं रखते। आन्दोलन करना अल्प-वयस्क वालों का काम नहीं। सम्मति देना तो मनुष्य-स्वभाव में है। अतः युवक एवं विद्यार्थी भी सम्मति दे सकते हैं।

समाचार समीक्षा

यह भी साली कोई भाषा है !

क्या कोई अनुमान लगा सकता है कि ऐसे अपशब्दों का प्रयोग कोई राष्ट्र-भाषा हिन्दी के लिए भी कर सकता है ? किन्तु ऐसा किया गया है और किया जाता रहा है। राष्ट्र-भाषा के प्रेमियों को यह जानकर दुःख होगा कि इसके प्रति ऐसे अपशब्दों का प्रयोग करने वाले को हिन्दी पुस्तकों के एक प्रसिद्ध प्रकाशन संस्थान् ने एक लाख रुपये का पुरस्कार देने की घोषणा की है।

ऐसे अपशब्दों का प्रयोग करने वाले व्यक्ति का नाम है रघुपतिसहाय जिसे 'फिराक़ गोरखपुरी' के नाम से भी जानते हैं और प्रकाशन संस्थान का नाम है भारतीय ज्ञानपीठ।

अगस्त के प्रथम सप्ताह में जब उक्त पुरस्कार की घोषणा के विषय में हमने समाचार-पत्रों में पढ़ा तो मन ने इसको सराहा नहीं। फिर स्वयं ही कहा, चलो कोई बात नहीं, उर्दू वाले को पुरस्कार देकर हिन्दी वालों ने कम-से-कम उदारता का तो परिचय दिया। यद्यपि हम यह भी भली-भाँति जानते हैं कि ऐसी ही उदारता के कारण देश की यह दुरावस्था हुई है और हो रही है। फिर भी जो बात अपने वश में नहीं, उस पर सन्तोष कर लेना पड़ता है। वही हमने भी किया। किन्तु उसी प्रकाशन संस्थान् की सहयोगिनी संस्था के हिन्दी दैनिक नवभारत टाइम्स के ९ अगस्त, १९७० के अंक में जब उमाशंकर का 'जब फिराक़ मेरे यहाँ ठहरे थे' शीर्षक लेख पढ़ा तो 'फिराक' के प्रति नहीं पुरस्कर्त्ताओं के प्रति मन घृणा एवं ग्लानि से भर गया। हम नहीं समझते कि उक्त लेख में 'फिराक' के विषय में जो कुछ लिखा गया है उससे वे परिचित नहीं होंगे तथा उन्होंने उन्हें बहुत ही सभ्य और सुसंस्कृत शायर समझ कर पुरस्कार की घोषणा की होगी।

इसे कोई भी अस्वीकार नहीं करेगा कि कृति के साथ-साथ कृतिकार के वैयक्तिक चरित्र को भी परखना आवश्यक है। यदि वैयक्तिक चरित्र की एक

बार उपेक्षा भी कर दी जाय तो भी सामाजिक चरित्र की तो उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। फिराक का वैयक्तिक चरित्र कैसा है उसकी उपेक्षा कर हम उसी लेख के आधार पर उसके सामाजिक चरित्र को नितान्त घिनौना समझते हैं। फिराक ने सन् १९५८ में प्रयाग विश्वविद्यालय छोड़ा। विश्वविद्यालय के सेवा-काल में उनके निवास के लिए जो बँगला उन्हें दिया गया था, उसे उन्होंने आज तक भी खाली नहीं किया। लेखक का कथन तो इतना ही है कि 'उनकी जिद के आगे सबको झुकना पड़ा।' किन्तु हम इसे चरित्रहीनता मानते हैं। कोई भी सभ्य एवं सच्चरित्र व्यक्ति ऐसा दुष्कृत्य नहीं कर सकता।

उक्त लेख में फिराक के जीवन-परिचय में लिखा है कि 'पण्डित जवाहरलाल नेहरू के कहने पर फिराक साहब कांग्रेस में और अंडर सेक्रेटरी के रूप में पण्डित जी के साथ काम करने लगे।' इन पंक्तियों से ही फिराक के सारे जीवन का विश्लेषण सहज सम्भव है। नेहरू-परिवार के तीन पीढ़ियों का इतिहास अर्थात् मोतीलाल नेहरू से इंदिरा गांधी तक का इतिहास देखें तो सहज ही विदित होगा कि वे हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान का सदा ही अपमान करते रहे; तो उनके सहयोगी कैसे उसका सम्मान करेंगे?

उमाशंकर महाशय ने उक्त लेख में हिन्दी के विषय में फिराक के विचारों को इस प्रकार व्यक्त किया है—

हिन्दी वालों के वह जानी दुश्मन हैं। क्यों हैं यह कारण आज तक कोई नहीं समझ सका है। वह हिन्दी वालों को बिना परहेज और बिना फुलस्टाप लगाए धाराप्रवाह गाली देते रहते हैं जबकि हिन्दी का कोई भी छोटा-बड़ा साहित्यकार न तो उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध रखता है और न ही उनसे सम्बन्धित किसी प्रकार की चर्चा करता है। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि कोई भी व्यक्ति उनसे मिलने जाता है तो पांच मिनट भी नहीं बीतने पाते हैं कि वह हिन्दी का टापिक शुरू कर देते हैं और हिन्दी वालों पर गाली की बौछारें पड़ने लगती हैं। वह अपनी गाली की धुन में हिन्दी के उन बड़े साहित्यकारों को भी बख्शना नहीं भूलते जो स्वर्गवासी हो चुके हैं। हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में उनका कथन है, 'यह भी साली कोई भाषा है! गँवारों की भाषा है।'

हम समझते थे कि उक्त लेख को पढ़ने के उपरान्त ज्ञानपीठ वाले अपने निर्णय पर पुनः विचार करेंगे और शीघ्र ही इसकी घोषणा होगी, किन्तु इन पंक्तियों के लिखे जाने तक ऐसी कोई घोषणा प्रकाशित नहीं हुई। और हम समझते हैं कि अब होगी भी नहीं।

इस स्थिति में उत्तम एवं उचित तो यही होगा कि ज्ञानपीठ के भूतपूर्व

पुरस्कार प्राप्तकर्त्ता विरोध-स्वरूप अपने पुरस्कार वापस करने की घोषणा कर दें। क्या हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि सुमित्रानंदन पंत, जिन्हें गतवर्ष ही ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ है, ऐसे नैतिक साहस का परिचय दे सकेंगे ? इसके लिए हम सर्वश्री शंकर कुरूप, ताराशंकर वन्द्योपाध्याय, उमाशंकर जोशी आदि सभी भूत-पूर्व पुरस्कार प्राप्तकर्त्ताओं का आह्वान करते हैं।

साथ ही हम शाश्वत वाणी के पाठकों का भी आह्वान करते हैं कि कांग्रेस की मुस्लिम तुष्टीकरण नीति की ही भांति इस तुष्टीकरण की दुष्प्रवृत्ति का भी सभी स्तरों पर प्रतिकार, प्रतिरोध एवं प्रतिक्रिया का प्रकटीकरण होना आवश्यक है। समाचार-पत्रों एवं सम्बन्धित व्यक्तियों को पत्र लिखकर अथवा जिस किसी प्रकार से भी हो, इस दुष्प्रवृत्ति का दमन होना ही चाहिये। इतने बड़े अपमान को चुपचाप सहना पाप-कर्म एवं नैतिक साहस का अभाव ही माना जायेगा।

राष्ट्रपति के राष्ट्रीय व्यक्तित्व की झलक

कहावत है—जब बाढ़ ही खेत को खाने लगे तो उस खेत का कोई रखवाला नहीं हो सकता। यही स्थिति स्वतन्त्र भारत की है। जब देश का राष्ट्रपति किसी राष्ट्र-द्रोही समूह के कार्य की अभिवृद्धि के लिए कामना करे तो देशवासियों को सोचना होगा कि राष्ट्रपति के प्रतिष्ठित पद को आलोचना-प्रत्यालोचना से परे रखना कितना उपयुक्त एवं उचित है !

अगस्त, ८, ९ को दिल्ली में सम्पन्न साम्प्रदायिकता विरोधी सम्मेलन को भारत के वर्तमान राष्ट्रपति (भू० पू० वामपंथी कांग्रेसी नेता) श्री वी० वी० गिरि ने अपनी लिखित शुभ कामनाएँ भेजी हैं, जिनका श्रवण एवं पठन हमारे पाठकों ने आकाशवाणी एवं समाचार-पत्रों में किया होगा।

निस्सन्देह साम्प्रदायिकता त्याज्य है। उसी के कारण देश के खण्ड हुए और आज भी उसी के कारण देश की दुर्दशा हो रही है। किन्तु इसके लिए उत्तरदायी वे व्यक्ति एवं संगठन हैं जो साम्प्रदायिकता-विरोधी राम-नामी ओढ़े जनता की आंखों में धूल नहीं अपितु मिर्च झोंक रहे हैं और जिनको राष्ट्रपति महोदय पनपने की पनाह दे रहे हैं। आज जब राष्ट्रपति इन अवसरवादी तथाकथित साम्प्रदायिकता विरोधियों को आशीर्वाद दे सकते हैं तो कल को वे मुस्लिम लीग को भी ऐसा ही आशीर्वाद नहीं देंगे, इसका क्या भरोसा ?

हम समझते हैं कि केन्द्रीय मंत्री अथवा मजदूर नेता के रूप में श्री वी० वी० गिरि इस प्रकार कोई आशीर्वाद ऐसे कुख्यात संगठनों को दें तो, प्रजातन्त्रात्मक

पद्धति के नाते इसमें दोष नहीं देखा जा सकता। किन्तु राष्ट्रपति के रूप में यह कार्य सराहनीय नहीं।

स्पष्ट है कि श्री गिरि राष्ट्रपति के पद का दुरुपयोग अपने भूतपूर्व सहयोगियों की श्रीवृद्धि के लिये कर रहे हैं। इसे हम नितान्त अनुचित एवं अराष्ट्रीय कृत्य मानते हैं।

विश्वासघाती रूस और देशघाती कम्युनिस्ट

रूस द्वारा प्रकाशित मानचित्रों में भारत के भू-भाग को चीन का भाग दिखाने के विश्वासघाती एवं जघन्य कृत्य के विरोध में इन दिनों अनेक सभाएँ, जलूस एवं प्रदर्शन हुए हैं। संसद में भी इस विषय पर काफी गरमा-गरमी रही है। न केवल विरोधी-पक्ष अपितु कतिपय नवेली कांग्रेस के किंचित् बुद्धिशेष सदस्यों ने भी रूस के इस दुष्कृत्य की भर्त्सना की है। इस सारे काण्ड में मौन श्रोता अथवा द्रष्टा का पाप कृत्य किया है तो वे हैं कम्युनिस्टों के विभिन्न दल। रूस की कठ-पुतली इन्दिरा सरकार का तंत्र केवल औपचारिक विरोध-पत्र प्रेषित कर अपने कर्तव्य का पालन समझ कम्युनिस्टों के देशघाती मौन में सम्मिलित हो गया है।

शाश्वत वाणी के नियमित पाठकों को स्मरण होगा कि नवम्बर, १९६२ की पत्रिका में हमने इसी समाचार-समीक्षा स्तम्भ द्वारा रूस के इस जघन्य कृत्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया था। तब हमने बताया था कि यह कुकृत्य तत्कालीन नहीं अपितु १९५५ से ही भारत सरकार के सम्मुख स्पष्ट हो गया था। तब प्रधान मंत्री नेहरू ने इसे अनजाने में हुआ कृत्य माना था, किन्तु १९५९ मे रूस ने जो 'सोवियत वर्ल्ड ऐटलस' प्रकाशित किया, उसमें नेहरू के अनजान-पने को गलत सिद्ध कर दिया।

हम समझते हैं कि १५ अगस्त, १९४७ से आज पर्यन्त नेहरू-वंश का एक-छत्र राज्य इस देश पर रहा है और १५-१६ वर्षों से रूस का यह जघन्य कृत्य चालू है। जिस देश की मित्रता की दुहाई देते पिता नहीं अघाता था, उसी की लकीर-की-फकीर पुत्री भी उसी स्वर में वही राग अलापती थकती नहीं, तो फिर क्या कारण है कि इस सुदीर्घ अवधि में भी ये पिता-पुत्री इसका निराकरण नहीं करा पाये? इस स्थिति में यदि हम अथवा कोई अन्य इन्दिरा सरकार को रूस की कठपुतली सरकार की संज्ञा दें तो इसमें किसी प्रकार की अतिशयोक्ति नहीं समझी जानी चाहिये। और इस कठपुतली सरकार का हर स्तर पर विरोध करना भारतीयों का पुनीत कर्तव्य है।

सरकार के नहीं अपितु देश के प्रति अविश्वास प्रस्ताव

कुछ वर्षों से इस देश में संसद का सत्र प्रारम्भ होने पर सरकार के प्रति अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करना संसदीय कार्य-प्रणाली का एक अकाट्य अंग-सा बन गया है।

अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने वाले भले ही इसे अपना पुनीत कर्तव्य समझने के भ्रम से भ्रमित हों, किन्तु इससे देश की महान् हानि होती है। और अब जब इस प्रक्रिया ने स्थायित्व प्राप्त कर लिया है तो हमें सन्देह होता है कि सरकार द्वारा ही इन अविश्वास प्रस्तावों का आयोजन कराया जाता है।

कारण स्पष्ट है। अविश्वास प्रस्ताव के प्रस्तोता होते हैं कभी कम्युनिस्ट, जो नेहरू एवं इन्दिरा गांधी नेहरू दोनों ही सरकारों के छद्म समर्थक हैं। कभी सोशलिस्ट, वे भी कुछ इने-गिने विषयों को छोड़कर उसी रीति, नीति, परम्परा एवं प्रथा के पोषक हैं जिसकी कि सरकार होती है। कभी प्रजा सोशलिस्ट, वे भी कम्युनिस्टों एवं सोशलिस्टों का बाई-प्रोडक्ट होने के कारण उसी श्रेणी के हैं। अब कुछ दिनों से एक नया दल संसद में बन गया है—संगठन कांग्रेस। वह जब इस प्रकार के अविश्वास प्रस्ताव का प्रस्तावक अथवा समर्थक होता है तो हँसी आती है। एक नदी की दो धाराएँ बन कर नदी के किनारे-किनारे समानान्तर प्रवाहित होने लगें तो क्या इससे एक धारा का जल मीठा और दूसरी का खारा हो जायेगा? कदापि नहीं। कांग्रेस की दो धाराएँ बन गईं। एक, संगठन से निकाली गई; दूसरी, सरकार से। मुख्य धारा में कोई परिवर्तन नहीं दोनों कांग्रेसी हैं, विचार-धारा एक ही है, प्रवाह भिन्न-भिन्न। और फिर कब दोनों धाराएँ मिलकर एक हो जायेंगी, यह कोई नहीं जानता। कभी भी ऐसा हो सकता है। जो दल अथवा व्यक्ति एक धारा का जल मधुर एवं दूसरी का खारा समझ, किसी एक के साथ स्वयं को सम्बद्ध करने की चेष्टा करते हैं, वे या तो अज्ञानी हैं अथवा स्वार्थी।

जनसंघ भी कभी इस अविश्वास प्रस्ताव में पहल करता है। कांग्रेस एवं अन्य वामपंथी समाजवादी समाज के लिए कृत-संकल्प हैं तो ये भारतीय समाजवाद के लिए। दोनों में अन्तर क्या है, यह न तो कोई आज तक स्पष्ट कर पाया और न भविष्य में किए जाने की कोई संभावना है। अतः वे भी इसी श्रेणी में आते हैं।

हम इन अविश्वास प्रस्तावों को देश के प्रति अविश्वास प्रस्ताव इस कारण कहते हैं कि जब-जब भी ये अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किये गए तभी प्रबल बहुमत से अस्वीकार कर दिये गए। इससे सरकार का समर्थन बढ़ता है। न केवल

समर्थन अपितु मनोबल बढ़ता है और फिर उस मनोबल के मद में मस्त वह मनमानी करने का मौका टोहती रहती है। इस प्रकार यह देश के प्रति अप्रत्यक्ष अविश्वास है। विरोधी दलों को चाहिए कि वे इस देशघाती प्रक्रिया को छोड़ किसी अन्य मार्ग का अवलम्बन करें जिससे उनके स्वार्थ की पूर्ति हो और देश-घात के दोष से बच जावें।

नये संरक्षक सदस्य

४६. श्री मिट्ठनलाल,
दिल्ली वाला मिठाई घर
शाह बाजार, महबूब नगर (आंध्र)

४७. महर्षि दयानन्द धर्मार्थ प्रतिष्ठान
C/o श्री गंगाराम ऐडवोकेट
5—3–387 तोपखाना मार्ग, उस्मानगंज, हैदराबाद (आ० प्र०)

४८. डा० सुवालाल उपाध्याय 'शुकरत्न'
केन्द्रीय विद्यालय,
कोटा-१ (राजस्थान)

४९. श्री अशोक कुमार गुप्त
G—1/75 लाजपत नगर, नई दिल्ली-२४

५०. श्री सूरजभान अग्रवाल
द्वारा, टेलचन्द सूरजभान
पो० रामगढ़ कैन्ट, जि० हजारी बाग (बिहार)

५१. श्री शान्ति प्रकाश जी,
३७, द्वारका पुरी, मुजफ्फरनगर, (उ० प्र०)

५२. प्रो० विजय प्रकाश
द्वारा, श्री जगन्नाथ जी वकील
डा० उधमपुर, (जम्मू-कश्मीर स्टेट)

परिषद् के नवीन प्रकाशन 'इतिहास में भारतीय परम्पराएँ' तथा 'भारतीयकरण एक अध्ययन' सभी सदस्यों को बिना मूल्य भेजे गये हैं।

परिषद् के प्रकाशन

५. धर्म तथा समाजवाद

समाजवाद क्या है तथा धर्मवाद क्या है ? दोनों की विस्तृत विवेचना तथा समाजवाद का युक्तियुक्त खण्डन इस पुस्तक का विषय है। लेखक का मत है कि दोनों विपरीत दिशा में ले जाने वाले तन्त्र हैं।

लेखक हैं श्री गुरुदत्त — मूल्य रु० ६.००

कुछ अन्य प्रकाशन

६. भारत में राष्ट्र — ले० श्री गुरुदत्त — मू० सजिल्द रु० २.५०
पाकेट संस्करण रु० १.००

७. समाजवाद एक विवेचन ,, मूल्य (केवल पाकेट सं०) १.००

८. गान्धी और स्वराज्य ,, मूल्य (केवल पाकेट सं०) १.००

९. भारतीयकरण एक अध्ययन सं० अशोक कौशिक मूल्य ८.००

१०. प्रजातन्त्र अथवा वर्ण व्यवस्था ले० श्री गुरुदत्त
(१० सितम्बर तक प्रकाशित होगी) मूल्य सजिल्द रु० ४.००
(पाकेट में) २.००

वितरक

भारती साहित्य सदन सेल्स

३०।९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे) नई दिल्ली-१

उपर्युक्त सभी पुस्तकों का लाभांश तथा उनकी रायल्टी परिषद् के उद्देश्यों के प्रचार तथा प्रसार पर व्यय की जाती है।

पाकेट संस्करण सम्पूर्ण हैं संक्षिप्त नहीं हैं। आर्डर देते समय कृपया स्पष्ट लिखें किस संस्करण की पुस्तक भेजी जाये।

संरक्षक सदस्य

१ केवल एक सौ रुपये भेजकर शाश्वत संस्कृति परिषद् के संरक्षक सदस्य बनिये। यह रुपया परिषद् के पास आपकी धरोहर बनकर रहेगा।

शाश्वत संस्कृति परिषद् का उद्देश्य

विशुद्ध भारतीय तत्त्वदर्शन पर सम्यक् गवेषणा करना तथा उसका प्रचार करना एवं उनके आधार पर राष्ट्र के सम्मुख सभी समस्याओं का सुलझाव प्रस्तुत करना।

संरक्षक सदस्यों को सुविधाएं

१. परिषद् के नवीनतम प्रकाशन तथा आगामी सभी प्रकाशन आप विना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। नवीन प्रकाशन हैं—१. भारतीयकरण एक अध्ययन (मूल्य ८ रु०) तथा २ इतिहास में भारतीय परम्पराएं (मूल्य १० रुपये)। आगामी प्रकाशन हैं-वर्ण-व्यवस्था तथा प्रजातन्त्र (मूल्य ४ रु०); राष्ट्रीयकरण (मूल्य ४ रु०); ब्रह्मसूत्र हिन्दी विवेचना (मूल्य २५ रु०) एवं अन्य।

२. परिषद् की पत्रिका शाश्वत वाणी आप जब तक सदस्य रहेंगे प्राप्त कर सकेंगे।

३. परिषद् के पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ (सूची इसी अंक में अन्यत्र देखें) आप २५ प्र०श० छूट के साथ प्राप्त कर सकेंगे।

४. जब भी आप चाहेंगे एक मास की पूर्व सूचना देकर अपनी धरोहर वापिस ले सकेंगे। धन मनीआर्डर द्वारा भेज सकते हैं।

शाश्वत संस्कृति परिषद्

३०।९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे)-नई दिल्ली-१

भारतीय संस्कृति परिषद् के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं शक्तिपुञ्ज मुद्रणालय, दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित

अक्तूबर, १९७०   वर्ष १०—अंक १०   रजि० क्र० ६६८९/६०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य॒ सानावधि॑ च॒क्रमा॑णाः रि॒हन्ति॒ मध्वो॑ अ॒मृत॑स्य॒ वाणीः॑ ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत संस्कृति परिषद् के प्रकाशन

१. इतिहास में भारतीय परम्पराएं — ले० श्री गुरुदत्त

पाश्चात्य इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास को जो गलत-सलत करने का षड्यन्त्र रचा था तथा उनके अनुगामी भारतीय इतिहासकार जो उस गलत इतिहास को लोगों के गले उतार रहे हैं, इसकी व्याख्या इस पुस्तक में है। लेखक ने अत्यन्त ही कुशलता तथा युक्ति से उनकी मान्यताओं का खण्डन कर इतिहास की भारतीय परम्पराओं का दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया है।

मूल्य रु० १०.००

२. श्रीमद्भगवद्गीता का एक अध्ययन — ले० श्री गुरुदत्त

प्रायः प्रत्येक मनीषी ने गीता पर विवेचना लिखने का प्रयास किया है। परन्तु इस विवेचना की अपनी विशेषता है। लेखक की मान्यता है कि गीता में जो ज्ञान का भण्डार है, वह कर्म की प्रेरणा के निमित्त है।

मूल्य रु० १५.००

३. भारत : गांधी नेहरू की छाया में — ले० श्री गुरुदत्त

लगभग २५० उद्धरणों के आधार पर रचा गया यह ग्रन्थ नेहरूजी की राजनैतिक जीवनी है। प्रायः उद्धरण श्री नेहरू की अपनी रचनाओं में से लिये गये हैं। यह पुस्तक चित्र का बिल्कुल दूसरा और वास्तविक रूप दर्शाती है।

मूल्य १०.०० (सम्पूर्ण पाकेट संस्करण ४.००)

प्रचार तथा प्रसार में हमें सहयोग दें — सम्पादक

१. पाठकों से अनुरोध है कि पत्रिका के लेख पढ़ें और उन पर मनन करें। उन पर अपनी प्रतिक्रिया हमें लिखें।

२. क्या आपको पत्रिका पसन्द आई? पत्रिका के स्थायी ग्राहक बन कर तथा अपने मित्रों को बनाकर—

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।
ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता
प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

सम्पादक
अशोक कौशिक

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१
फोन : ४७२६७

मूल्य
एक अंक रु० ०.५०
वार्षिक रु० ५.००

सम्पादकीय

एक अंग्रेज लेखक ने कहा है कि 'Politics is the last resort of Scoundrels' अर्थात् राजनीति धूर्तों का अन्तिम आश्रय स्थान है। इसके विपरीत हमारा मत है कि राजनीति प्रायः सबको धूर्त बना देती है। हमने प्रायः शब्द का प्रयोग इस कारण किया है क्योंकि हमें विश्वास है कि कुछ ऐसे लोग भी हुए हैं जो राजनीति की कीचड़ में भी कमल के समान अलिप्त रहे हैं।

यहाँ हम ऐसे अपवादों का उल्लेख नहीं करेंगे। आज हम इस विषय पर विचार करेंगे कि 'सदा धूर्त लोग ही राजनीति में आते हैं अथवा राजनीति में आकर लोग धूर्त बन जाते हैं।' हमारी दृष्टि में दूसरी बात ठीक है। इसका कारण यह है कि नमक की खान में प्रत्येक वस्तु नमकीन हो जाती है। ऐसा अनुभव है। राजनीति नमक की खान है और इसमें जो भी आता है वह वैसा ही हो जाता है।

नमक की खान से हमारा अभिप्राय यह है कि राजनीति एक ऐसी प्रबल प्रेरणा है कि इसमें भाग लेने वाले सबको यह अपने ही

मार्ग पर ले चलती है। यह ऐसी आंधी है जिसमें पड़कर सब उसी दिशा में उड़ा लिए जाते हैं जिधर आंधी का रुख होता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या राजनीति की दिशा सदा ही गुण्डागर्दी की ओर होती है जिससे कि इसमें भाग लेने वाला व्यक्ति गुण्डागर्दी करने के लिये विवश हो जाता है? हम समझते हैं कि तथ्य यह नहीं है। वास्तव में जब से राजनीतिज्ञों को उनकी योग्यता और सामर्थ्य से अधिक धन मिलने लगा है तब से ही राजनीति की दिशा बदली है।

महाभारत का एक कथानक इस प्रकार है। नीतिशास्त्र की रचना के उपरान्त जब प्रथम शासक की खोज आरम्भ हुई तो एक धर्मात्मा व्यक्ति 'विरजा' को राजा बनाने के लिये कहा गया। विरजा ने इंकार कर दिया। तदुपरान्त कीर्तिमान को यह पद स्वीकार करने के लिये कहा गया। कीर्तिमान ने भी इंकार कर दिया। तदनन्तर कर्दम को कहा गया। उसने भी राजा बनना स्वीकार नहीं किया। बहुत कठिनाई से एक व्यक्ति मिला जिसका नाम अनंग था। वह राजा बना और उसने लम्बी अवधि तक धर्म एवं न्याय का राज्य चलाया।

अनंग के पुत्र अतिबल के मन में विकार उत्पन्न हुआ। वह विकार ऐसा नहीं था कि दूसरों को दु:ख पहुँचाये। इस कारण उसका कार्य जीवन काल तक चला। अतिबल भोग विलास का जीवन व्यतीत कर रहा था, परन्तु अपने भोग के लिये दूसरों को कष्ट नहीं देता था। अतिबल का लड़का वेन न केवल स्वयं भोग और व्यसनों में फंस गया, वरंच दूसरों के भोग-विलास को भी छीनने लगा था।

जिस सच्चाई का निरूपण इस कथा में है उससे यह प्रकट होता है कि भले से भला व्यक्ति भी जब राजनीति के भंवर में पहुँचता है तो वह भी भ्रमित हुए बिना नहीं रहता।

अंग्रेज़ी की कहावत तो यह है कि दुष्ट लोग राजनीति को दूषित करते रहते हैं और राजनीति उनका आश्रय बन जाती है। हमारा कहना यह है कि राजनीति स्वयं दूषित है और भले लोग भी जब इसमें जा फंसते हैं तो वे पतित हो जाते हैं।

महाभारत की उक्त कथा यही प्रकट करती है। अत: प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि ऐसा क्यों है? इसका कारण यह है कि राजनीति में एक भूल की जा रही है। किन्तु जब और जहां वह भूल नहीं की जाती वहां राजनीति पतनोन्मुख नहीं होती और उस राजनीति में विचरने वाला व्यक्ति पतन का मार्ग ग्रहण नहीं करता।

राज्य कार्य करने वाले स्वभाव से राजसी प्रवृत्ति के लोग होते हैं। जो नहीं होते और किसी कारणवश राजनीति के बहाव में जा पहुँचते हैं वे या तो धकेल कर बहाव से बाहर कर दिये जाते हैं अथवा वे भी उसी बहाव में बहने लगते हैं। अर्थात् वे भी राजसी प्रवृत्ति के हो जाते हैं।

राजसी बुद्धि के लक्षण भगवद्गीता में इस प्रकार लिखे हैं :

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥

(भ० गी०—१८-३१)

अर्थ इस प्रकार है। जिस बुद्धि के द्वारा मनुष्य धर्म और अधर्म को तथा कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को यथार्थरूपेण नहीं जानता वह राजसी बुद्धि कहलाती है।

जो राजनीति के भँवर में फंस जाते हैं, वे राजसी बुद्धि को स्वीकार कर लेते हैं। और राजनीति धर्म-अधर्म अथवा कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार छोड़कर चलती है। राजनीति के क्षेत्र में ढलान इसी ओर है और इसका बहाव इन बातों का विचार किये बिना चलता है।

भारतीय इतिहासज्ञों ने इसका एक उपाय बताया है। उनका कहना है कि राजनीति एक गतिशील प्रक्रिया है। इस कारण गति को दिशा देने वाले क्षत्रियेतर स्वभाव के व्यक्ति होने चाहिएं।

महाभारत में इसकी व्याख्या विषद् रूप में करते हुए लिखा है :

राज्ञा पुरोहितः कार्यो भवेद् विद्वान् बहुश्रुतः।
उभौ समीक्ष्य धर्मार्थावप्रमेयावनन्तरम् ॥
धर्मात्मा मन्त्रविद् येषां राज्ञां राजन् पुरोहितः।
राजा चैवंगुणो येषां कुशलं तेषु सर्वशः ॥

(महा भा० शा०—७३-१,२)

इसका अभिप्राय है कि राजा को चाहिये कि धर्म और अर्थ की गति को अत्यन्त गहन समझ कर अविलम्ब किसी ऐसे ब्राह्मण को पुरोहित बना ले जो विद्वान हो और बहुश्रुत हो।

जिन राजाओं के पुरोहित धर्मात्मा एवं सलाह देने में कुशल होते हैं और राजा भी वैसे ही गुण वाले अर्थात् धर्मात्मा और विद्वान की बात मानने वाले होते हैं, वहां सदा सबके लिये कल्याण ही होता है।

इसी विषय में और भी लिखा है :

विद्धं राष्ट्रं क्षत्रियस्य भवति ब्रह्म क्षत्रं यत्र विरुद्ध्यतीह।
अन्वग्बलं दस्यवस्तद भजन्ते तथा वर्णं तत्र विदन्ति सन्तः ॥

उभावेतौ नित्यमभिप्रपन्नौ सम्प्रापतुर्महतीं सम्प्रतिष्ठाम् ।
तयोः संधिर्भिद्यते चेत् पुराणस्ततः सर्वं भवति हि सम्प्रमूढम् ।।
(महा भा० शा०—७३।८, १२)

अर्थात्—श्रेष्ठ पुरुष जानते हैं कि संसार में जहां ब्राह्मण क्षत्रियों का विरोध करते हैं वहां क्षत्रिय का राज्य छिन्न-भिन्न हो जाता है और लुटेरे दल-बल के साथ आक्रमण कर उस पर अधिकार जमा लेते हैं।

जहां दोनों श्रेणियां (ब्राह्मण और क्षत्रिय) एक दूसरे के आश्रय होकर रहती हैं, वहां वे भारी प्रतिष्ठा प्राप्त करती हैं और जहां इनकी परस्पर मैत्री टूट जाती है वहां पूर्ण जगत् मोहग्रस्त एवं किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है।

महाभारत में अनेकों उदाहरण उक्त तथ्य के प्रकटीकरण के लिये लिखे गये हैं। अतः हमारा मत है कि राजनीति जब विद्वान वर्ग का आश्रय छोड़ स्वतः अपनी गति से चलने लगती है अथवा जब केवल राजसी बुद्धि वालों के आश्रय हो जाती है तब विनाश ही विनाश होता है।

राजा लोग जब मनमानी करने लगते हैं अर्थात् विद्वानों के मत का विरोध करने लगते हैं तब समझ लेना चाहिए कि वे विनाश का आह्वान कर रहे हैं।

एक बात यहां स्मरण रख लेनी चाहिये कि आज की लोकतन्त्रीय पद्धति में तो वैसे राजा नहीं जो वंशाधिकार से राजा बने हों। आज चाहो तो प्रति पांच वर्ष बाद राजा बदला जा सकता है। परन्तु क्या इससे वह राज्य विद्वानों की मन्त्रणा के अनुसार हो गया मानना चाहिये ?

लोकतन्त्र में प्रजा ही राजा का चयन करती है अर्थात् प्रजा विद्वानों की स्थानापन्न बन गयी है। क्या प्रजा विद्वानों की स्थानापन्न है? हमारा तो निश्चित मत है कि नहीं है। प्रजा में सब प्रकार के तथा सब स्वभावों के और सब गुणों वाले लोग होते हैं। यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाये तो प्रजा में अधिक संख्या में वैश्य प्रवृत्ति के, अल्प ज्ञान वाले और सामान्य बुद्धि के लोग होते हैं। इस अधिक संख्या द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि उन जैसे ही होने स्वाभाविक हैं। अभिप्राय यह कि संसद और विधान सभाओं में बहुसंख्यक संसद सदस्य एवं विधायक अल्प ज्ञान वाले और अल्प बुद्धि वाले पहुँचते हैं।

हम अपने इन स्तम्भों में जनता के इन प्रतिनिधियों की भूलों की ओर संकेत करते रहते हैं। आज इसकी विशेष उल्लेख की आवश्यकता नहीं, हां इतना मात्र कह देना पर्याप्त है कि लोकतन्त्र में यथा प्रजा तथा राजा यह नियम है। कारण प्रजा राजा की निर्माता है।

अधिकांश प्रजा मूर्ख और पशुवत् पेट भरने को ही जीवन का लक्ष्य मानती

है। जनसाधारण में इतनी शिक्षा की आशा ही नहीं की जा सकती कि वे राज्य कार्य जैसे गहन विषय पर ठीक मत बना सकें। अतः उनके प्रतिनिधि उनसे ऊपर जा सकते ही नहीं। कहीं प्रतिनिधि उनसे विलक्षण बात करें तो वे प्रतिनिधि नहीं रह सकते।

लोकतन्त्रीय पद्धति में विद्वानों के राज्य-कार्य तक पहुँचने के बहुत कम अवसर होते हैं। जो वहां तक पहुँचते हैं, वे सेवक बनकर रह जाते हैं और सेवक भले ही बहुश्रुत हो, वह शूद्र के पद पर होने से विश्वसनीय नहीं होता।

महाभारत में सेवक ब्राह्मण के विषय में लिखा है :

राजप्रेष्यं कृषिधनं जीवनं च वणिक्पथा।
कौटिल्यं कौलटेयं च कुसीदं च विवर्जयेत्॥

(महा भा० शा० — ६३-३)

अर्थात्—ब्राह्मण न तो राजा की सेवा करे, न कृषि से धनोपार्जन करे। वह व्यापार से जीविका न चलाये। कुटिलता का व्यवहार अथवा कुटिल स्त्रियों से सम्बन्ध तथा सूदखोरी छोड़ दे।

तथ्य यह है कि विद्वान से भी विद्वान व्यक्ति जब राज्य की सेवा स्वीकार करता है तो वह राजा (क्षत्रिय स्वभाव के व्यक्ति) के अधीन और उसकी रुचि से काम करने लगता है। तब वह ब्राह्मण नहीं रहता।

वर्तमान राज्य प्रणाली में ब्राह्मण का उसके विद्वान होने के नाते सहयोग प्राप्त नहीं किया जाता, वरंच उसे सेवक मानकर ही उसकी सेवा प्राप्त की जाती है।

यह कैसे सम्भव होगा ! इस विषय में हमने समय-समय पर वर्ण-व्यवस्था पर जो लेख प्रकाशित किए हैं उनकी ओर हम अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं। संक्षेप में कहा जाय तो धर्मपालिका (legislative) और न्यायपालिका (Judiciary) शासन से पृथक् और सम्मान्य होने चाहिएँ तथा इन दो विभागों (धर्मपालिका और न्यायपालिका) को इतना शक्तिशाली बनाना चाहिये कि ये शासक का मार्ग-दर्शन कर सकें।

तब राजनीति ईमानदारी का काम बन सकेगी और तब न तो गुण्डे (Scoundrels) इसमें आश्रय पा सकेंगे और न ही राजनीति में आने वाले लोग गुण्डा-गर्दी कर सकेंगे।

❦

अन्तर्राष्ट्रीय हलचल

□

आदित्य

अरब-इस्राईल युद्ध विराम

इस्राईल और अरब देशों में शान्ति वार्ता का समाचार हमने सितम्बर मास की पत्रिका में दिया था और उस पर अपनी सम्मति प्रकट करते हुए हमने कहा था कि हमारा विचार है कि प्रथम तो यह वार्त्तालाप सफल ही नहीं होगा और दूसरे, इससे मध्य पूर्व क्षेत्र में शान्ति स्थापित नहीं होगी।

हमारी भविष्यवाणी ठीक सिद्ध हुई है। युद्ध विराम की घोषणा होते ही अरब गणराज्य ने अपने प्रक्षेपणास्त्रों के अड्डों को स्वेज नहर के किनारे पर लाने का यत्न किया है। इस पर इस्राईल ने आपत्ति उठायी। अमेरिका ने अपने जासूसी जहाज़ों द्वारा वहाँ के फ़ोटोग्राफ़ मंगवाये और उनसे इस्राईल के आरोपों की पुष्टि हो गई। इसपर इस्राईल ने वार्त्तालाप में बैठने से इन्कार कर दिया।

इस्राईल ने यह कहा है कि वे संधि चर्चा के लिए अरब गणराज्यों के सम्मुख तब तक नहीं बैठेंगे जब तक प्रक्षेपणास्त्रों के अड्डे पुनः युद्ध-विराम आरम्भ से पूर्व स्थान पर नहीं ले जाए जाते।

अमेरिका के राजदूत ने अवश्य अरबों को अब तक इस्राईल के विचारों से अवगत कर दिया होगा। पहले तो अरब गणराज्य ने स्वेज की नहर की ओर खिसकने से इन्कार कर दिया था, परन्तु बाद में अमेरिका की पुष्टि से मौन हो गया है।

ऐसी स्थिति में युद्ध विराम नहीं रह सकेगा। तब क्या होगा, कहा नहीं जा सकता। इस्राईली दृढ़निष्ठ व्यक्ति हैं और वे इस प्रकार की धोखाधड़ी में विश्वास नहीं करते।

सम्भव यह है कि युद्ध विराम की अवधि बिना एक बार भी आमने-सामने बैठ वार्त्तालाप किये व्यतीत हो जाये और पुनः वही बात आरम्भ हो जाये जो युद्ध विराम के पूर्व थी, अर्थात् बिना खुलकर युद्ध की घोषणा के युद्ध आरम्भ हो जाये। यह भी सम्भव है कि सन् १९६७ का पाँच दिन का युद्ध पुनः आरम्भ

हो जाये । कुछ भी हो भूमण्डल पुनः युद्ध के किनारे खड़ा प्रतीत होता है ।

यह भविष्यवाणी करनी तो सम्भव प्रतीत नहीं होती कि अमेरिका और रूस दोनों एक-दूसरे के सम्मुख युद्ध-भूमि पर उतर आएँ, परन्तु इतना तो स्पष्ट दिखाई देता है कि रूस ने अरबों को आधुनिक शस्त्रास्त्र दे रखे हैं और अमेरिका भी इस्राईल को अस्त्र-शस्त्र देगा और दोनों के अस्त्र-शस्त्रों का परीक्षण तो होगा ही ।

रूस एक भारी खतरा मोल ले रहा है । इसने अपने सैनिक और इन्जीनियर अरब में भेजे हुए हैं और वे वहाँ अरबों को शस्त्रास्त्र का प्रयोग सिखा रहे हैं । यह सम्भव है कि उन स्थानों पर, जहाँ ये रूसी अरबों को शिक्षा दे रहे हैं, वहाँ इस्राईली बमबारी करें और रूसी भी मारे जायें । तब रूस चुप रहेगा अथवा खुलकर युद्ध में कूद पड़ेगा और उस समय दूसरे राज्य क्या करेंगे, कहा नहीं जा सकता । अधिक सम्भावना यह है कि विश्वयुद्ध आरम्भ हो जाये ।

हम मानते हैं कि विश्व की वर्तमान स्थिति में विश्व दो गुटों में बँट रहा है । एक को हम वामपंथी कहते हैं और दूसरे को दक्षिणपंथी । यह युद्ध यदि खुलकर हुआ और पौराणिक देवासुर संग्रामों की भाँति हुआ तो अति भयंकर होगा ।

महाभारत में ऐसे एक युद्ध का दृश्य इस प्रकार वर्णन किया है । अमृतपान पर देवता और असुरों में भयंकर युद्ध हुआ था । उस युद्ध में सुदर्शन चक्र और उसके कार्य के विषय में महाभारत में लिखा है :

नरनारायणौ देवौ समाजग्मतुराहवम् ।।१९।।
तत्र दिव्यं धनुर्दृष्ट्वा नरस्य भगवानपि ।
चिन्तयामास तच्चक्रं विष्णुर्दानवसूदनम् ।।२०।।
ततोऽम्बराच्चिन्तितमात्रमागतं महाप्रभं चक्रममित्रतापनम् ।
विभावसोस्तुल्यमकुण्ठमण्डलं सुदर्शनं संयति भीमदर्शनम् ।।२१।।
तदन्तकज्वलनसमानवर्चसं पुनः पुनर्न्यपतत वेगवत्तदा ।
विदारयद् दितिदनुजान् सहस्रशः करेरितं पुरुषवरेण संयुगे ।।२३।।
दहत् कक्चिज्ज्वलन इवावलेलिहत् प्रसह्य तानसुरगणान् न्यकृन्तत ।
प्रवेरितं वियति मुहुः क्षितौ तथा पपौ रणे रुधिरमथो पिशाचवत् ।।२४।।

(महाभारत आदि०—१९-१९, २०, २१, २३, २४)

इसका अर्थ यह है :

नर और नारायण दोनों युद्धभूमि में आ गये । भगवान नारायण ने नर को जब दिव्यास्त्र लिये वहाँ देखा तो उसने भी अपने सुदर्शन चक्र का चिन्तन

किया ।

चिन्तन करते ही सुदर्शन चक्र आकाश मार्ग से आ पहुँचा। यह देखने में अति भयंकर प्रतीत होता था ।

उस महासमर में श्री हरि के हाथों से चलाया सुदर्शन चक्र प्रलय काल की अग्नि के समान अपनी लपलपाती लपटों से असुरों को चीरता हुआ और सहस्रों दैत्यों और असुरों को विदीर्ण करता हुआ बड़े वेग से उन पर प्रहार करने लगा।

यह जलता हुआ सुदर्शन असुरों को भस्म करता जा रहा था। असुर बड़े-बड़े शिला खण्ड इस पर फेंक रहे थे और वे पिघलकर पानी हो रहे थे। वर्तमान युग के ऐटम बम का ही यह चित्र है। यही दृश्य भावी युद्ध में उपस्थित होने वाला है।

पश्चिमी जर्मनी और रूस की संधि

जर्मनी के चान्सलर विलियम ब्रांट मास्को गये थे और रूस में युद्ध न करने की संधि कर आये हैं।

हमें यह संधि कुछ वैसी ही समझ आ रही है जैसी कि रूस ने द्वितीय विश्व युद्ध से पहले जापान से की थी अथवा जैसी संधि हिटलर ने स्टालिन से पोलैण्ड पर आक्रमण करने से पहले की थी।

वैसे ही युद्ध के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। यह संधि उन लक्षणों में से एक है। समाचारपत्रों ने इसे यूरोप में एक नवीन युग का पूर्व लक्षण माना है। हम भी ऐसा ही मानते हैं, परन्तु उस ढंग से नहीं जैसा कि दूसरे समाचार-पत्रों ने स्वीकार किया है। हमें कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा है कि युद्ध होगा। यह संधि उस युद्ध का पूर्व लक्षण है। युद्ध में एक पक्ष अमेरिका होने वाला है और दूसरा पक्ष चीन अथवा रूस अथवा दोनों।

इस युद्ध की लपेट में एशिया तो आयेगा ही, परन्तु यूरोप का भी बचा रहना प्रायः असम्भव है। भारत समझ रहा है कि इस भावी युद्ध में इसे रूस का पक्ष लेना चाहिये। यदि यह विचार ठीक निकला तो भारत के लिये अति भयंकर परिस्थिति उत्पन्न हो जायेगी।

वे सब देश, वामपंथी हों अथवा दक्षिणपंथी, जो इस युद्ध की लपेट में आयेंगे, विनाश को प्राप्त होंगे।

विलियम ब्रांट इस युद्ध में वही भूमिका निभायेंगे जो द्वितीय विश्व युद्ध में निभायी थी। अन्त में रूस द्वारा जर्मनी पर आक्रमण किया जायेगा।

यह कब होता है और किस प्रकार होता है, देखने की बात है।

वेदान्त त्रैतवाद का प्रतिपादन करता है

श्री गुरुदत्त

एक बार गुरुकुल कांगड़ी के एक वेदालंकार स्नातक ने एक सभा में कहा था कि स्वामी शंकराचार्य ने वेदान्त दर्शन के भाष्य में अपनी सर्वोच्च विद्वत्ता का प्रमाण दिया है। श्री वेदालंकार जी के इस कथन से मुझे वेदान्त दर्शन के, और विशेष रूप में इस दर्शन पर श्री स्वामी शंकराचार्य कृत भाष्य के, अध्ययन और चिन्तन में रुचि हो गयी। इस अध्ययन और चिन्तन का परिणाम ही ये लेख हैं।

दार्शनिक विषयों पर स्वमत का निरूपण ही किया जा सकता है और स्वमत के प्रतिपादन के लिये विपरीत मतों का खण्डन करना आवश्यक हो जाता है। इसी दृष्टि से इन लेखों को मैं लिख रहा हूँ।

वेदान्त दर्शन के अध्ययन से मैं यह समझ पाया हूँ कि अन्य सब दर्शनों की अपेक्षा अधिक स्पष्टता के साथ वेदान्त दर्शन त्रैतवाद का प्रतिपादन करता है।

त्रैतवाद का अभिप्राय यह है कि जगत् के मूल कारण में भिन्न-भिन्न प्रकार के तीन पदार्थ हैं। ये तीनों अनादि, अजर, अमर हैं। इन तीनों के संयोग का नाम ही जगत् है। जब ये तीनों पदार्थ परस्पर सहयोग नहीं करते तब प्रलय काल होता है। उस समय को ब्रह्म रात्रि कहते हैं।

वेदान्त दर्शन के दूसरे अध्याय में इसी विषय पर विस्तार से लिखा है। पूर्ण बात तो इस लेख में लिखी नहीं जा सकती। केवल संक्षिप्त वर्णन ही किया जा सकता है।

सूत्रकार इस अध्याय के आरम्भ में ही इस प्रकार कहते हैं—

स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग इति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात् ॥

(वेदान्त द०—२-१-१)

अनवकाश दोष स्मृतियों में है। यदि ऐसा कहें तो ठीक नहीं, क्योंकि अन्य स्मृतियों में अनवकाश दोष के प्रसंग से।

अनवकाश का अर्थ है किसी विषय का अनुपस्थित होना। सूत्रकार का कहना है कि यदि किसी स्मृति (मनुष्य कृत ग्रन्थ) में किसी विषय का प्रसंग न हो तो यह दोष नहीं। कारण यह कि किसी दूसरी स्मृति में इस विषय की अनुपस्थिति हो सकती है।

इस अध्याय में सूत्रकार परमात्मा के अतिरिक्त अन्य मूल पदार्थ के विषय में लिखना चाहता है। इस कारण आरम्भ में ही उसने यह कह दिया कि यदि किसी मनुष्यकृत ग्रन्थ में किसी विषय का अभाव हो तो इसका यह अर्थ नहीं कि उसको वह स्मृति स्वीकार नहीं करती।

जैसे माण्डूक्य उपनिषद् में लिखा है कि—'ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं'—अर्थात् ओम् अविनाशी है। यह सब-कुछ है। इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि ओं अविनाशी के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। यहां प्रकृति एवं जीवात्मा का अनवकाश है। इनका उल्लेख नहीं। इससे ये हैं ही नहीं, ऐसा कहा नहीं जा सकता। किसी अन्य पुस्तक में परमात्मा का उल्लेख नहीं हो सकता।

इस आधारभूत बात को कहकर सूत्रकार लिखता है—

इतरेषां चानुपलब्धेः ॥

(वे० द०—२-१-२)

और अन्यों के उपलब्ध न होने से (दोष नहीं हो सकता)।

किसी स्मृति में परमात्मा का उल्लेख है और दूसरों का उल्लेख नहीं है। तो इसका यह अर्थ नहीं लिया जा सकता कि दूसरों का अभाव है। अर्थ किसी पदार्थ पर किसी ग्रन्थ में न लिखा मिलने से यह नहीं माना जा सकता कि उस ग्रन्थ में उस पदार्थ के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया।

इतना कहकर सूत्रकार अपने विषय में प्रवेश करता है। वह कहता है—

न विलक्षणत्वादस्य तथात्वं च शब्दात्।

(वे० द०—२-१-४)

न विलक्षण होने से उसका वैसा ही होना है। यह वेद से प्रमाणित है।

ऊपर सूत्र (२-१-२) में 'इतरेषां' शब्द लिखा है। इसका अभिप्राय है 'दूसरों' के। यहाँ दूसरों के विषय में ही लिखा है। इन अन्यों से उसका (जगत् का) विलक्षण न होने से यह (जगत्) वैसा ही है। अभिप्राय यह है कि जगत् का उन अन्यों से विलक्षण न होने से उनके अस्तित्व का पता चलता है। इसमें वेद प्रमाण भी है (देखो ऋ० १-१६४-२०)।

परमात्मा से अन्य (जीवात्मा और प्रकृति) से जगत् विलक्षण नहीं है। इस कारण (तथात्वं) वैसे ही होना अर्थात् वे अन्य भी इस जगत् में हैं। अर्थात्

परमात्मा से अन्य (जीवात्मा और प्रकृतियां) इस जगत् में हैं। इन दोनों के लक्षण इस जगत् में मिलते हैं।

जगत् के कई पदार्थ जड़ संज्ञा में आते हैं। यह प्रकृति का गुण है। जगत् में जड़त्व होने से जगत् में प्रकृति का होना सिद्ध होता है। इसी प्रकार प्राणियों में चेतनता उपस्थित होती है। इस कारण एक प्राणी में जड़ के अतिरिक्त एक चेतन तत्त्व का होना भी सिद्ध होता है। सूत्रकार ने कहा है कि विलक्षण न होने से इस जगत् का वैसा ही होना सिद्ध है।

आगे लिखा है —

अभिमानिव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम् ॥

(वे० द० २-१-५)

अर्थात् (तु+अभिमानिव्यपदेशः+विशेषानुगतिभ्याम्) किन्तु विशेष अनुगतियों से अभिनय के रूप में काम करता है।

जगत् में गुण तो इतर (परमात्मा से अन्य) के भी मिलते हैं, परन्तु विशेष गतियों में यह अभिनय के रूप में परमात्मा के आदेशानुसार काम करता है। जैसे सूत्रकार के आदेश से नाटक मंच पर सब नाटककार अभिनय करते हैं वैसे ही जगत् सब विशेष गतियों में नाटककारों की भाँति सूत्रकार (परमात्मा) के आदेश पर कार्य करता है।

परन्तु वे शून्य से उत्पन्न नहीं हुए। जगत् शून्य से उत्पन्न नहीं हुआ।

असदिति चेन्न प्रतिषेधमात्रत्वात् ॥

(वे० द० २-१-७)

अर्थात्—असत्+इति+चेत्+न+प्रतिषेधमात्रत्वात्। यह (जगत्) अभाव से है? नहीं। यह सूत्रकार का मत है। कहीं कहा जाये तो यह केवल मूल कारण से भेद बताने के लिये। मूल कारण प्रकृति अति सूक्ष्म होने से और जगत् अति स्थूल होने से दोनों में भेद बहुत बड़ा है। इसे बताने के लिये ऐसा कहा जाता है, परन्तु जगत् का मूल कारण है। क्योंकि अभाव से भाव नहीं होता।

प्रलय काल में भी मूल कारण रहता है। यदि नहीं मानेंगे तो असमञ्जस (अयुक्तिसंगत) बात हो जायेगी। सूत्रकार इसको इस प्रकार कहता है:

अपीतौ तद्वत्प्रसंगादसमञ्जसम् ॥

(वे० द० २-१-८)

अपीतौ का अर्थ है कि प्रलय काल में। तत् वत्=उसकी भाँति है। अन्यथा प्रसंगवत् असमंजस होगी। बात अयुक्तिसंगत होगी। अर्थात अभाव से भाव का होना मानना पड़ेगा। यह नहीं हो सकता।

सूत्रकार का मतलब यह है कि अभाव से भाव नहीं होता। अतः जगत् का मूल कारण, इसके मूल गुणों को रखने वाला, होना चाहिये। अथवा बात अयुक्तिसंगत होगी।

सूत्रकार कहता है कि प्रलय काल में भी जगत् के मूल के गुणों वाला कारण पदार्थ होना अयुक्तिसंगत नहीं। कैसे नहीं? वह लिखता है—

न तु दृष्टान्तभावात् ॥

(वे० द० २-१-९)

अयुक्ति-संगत नहीं। दृष्टान्त के होने से।

दृष्टान्त का अर्थ है कि दृश्य जगत् में ऐसा देखे जाने से कि मूल कारण से रूप-रंग में कार्य विलक्षण होता है। इस पर भी मूल गुण तो मिलते हैं। जैसे बीज से वृक्ष अथवा अण्डे से मुर्गी। रूप-रंग में भेद है, परन्तु मूल गुणों में समानता होती है।

बीज और वृक्ष में में जीव कोषाणुओं में समानता होती है। इसी प्रकार अण्डे और मुर्गी की बात है।

अतः मूल प्रकृति से जगत् के रूप-रंग में विलक्षण होना अनियमित बात नहीं।

परन्तु क्या सृष्टि-क्रम से पूर्व भी ये (परमात्मा, प्रकृति, जीवात्मा) भिन्न-भिन्न थे? जो लोग एक ही तत्त्व से सब-कुछ उत्पन्न मानते हैं, कहते हैं कि सृष्टि क्रम से पूर्व सब एक ही था और पीछे ही भेद दिखायी दिया है। उनके इस पक्ष का युक्ति से उत्तर देने के लिये सूत्रकार कहता है —

तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः ॥

(वे० द० २-१-१४)

आरम्भणशब्दादिभ्यः=आरम्भण आदि क्रिया कहने से। तत् अनन्यत्वम्= वह अनन्यत्व हो जायेगी। अनन्यत्व का अर्थ है असिद्ध।

सूत्रकार का आशय है कि यदि जीवात्मा, प्रकृति और परमात्मा को प्रलय काल में भी पृथक्-पृथक् न मानें तो सृष्टि रचना होनी असिद्ध हो जायेगी। यदि सब-कुछ एक ही था तो फिर भिन्न-भिन्न रूप-रंग के पदार्थ बनने और उनमें अज्ञानी जीवात्मा और जड़ पदार्थों के बनने में कोई तत्त्व ही नहीं रह जाता।

सूत्रकार कहता है कि यदि सृष्टि-रचना से पूर्व सब-कुछ एक ही था तो फिर यह भिन्न-भिन्न हुआ क्यों और किसके लिये हुआ? अर्थात् यह मानना कि प्रलय काल में सब एक परमात्मा ही था तो फिर अब रचना काल में यह

सब किस प्रयोजन से हुआ है ?

सूत्रकार अपने इस प्रश्न को बल देने के लिये पुनः कहता है —

भावे चोपलब्धेः ॥

(वे० द० २-१-१५)

च + भावे + उपलब्धेः ।

अर्थात्—और होने पर प्राप्ति होती है। सृष्टि-रचना पर कुछ हुआ है और कुछ प्राप्त हुआ है। यदि सृष्टि-रचना से पूर्व सब-कुछ एक ही था तो फिर किस कारण से और किसके लिये यह उपलब्धि है? इससे यह सिद्ध होता है कि भोग और भोक्ता सृष्टि-रचना से पूर्व भी थे।

अब सूत्रकार पूर्व सब सूत्रों का निष्कर्ष बताता है।

सत्वाच्चावरस्य ॥

(वे० द० २-१-१६)

सत्वत् + च + अवरस्य ।

अर्थात्—कार्य की उत्पत्ति सत् से हुई है। सत् का अर्थ वह पदार्थ है जो केवल सत् से जाना जाता है। यह जीवात्मा जो सत् और चित्त है और परमात्मा जो सत्, चित्त और आनन्द भी है, नहीं। अवरस्य अर्थात् कार्य जगत् की उत्पत्ति प्रकृति से ही हुई है।

इस प्रकार सूत्रकार ने पग-पग कर सृष्टि-रचना में एक जड़ पदार्थ प्रकृति का होना सिद्ध किया है।

संक्षेप में सूत्रकार कहता है कि कुछ शास्त्रों में परमात्मा के अतिरिक्त कुछ अन्य का उल्लेख नहीं। यह दोष नहीं। अनवकाश विरोध नहीं होता अर्थात् परमात्मा के अतिरिक्त कुछ अन्य भी है। इसके उपरान्त यह कहा है कि कुछ अन्य के लक्षण जगत् में उपलब्ध होने से उनकी उपस्थिति सिद्ध होती है। जगत् में जड़ और अल्पज्ञ जीव के लक्षण देखने में मिलते हैं। अतः ये भी जगत् के बनाने में कार्य करते सिद्ध होते हैं।

जगत् के पदार्थ कार्य तो परमात्मा के आदेश से करते हैं। वैसे ही जैसे रंग-मंच पर नाटककार सूत्रधार के आदेश से अभिनय करते हैं, परन्तु जगत् के इन पदार्थों को उत्पत्ति कारण मानना चाहिए। कारण यह कि असत् से सत् अर्थात् अभाव से भाव नहीं होता। सृष्टि-रचना से पूर्व जब ब्रह्म रात्रि थी, तब कुछ था जिससे यह कार्य जगत् बना है।

अतः प्रलय काल में भी (तत् वत्) ऐसा ही था जैसा कि अब है। अर्थात्

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

भारत में आगामी निर्वाचन

□

श्री गुरुदत्त

आगामी निर्वाचन यदि पहले नहीं तो सन् १९७२ में होंगे ही। अतः प्रश्न है कि इनमें ऐसा क्या होने वाला है, जो कि नहीं होना चाहिये।

हम सदा इस बात को कहते रहे हैं कि मनुष्यों में दो प्रवृत्तियों के लोग हैं—दैवी प्रवृत्ति वाले और आसुरी प्रवृत्ति वाले। अन्य जो अनेक प्रकार की प्रवृत्तियाँ दिखायी देती हैं, वे इन दोनों किनारे की प्रवृत्तियों के बीच की हैं। किसी में दैवी प्रवृत्ति का कुछ आधिक्य होता है तो किसी में आसुरी प्रवृत्ति का। इन दोनों प्रवृत्तियों के न्यूनाधिक्य से अनेक प्रवृत्तियों के मनुष्य दिखायी देते हैं।

परन्तु एक समाज में जहाँ लोकतन्त्रीय संस्थान हो, वहाँ प्रत्येक प्रवृत्ति का मनुष्य अपना दल बनाये तो किसी संसद अथवा विधान सभा में उतने ही दल बन जायेंगे जितने कि उसमें सदस्य होंगे।

अतः यदि लोकतन्त्रीय संविधान चलना है तो यह आवश्यक है कि सब सदस्य दो दलों में विभक्त हो जायें और जब दो दल बनेंगे तो स्वयमेव वे दल इन प्रवृत्तियों के अनुसार ही बनेंगे। यदि विचार क्षेत्र में इन दो ध्रुवों का ध्यान रखे बिना दल बनाये गये तो दो नहीं अनेक दल बनेंगे और फिर इन दलों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती चली जायेगी।

यही भारत में और उन सब देशों में हो रहा है जहाँ लोकतन्त्रीय संस्थान है। यह ठीक है कि अमेरिका और इंगलैण्ड में दलों की संख्या कुछ अधिक नहीं बढ़ रही, परन्तु इसमें कारण यह है कि वहाँ आधारभूत सिद्धान्त, जिन पर दल बन रहे हैं, वही हैं जिनका उल्लेख हमने ऊपर किया है। एक दल वह है जो अधिक दैवी प्रवृत्ति की ओर झुका हुआ है और दूसरा जो अधिक आसुरी प्रवृत्ति की ओर। डैमोक्रैटिक तथा रिपब्लिक। उदार तथा अनुदार। लेबर तथा अनुदार। गम्भीरतापूर्वक देखने पर इन सबके आधार में दैवी अथवा आसुरी भावों की ओर झुकना ही दिखाई देगा।

जिन देशों में लोकतन्त्रीय पद्धति है और दल किसी अन्य आधार पर बने हैं वहाँ दलों की भरमार है।

भारत में भी दलों की भरमार है। कारण यह कि ये राजनीतिक कार्यकर्त्ता जीवन की विधाओं को नहीं जानते। तभी तो कांग्रेस के दो दल हैं। डी० एम० के०, बी० के० डी०, अकाली, रिपब्लिकन, एस० एस० पी०, पी० एस० पी०, स्वतन्त्र, जनसंघ, हिन्दू महासभा और अन्य कई दल हैं। यदि इस प्रकार मानव जीवन के द्विविध आधार को हृदयंगम न किया गया तो किसी भी लोकतन्त्रीय संस्थान में दलों की संख्या बढ़ती चली जायेगी।

मनुष्य में एवं मनुष्य समाज में जीवन क्रिया-कलाप के दो किनारे हैं। एक किनारा है शरीर (भौतिकता) और दूसरा किनारा है अन्तरात्मा। मनुष्य का झुकाव किस ओर है? इसी के आधार पर उसका अपना क्रिया-कलाप एवं समाज का क्रिया-कलाप चलता है।

कभी लोग अपने व्यवहार में जानते नहीं कि उनकी जीवन-मीमांसा क्या है? इस पर भी वे करते वही हैं। शरीर की ओर अथवा अपनी अन्तरात्मा की ओर। शरीर और अन्तरात्मा के दो किनारों में बहती जीवनधारा में कोई एक किनारे के समीप होता है और कोई दूसरे किनारे के समीप। जो जिस किनारे के समीप होता है वह उसी के आकर्षण में बहता चला जाता है।

अतः हमारा सुविचारित मत यही है कि राजनीति में यदि इसी आधार पर दलों का निर्माण हो तो कुछ थोड़ा-बहुत कल्याण लोकतन्त्रीय पद्धति से भी हो सकता है। किन्तु यदि प्रत्येक व्यक्ति यह समझे कि उसकी अपनी धारा ही अपना किनारा है तो निस्सन्देह वर्तमान भारत की संसद में पाँच सौ से भी अधिक दल हो सकते हैं।

पिछले बाईस वर्ष के स्वराज्यकाल में एक प्रकार के लोग तो अपना किनारा पकड़ रहे प्रतीत होते हैं। वामपंथी अपना किनारा पकड़े हुए एक हो रहे हैं। अभी भी उनकी समझ में यह नहीं आ रहा कि वे वामपंथी हैं। वे कुछ भी कहें, उनकी अंतिम गति वाम किनारा ही होने वाली है, वाम पंथ से हमारा अभिप्राय शरीर पक्ष है, अर्थात् भौतिकवाद।

कांग्रेस में फूट पड़ी और उसके दो टुकड़े हो गये। इस फूट में भी कारण यही है कि इसमें मुख्य रूप से दो प्रकार के लोग थे। एक की जीवनधारा अन्तरात्मा के तट के समीप थी और दूसरों की शरीर के तट के समीप। दुर्भाग्य यह है कि वे लोग जो जीवनधारा के शरीर रूपी तट के समीप थे, वे जानते थे कि वे कहाँ हैं और वास्तव में अन्तरात्मा रूपी तट के समीप हैं। वे इस

तट के समीप बहते हुए देख शरीर तट की ओर ही रहे हैं।

हमारा विचार है कि शरीर रूपी तट के समीप बह रहे लोग तो उस तट के साथ-साथ अपने भाग्य को बंधा हुआ पाते हैं और धीरे-धीरे वे सब एक दल होते जाते हैं और जो वास्तव में अन्तरात्मा के तट के साथ-साथ बह रहे हैं, वे नहीं जानते कि उनका ध्येय क्या है ? उनकी प्रवृत्ति क्या है और वे किधर से आये हैं और किधर जा रहे हैं ?

वामपंथी उनको कहते हैं जिनके जीवन की प्रत्येक गतिविधि शारीरिक सुख-सुविधा के लिए होती है। इसी को आसुरी प्रवृत्ति कहते हैं, अर्थात् जो इन्द्रियों के अधीन जीवन चलाते हैं। भारत में और प्रायः अन्य सब लोकतन्त्रीय देशों में वामपंथी एक हो रहे हैं। समाजवादी और कम्युनिस्ट तथा अनात्मवादी और भोगवादी एक ही अर्थ को प्रकट करते हैं। ये सब एक हो रहे हैं और दूसरे जो अन्तरात्मा के अस्तितत्व के तट के समीप हैं, कई कारणों से नहीं जानते कि उनमें और वामपंथियों में आधारभूत अन्तर क्या है और वे जीवन-प्रवाह के वेग में बहते चले जा रहे हैं। वे शिक्षा अथवा विचारों की आंधी के कारण बह रहे हैं अन्तरात्मा रूपी तट के समीप, परन्तु वे देख रहे हैं सामने के तट को। नारे भी उसी ओर जाने के लग रहे हैं, परन्तु अपनी प्रवृत्ति से वे चले जा रहे हैं वहाँ जहाँ से सामने के तट पर जा नहीं सकेंगे।

उदाहरण कांग्रेस के दो टुकड़ों का लिया जा सकता है। मुरारजी गुट गांधी जी के मायाजाल से कांग्रेस को अपने अनुकूल पा उसकी धारा में कूद पड़ा। गांधीजी तो कांग्रेस की धारा को आसुरी विचार के लोगों के हाथ में दे गये और ये बेचारे भ्रम में फँसे बहते हुए जीवनधारा के शरीर तट को ही अपना किनारा मान बैठे थे। अतः पिछले तेईस वर्ष तक अपना मुख शरीर तट की ओर किये हुए और उसी तट के नारे लगाते हुए ये बहते चले जा रहे थे, परन्तु वामपंथी संगठित हो गए और उन्होंने इन भ्रम में फँसे हुओं को लात मार अपने से बाहर कर दिया।

इस पर भी यह गुट अभी भी नहीं जानता कि कम्युनिस्ट और इन्दिराजी ने उन्हें क्यों निकाल दिया है ? ये कह रहे हैं कि इन्दिराजी अपनी गद्दी को इनसे खतरे में देख डर गयीं इसलिए इनको बाहर निकाल दिया है। हम ऐसा नहीं मानते। सम्भव है कि इन्दिराजी अपनी गद्दी की भी चिन्ता करती होंगी, परन्तु वह बात गौण है। वास्तविक बात यह है कि उनका पूर्ण परिवार वामपंथी रहा है। उनके बाबा, उनके पिता और वह स्वयं भी शिक्षा-दीक्षा से कम्युनिस्ट थीं और यह स्वाभाविक ही था कि हिन्दी, संस्कृत, हिन्दू तथा हिन्दुस्तान के पक्ष

वालों से वे पृथक् हों । अतः वे हो गयी हैं ।

परन्तु मुरारजी गुट समझ रहा है कि उनमें समाजवादिता कम होने से उनको पृथक् किया गया है । इस कारण वे अब भी जोर-ज़ोर से समाजवाद के नारे लगा रहे हैं । समाजवाद शरीर का तट है और ये बेचारे समाजवादी न होते हुए भी समाजवाद के नारे लगाते हुए उसी तट पर जाने का यत्न कर रहे हैं ।

यही दशा जनसंघ की है । सम्भवतया ये लोग अन्तरात्मा वाले तट के अधिक समीप हों और शरीर तट से दूर, परन्तु नारे वही लगाते हैं जो शरीर तट पर पहुँचने के हैं । इसी कारण ये कभी-कभी तो स्वयं ही भौंचक्के हो देखते रह जाते हैं कि इनको क्या हो गया है ?

अभी-अभी इनके साथ एक घटना ऐसी ही हुई है । ये स्वयं अपने को सैक्युलर मानते हुए अकाली दल जैसे एक कट्टर साम्प्रदायिक दल से गठजोड़ कर बैठें थे और जब उस दल ने इनको वैसे ही लात मार पृथक् कर दिया जैसे इन्दिराजी ने मुरारजी को किया था तो ये भी मुख देखते हुए समझ नहीं सके कि किस किनारे के साथ बह रहे हैं और किस ओर के नारे लगा रहे हैं ?

अकाली दल एक राजनीतिक साम्प्रदायिक दल है। उस दल से जनसंघ ने समझौता किया हुआ था । यह गठजोड़ अस्वाभाविक था ।

हम हिन्दू और सिक्खों को दो भिन्न-भिन्न समुदाय नहीं मानते, परन्तु जनसंघ और अकाली दल को भिन्न-भिन्न मानते हैं । दोनों में सैद्धान्तिक मतभेद था । यह वही भूल थी जो गांधी इत्यादि स्वराज्य से पूर्वकाल में मुसलमानों के प्रति कर रहे थे । कांग्रेस मुस्लिम लीग को मुसलमान संस्था मानती थी और राष्ट्रीय विचार के मुसलमानों को कुछ नहीं । यही बात जनसंघ ने की । वे अकालियों को सिक्ख मान बैठे और जो लक्ष-लक्ष अकालियों से पृथक् केशधारी और बिना केश के गुरुओं के भक्त थे उनको उन्होंने नगण्य समझा । इसके दो परिणाम हुए । एक तो अकाली सिक्खों के प्रतिनिधि बन गये और गुरु उनकी मोनोपली । साथ ही वे पंजाबी और हिन्दी को दो भाषायें मानने लगे और गुरमुखी लिपि पंजाबी की लिपि ।

हमारा इस पूर्ण विवेचन से यह अभिप्राय है कि जो वास्तव में दक्षिणपंथी होने चाहिए, वे अपने को वामपंथी मान रहे हैं और इस प्रकार बाम पंथ के सहायक हो रहे हैं । जीवन में धारायें अनेक हैं, परन्तु किनारे दो ही ही हैं और जिस किनारे पर जो जाना चाहता है, उसी किनारे को अपनाना चाहिये । जो जाना तो चाहते हैं दक्षिण तट पर, परन्तु हाथ-पांव मारते हैं बाम तट पर जाने के लिये; वे मंझधार में डूबेंगे ही ।

एक बात यह समझ लेनी चाहिये कि दक्षिण और वाम केवल आर्थिक दृष्टि से ही नहीं बने। जीवन धारा के ये दो किनारे आदि काल से चले आते हैं। एक किनारा है सांसारिक एवं शारीरिक सुख भोग का और दूसरा किनारा है आत्मोन्नति का। इन दो किनारों में अपनी-अपनी प्रवृत्ति के अनुसार किनारे को अपनाना चाहिये।

अतः भारत में दो ही दल होने चाहिएँ। एक वे जो सांसारिक और शारीरिक सुख-सुविधा को गौण मानते हैं और अपने आत्मा, कॉनशस, ज़मीर इत्यादि को मुख्य मानते हैं। देश में एक ऐसा प्रबल दल बनाना चाहिये जो वास्तविक अर्थों में दक्षिण पंथ का हो। वामपंथी तो अपना किनारा पकड़ते जाते हैं।

यह आज इस देश की प्रथम आवश्यकता है। वे सब दल और सब लोग एक दल के नीचे आ जायें जो सत्य, न्याय और सबसे समान व्यवहार में विश्वास रखते हैं। ये ही दक्षिणपंथी होंगे।

सत्य, न्याय और सबसे समान व्यवहार वाले वे ही होंगे जो आत्मतत्त्व में विश्वास रखते हैं। जिनकी दृष्टि में आत्मतत्त्व है ही नहीं, वे न तो किसी से न्याय कर सकते हैं और न ही उनके व्यवहार में सत्य और समानता आ सकती है। जो जितना अधिक शक्तिशाली होगा, वह उतना ही न्याय एवं सत्य से दूर होगा। यदि यह कहा जाये तो अनुपयुक्त नहीं होगा कि अनात्मवादी सत्य, न्याय एवं समानता के अर्थ नहीं समझते। उनके लिये छीना-झपटी ही न्याय और सत्य का स्वरूप है।

इस कारण यह उपयुक्त समय है जबकि भारत में दक्षिणपंथी मोर्चा बनाया जाये और वे सब दल जो सत्य, न्याय एवं समानता को मतदाताओं के मतों की गणना से पृथक् मानते हैं। जो किसी स्थायी, अनादि, अनन्त सत्य को अपना आधार मानते हैं, उनको एक स्थान पर संगठित हो जाना चाहिये।

यह है इस काल की आवश्यकता। किन्तु इसकी पूर्ति होती दिखायी नहीं देती।

शाश्वत वाणी

१. शाश्वत वाणी भारतीय (हिन्दू) संस्कृति एवं धर्म तथा शास्त्रों की शुद्ध वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करने वाली हिन्दी की एकमात्र पत्रिका है।
२. शाश्वत वाणी का वार्षिक शुल्क केवल पाँच रुपये है। एक साथ बीस रुपये भेजकर पांच मित्रों व सम्बन्धियों को इसका ग्राहक बना सकते हैं।

आचार्य बङ्किम एक राष्ट्रीय दार्शनिक के रूप में

श्री अश्विनीकुमार वर्मा

अपने समकालीन भारतीय मनीषियों में बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय ही अकेले ऐसे व्यक्ति हैं जो व्यवसाय से परतंत्र होते हुए भी इतने प्रखर राष्ट्रवाद को अपना सके जिसकी कल्पना भी तत्कालीन परिस्थितियों में असंभव थी। योगिराज अरविंद की यह धारणा सत्य है कि बङ्किम उपन्यास के क्षेत्र से अधिक चिंतन के क्षेत्र में दक्ष और प्रभावशाली थे। अरविंद कहते हैं :

"The earlier Bankim was only a poet and stylist—the later was a seer and nation builder."

वास्तव में डिप्टी कलक्टर के रूप में जैसे-जैसे उन्होंने भारतीय मानस की पराभूतता और अंग्रेजी मानस की उद्धतता का अध्ययन किया वे व्यग्र होते चले गए। उन्हें लगा कि संपूर्ण हिन्दू जाति के चिंतन का विश्लेषण करके जब तक उसे स्वतंत्र चिंतन का प्रेमी नहीं बनाया जाता तब तक उसे स्वतंत्र भी नहीं बनाया जा सकता। इस दृष्टि से भारतीय चिंतन पर पश्चिम से होने वाले आक्रमण का उत्तर देना उन्हें आवश्यक लगा। इस छोटे-से लेख में उनके ऐसे ही प्रयासों का उल्लेख-भर है।

पश्चिम में अठारहवीं शताब्दी में 'इण्डोलौजी' (भारतीय विद्या) पर कार्य प्रारंभ ही हुआ था। लगभग एक शती तक 'शकुंतला', 'गीता', 'मनुस्मृति' के लेटिन और फ्रेन्च भाषाओं में हुए अनुवाद के माध्यम से ही योरोप की जनता भारत से परिचित होती रही। १९वीं शती के प्रारंभ में वेबर, मैक्समूलर, रॉथ, बोहट्लिङ्क आदि विद्वानों ने भारतीय विद्याओं पर तेजी से कार्य करना प्रारंभ कर दिया। जिस राज्य नीति के अन्तर्गत व्यापक संस्कृत साहित्य पर उन्होंने कार्य करना प्रारंभ किया उसका भारत के भविष्य पर दूरगामी प्रभाव पड़ा।

बङ्किम की क्षिप्र मेधा ने उसका अनुमान उसी समय लगा लिया। भारतीय चिंतन की रक्षा के लिए एक अजीब-सी तड़प उनके दिल में जाग उठी।

समकालीन प्रोफ़ेसर बेबर के विषय में 'कृष्णचरित' में उनकी तड़प के दर्शन इस रूप में होते हैं :

"The celebrated Weber was no doubt a scholar but I am inclined to think that it was an unfortunate moment for India when he began the study of Sanskrit. The descendants of German savages of yesterday could not reconcile themselves to the ancient glory of India. It was, therefore, their earnest effort to prove that the civilization of India was comparatively of recent origin. They could not persuade themselves to believe that the Mahabharat was composed centuries before Christ was born."

— बङ्किम रचनावली (कृष्णचरित)

भारतीय साहित्य के तिथिक्रम को पूर्णत: असमंजस में डालकर इन विद्वानों ने संस्कृत शब्दों के भ्रामक अनुवाद किए और भ्रष्ट अनूदित शब्दों के सहारे भारतीय चिंतन को तोड़ने-मरोड़ने का घृणित प्रयास चला। बङ्किम ने इसको पहचाना। दर्शन शब्द के 'फिलासफी' शब्द से अनूदित होने पर आपत्ति प्रकट करते हुए वे कहते हैं :

'यूरोप में जिस अर्थ में 'फिलॉसॉफी' शब्द व्यवहृत होता है उस अर्थ में दर्शन शब्द का व्यवहार हमारे यहाँ नहीं होता। योरोप की फिलॉसॉफी में ज्ञान साधन मात्र है।'

—बं० र०, खण्ड II, पृष्ठ २१८

'फिलॉसॉफी का उद्देश्य ज्ञानविशेष है—कभी अध्यात्म, कभी भौतिक, कभी नैतिक अथवा सामाजिक ज्ञान। किंतु दर्शन का उद्देश्य पदार्थ मात्र का ज्ञान है। फलत: सकल प्रकार का ज्ञान दर्शन के अन्तर्गत आ जाता है।

—बं० र०, खण्ड II, पृष्ठ २१८

इसी लेख में दर्शन का उद्देश्य मुक्ति के लिए सकल पदार्थ का ज्ञान उन्होंने बताया है। विश्लेषण की इस स्पष्टता के साथ-साथ इस लेख में उनके प्रखर राष्ट्रप्रेम के दर्शन भी होते हैं। एक स्थान पर वे कह उठते हैं :

आर्यबुद्धि धन्य है! जिस बात को अब ह्यूम, मिल, वेन आदि कह रहे हैं, उसी बात को दो सहस्र वर्ष पूर्व बृहस्पति आदि कह गए। —बं० र०

बङ्किम और सांख्य

मैक्समूलर ने अपने 'Six Systems of Indian Philosophy' में वेदांत पर जोर देते हुए कहा कि वेदांत भारत का मूल दर्शन है।[1] बङ्किम के मस्तिष्क पर मैक्समूलर द्वारा सांख्य और वैशेषिक दर्शनों पर किए गए आक्रमण ने गहरी प्रतिक्रिया की। अपने देश में अपने ही विद्वानों द्वारा सांख्यादि दर्शनों की उपेक्षा और विरोध-भाव पश्चिम के मैक्समूलर जैसे विद्वानों को उन्हें बल देते हुए प्रतीत हुए। इसी कारण सांख्य की महत्ता पर बल देना उन्हें आवश्यक प्रतीत हुआ। एक स्थान पर वे कहते हैं : "स्वदेशी विद्वान् सचराचर की व्याख्या करने वाले सांख्य पर उस प्रकार मनोयोग करते प्रतीत नहीं होते जितना कि आवश्यक है। परन्तु भारतवर्ष में जितनी प्रसिद्धि सांख्य दर्शन की थी वह किसी अन्य दर्शन या किसी भी अन्य शास्त्र की थी इसमें संदेह है।" इसी के आगे वे कहते हैं :

"जो लोग हिन्दुओं के पुरावृत्त का अध्ययन करना चाहते हैं वे सांख्य को भलीभाँति समझे बिना ऐसा कर ही नहीं सकते; क्योंकि हिन्दू समाज की प्राचीन काल में हुई प्रगति सांख्य प्रदर्शित मार्गानुसार ही हुई थी। जो वर्तमान हिन्दू-समाज का चरित्र समझना चाहते हैं उन्हें भी सांख्य का अध्ययन करना चाहिए। वे हिन्दू के चरित्र का मूल अनेक प्रकार से सांख्य में ही देख सकेंगे। यह संसार दुःखमय है, दुःख के निवारणार्थ पुरुषार्थ ही एकमात्र उपाय है; यह बात जिस प्रकार हिन्दू जाति के रग-रग में समा गयी है, हमें लगता है, पृथिवी की अन्य किसी भी जाति के मध्य नहीं है। इसके भी मूल में सांख्यदर्शन ही है।"

— बं० र० सांख्य दर्शन

और ऐसे दर्शन के प्रणेता के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए वे कहते हैं :

केवल इतना ही कहा जा सकता है कि कणाद सदृश बुद्धिशाली व्यक्ति बिरले ही जन्मते हैं।

— बं० र०, सांख्य दर्शन

सांख्य और प्राचीन वैदिक धर्म

बङ्किम कहते हैं कि वैदिक धर्म क्रियात्मक था। सांख्य भी कर्मजन्य मोक्ष में विश्वास रखता है। इसी कारण अध्यात्म साधना को सांख्य ने पुरुषार्थ कहा।

'ज्ञान ही पुरुषार्थ है। ज्ञान ही मुक्ति है।' कर्मपीड़ित भारतवर्ष ने वह कथा सुनी।

— साख्य बं० र०, भाग II, पृष्ठ २२६

---

१. 'Vedanta is the native philosophy of India.'

Vedanta—Six Systems of India.

वैदिक चिंतन और बङ्किम

'देवतत्त्व और हिन्दू धर्म' शीर्षक के अन्तर्गत वेद पर बङ्किम के कई निबंध हमें उपलब्ध होते हैं। वेबर, मैक्समूलर, रॉथ एवं बोह्‌टलिङ्क आदि समकालीनों द्वारा वेद सम्बन्धी धारणाओं का निराकरण करना उन्हें आवश्यक लगा। उन्हें लगा कि Henotheism or Kenontheism का बहुदेववाद और पुरुषाकारवाद यदि वेद पर थोपा गया तो हिन्दू जाति का तात्त्विक आधार ही नष्ट हो जाएगा। और फिर धर्म तथा तत्त्वज्ञान के अभाव में कोई जाति जीवित रह नहीं सकती ऐसा उनका अपना दृढ़ विश्वास था। 'देवतत्त्व और हिन्दूधर्म' नामक लेख में वे लिखते हैं :

'जातीय धर्म को पुनर्जीवित किए बिना भारतवर्ष का कल्याण नहीं हो सकता ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।' —हिन्दूधर्म, बं० र०, पृष्ठ ७७६

इसी के आगे वे चिंतन के विश्लेषण की आवश्यकता बताते हुए लिखते हैं :

एकबारगी हिन्दू धर्म का परित्याग करना एक बात है और हिन्दू धर्म के सारभाग को लेकर समाज को चालना देना, उसे उन्नति मार्ग पर अग्रसर करना एक दूसरी ही बात है। हिन्दू धर्म के एकबारगी परित्याग को मैं घोर अनिष्टकारी बात मानता हूँ। जो लोग हिन्दू धर्म के परित्याग का परामर्श देते हैं उनसे जिज्ञासावश मेरा एक प्रश्न है कि क्या हिन्दू धर्म के अतिरिक्त किसी अन्य धर्म को समाज में प्रचलित करना उचित होगा या समाज को एकदम धर्मविहीन रखना उचित होगा ? —'हिन्दू धर्म' बं० रचना०, पृ० ७७८

धर्म परित्याग के परामर्शदाताओं की कटु आलोचना के साथ-साथ मनुस्मृति, महाभारत, रामायणादि ग्रंथों के लेखकों पर मिथ्या-लेखन के आरोपकर्त्ताओं की भी उन्होंने कटु आलोचना की है। एक स्थान पर वे लिखते हैं :

'यदि असत्य कथन मनुस्मृति में है, महाभारत अथवा वेद में है; तब असत्य और अधर्म इन शब्दों का प्रयोग ही त्याज्य है।' — बं० र० II, पृष्ठ ७७८

वेद ऋषिप्रणीत हैं ऐसा बङ्किम का विचार है। महर्षि दयानन्द की प्रस्थापनाओं को मानने को वे तैयार नहीं। परन्तु लेखक का अपना निश्चित विचार है कि जातीय गौरव की दृष्टि से और (हिन्दू) भारतीय समाज के आत्म-विश्वास को पुनर्जागरित करने की दृष्टि से वेद सम्बन्धी पारंपरिक मान्यताओं को बदलने की कोई आवश्यकता नहीं है। हर चिंतन और जाति की अपनी प्राक्कल्पनाएँ होती हैं। उनमें परिवर्तन का दुराग्रह क्यों ?

बङ्किम वेद में प्रयुक्त देवताओं के भौतिक अर्थों पर अधिक ज़ोर देते हैं। यहाँ स्वामी दयानंद के साथ उनका पूर्ण मतैक्य है। उनके अनुसार वैदिक देवताओं

पर पुरुषाकारत्व थोपना ठीक नहीं। इन्द्र को आकाश का पर्याय बताते हुए वे कहते हैं :

'आकाश के और भी देवता हैं—संभव भी हैं। जब आकाश को अनंत बोलना हो तब आकाश अदिति, और जब आकाश को वृष्टिकारक कहना हो तब आकाश इन्द्र, जब आकाश की आलोकमय भावना करनी हो तब आकाश 'द्यौः'। इस प्रकार आकाश के अनेकानेक स्वरूप हैं। सूर्य, अग्नि, वायु आदि भिन्न-भिन्न शक्तियों की आलोचना में भिन्न-भिन्न वैदिक देवों की उत्पत्ति का क्रम देखा जा सकता है।' —वेद—बं० र०, भाग २, पृ० ७८६

वैदिक शब्दों के जो संकेतार्थ वैदिक भाषा में प्रचलित हैं उन पर उन्होंने अत्यधिक बल दिया। आजकल विश्वविद्यालयों के प्रोफेसर उन्हें प्रतीकार्थ वाले शब्द बताते हैं। परंतु वेद के लिए वे सारे 'संकेत' शब्द हैं। असुर संग्राम में वृत्र, नमुचि, शंबर आदि शब्दों के लिए वे कहते हैं :

'इसलिए नमुचि, वृत्र, शम्बर आदि-आदि असुर वृष्टि-निरोधक प्राकृतिक क्रियाओं से भिन्न अन्य कुछ नहीं यह स्पष्ट देखा जा सकता है।'

इसी प्रकार अहल्या का अर्थ बताते हुए वे कहते हैं :

'अहल्या वह भूमि है जो हल द्वारा जोती न जा सके अर्थात् कठिन और अनुर्वर भूमि। इन्द्र ने वर्षा करके उस कठिन और अनुर्वर भूमि को कोमल किया, जीर्ण किया। इसी कारण इन्द्र जार कहलाया।

— बं० र०, पृष्ठ ७९०-९१

इन प्रतीकार्थों में देवतत्त्वों की उपासना हृदय को कोमल बनाती है, इसके बिना हृदय मरुभूमि होकर रह जायेगा। वे कहते हैं :

'इस उपासना के बिना हृदय मरुभूमि होकर रह जायेगा। हिन्दूधर्म की यही उपासना है। हिन्दूधर्म का यही श्रेष्ठतम लक्षण है।'

— बं० र०, पृष्ठ ७९१

परंतु इस उपासना में किसी को बहुदेववाद का भ्रम न हो जाए इस बात का ध्यान रखते हुए वे कहते हैं :

'हिन्दू धर्म में एकमात्र ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई देवता नहीं ऐसा मन में विचार धारण करना होगा। ऐसा भी विचार करना होगा कि ईश्वर विश्व-रूप है, जहाँ-जहाँ उसका रूप दीखेगा, वहाँ-वहाँ उसकी पूजा करनी होगी।'

— बं० र०, पृष्ठ ७९१

हिन्दू चिंतन का त्रिविध स्वरूप

सारे हिन्दू चिंतन को तीन भागों में तत्त्वज्ञान, उपासना और नीति में

विभाजित कर वे प्रथम भाग के भी तीन भाग करते हैं।
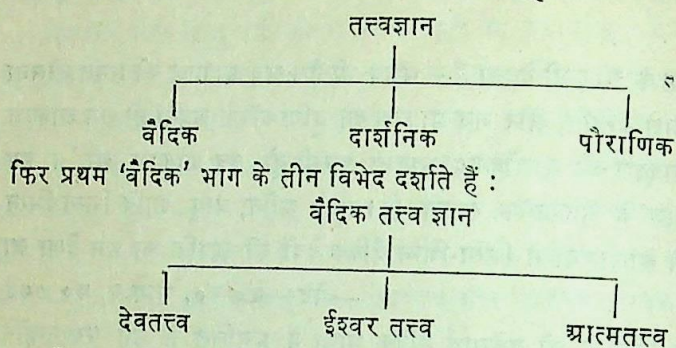
देवता तत्त्व प्रधानतः संहिता में उपलब्ध हैं, आत्म तत्त्व उपनिषदों में और ईश्वरतत्त्व दोनों में प्रत्यक्ष है। —कोन पथे जईतेधि—वं० र०, पृष्ठ ७६१

इस छोटे-से लेख में अब तक वैदिक देवतत्त्व और ईश्वरतत्त्व पर उनके विचारों का संकेत कर दिया गया है। वैसे उन्होंने इन्द्र, पर्जन्य, वरुण, द्यावा, पृथिवी एवं सविता और गायत्री पर भी अपने विचार प्रस्तुत किए हैं, जिनका विस्तारभय से यहाँ उल्लेख नहीं करते। बंकिम रचनावली के 'देवतत्त्व एवं हिन्दूधर्म' के लम्बे प्रकरण (पृ० ७७६ से ८२२ तक) में ये प्रसंग देखे जा सकते हैं।

इन प्रसंगों की चर्चा करते समय उन्होंने पाश्चात्य विचारकों की सहायता नहीं ली। और यदि कहीं उनके विचारों का उल्लेख किया है तो विवशता से किया है। एक स्थान पर वे कहते हैं :

'हिन्दू धर्म की व्याख्या में पाश्चात्य लेखकों की सहायता लेने में मेरी अत्यन्त अनिच्छा रही है। अंग्रेजभक्त पाठकों की तुष्टि के लिए मैंने एक-दो बार अपने मत की पुष्टि में पाश्चात्य लेखकों को उद्धृत किया है परन्तु वह भी अत्यन्त अनिच्छापूर्वक।'

— देवतत्त्व, पृ० ८०१

चैतन्यवाद हिंदू धर्म का मुख्याधार

अन्त में जिस बात पर उन्होंने सबसे अधिक बल दिया वह है 'चैतन्यवाद'। हिन्दुओं के विरुद्ध मुसलमानों तथा ईसाई पादरियों का सबसे अधिक दूषित आरोप था हिन्दुओं का जड़ोपासक होना। 'क्या हिन्दू जड़ोपासक हैं ?' लेख के अन्तर्गत उन्होंने इस आरोप का खंडन किया है। अग्नि का उद्धरण देते हुए वे कहते हैं :

"हिन्दू ऋषिगण इस अग्नि को जगत् की आदिशक्ति के रूप में मान्य कर

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

धर्मयुद्ध यानी जनक्रांति

डॉ० रामगोपाल जोशी

भारत क्या है ? भारत एक राष्ट्र है। सच्चाई क्या है ? सच्चाई यह है कि हमारा राष्ट्र भारत बाह्य आक्रमण एवं गृह-युद्ध के धर्मसंकट में फंस गया है। वातावरण में क्रांति का कोलाहल बढ़ता जा रहा है। उपद्रव हो रहे हैं। हत्याएँ हो रही हैं। सत्ता-संघर्ष के संदर्भ में अवांछनीय एवं राष्ट्रघाती कार्य हो रहे हैं। देश बाह्य-निष्ठा रखने वाले, पंचमार्गी, घुसपैठिये एवं देशद्रोही तत्व संरक्षण, सहयोग एवं प्रोत्साहन पाकर शक्तिशाली होते जा रहे हैं। मगर क्रांति आज भी उतनी ही दूर है जितनी विभाजन के पूर्व थी। शान्ति भी आज उतनी ही दूर है जितनी विभाजन के पूर्व थी। 'दुविधा में दोनों गये माया मिली न राम'। क्रांति या शांति दोनों की दुविधा में दोनों ही गये। और आज तो भारत की यह स्थिति है कि हमारे देश की स्वतन्त्रता ही खतरे में पड़ गयी है। क्रांति या शांति युग की आवश्यकता होती है, दिमागी ऐय्याशी और बौद्धिक व्यभिचार नहीं। क्रांति और शांति के नाम पर हमारे देश में आज तक या तो दिमागी ऐय्याशी और बौद्धिक व्यभिचार होता रहा है या फिर हत्याएँ, लूट-पाट, आगज़नी, तोड़-फोड़, साम्प्रदायिक दंगे, सौदेबाजी, विभाजन और विघटन होता रहा है। आज तक ऐसा ही हुआ है और आज भी ऐसा ही हो रहा है। इस गलत प्रक्रिया में पड़-कर हम प्रवाह-पतित होकर कहाँ जा रहे हैं ? हमें सोचना और विचार करना चाहिये। क्या इस भारत भूमि में जन्म लेने का यही उद्देश्य है ? क्या यही हमारा जीवन-दर्शन है ? क्या यही हमारा राष्ट्र-प्रेम और देशभक्ति है ? क्या यही क्रांति है ? क्या यही शांति है ? क्या है यह सब ? क्रांति, शांति, हिंसा, अहिंसा, गांधीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, सर्वोदय, जनतंत्र, इन सभी का क्या यही परि-णाम है कि आज हम लक्ष्यभ्रष्ट एवं पथभ्रष्ट होकर प्रवाह-पतित हो गये हैं और हमारा राष्ट्र भारत बाह्य-आक्रमण एवं गृह-युद्ध के धर्म-संकट में फँस गया है ?

आखिर क्यों ? किसलिये ? शायद इसलिये कि हम अपनी संस्कृति को भूल गये हैं। रावण के दस मुख थे मगर भगवान् राम के एक ही मुख था। दशानन

रावण पर एकानन राम की विजय के रहस्य को हम भूल गये हैं। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो 'विजय का दर्शन' दिया था उसे भी हम भूल गये हैं।

क्रांति यदि जन-क्रांति होती है और अन्याय को समाप्त कर न्याय की स्थापना के उद्देश्य को पूरा करती है तो उसे 'धर्म-युद्ध' की संज्ञा प्राप्त होती है।

मुझे ऐसा लगता है कि हम लोग अपने स्वधर्म को भूल गये हैं। हमारा दृष्टिकोण ही गलत बन गया है। हमारा दृष्टिकोण यही तो बन गया है न, कि 'हम मरकर भी धर्म की रक्षा करेंगे।' हम मरकर भी देश की रक्षा करेंगे। मानो धर्म की रक्षा के लिये मरना अनिवार्य शर्त हो। मैं इसे एक गलत दृष्टि-कोण मानता हूँ। यह एक गलत जीवन-दर्शन है। यह आत्म-हत्या का दर्शन है। यह पराजय का दर्शन है।

मुझे ऐसा लगता है कि अब वह समय आ गया है जब हमें अपना दृष्टिकोण बदलना होगा। हमें 'पराजय के दर्शन' को त्याग कर 'विजय के दर्शन' के आधार पर धर्म-युद्ध करना पड़ेगा, यानी जनक्रांति करनी पड़ेगी। विजय का दर्शन क्या है? भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को धर्मक्षेत्र में, गीता में, जो विराट स्वरूप का दर्शन दिया वह धर्म-युद्ध का दर्शन था यानी वह जनक्रांति का विराट स्वरूप दर्शन था। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा, हे अर्जुन! उठ, धर्मयुद्ध कर, शस्त्र उठा, प्रहार कर, संहार कर और शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर। वह 'विजय का दर्शन' था। सम्पूर्ण गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहीं पर भी यह नहीं कहा है कि हे अर्जुन, मरने से विजय प्राप्त होगी, इसलिये विजय प्राप्त करने के लिये तू मर जा। आखिर क्यों नहीं कहा भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से ऐसा? इसलिए न कि स्वयं मरने से यानी आत्म-हत्या करने से धर्म-युद्ध में विजय प्राप्त नहीं होती है बल्कि शत्रुओं को मारने से ही विजय प्राप्त होती है। 'मरने से नहीं, बल्कि शत्रुओं को मारने से विजय' यही गीता का दर्शन है। यही 'विजय का दर्शन' है। यही धर्म का मर्म है। हमें इस सत्य का अपनी-अपनी आत्मा में साक्षात्कार करना चाहिये। राष्ट्र के शत्रु और मित्र को अपने विवेक से पहचानना चाहिये। हमें अपनी रणनीति बदलनी चाहिये। 'मित्र से सहयोग और शत्रु से असहयोग' तथा 'मित्र का सत्कार और शत्रु का संहार' यही हमारी रणनीति होनी चाहिये। तभी हमें विजय प्राप्त होगी। 'मरने से नहीं, बल्कि मारने से विजय' यही गीता का 'विजय दर्शन' है। गीता के इस 'विजय दर्शन' के आधार पर श्रद्धा एवं संकल्प तथा योजनापूर्वक जब 'धर्म-युद्ध' यानी 'जनक्रांति' की जायेगी तभी 'सत्यमेव जयते' होगा अन्यथा नहीं।

इन्दिरा जी जागो

□

आनन्द कुमार अग्रवाल

दिल्ली के चांदनी चौक पर गत दिनों भाषण करते हुए इन्दिरा गांधी देश के लिए इतिहास में हुए बलिदानों पर गौरव व्यक्त करने लगीं। साथ ही भूले-बिसरे दुहराने लगीं 'मैं भी हिन्दू हूं'। शायद यह 'भी' शब्द उनके वाक्य में आया है वह इनके पूज्य पिताजी द्वारा स्वयं को 'एक्सीडेन्टली हिन्दू' कहने की ही तरह है। और इनके पिता नेहरू-जी ही थे जो हिन्दूपदपादशाही के संस्थापक शिवाजी महाराज को 'मिसगाइडेड पेट्रियाट' कहा करते थे।

ज्यों कदली के पात पात में पात,
त्यों चतुरन की बात बात में बात।

ये घोषणा करते नहीं थकतीं—"मैं कम्युनिज़्म की ओर नहीं झुक रही हूं।" "मैं रूस की ओर नहीं झुक रही हूं।" आदि-आदि। जब इतना ही पाक-साफ मुंह से बोलकर बनती हैं तो क्यों नहीं रूस की निन्दा का प्रस्ताव संसद में पारित करतीं जब रूस ने भारतीय भूभाग आक्साई चीन और नेफा के हिस्सों को चीनी प्रदेश में नक्शों में प्रकाशित किया है। 'सुधार कर दिया जाएगा' का आश्वासन पिछले वर्षों में रूस ने दिया था। क्या हुआ उस आश्वासन का ? क्यों नहीं इन्दिरा गांधी इस पर कड़ा रुख अपनातीं ? इजरायल की बमबारी अरब देशों पर हुई नहीं कि इन्दिराजी को विश्व-शांति का भय होने लगता था। किन्तु १९६८ में रूस के टैंकों को चेकोस्लोवाकिया में प्रवेश के समय इनकी घिग्घी बंध गई। इस मामले में यदि विश्व-शांति और मानवता का नारा लगाते तो शायद मगरमच्छ के आँसू बहाने वाला रूस नाराज़ जो हो जाता।

ताशकन्द समझौता नहीं स्पष्ट रूप से धोखेबाजी है। भारत पर अनावश्यक दबाव है, किन्तु चूंकि रूस को प्रसन्न रखना ये आवश्यक समझती हैं इसीलिये तो एकतरफा भारतवर्ष द्वारा ही अमल किया जा रहा है। उस ताशकन्द में शहीद हुए प्रधानमंत्री स्व० श्री लालबहादुर शास्त्री (एकमेव गैरनेहरू परिवार

के व्यक्ति भारत के प्रधानमंत्री के रूप में) की सन्देहास्पद स्थिति में हुई मृत्यु की जाँच क्यों नहीं करवातीं ? याद रहे यह वही रूस है जिसने भारत-चीन हमले के समय अपनी सहायता देने में असमर्थता व्यक्त की थी और कहा था—"एक ओर भाई है और दूसरी ओर दोस्त"। जबकि निकिता ख्रुश्चेव उसके पूर्व इसी भारत की भूमि में आकर घोषणा कर गए थे कि जब भी जरूरत पड़े हिमालय पर से आवाज़ लगाते ही हम सहायता के लिए दौड़े चले आयेंगे। हमें सहायता तो दूर हमारे दुश्मन पाकिस्तान को शस्त्रास्त्रों से लाद रहे हैं। क्या बुरा होगा यदि आज भारतवर्ष में चल रही सी० पी० आई० (कम्युनिस्ट पार्टी आफ इण्डिया) को कम्युनिस्ट पार्टी आफ इन्दिरा सम्बोधित किया जाय ?

गत दिनों सत्तारूढ़ कांग्रेस के एक महत्वपूर्ण व्यक्ति ने इस्तीफा देकर दिल्ली में मुस्लिम लीग की स्थापना की। क्या ही गज़ब का नाटक खेला है जनसंघ के दिल्ली में मुसलमानों पर बढ़ते हुए प्रभाव को खत्म करने के लिए। लेकिन यह मुस्लिम लीग की स्थापना भस्मासुर सिद्ध होने वाली है। बहुत थोड़े में परिचय इस मुस्लिम लीग का इतना ही उद्बोधन है—"लड़ के लिया है पाकिस्तान हंस के लेंगे हिन्दुस्तान"। शायद अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मारने वाली बात है। दूसरी एक बात बहुत हास्यास्पद लगी। केन्द्रीय राज्य वित्तमन्त्री श्री विद्याचरण शुक्ल गत दिनों दिल्ली में कहते हैं—'मुस्लिम लीग एक साम्प्रदायिक संगठन है।' लेकिन उनके पालक-पोषक वित्तमन्त्री एवं कुछ दिनों पूर्व तक गृहमन्त्री श्री यशवन्तराव चव्हाण भोपाल में पत्रकारों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—'मुस्लिम लीग साम्प्रदायिक संगठन नहीं बल्कि एक वर्ग का प्रतिनिधि है।' यह क्या भूल-भुलैया है ? अतः होश में आइये। समय रहते चेत जाइये अन्यथा अपने पिताजी की तरह आँसू बहाते हुए, २० अक्टूबर १९६२ को गोली की बौछारों के मध्य जब पंचशील और 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' की धज्जियाँ उड़ने लगीं तब नेहरूजी राष्ट्र को सन्देश देते हुए कहते हैं : "चीन ने हमें सोते से जगा दिया", कहने की बारी आपकी न आ जाय।

इन्दिरा सरकार को इतने पर भी कम्युनिस्टों से और मुस्लिम लीगियों से खतरा नहीं दिखाई दे रहा है। चीन और पाक द्वारा विश्व के आधुनिकतम शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित कर सीमाओं पर खड़ी की गई सेना भी नहीं दिखती। नक्सलपंथियों के द्वारा खुलेआम धमकी, लूटपाट, हत्याएं, हवाई जहाज़ द्वारा पर्चे बांटना, ट्रांसमीटर गिराना भी इन्हें उतना अप्रिय नहीं लग रहा है। विदेशों में पिट रहे भारतीयों की भी समस्या उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं। शायद महंगाई, असन्तोष, आन्दोलन, अस्थिरता, अन्धकार, अराजकता और भ्रष्टाचार में

झुलसते कोटिशः भारतीयों की भी चिन्ता नहीं है।

दुख तो इस बात का है कि इन्हें केवल एक ही समस्या दिखाई दे रही है, वह है—राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का दिन-प्रतिदिन अत्यधिक वेग से उत्थान। इन्हें शेख अब्दुल्ला से शायद कोई खतरा नहीं लगता, हाँ, लेकिन श्री बलराज मधोक से इन्हें राष्ट्रीय एकता के भंग होने का बड़ा खतरा दिखता है। तभी तो श्री मधोक पर मुकदमा चलाया जा रहा है और शेख अब्दुल्ला सदैव फरमाइशी नग़मे पेश करते घूम रहे हैं। इन्हें शहीद भगतसिंह और बिस्मिल के परिवार को उपेक्षित करने में कोई हीनता नहीं लगती बल्कि इस वर्ष राष्ट्रपति द्वारा सम्मान पुरस्कार बंगाल के एक 'घटक' नामक कम्युनिस्ट को प्राप्त हो सकता है जिसने इनके राष्ट्रपिता गांधीजी को उनकी जन्म शताब्दी के अवसर पर अपने लेख में स्पष्ट रूप से 'सुअरेर बच्चा' सम्बोधित किया। किसी ने कहा है—

अंधाधुन्ध के राज में, गधा पाँजरी खाय।
सत्यवान भूखा मरे,............... ॥

प्रतीक्षा है इनकी अन्तरात्मा की आवाज़ और कब तक भारतवर्ष को ले डूबने वाली है। ऐसी स्थिति में स्पष्ट है कि भारत के अन्दर पुनः महाभारत छिड़ने वाला है क्योंकि असत्य बलशाली होता जा रहा है और सत्य का आधार डगमगा रहा है। लेकिन 'सत्यमेवजयते नानृतम्'। सौ कौरव के साथ भीष्म द्रोण और ऊपर से श्री कृष्ण की विशालतम यादवी सेना। लेकिन विजय हुई पांच पाण्डवों सहित निःशस्त्र श्रीकृष्ण की। आज 'हिन्दूराष्ट्र' के लिए अहोरात्रि जुटे रहने वाले लोगों पर कुछ इसी प्रकार की स्थिति आई है।

(पृष्ठ २६ का शेषांश)

चुके थे, मात्र भेद यह है कि पाश्चात्य चितकों के लिए यह अग्नि मात्र जड़शक्ति है और हिन्दू ऋषियों के लिए यह 'चेतनायुक्त शक्ति' थी।"

—हिन्दू कि जड़ोपासक—बं० र०, पृष्ठ ८१७

पुनश्च वे कहते हैं :

"हिन्दू के निकट चेतनाविहीन पदार्थ अस्पृश्य है।" —वही, पृष्ठ ८१८

एक परमसत्ता विभिन्न भौतिक देवों के मध्य कार्य कर रही है; इस कारण सृष्टि का हर कण चेतनायुक्त होने से पवित्र है। इसके विपरीत कथन करने वालों का विचार मिथ्या है। इसमें निरुक्त प्रमाण है, पश्चिमी पंडित नहीं। वे कहते हैं :

"यही यास्क ने कहा है सुना ! वे अत्यन्त प्राचीन आचार्य थे आधुनिक योरोपीय पंडित नहीं।" —वेदेर ईश्वरवाद—बं० र०, पृष्ठ ८१७

आगे वे कहते हैं :

"ऋषि लोगों ने जागतिक शक्ति का सम्पूर्ण ऐक्य अनुभव किया था। ···एक ईश्वर की उपासना ही शुद्ध वैदिक धर्म्म है···।"

बंकिम के समकालीन ऋषि दयानन्द ने इसी भावना से प्रेरित होकर इस देश में राष्ट्रीय चेतना का शंख फूंका। बीसवीं शताब्दी में जो चतुर्दिक राष्ट्रीय जागरण देश में दृष्टिगोचर हुआ है उसके तीन पुरोधा हैं : बंकिम, दयानन्द और अरविंद। राष्ट्रीय चिंतन के पुरस्कर्ताओं में बंकिम का नाम सदा अग्रगण्य रहेगा और परवर्ती नेताओं के प्रेरणास्रोत के रूप में उनका विस्मरण इतिहास की दृष्टि से अक्षम्य होना चाहिए।

(पृष्ठ १५ का शेषांश)

जड़, अल्पज्ञ, जीवात्मा और परमात्मा तब भी थे। यह अयुक्तिसंगत नहीं। दृष्टान्त में अण्डे में मुर्गी अथवा बीज से वृक्ष की बात कही जा सकती है।

सृष्टि-रचना से पूर्व भी ये तीनों मूल पदार्थ थे। यदि ऐसा नहीं मानेंगे तो सृष्टि-रचना में प्रयोजन ही नहीं रह जायेगा। परमात्मा किस लिए जड़ रूप अथवा अल्पज्ञ जीवात्मा के रूप में आया ?

अतः कार्य जगत् से पूर्व सत् (प्रकृति) का होना सिद्ध होता है। यहाँ संक्षेप में ही वर्णन किया है।

इस प्रकार प्रकृति के अतिरिक्त जीवात्मा का प्रलय काल में होना भी सिद्ध किया है। यह हम अगले लेख में स्पष्ट करेंगे।

साहित्य समीक्षा

□

"क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है।" लेखक—**वैद्य रामगोपाल शास्त्री**, प्रकाशक—**संस्कृत विभाग, हंसराज कालेज, दिल्ली**, पृ० सं० १२४, मूल्य ढाई रुपए।

स्वतन्त्र भारत में आज जब प्राथमिक कक्षाओं में ही देश के भावी नागरिकों को यह पढ़ाया जाय—"जब पहले-पहल आर्यों ने भारत में पदार्पण किया तो उन्हें भूमि के लिए उन लोगों से युद्ध करना पड़ा जो पहले से यहाँ रह रहे थे। आर्य इन लोगों को दस्यु या दास कहते थे। आर्यों ने दस्युओं को युद्ध में पराजित किया, परन्तु उनके साथ दयालुता का व्यवहार नहीं किया और अनेक दस्युओं को दास बना लिया। दस्युओं को आर्यों की सेवा करनी पड़ती थी। उन्हें कठिन और नीच काम भी करना होता था।" तो अपनी इस पुण्य भूः एवं पितृभूः के प्रति उनके मन में क्या प्रतिक्रिया होगी—और वह बालसुलभ संस्कारों के कारण चिरस्थायी बनकर देश एवं उसके वासियों का कितना अनिष्ट करेगी, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

और जब विशुद्ध भारतीय नागरिक, अर्थात् स्वयं को हिन्दू अथवा आर्य मानने वाला नागरिक इस प्रकार के विकृत इतिहास को अपने वंशधरों द्वारा न केवल कंठस्थ अपितु प्रवर्तित होते सुन एवं देखता है तो उस पर क्या बीतती है, और उसकी क्या प्रतिक्रिया होती है, उसी की परिणति प्रस्तुत पुस्तक है।

ग्रिफिथ, कीथ, मैक्समूलर, मैक्डोनाल्ड, मैकाले, मोनियर विलियम द्वारा एतद्देशीय पंचमार्गीय जनों की सहायता से वैदिक संस्कृति के ह्रास का जो प्रयत्न हुआ और आज भी उस परम्परा को प्रचलित रखने वाले दुष्ट दस्युओं एवं मानसिक दासों की दुष्प्रवृत्ति को चुनौती देने के लिए शास्त्रीजी द्वारा किया गया यह प्रयत्न आर्य जाति को जागृत करने की दिशा में एक सराहनीय पग है। वैदिक संस्कृति में आस्था रखने वाले प्रत्येक नर-नारी के लिए यह पुस्तक नितान्त पठनीय है।

"सजगता", "व्यावहारिक जीवन और परमात्मा" दोनों के लेखक एवं प्रकाशक—श्री हरिकिशन दास अग्रवाल, तुलसी मानस प्रकाशन, गुप्ता मिलस एस्टेट, रे रोड, बम्बई-१०, मूल्य एक-एक रुपया।

श्री अग्रवाल स्वयं प्रवचन श्रोता, अध्ययन एवं मननशील महानुभाव हैं। 'सजगता' में उन्होंने अपने श्रवण, अध्ययन एवं मनन के परिणामों को सरल, रोचक एवं हृदय-ग्राही शब्दों में सोदाहरण लिपिबद्ध किया है।

'व्यावहारिक जीवन और परमात्मा' की भूमिका में लेखक का कथन है—"प्राय: मनुष्य भूत का शोक व भविष्य की चिन्ता करता है। वह वर्तमान में जीता नहीं, जब वह वर्तमान में जीता नहीं तो वह भूत-भविष्य की बेहोशी में घूम रहा है, व्यावहारिक व्यस्त जीवन व्यतीत करने वाला यदि वर्तमान में जीना सीख लेता है तो वह भूत के शोक एवं भविष्य की चिन्ता से बच जाता है। इसका वर्तमान में जीना एक जीवन बन जाता है, जैसे कि एक मिट्टी का दिया लो जग जाने पर प्रकाशित हो जाता है, उसके इर्द-गिर्द प्रकाश ही प्रकाश हो जाता है, इसी प्रकार वर्तमान के जीने वाले व्यक्ति के सामने जो भी कार्य आता है वह उसको दक्षतापूर्वक सम्पन्न करता है।"

इसी प्रकार की तर्कसंगत सूक्तियों से यह लघु पुस्तिका भी भरपूर है। जीवन के विभिन्न पहलुओं पर इसमें प्रकाश डाला गया है।

दोनों पुस्तिकाएँ पठनीय एवं मननीय हैं।

——

"हिन्दूइज़म : दि यूनिवर्सल रिलीजन ऑफ मैन काइंड" तथा "दि ट्रुथ अबाउट कम्युनिज़म", दोनों के लेखक एवं प्रकाशक—डॉ० जे० आर० गोयल, सर्वेंट्स ऑफ़ हिन्दू सोसाइटी, ११९३, शोरा कोठी, सब्जी मण्डी, दिल्ली-७, मूल्य ५०-५० पैसे।

"हिन्दुत्व हिन्दुओं का धर्म है। यह भारत का राष्ट्रीय धर्म है, अधिक उपयुक्त एवं युक्तियुक्त यह होगा कि हिन्दुत्व हिन्दू धर्म को कहते हैं। अंग्रेजी शब्द 'रिलीजन' की परिधि से 'धर्म' शब्द अधिक विशाल एवं महान् है। "धारणाद्धर्म इत्याहु:" धारण करने योग्य कर्म धर्म कहलाता है। "यतोऽभ्युदयो नि: श्रेयस: सिद्धि स धर्म:।" जो जीवन को सिद्धि एवं समृद्धि प्रदान करे वह धर्म है।

इस प्रकार इस पुस्तिका में हिंदुत्व की व्याख्या के साथ-साथ विभिन्न पुरुषों के मन्तव्यों का उल्लेख भी है। इसी प्रकार "दि ट्रुथ अबाऊट कम्युनिज़म" में भी लेखक ने कम्युनिज़म (विचारधारा) एवं कम्युनिस्टों की गतिविधियों तथा कार्यप्रणाली पर प्रकाश डालने का यत्न किया है।

अंग्रेजी में लिखी दोनों पुस्तिकाएँ हिन्दुइज़म एवं कम्युनिज़्म का सार संक्षेप में प्रस्तुत करती हैं।

समाचार समीक्षा

□

प्रधान मंत्री एवं राष्ट्रपति द्वारा जनमत की अवहेलना

भूतपूर्व नरेशों के प्रिविपर्स समाप्ति सम्बन्धी संविधान संशोधन विधेयक को इन्दिरा कांग्रेस के बहुमत से (एक सदस्य ने दो-दो बार मत देकर) लोक सभा में पारित कर दिया गया, किन्तु राज्यसभा ने उसे अल्पमत से अस्वीकार कर दिया। नैतिकता एवं सदाशयता के आधार पर विधेयक को पुनः लोक सभा में भेजा जाता अथवा दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में प्रस्तुत किया जाता, इस प्रकार विधिवत उसे पारित कराया जा सकता था। क्योंकि यह सर्वविदित तथ्य है कि दोनों ही सदनों में कांग्रेस-वामपंथियों में गठबन्धन का बहुमत है। किन्तु देवी इंदिरा को इसमें विलम्ब की 'बू' आई और सन्देह होने लगा कि कहीं केरल की नौका डूब न जाय अतः उन्होंने तुरन्त इस पर अमल करने के लिए राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश जारी करा दिया। देवी इन्दिरा का कथन है कि "कांग्रेस इसके लिए वचनबद्ध थी।"

इस वचनबद्धता की कसौटी पर देवी इन्दिरा को यदि परखा जाय तो सिद्ध होगा कि वे केवल कुर्सी के प्रति प्रतिबद्ध हैं, देश की किसी समस्या के प्रति नहीं। अथवा आज स्वतन्त्रता के २३ वर्ष बाद भी देश की राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा के स्थान पर अंग्रेजी विराजमान है। अंग्रेजी को हटाना दूर, उसको सुस्थिर करने में देवी इंदिरा अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर रही हैं। कहां गई उनकी देशवासियों एवं राष्ट्रभाषा के प्रति वचनबद्धता ?

ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं जिनके लिए देश का शासन वचनबद्ध है। देवी इन्दिरा संविधान के प्रति न केवल वचनबद्ध अपितु शपथबद्ध हैं। किन्तु देखने में आता है कि संविधान की सर्वाधिक अवहेलना वे ही करती हैं।

राष्ट्रपति एवं प्रधान मंत्री को यह जगविख्यात तथ्य विदित है कि प्रधान-मंत्री के पद को लोकसभा सदस्यों ने प्रिविपर्स सम्बन्धी संशोधन विधेयक पर दो

बार मतदान किया है। इसके बावजूद उसे राज्य सभा की स्वीकृति के लिए भेजा गया और यह भी कि राज्य सभा में वह पारित नहीं हुआ। यह विदित होने पर भी "आत्मा की पुकार" से प्रेरित होकर (राष्ट्रपति महोदय ने ऐसा कहा जाता है कि बिना देखे एवं पढ़े) सरकार की ओर से भेजे गए अध्यादेश पर एक क्षण का भी विलम्ब किए बिना (अपनी कथित पुत्री के सम्मान की रक्षा के लिए) तुरन्त हस्ताक्षर कर दिए।

इस सम्बन्ध में कार्यविधि के बारे में गृहमन्त्रालय की हैण्डबुक के अनुसार कोई भी विभाग सम्बन्धित मामले पर तभी हस्ताक्षर कर सकता है जबकि उसके पास पूरा रिकार्ड पहुँच जाता है, मंत्रिमण्डल के सचिव को पूरा रिकार्ड सम्बन्धित विभाग के सचिव को भेजना होता है, उसमें सभी सम्बन्धित कागजों की प्रतिलिपियाँ, मंत्रिमंडल के निर्णय की प्रतिलिपि तथा सम्बन्धित सभी कागज, निर्णय से पूर्व संबंधित विषय पर विचार-विमर्श का संक्षिप्त विवरण और रिकार्ड होते हैं। विधि विशेषज्ञों की राय में मंत्रिमंडल के निर्णय के कागजात राष्ट्रपति के सचिव को भेजे जाने चाहिए थे, किन्तु राष्ट्रपति से हस्ताक्षर कराने जो लोग हैदराबाद गए उनमें राष्ट्रपति के सचिव डॉ० नगेन्द्रसिंह नहीं थे। उन्हें मन्त्रिमण्डल के फैसले से भी अवगत नहीं कराया जा सका, क्योंकि मंत्रिमण्डल का निर्णय हस्ताक्षरों के बाद प्रकाश में आया है, विधि-विशेषज्ञों की सम्मति में इस प्रक्रिया में बहुत-सी अनियमितताएँ हुई हैं।

नियमित अथवा अनियमित जैसा भी है, अध्यादेश पर हस्ताक्षर हो गए और वह तत्काल लागू हो गया। प्रदेशों ने भी उस पर अमल प्रारम्भ कर दिया है। दूसरी ओर तुरन्त सर्वोच्च न्यायालय में इस अध्यादेश के स्थगन के लिए समादेश याचिकाएँ प्रस्तुत की गईं। स्थगन की मांग को तो सर्वोच्च न्यायालय ने अस्वीकार कर दिया। हाँ, समादेश याचिकायें स्वीकार कर ली हैं और १४ अक्टूबर से उन पर इस विषय पर विचार होगा कि अध्यादेश पर विचार करना न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में भी है कि नहीं।

अध्यादेश स्थगन की जब माँग की गई थी तो माँगकर्ताओं एवं उनके समर्थकों को यह आशा थी कि स्थगन का आदेश तो हो ही जाएगा। अब इस बात पर सन्तोष किया जा रहा है कि चलो समादेश याचिका तो स्वीकार कर ली है।

उधर देवी इंदिरा की आँख की किरकिरी भी अभी दूर नहीं हुई, गुजरात में बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों का निरीक्षण करने गईं तो वहीं वक्तव्य दे डाला कि नरेशों की मान्यता वापस ले लेना नरेशों के अपने हित में है। इससे आगे वे कहती हैं

कि दूसरे देशों में यह काम हिंसा द्वारा किया जाता रहा है। आप फरमाती हैं कि देश इस समय गरीबी से निपटने में लगा है। इन छोटी-छोटी बातों पर विशेष ध्यान नहीं देना चाहिए।

देश की गरीबी मिटाने में नरेशों के प्रिवीपर्स की समाप्ति कितनी सहायक होगी यह तो प्रधान मंत्री ही जानें। किन्तु काँग्रेस के मंत्रियों तथा संसद सदस्य रूपी नवाबों की फौज जो गुलछर्रे आज गरीब जनता की खून-पसीने की कमाई से उड़ा रही है स्वयं उसके बारे में भी देवीजी ने कभी सोचा है? बंगाल के कम्युनिस्ट मंत्रियों ने अपने वेतन की सीमा तो निर्धारित कर दी थी किन्तु यहाँ प्रधान मन्त्री ने, जो अपने परिवार की एकमात्र सदस्य हैं (क्योंकि उनके परिवार के अन्य सभी सदस्य व्यवस्थित हैं और उनके स्वयं के पुत्रों को बाप-दादा की अतुल सम्पत्ति उत्तराधिकार में प्राप्त है), अपने वेतन में एक पैसे की भी कटौती नहीं की। क्या इसी प्रकार देश की गरीबी दूर होगी?

मोर्चे में दरार के लक्षण

केरल विधान सभा के मध्यावधि निर्वाचनों के प्रचारार्थ दिए गए भाषणों में देवी इन्दिरा ने कहा कि "कांग्रेस (नई) अपने कार्यक्रम से एक मिलीमीटर भी नहीं हटी है, विपरीत इसके कम्युनिस्टों ने उनके कार्यक्रम को अपनाया है।"

कम्युनिस्ट पार्टी ने इसकी आलोचना करते हुए अपने मुख-पत्र 'न्यू एज' में 'बचकाना आत्म-प्रशंसा' शीर्षक से एक लेख प्रकाशित कर कहा है कि नई कांग्रेस यदि वामपंथ की ओर बढ़ती है तो निश्चय ही उसका स्वागत है किन्तु इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं कि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी अपने कार्यक्रम से तनिक भी हट रही है।

'न्यू एज' का कहना है कि देवी इंदिरा यदि इस बात से इन्कार करती हैं कि वे कम्युनिस्ट कार्यक्रम पर नहीं चल रहीं तो कोई शिकायत नहीं करेगा, क्योंकि वह आखिर राष्ट्रीय बुर्जुआ शासन की नेता हैं, किन्तु कांग्रेस कार्यक्रम का कम्युनिस्ट पार्टी समर्थन कर रही है, यह कहना वर्तमान राजनीति की वास्तविकता को प्रकट करने का गलत तरीका है।

किन्तु वही पत्र उसी लेख में आगे लिखता है कि "हमारी पार्टी ने कांग्रेस सरकार के रचनात्मक कदमों का हमेशा समर्थन किया है और कर रही है।"

अपने उसी सम्पादकीय में न्यू एज ने केरल के चुनावों पर नई कांग्रेस और लघु-मोर्चे के सम्बन्ध के बारे में कहा—"लघु मोर्चे और नई कांग्रेस में केवल सीटों के ताल-मेल से प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण राजनीतिक संघर्ष में संयुक्त कार्यों का रूप ले चुकी है, जिसका प्रभाव केवल केरल तक ही सीमित नहीं रहेगा। यह

घटनाक्रम वस्तुत: राष्ट्रीय रंगमंच पर हो रही घटनाओं के अनुरूप है। इस आशा की चर्चा शुरू हो चुकी है कि क्या केरल जैसी घटनाएँ राष्ट्रीय-स्तर पर भी होंगी? वामपंथी और लोकतन्त्री आन्दोलन अन्तत: जिस किसी निष्कर्ष पर पहुँचे लेकिन यह घटनाक्रम आशा का संकेत है जिसका स्वागत किया जाना चाहिए।"

इन्दिरा काँग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टी में यह आरोप-प्रत्यारोप एवं आलोचना-प्रत्यालोचना की आँखमिचौनी प्रारम्भ से ही चल रही है, किन्तु इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि कम्युनिस्ट पार्टी के हित में इन्दिरा काँग्रेस और इन्दिरा काँग्रेस के हित में कम्युनिस्ट पार्टी सदा ही परस्पर प्रणय की प्रणाली पर प्रतिबद्ध हैं। नेहरू काँग्रेस से प्रारम्भ हुई यह प्रच्छन्न प्रक्रिया इन्दिरा काँग्रेस काल में स्पष्टतया प्रकट हो गई है। इसमें सन्देह को स्थान नहीं। अन्यथा क्या कारण है कि केरल विधान सभा में इंदिरा काँग्रेस के सर्वाधिक विधायक होने पर भी मुख्य मंत्री कम्युनिस्ट पार्टी का ही होगा, (यद्यपि इन पंक्तियों के लिखे जाने तक निर्णय नहीं हुआ था तथापि होगा वही।)

अत: जिन राजनीतिज्ञों को लघु मोर्चे अथवा काँग्रेस कम्युनिस्ट गठबन्धन में दरार का सन्देह होता है, वे भ्रम में हैं, यह राजनीतिक पैंतरेबाजी है, अन्यथा एक-दूसरे के बिना दोनों की स्थिति सम्भव नहीं।

यदि राष्ट्रवादी हिन्दुत्वनिष्ठ शक्तियाँ इसके विरुद्ध सुदृढ़ मोर्चा नहीं बनायेंगी तो वे तो नष्ट होंगी ही साथ ही राष्ट्र को भी विघटित करने के दोष की भागी बनेंगी।

आत्मा की पुकार और अनुशासन

पाठकों को स्मरण होगा कि पिछली बार जब राष्ट्रपति का निर्वाचन हुआ था तो प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी ने श्री नीलम संजीव रेड्डी के मनोनयन पत्रों का प्रस्ताव एवं समर्थन किया था। न केवल इतना कुछ दिनों तक उन्होंने उस निर्वाचन के लिए दल (काँग्रेस) का साथ भी दिया था। किन्तु सहसा उनकी आत्मा से एक आवाज आई और उन्होंने श्री रेड्डी का समर्थन छोड़ श्री गिरि का प्रचार प्रारम्भ कर दिया। जब चारों ओर से इसकी आलोचना होने लगी तो उन्होंने 'आत्मा की पुकार' की दुहाई दी और इतनी जोर की टेर लगाई कि वामपंथी-काँग्रेसी भेड़ें सभी उनके चारों ओर एकत्रित होकर मिमियाने लगीं।

परिणामस्वरूप श्री रेड्डी की हार हुई और श्री गिरि की जीत। तब कांग्रेस ने उनके विरुद्ध भी अनुशासन की कार्यवाही करने की ठानी। गाँधी के यह शिष्य उस अनुशासनात्मक कार्यवाही को स्थगित एवं समाप्त भी कर देते यदि प्रधानमंत्री राष्ट्रपति निर्वाचन में अपनी गलती स्वीकार कर लेतीं। किन्तु आत्मा

की पुकार पर उन्होंने यह नहीं स्वीकारा और कार्यवाही करने से पूर्व ही स्वयं मूल संस्थान को लात मार नई काँग्रेस की स्थापना कर अपनी चौधराहट को बरकरार रखा।

वही प्रधान मंत्री, जो आत्मा की पुकार को सर्वोपरि मानती थीं, प्रिवीपर्स सम्बन्धी संशोधन विधेयक पर आत्मा की पुकार के आधार पर मतदान करने वाले अपने दल के सदस्यों को तुरन्त दल से निष्कासित करने की आज्ञा देती हैं। जिन सात सदस्यों को मुअत्तिल किया गया उनमें से अनेक ने तो उनसे इसके विरुद्ध मत देने की आज्ञा भी माँग ली थी। और ऐसी अनुमति अतीत में प्राप्त होती रही है। उन्हीं की काँग्रेस के हिन्दी के तथाकथित समथक सेठ गोविंद दास भाषा के प्रश्न पर उनके पिता श्री और स्वयं उनसे भी ऐसी अनुमति प्राप्त कर चुके हैं। किन्तु प्रिवीपर्स का भूत उन पर इतना हावी था, अथवा यों कहें कि कम्युनिज्म का रंग उन पर इतना गहरा चढ़ गया है कि वहाँ अब विवेक-बुद्धि की इतिश्री हो गई है।

और अन्त में

यह तथ्य सम्भवतया सबको विदित न हो कि चीन ने जब तिब्बत पर अधिकार किया था तो उस समय चीन-स्थित भारत के राजदूत सरदार पणिक्कर ने भारत सरकार को जो टिप्पणी प्रस्तुत की उसमें अंग्रेजी के दो शब्दों सोजौरन्टी एवं सौवेरन्टी, में अन्तर स्पष्ट न समझ सकने के कारण जिस शब्द का उन्होंने प्रयोग किया वह उनके मन्तव्य के विपरीत गया और उसका परिणाम भी भयंकर हुआ। जब यह तथ्य पणिक्कर को स्पष्ट हुआ तो कहते हैं कि उनको इससे प्राण-घातक आघात पहुँचा।

अंग्रेजी के अन्ध समर्थक क्या इससे शिक्षा ग्रहण करेंगे ?

नये संरक्षक सदस्य

५३. श्री विश्वमोहन कुमार सिन्हा
C/o. श्री रघुनन्दन प्रसाद टेलर मास्टर
जनरल टेलरिंग हाउस,
पो० राजगीर (पटना)

५४. श्री चन्दु भाई त्रि० भट्ट
मेघदूत कालोनी, महादेव नगर, बीली मोरा
जि० बलसार, (गुजरात)

अमर राष्ट्र सन्तान

श्री नवलकिशोर शास्त्री

हम धीर वीर बलवान
अमर राष्ट्र सन्तान।

अतीत स्वयं ही जिस धरती का गाता गौरव गान,
अखिल विश्व के अन्तस्तल में जिसका चमके ज्ञान।
उसी धरा की सन्तति हैं, हम शस्त्र शास्त्र विद्वान,
हम धीर वीर बलवान, अमर राष्ट्र सन्तान ॥१॥

आत्म ज्ञान आनन्द मग्न हम कपिल शान्त अनजान,
मद विक्षिप्त साठ सहस्त्र का पल में करें मसान।
उसी ऋषि की संतति हैं, हम शान्त क्रान्त भास्वान,
धीर वीर बलवान, अमर राष्ट्र सन्तान ॥२॥

उर पर अंकित रहा शाश्वत सकल भूत सुख गान,
उसी साध्य की सिद्धि हेतु तपते नृपति महान।
उसी धरा की संतति हैं, हम कर्म भगीरथ जान,
धीर वीर बलवान, अमर राष्ट्र सन्तान ॥३॥

लिए ज्ञान की उर में गरिमा, सबको लें पहचान,
दर्प चुनौती के उत्तर हित गंगचरण भगवान।
शान्ति और क्षमता धारी हम शिव शंकर सन्तान,
धीर वीर बलवान, अमर राष्ट्र सन्तान ॥४॥

कुछ अत्यन्त रोचक व प्रेरणाप्रद पुस्तकें

जो प्रत्येक को पढ़नी चाहियें

श्री सावरकर साहित्य

आजन्म कारावास (सम्पूर्ण)	१५.००
1857 War of Independence	35.00
प्रतिशोध (नाटक)	४.००
मोपला-गोमान्तक	३.००
अमर सेनानी सावरकर	२.५०
हिन्दुत्व	२.००

श्री बलराज मधोक साहित्य

जीत या हार	३.००
हिन्दू राष्ट्र	१.५०
श्यामाप्रसाद मुखर्जी : जीवनी	६.००
भारत की सुरक्षा	४.००
भारत और संसार	६.००
भारत की विदेश नीति	४.००
भारतीय जनसंघ एक राष्ट्रीय मंच	१.५०
Indian Nationalism	1.50
What Jana Sangh Stands For	1.50
Nationalism Democracy and Social Change	1.50
Kashmir Centre of New Alignments	15.00
India's Foreign Policy And National Affairs	3.00

डा० रामलाल वर्मा

दिल्ली से कालीकट	५.००

श्री तनसुखराम गुप्त

हिन्दुत्व का अनुशीलन	४.००

श्री गुरुदत्त साहित्य

अन्तिम यात्रा	१.००
समाजवाद : एक विवेचन	१.००
गाँधी और स्वराज्य	१.००
भारत में राष्ट्र	१.००
वन्दे मातरम् (नाटक)	२.००
भारत गांधी नेहरू की छाया में	४.००
देश की हत्या (उपन्यास)	४.००
भग्नाश ,,	३.००
छलना ,,	७.००
धर्म, संस्कृति और राज्य	८.००
जमाना बदल गया (नौ भाग)	२०.००
महर्षि दयानन्द	२.००
श्रीमद्भगवद्गीता:एक अध्ययन	१५.००
धर्म तथा समाजवाद	६.००
India in the Shadow of Gandhi and Nehru	20.00

श्री पी० एन० ओक

भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें	१०.००
भारत में मुस्लिम सुल्तान	१०.००
Some Blunders of Indian Historical Research	15.00

Hansraj Bhatia

Fatehpur Sikri is a Hindu City	10.00
फतेहपुर सीकरी हिन्दू नगर	६.००

श्री गुरुदत्त का सम्पूर्ण साहित्य हमारे सदन से उपलब्ध है। १० रुपये की पुस्तकों पर डाक व्यय फ्री; २० रुपये की पुस्तकों पर १० प्रतिशत छूट।

भारती साहित्य सदन सेल्स

३०/९०, कनाट सरकस, (मद्रास होटल के नीचे), नई दिल्ली-१

दशहरा—दीपावली के शुभ अवसर पर

हर वर्ष की भाँति इस वर्ष पुनः उपहार योजना चला रहे हैं। पाँच नये पाठकों को पत्रिका एक वर्ष के लिए उपहार में दीजिए। आप चार सम्बन्धियों मित्रों व परिचितों के पते लिख भेजिये, जिन्हें आप पत्रिका एक वर्ष के लिए उपहार में देना चाहते हैं। इनका शुल्क केवल रु० १५ (पन्द्रह रुपये) आप हमें भेजें और हम उन चार पाठकों को वर्ष भर पत्रिका आपकी ओर से भेजते ही रहेंगे तथा आपको अपनी ओर से—

एक अनुपम उपहार भेजेंगे

१. १५ नवम्बर तक प्राप्त होने वाले फार्म इस योजना में स्वीकार किये जायेंगे। इसके बाद पूर्वोक्त नियमों पर ही पत्रिका का शुल्क, आपका अथवा आपके मित्रों का स्वीकार किया जायेगा।

२. उपहार में आप पत्रिका में विज्ञापित प्रकाशनों में से कोई भी एक अथवा अधिक अपने पसन्द की चुनी हुई तीन रुपये मूल्य की पुस्तकें मँगवा सकेंगे। भेजने का व्यय लगभग १.०० भी हम देंगे। चार व्यक्तियों का शुल्क भेजने पर तीन रुपये तथा आठ व्यक्तियों का शुल्क भेजने पर ६ रुपये मूल्य की पुस्तकें उपहार में आप मँगवा सकते हैं।

३. शुल्क मनीआर्डर द्वारा भेजें; पाठकों के नाम तथा पते स्पष्ट लिखें, उपहार में जो पुस्तक आप मँगवाना चाहें, आप उसका नाम लिख भेजें। नाम न आने पर हम अपनी पसन्द की कोई पुस्तक भेज देंगे जो बाद में परिवर्तन नहीं की जा सकेगी।

शाश्वत वाणी

३०।९० कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

संरक्षक सदस्य

१. केवल एक सौ रुपये भेजकर शाश्वत संस्कृति परिषद के संरक्षक सदस्य बनिये। यह रुपया परिषद् के पास आपकी धरोहर बन कर रहेगा।

शाश्वत संस्कृति परिषद् का उद्देश्य

विशुद्ध भारतीय तत्त्व दर्शन पर सम्यक् गवेषणा करना तथा उसका प्रचार करना एवं उनके आधार पर राष्ट्र के सम्मुख सभी समस्याओं का सुलझाव प्रस्तुत करना।

संरक्षक सदस्यों की सुविधाएं

१. परिषद् के नवीनतम प्रकाशन तथा आगामी सभी प्रकाशन आप बिना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। नवीन प्रकाशन हैं—१. भारतीय करण एक अध्ययन (मूल्य ८ रु०); तथा २ इतिहास में भारतीय परम्पराएँ (मूल्य १० रुपये)। आगामी प्रकाशन हैं—वर्ण-व्यवस्था तथा प्रजातन्त्र (मूल्य ४ रु०); राष्ट्रीयकरण (मूल्य ४ रु०); ब्रह्मसूत्र हिन्दी विवेचना (मूल्य २५ रु०) एवं अन्य।

२. परिषद् की पत्रिका शाश्वत वाणी आप जब तक सदस्य रहेंगे प्राप्त कर सकेंगे।

३. परिषद् के पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ (सूची इसी अंक में अन्यत्र देखें) आप २५ प्र० श० छूट के साथ प्राप्त कर सकेंगे।

४. जब भी आप चाहेंगे एक मास पूर्व सूचना देकर अपनी धरोहर वापस ले सकेंगे। धन मनीआर्डर द्वारा भेज सकते हैं।

शाश्वत संस्कृति परिषद्

३०।६० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे)-नई दिल्ली-१

भारतीय संस्कृति परिषद् के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं विकास आर्ट प्रिंटर्स शाहदरा-दिल्ली-३२ में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित

नवम्बर, १९७० वर्ष १०—अंक ११ रजि० क्र० ६६९९/६०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणा: रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणी: ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

नवम्बर, १९[illegible] वर्ष १०—अंक ११ रजि० क्र० ६६८९/६०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥

ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।
ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता
प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

सम्पादक
अशोक कौशिक

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/६०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१
फोन : ४७२६७

मूल्य
एक अंक रु० ०.५०
वार्षिक रु० ५.००

सम्पादकीय

देश की बिगड़ती दशा

बिगड़ना और सुधरना प्रगति और विगति की भांति विचार करने के ढंग पर है। पूर्वाभिमुख खड़े मनुष्य के लिए प्रगति पूर्व की ओर चलना है और पश्चिमाभिमुख व्यक्ति के लिए पश्चिम की ओर। इसी कारण देश की अवस्था बिगड़ रही है अथवा सुधर रही है, इसका अनुमान भी उस दिशा से ही लग सकता है जिस ओर विचार करने वाला मुख किये खड़ा है।

जब हम कहते हैं कि देश की दशा बिगड़ रही है तो हम भी अपने ही दृष्टिकोण से कहते हैं। हम किस ओर मुख किये खड़े हैं, यह विचार का मुख्य विषय है।

एक सामान्य नागरिक के विचार से प्रथम बात जो हम चाहते हैं, वह है शान्ति और निर्भयता की अनुभूति और बिना किसी प्रकार की विघ्न-बाधा के अपने निजी कार्यों में लगे रहने की सुविधा। दूसरी बात है विचार करने की पूर्ण स्वतन्त्रता और विचारों को प्रकट कर सकने की क्षमता। तीसरी बात है सामाजिक नियमों में स्थिरता। प्रत्येक व्यक्ति को यह

ज्ञात होना चाहिये कि उसने कौन-कौन से सामाजिक नियमों का उस दिन, अगले दिन, अगले महीने तथा आने वाले दस-बीस वर्ष तक पालन करना है। सामाजिक नियम यदि नित्य बदलते रहे, उन नियमों के अर्थ बदलते रहे और उन नियमों के भंग करने पर मिलने वाले दण्ड बदलते रहे तो जीवन इतना अस्थिर हो जाएगा कि सदा मन में अस्थिरता और अनिश्चितता बनी रहेगी।

सिद्धान्त रूप से यही बातें हैं जो एक सामान्य नागरिक देश में चाहता है और यही बातें भारत में विलुप्त होती दिखाई दे रही हैं। इसी से हम कहते हैं कि देश की अवस्था बिगड़ रही है।

इन अवस्थाओं को बिगाड़ने वाले भी देश में ही हैं। उनके विचार से एक समाज में रहते हुए किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत अधिकार नहीं होते। समाज के सामूहिक अधिकारों का भोग ही एक व्यक्ति कर सकता है। उसके अपने व्यक्तित्व का अस्तित्व एक मिथ्या कल्पना है। इस कारण वे लोग व्यक्ति की प्रत्येक बात को समाज की सुविधानुसार रूप देने में संलग्न हैं। खाना, पहनना, निवास, पूजा-पाठ, मनोरंजन; यहाँ तक कि पति-पत्नी सम्बन्ध तथा पिता-पुत्रों के सम्बन्ध समाज के स्वरूप में उपयुक्त सिद्ध होने चाहिएं।

जहाँ तक शान्ति और निर्भयता का प्रश्न है, वे भी दिन-प्रतिदिन क्षीण होते जा रहे हैं। दिन-प्रतिदिन हत्याएं, डकैतियाँ, बच्चों और स्त्रियों का अपहरण, दूसरों की सम्पत्ति पर अधिकार, भूमि छीनो आन्दोलन इत्यादि काम चल रहे हैं। एकाएक किसी व्यवसाय या उद्योग के कर्मचारी हड़ताल कर देते हैं और नगर के नागरिक मुख देखते रह जाते हैं। जीवन की आवश्यक वस्तुओं का प्राप्त होना भी दुर्लभ हो जाता है। कभी किसी का घेराव हो जाता है, कभी रेलगाड़ियाँ चलनी बन्द हो जाती हैं। कुछ दिन पूर्व बैंकों के कर्मचारियों ने हड़ताल की तो देश का व्यापार ठप्प हो गया। यह तो ठीक है कि सरकार ने कर्मचारियों के सामने सिर झुका दिया और हड़ताल खुल गई, परन्तु देश के एक अरब रुपये से अधिक की रिश्वत देकर। यह रुपया कहाँ से आयेगा? और जहाँ से आयेगा वहाँ पर अभाव उत्पन्न हो पुनः असन्तोष उत्पन्न नहीं करेगा और पुनः हड़ताल नहीं होगी क्या? और जीवन पुनः अस्त-व्यस्त नहीं होगा क्या?

इस समय भारत में भले, शान्ति-प्रिय और न्याय-प्रिय व्यक्तियों के लिये जीवन दिन-प्रतिदिन दूभर होता चला जा रहा है।

इस अनिश्चित और भयावह स्थिति को समझने वाले लोग भी इस देश में हैं। किसी तोड़-फोड़ करने वाले विद्यार्थी से पूछिये तो वह कहेगा कि वह

क्रान्ति उत्पन्न करने का यत्न कर रहा है और इसे वह प्रगति के लक्षण समझता है।

कहीं वर्षा समय पर और ठीक मात्रा में हो जाये तथा किसान मेहनत-मशक्कत से काम करें तो अन्न की कमी पूरी हो जाती है और अन्न का मूल्य कम होने लगता है तो सरकार मूल्य कम होने नहीं देना चाहती। वह महंगे भाव पर स्वयं खरीदना आरम्भ कर देती है। अन्न तथा कपड़े के मूल्यों पर अन्य सब वस्तुओं के मूल्य बढ़ जाते हैं। इन बढ़े हुए मूल्यों के कारण कर्मचारी (सरकारी और दूसरे) वेतन अधिक माँगते हैं। वेतन बढ़ने से सरकारी और अर्द्ध-सरकारी टैक्स बढ़ जाते हैं। इस पर वस्तुओं के मूल्य बढ़ जाते हैं। देश में ऐसे लोग भी हैं जो इस स्थिति को उन्नति के लक्षण मानते हैं।

सन् १९५० से भारत सरकार वस्तुओं के बढ़ रहे मूल्यों पर चिन्ता व्यक्त कर रही है और प्रत्यक्ष रूप में मूल्यों को नियंत्रण में रखने के लिए उपाय कर रही है परन्तु ऐसा हो नहीं पा रहा।

एक सामान्य नागरिक इस अनिश्चित स्थिति को बिगड़ती अवस्था मानता है, परन्तु एक क्रान्तिकारी इसे सुधार की ओर गतिशील अवस्था कहता है।

विचारने की स्वतन्त्रता विलुप्त होती जा रही है। क्योंकि शिक्षा का स्वरूप ऐसा बन गया है कि छात्रों में विचार करने की योग्यता कम होती जा रही है और जो कुछ उनके मस्तिष्क में घुसेड़ दिया जाता है वह उनके विचार की सीमा बन जाती है। ये पढ़े-लिखे लोग न केवल समाज में नेता ही बन रहे हैं, वरन् सरकारी अधिकारी भी; और जब कोई नागरिक इनकी सीमा के बाहर की बात करता है तो वह दण्ड का भागी बन जाता है। इस प्रकार शिक्षा नेताओं और सरकारी अधिकारियों की सहायता से नागरिकों के भी विचार पर लोहे की टोपी चढ़ा रही है।

इसके साथ ही ऐसे कानून बनाये जा रहे हैं कि पूर्ण समाज की विचार-सारिणी को एक समान दिशा दी जायेगी। बच्चों को पढ़ाने वाली पुस्तकें सरकारी आदेश के अनुसार ढाली जा रही हैं और उनको ग़लत कहने वाले तथा उसके विपरीत बात कहने वाले को दण्ड का भागी समझा जा रहा है।

विचारों पर यह प्रतिबन्ध केवल साम्प्रदायिक विषयों पर ही नहीं, वरन् ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, औद्योगिक एवं व्यावसायिक विषयों पर भी है। राज्य की नीति समाजवादी घोषित की जा रही है। इसका अभिप्राय यह है कि व्यक्ति की उद्योग एवं व्यवसाय सम्बन्धी स्वतन्त्रता को छीना जा रहा है।

विवाह तथा उत्तराधिकार सम्बन्धी कानून बदल दिये गए हैं। यह नहीं

कि कोई विवाह अथवा उत्तराधिकार की प्रथा अच्छी है अथवा बुरी है। परन्तु व्यक्ति को स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वह अपना स्वतन्त्रतापूर्वक परिश्रम कर जीविकोपार्जन कर सके और अपनी अर्जित सम्पत्ति का भोग स्वयं कर सके और जिसको चाहे करा सके।

वास्तव में विचार और अर्थव्यवस्था की स्वतन्त्रता ही मानव-स्वतन्त्रता का स्वरूप है। इन दोनों का व्यक्तिगत बातों में प्रयोग व्यक्ति का अधिकार है, परन्तु ऐसे लोग भी हैं जो इसको देने के लिए तैयार नहीं और समाजवादी सरकार ऐसे लोगों की ही सरकार है।

अतः हम अपने विचार से यह मानते हैं और कहते हैं कि भारत की अवस्था बिगड़ रही है। यों तो स्वराज्य के आरम्भ से ही व्यक्तिगत अधिकारों में संकोच होने लगा था, परन्तु जब से इन्दिरा गांधीजी की कांग्रेस सत्ताधारी हुई है तब से तो देश की अवस्था द्रुतगति से बिगड़ने लगी है।

कांग्रेस में दो धड़े बन गए हैं। दोनों में सैद्धान्तिक मतभेद नहीं। कम से कम सार्वजनिक रूप में देश को विदित नहीं। जहाँ तक प्रत्यक्ष है, दोनों धड़े सत्ता के भूखे हैं। दोनों पृथक्-पृथक् दुर्बल हो रहे हैं। यह तो घटना मात्र है कि इन्दिरा गांधी सत्ता पा गयी हैं और कहीं दूसरा धड़ा सत्ता पा जाता तो वह भी वही करता जो इन्दिरा करने पर विवश हुई हैं।

हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि इन्दिरा अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए कम्युनिस्टों के आश्रित हैं और यदि कहीं मोरारजी का धड़ा सत्ता पा जाता तो वह भी दूसरे दलों के आश्रय के बिना जी न सकता; क्योंकि इन्दिराजी सत्ताधीश हैं, इस कारण वह कम्युनिस्टों और धनलोलुप निर्दलियों के आश्रित सरकार चला रही हैं।

मोरारजी देसाई के धड़े को भी साथी तो मिले हैं, परन्तु उन साथियों के मिलने पर वे बहुमत नहीं बना सके। काँग्रेस में भी उनका अल्पमत था और अब अपने साथियों की सहायता से भी वे अल्प मत में हैं।

कारण वही है कि देश में शान्ति, नियमित प्रगति, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, विचार की स्वतन्त्रता और अर्थ की स्वतन्त्रता छीनने वालों का पक्ष प्रबल हो रहा है। जब मोरारजी भाई कांग्रेस में थे तब वह भी इन सुख-सुविधाओं को छीनने वालों के अग्रणी और सहायक थे। संयुक्त कांग्रेस इन स्वतन्त्रताओं का भोग करने वालों की निन्दा करती थी और अब काँग्रेस में फूट पड़ने पर जहां इन्दिरा गांधी तो स्वतन्त्रता छीनने वालों के साथ हो गयी हैं वहां मोरारजी भाई को उन लोगों का आश्रय ढूंढना पड़ा जो व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को विस्तृत करने के पक्ष में हैं। ये

लोग विपुल यत्न करने पर भी संख्या में कम हैं और इनका संसद में कम आने का पाप भी मोरारजी प्रभृति नेताओं के सिर पर ही है। अभिप्राय यह है कि कांग्रेस का यह धड़ा दुर्बल है तो इसी कारण कि स्वराज्यारम्भ से कांग्रेस के दोनों धड़े व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को सीमित करने के गुण गाते रहे हैं।

परिणाम यह हो रहा है कि यह धड़ा सत्तामय हो गया है जो व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का विरोधी है और यही कारण है कि देश की अवस्था बिगड़ रही है।

देश की शान्ति भंग हो रही है। इसका कारण यह है कि सरकार उन लोगों के हाथ में है जो शान्ति भंग करने को क्रान्ति करना मानते हैं और इन शान्ति भंग करने वालों को दंड देना नहीं चाहते। कदाचित् वे इसे एक भला काम समझ शान्ति भंग करने वालों को दंड का भागी नहीं मानते।

भूमि छीनो आंदोलन वाले सभी छोड़ दिए गए हैं। अवैधानिक हड़ताल करने वाले पुरस्कृत किए जाते हैं और सत्ताधारी दल तो संविधान की भी धज्जियां उड़ाने लगा है।

अभी-अभी दो अत्यन्त निकृष्ट उदाहरण सरकार ने प्रस्तुत किए हैं जिसके परिणामस्व रूप अधिक अराजकता बढ़ने की सम्भावना है। एक तो राजाओं के भत्ते सम्बन्धी संशोधन जब सरकार संसद में पारित नहीं करा सकी तो संविधान और संसद को छलने के लिए राष्ट्रपति से एक संदिग्ध धारा का प्रयोग करा कर भत्ते रोक दिये गए। और दूसरी उससे भी गम्भीर घटना हुई है उत्तर प्रदेश में। विधान सभा के अधिवेशन बुलाए जाने के पांच दिन पूर्व ही वहां राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया है।

इस शासन के लागू होने से कांग्रेस के इन्दिरा धड़े को विपक्षियों को रिश्वत देकर अपनी ओर मिलाने का अवसर मिल जाता। किन्तु इसमें इन्दिरा कांग्रेस को सफलता नहीं मिली, विपक्षी दलों का प्रतिनिधिमण्डल राष्ट्रपति से मिला और उन्हें इन्दिरा सरकार की रबड़ की मोहर की उपाधि से विभूषित कर आया। निदान विवश होकर राज्यपाल, केन्द्रीय सरकार और राष्ट्रपति महोदय को अपना निर्णय बदलना पड़ा। सम्भव है कि इस लेख के पाठकों के पास जाने तक पुनः कुछ ले-देकर अथवा जोड़-तोड़कर इन्दिरा यहाँ अपनी सरकार बना ले, परन्तु यह बात तो निर्विवाद है कि राष्ट्रपति शासन लागू करने से विधान सभा के सदस्यों की बिक्री तो आरम्भ हो ही गई थी।

हमारी श्री चरण सिंह से किंचित् मात्र भी सहानुभूति नहीं। वैसे ही जैसे हम कांग्रेस के मोरारजी धड़े की दुर्दशा देख दुःखी नहीं होते। कारण यह कि ये दोनों धड़े अपने ही पापों का शिकार हो रहे हैं। ये दोनों जब सत्तारूढ़ थे तब

व्यक्ति को बौना बना समाज के शिकंजे में जकड़ने में लगे हुए थे। श्री चरण सिंह भी कांग्रेसी थे और समाजवाद की डुग्गी पीट रहे थे। अब समाजवादियों ने उनको वास्तविक स्थिति से अवगत करा दिया है तो किसी को शोक करने की आवश्यकता नहीं।

विचारणीय बात तो यह है कि जो कार्य स्वराज्य-काल के आरम्भ से ही कांग्रेसी कर रहे थे वह व्यक्ति को अकिंचन बना समाज को उसका स्वामी बनाने की थी और अब इन्दिरा धड़े के सत्ताधारी बन जाने से यह बात द्रुतगति से होने लगी है।

व्यक्ति के सब अधिकार शून्य हो रहे हैं। इन अधिकारों को शून्य करने के लिए समाजवाद का आश्रय लिया जा रहा है। यही देश की बिगड़ती अवस्था का द्योतक है। इसी को हम अपनी दृष्टि से अराजकता कहते हैं। राज्य, अभिप्राय यह कि सत्ताधारी दल, जितना भी चाहे व्यक्ति को सम्पुष्ट कर रहा है। राज्य से अभिप्राय देश नहीं। देश में शासक वर्ग ने अपने को देश का नाम दे रखा है। इस शासक वर्ग में राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मंत्रि-मण्डल, मुख्य मंत्री, संसद एवं विधान सभाओं के सदस्य एवं कुछ लाख शासन के कर्मचारी हैं। इनकी संख्या गिनी जाए तो यह पूर्ण देश में चार-पाँच लाख से अधिक नहीं और देश की जनसंख्या है पचास करोड़।

ये चार-पाँच लाख लोग पचास करोड़ पर सत्ता कैसे स्थापित किए हुए हैं, जबकि यह पचास करोड़ की स्वतन्त्रता को शून्य कर अपने अधिकारों में वृद्धि कर रहे हैं? यह इस प्रकार है कि प्रथम तो सरकार ने शिक्षा अपने हाथ में कर रखी है और उस शिक्षा के द्वारा यह भ्रम फैला रखा है कि समाज सर्वोपरि है। व्यक्ति तो समाज में ऐसे हैं जैसे कि किसी दीवार में ईंट, चूना होते हैं।

इसके अतिरिक्त महात्मा गांधी और पण्डित जवाहरलाल के नाम की इतनी धूम मचा रखी है कि उनका नाम लेकर सत्ताधारी अपना उल्लू सीधा किया करते हैं।

तीसरी बात है नैतिक पतन की। व्यक्ति को हीन और दीन बनाने के लिए विषय-वासना में लिप्त कर रखा है। सिनेमाघरों, क्लबों और होटलों के द्वारा वित्तैषणा और सुखैषणा की वृद्धि कर सबको धन का दास बना रखा है। धन पर दिन-प्रतिदिन शासक वर्ग का अधिकार हो रहा है और विषय-वासना से लिप्त जनता शासक वर्ग से सुगमता से क्रय की जा रही है।

संक्षेप में शिक्षा से जन-साधारण को मूर्ख रखकर शासक वर्ग उसे अपने धन

(शेष पृष्ठ २७ पर)

अन्तर्राष्ट्रीय हलचल

श्री आदित्य

पिछले मास भूमंडल युद्ध के कगार पर पहुंच गया था। विश्व की दोनों महान शक्तियां आमने-समने आ गयी थीं। मध्य पूर्व में दोनों के हितों का संघर्ष हो रहा दिखायी देने लगा था।

यर्दन में फ़िलिस्तीनी विस्थापित वहां के राज्य की इच्छा के विपरीत इसराईल और उनके मित्रों को तंग करने पर कटिबद्ध हो गये। उन्होंने एक ही दिन पांच हवाई जहाज़ों में दो सौ से ऊपर यात्रियों को उनके जहाज़ों सहित पकड़कर उन पर अधिकार जमा लिया। इनमें से दो हवाई जहाज़ों को यर्दन के एक रेतीले मैदान में ले जाकर खड़ा कर दिया। यात्रियों को कैद कर लिया और हवाई जहाज़ों को बमों से उड़ा दिया।

सम्भवत: इस अन्तर्राष्ट्रीय डकैती को यर्दन सरकार ने नापसन्द किया और फिर फ़िलिस्तीनी विस्थापितों और यर्दन सरकार में युद्ध छिड़ गया। फ़िलिस्तीनी यर्दन के रहने वाले नहीं। वे प्राय: इसराईल से भागकर वहां आये हैं और यर्दन सरकार का पाप यही है कि उसने उनको इस्लामी भाई समझ अपने देश में आश्रय दिया है।

इन लाखों विस्थापितों ने अपने को संगठित किया है और यर्दन में बैठ इसराईल के विरुद्ध अभियान चलाने लगे हैं। इनके पास तोपें, बन्दूकें, धन और अन्य युद्ध सामग्री भी है। यह इतनी है कि एक समय ये विस्थापित यर्दन सरकार को विवश कर सके थे। कुछ मास हुए इन्होंने यर्दन के शाह को विवश कर दिया था कि अपने सेनाध्यक्ष को पदच्युत कर छुट्टी दे दें। उस समय राज्य में गृह-युद्ध होता-होता बच गया। शाह यर्दन ने इनकी बात मान ली।

इन विस्थापितों के अपने बन्दूकों और तोपों के कारखाने नहीं, परन्तु इनके पास एक संगठित सरकार को चुनौती देने की शक्ति थी और है। यह शक्ति इनके पास रूस से दिये गये शस्त्रास्त्र से प्राप्त हुई है। रूस इनको शस्त्रास्त्र इस

कारण देता है कि यर्दन सरकार रूस के अनुकूल हो जाये ।

यह इस लिए कि रूस इसराईल की सरकार को पसन्द नहीं करता। इसराईल रूस के इस (मध्य पूर्व) क्षेत्र में हितों का विरोधी सिद्ध हो रहा है। एक समय था कि रूस इसराईल का समर्थन करता था। उस समय रूस का विचार था कि एक नन्हा-सा इसराईली राज्य अरब राज्यों में रह नहीं सकेगा। इसे अरबी राज्य ही विनष्ट कर देंगे। वह इसका विरोध कर व्यर्थ में बदनाम होना नहीं चाहता था, परन्तु १९४८, १९५६ और १९६५ के युद्धों में इसराईल ने जब अरबों को बार-बार पछाड़ा तो रूस को प्रत्यक्ष में आकर इसराईल के विरुद्ध खड़ा हो जाना पड़ा। रूस ने अरबों को नवीनतम शस्त्रास्त्र दिये हैं। अपने शिक्षित योग्य व्यक्ति इन अस्त्र-शस्त्रों को प्रयोग करने का ढंग सिखाने के लिए दिये और अब यर्दन को अरबों में सबसे दुर्बल और इसराईल से संधि करने में उत्सुक देख वहाँ के राज्य को बदल देने का प्रयास आरम्भ कर दिया है। फ़िलिस्तीनी विस्थापित रूस से सहायता पाकर शाह यर्दन को राजगद्दी से हटाने का यत्न करने लगे। कुछ मास पूर्व तो वे प्रबल थे और शाह यर्दन ने उनसे सुलह कर ली थी।

अब भिन्न-भिन्न राज्यों के यात्रियों को पकड़ यर्दन की राजधानी अमान में लाकर बंधक के रूप में रखने पर यर्दन इसराईल के और अन्य यूरोपियन तथा अमरीकी राज्यों के आक्रमण का शिकार बनने वाला था। पहले फ़िलिस्तीनी हवाई डाकुओं ने इसराईलियों के अतिरिक्त अन्य को छोड़ देने का विचार बताया और कुछ यात्री छोड़ भी दिये, परन्तु अमरीकी बंधकों में यहूदी जाति के भी थे। इस कारण यूरोपियनों ने विस्थापितों की इस बात को स्वीकार नहीं किया। अतः यर्दन सरकार ने विस्थापितों पर आक्रमण कर दिया। उनके शिविरों तथा गाँवों पर सेना भेज उनका सफ़ाया कर दिया। गृह युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में सीरिया ने भी हस्तक्षेप करना चाहा। इस पर इसराईल ने भी शाह यर्दन को सहायता देने का विचार प्रकट कर दिया। यदि सीरिया अपने टैंक वापिस न बुलाता तो इसराईल भी अपनी सेनाएँ वहाँ भेज देता और जब इसराईल वहाँ सफल होने लगता तो रूस और अरब गणराज्य चुप न रहते। वे भी अपनी सेनायें वहाँ भेज देते और फिर इंगलैंड, फ्रांस, अमरीका और सम्भवतः यूनान और टर्की भी इस समर में सम्मिलित हो जाते। इस प्रकार विश्व-व्यापी युद्ध आरम्भ हो जाता।

ऐसा कहा जाता है कि रूस से संकेत पा सीरिया ने अपनी सेनाएं वापिस बुला लीं और यर्दन की सरकारी सेना ने फ़िलिस्तीनी विस्थापितों का कचूमर निकाल दिया। अरब गणराज्य ने हस्तक्षेप कर दोनों पक्षों में युद्ध विराम करवा

दिया है।

यह समस्या का सुझाव नहीं था। दोनों पक्षों में सुलह कराने के लिए एक सम्मेलन काहिरा में बुलाया था, परन्तु इस समय अरब गणराज्य के राष्ट्रपति नासिर, का देहान्त हो गया और सब बात कुठाली में पड़ गयी है।

दूसरी ओर इसराईल और अरब राज्यों में अस्थायी युद्धबन्दी चल रही है, परन्तु जिस उद्देश्य से यह युद्धबन्दी हुई है, वह उद्देश्य रुका पड़ा है।

युद्धबन्दी के तुरन्त उपरान्त मिस्र ने रूसी सहायता से अपने प्रक्षेपणास्त्रों के अड्डे स्वेज नहर के समीप ले जाने आरम्भ किये तो इसराईल ने इसकी सूचना अमेरिका को दे दी। अमेरिका ने इस बात की जाँच की तो आरोप को सत्य पाया और अरब गणराज्य को कह दिया कि वे अड्डे पीछे ले जायें। इसराईल का कहना है कि जब तक युद्ध-विराम से पूर्व की स्थिति नहीं हो जाती तब तक शान्ति वार्ता नहीं हो सकती।

अरब गणराज्य की सरकार इसका अभी तक उत्तर नहीं दे सकी थी कि नासिर का देहान्त हो गया।

६ नवम्बर तक अस्थायी युद्ध-विराम की संधि है। तब तक मिस्र अपने भीतरी प्रबन्ध को पूर्ण कर इस गम्भीर विषय पर कुछ कह सकेगा अथवा नहीं, कहा नहीं जा सकता।

प्रश्न यह है कि ६ नवम्बर के उपरान्त क्या होगा? इसराईल के प्रधान मन्त्री ने न्यूयार्क में यह वक्तव्य दिया है कि शान्ति-वार्ता तब तक नहीं होगी जब तक युद्ध-विराम से पूर्व की स्थिति बन नहीं जाती। हाँ, यदि अरब गणराज्य चाहे तो नासिर साहब के देहान्त के कारण अस्थायी युद्ध-विराम संधि लम्बी की जा सकती है। श्रीमती गोल्डामायर का कहना है कि यद्यपि यह स्थिति अस्वाभाविक है; इस पर भी इसराईल अनन्त काल तक इसको स्थिर रखने के लिए तैयार है।

अभिप्राय यह कि अनन्त काल तक स्वेज नहर बन्द, इसराईल और अरब गणराज्य की सीमा स्वेज नहर और रूस के युद्ध यन्त्र पड़े-पड़े मोर्चा खा जायें।

इस पूर्ण परिस्थिति में भारत सरकार ने यर्दन में अरब विस्थापितों पर चिन्ता व्यक्त की है, परन्तु पूर्वी पाकिस्तान से विस्थापितों का क्या हुआ? उसके लिए भारत सरकार क्या कर रही है? किसी को ज्ञात नहीं।

ऐसा प्रतीत होता है कि अरब गणराज्य युद्ध विराम संधि को छः नवम्बर से आगे ले जाना ठीक नहीं समझते। इस कारण छः नवम्बर के उपरान्त क्या होता है लोग उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे हैं।

माँ के सत्पुत्रों से

श्री मोहनलाल श्रीवास्तव

□

दरबारी रूपों की समता
छोड़ भाव को एक करो,
छाई विपदा जग-जननी पर
सत्पुत्रो ! मन नेक करो ।।१।।

माना देह जगत् जीवन में
प्राण-वाहिनी होती है,
पर विदेह की पूजा वालो,
देह देय ही होती है ।।२।।

मां के सत्पुत्रों को क्यों फिर
बहकाना आसान हुआ,
कोटि प्राण के रहते-रहते
जननी का अपमान हुआ ?।।३।।

गौ, गंगा, गायत्री, गोधन
वेद पुराण वर्ण-आश्रम,
हिन्दु देश की मिटती रेखा
दक्ष-भाव में तुम विश्रम ।।४।।

द्विपद, चतुष्पद और षटपदी
सिंहध्वज औ तीरंदाजी,
करते-करते युग बीता है
अधम जीत लेते बाजी ।।५।।

यातो तापस के यज्ञों में
छद्म साधु घुस आए हैं
या व्यूहों के अजयी अक्षर
शत्रु-मित्र पढ़ पाये हैं ।।६।।

निर्णायक युद्धों की चिन्ता
कुल कबन्ध पर मत छोड़ो,
युग के महारथी ! लीकों के
रखवारों को मत मोड़ो ।।७।।

वेदान्त दर्शन में त्रैतवाद का प्रतिपादन

वैद्य वाचस्पति श्री गुरुदत्त एम० एस-सी०

[गतांक से आगे]

सूत्रकार त्रैतवाद के विषय में जीवात्मा को इस प्रकार लाये हैं। लिखते हैं :

भोक्त्रापत्तेरविभागश्चेत् स्याल्लोकवत्। (वे०द०—२-१-१३)

भोक्त्रापत्तेः + अविभागः + चेत् + लोकवत् + स्यात्।

भोक्ता होने से विभाग नहीं माना जा सकता। यदि यह कहो तो लोक में होने की बात समझ लें।

इस सूत्र के दो अंश हैं। एक अंश पूर्व पक्ष है और दूसरा अंश उत्तर पक्ष। पूर्वपक्ष यह है कि मनुष्य अन्न का भोग करता है; उससे मनुष्य का जीवन चलता है। अन्न जड़ है, अतः जो मनुष्य भोक्ता है वह भी जड़ हो गया। अन्न से इसका विभाग नहीं किया जा सकता।

सूत्रकार उत्तर देता है कि लोक में हम जैसा देखते हैं वैसा समझ लो। मनुष्य में सिद्धान्ती दो भाग मानता है—एक चेतन (आत्मा) और दूसरा जड़ (शरीर)। अन्न खाता तो है मनुष्य, जिसमें जड़ और चेतन दोनों माने गये हैं, परन्तु बनता है शरीर। इस कारण शरीर जड़ है, परन्तु आत्मा जड़ नहीं।

संसार में हम देखते हैं कि मकान का मालिक मकान के टूटे फर्श के लिये सीमेण्ट और रेत लाता है और मकान में लगाता है। यद्यपि सीमेण्ट इत्यादि को लाता मालिक है, परन्तु इससे बनता मकान है। अतः सीमेण्ट इत्यादि जड़ होने से जड़ वाला मकान बनता है और मालिक बनता-बिगड़ता नहीं।

यही बात मनुष्य की है। इस सूत्र में प्रकट किया गया है कि अन्न है। इससे शरीर बनता है, परन्तु इसको लाने वाला, खाने तथा पचाने वाला जीवात्मा है। इस प्रकार जीवात्मा के पृथक् अस्तित्व का संकेत कर दिया है।

आगे यह कह दिया कि यदि रचना से पूर्व प्रकृति जीवात्मा और परमात्मा को पृथक्-पृथक् न मानें तो सृष्टि-रचना का प्रयोजन ही नहीं रह जाता। यह बात

सूत्र (वे० द०—२-१-१४) में लिखी है और इस सूत्र की व्याख्या हम इस लेख के प्रथम भाग में लिख चुके हैं।

सूत्रकार ने एक युक्ति यह दी है कि जड़, अल्पज्ञ जीवात्मा और सर्वज्ञ परमात्मा इस कार्य जगत् में दिखाई देते हैं। इनको सर्ग-रचना से पूर्व भी मानना होगा। यदि उस समय सब एक ही मानेंगे तो सृष्टि-रचना प्रयोजन रहित दिखाई देगी। यह लेख के पूर्वांश में बता आये हैं।

यहां सूत्रकार एक अन्य युक्ति से जीवात्मा की सत्ता को सिद्ध करता है। वह लिखता है :

इतरव्यपदेशाद्धिताकरणादिदोषप्रसक्तिः ॥ (वे० द०—२-१-२१)

इतर, व्यपदेशात्, हिताकरणादि, दोष, प्रसक्तिः।

(केवल) दूसरे (परमात्मा) का कहने से हित करने अथवा न करने का दोष प्रसक्त होता है। यदि यह कहें कि सब-कुछ परमात्मा ही है तो रावण, कंस, हिटलर इत्यादि अनिष्ट करने वाले और राम, कृष्ण, युधिष्ठिर इत्यादि श्रेष्ठजनों की उपस्थिति से परमात्मा कभी हित करने वाला और कभी अहित करने वाला हो जायेगा। परमात्मा को मूर्ख, धूर्त और दुराचारी इत्यादि बन गया मानना पड़ेगा। अन्यथा दोष, गुण संसार में एक समान माने जाने लगेंगे।

इस कारण परमात्मा मनुष्य में उपस्थित जीवात्मा से पृथक् है। यदि पृथक् नहीं मानेंगे तो मनुष्य के सब दोषपूर्ण कार्य भी परमात्मा के ही माने जायेंगे। अतः इतर (जीवात्मा एवं प्रकृति) को भी परमात्मा मान लेने से हित-अहित करने का दोष परमात्मा को दिया जायेगा।

परमात्मा तथा जीवात्मा के पृथक् पृथक् होने में एक अन्य युक्ति दी है।

कृत्स्नप्रसक्तिर्निरवयत्वशब्दकोपो वा। (वे०द०—२-१-२६)

कृत्स्नप्रसक्तिः, निरवयवत्व, शब्दकोपः, वा।

पूर्ण का जगत् में परिवर्तित हो जाना अथवा निरवयव होना शास्त्र का विरोध होगा।

सूत्रकार कहता है कि यदि रचना से पूर्व एक परमात्मा का होना मान लें तो दो बातें माननी पड़ेंगी। या तो पूर्ण का पूर्ण ही परमात्मा जगत् में परिवर्तित हो गया है अथवा शास्त्र की बात कि वह निरवयव है, का विरोध मानना होगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामी शंकराचार्यजी के विचार वाले लोग व्यास मुनि से पहले भी थे जो यह समझते थे कि जगत् का उपादान कारण भी परमात्मा ही है। सूत्रकार उन्हीं को गलत सिद्ध करने के लिये कह रहा है कि

यदि तो यह मानो कि पूर्ण का पूर्ण परमात्मा ही जगत् में परिवर्तित हुआ है, तब शास्त्र का विरोध होगा। कारण यह कि शास्त्र ने कहा है कि परमात्मा असीम है, परन्तु जगत् सीमित है। असीम सीमित कैसे हो गया? साथ ही परमात्मा के विभाग अथवा अंग नहीं। वह तो एकरस सर्वव्यापक है। अतः परमात्मा ही जगत् में बदला है, अयुक्त है।

सूत्रकार अपने दर्शन ग्रन्थ के दूसरे अध्याय के प्रथम पाद का उपसंहार इस प्रकार करता है—

सर्वधर्मोपपत्तेश्च ॥ (वे० द०—२-१-३७)

च+सर्वधर्मोपपत्तेः।

सबके धर्मों के उपस्थित होने से। सबके धर्मों का अर्थ है परमात्मा और दोनों इतर, जीवात्मा और प्रकृति—इन तीनों धर्मों के जगत् में उपस्थित होने से यह सिद्ध होता है कि इस जगत् के कारण में तीनों का ही योगदान है। इस प्रवचन के आरम्भ में भी सूत्रकार ने (सू० २-१-२ में) कहा था कि दूसरों के भी गुण जगत् में मिलने से उनकी उपस्थिति सिद्ध होती है।

इस अध्याय के दूसरे पाद में प्रकृति का वर्णन किया है। उसमें बताया है कि कैसे प्रकृति में परिवर्तन होते हैं और अन्त में पंचमहाभूत बन जाते हैं। उन पंच महाभूतों के स्वरूप का भी वर्णन है। जब वे बन जाते हैं तब सूत्रकार प्राणी की सृष्टि के विषय में इस प्रकार लिखता है—

समवायभ्युपगमाच्च साम्यादनवस्थितेः ॥
(वे० द०—२-२-१३)

समवायाभि, उपगमात् च साम्यात्, अनवस्थितेः।

सम्पर्क हो जाने से, समीप आ जाने से, समान होने से और अव्यवस्था उत्पन्न हो जाने पर (प्राणी की सृष्टि होती है)।

प्रकृति और जीवात्मा समान अवस्था में होते हैं। दोनों परमात्मा से छोटे हैं और हीन हैं। इनको सूत्रकार ने पहले अध्याय में हीन कहा है और परमात्मा को हीन नहीं माना। अतः दोनों समान हैं। जब ये समीप आ जाते हैं और उनमें सम्पर्क होता है तो प्रकृति में अनवस्था होने के कारण जीवात्मा और प्रकृति मिलकर प्राणी की सृष्टि करते हैं। आगे कहा है—

नित्यमेव च भावात् ॥ (वे० द०—२-२-१४)

और नित्य ही (ऐसा) होने से (सृष्टि रचना होती है)। पूर्व सूत्र में कहा है कि (समवायाभि) सम्पर्क बनने से (उपगमात्) समीप आ जाने से और (साम्यात्) समान होने से और (अनवस्थितेः) अव्यवस्था होने से प्राणी की

सृष्टि होती है। इस सूत्र में कहा है कि ऐसी स्थिति नित्य ही होने से यह होती है, अर्थात् जब-जब वह स्थिति उत्पन्न होती है, तब तब प्राणी की सृष्टि रचना होती है।

कुछ लोग मानते हैं कि मन और बुद्धि जो प्रकृति के रूप में ही हैं वे ही प्राणी में चेतनता का कारण हैं। सूत्रकार ऐसा नहीं मानता। वह कहता है—

अन्तरा विज्ञानमनसी क्रमेण तल्लिङ्गादिति चेन्नाविशेषात् ॥

(वे० द० – २-३-१५)

अन्तरा, विज्ञानमनसी, क्रमेण, तत्, लिङ्गात इति चेत, न, अविशेषात्।

अन्तरा क्रमेण का अभिप्राय है सृष्टि क्रम में। विज्ञान मनसी का अर्थ है बुद्धि एवं मन। तत् लिङ्गात्—उनके लिंगों से (चेतना है)। सूत्रकार का मत है कि ऐसा नहीं इस कारण कि वे अविशेष हैं।

विशेष और अविशेष समझने की बात है। सृष्टि क्रम है—

मूल प्रकृति—महत्—अहंकार—पंचमहाभूत, इन्द्रियाँ इत्यादि। बुद्धि, मन महत् के रूप हैं। ये पंचमहाभूतों के क्रम में नहीं हैं। उनसे पहले हैं। अतः सूत्रकार का कहना है कि चेतन इनके कारण नहीं।

प्रकृति से अहंकार तक क्रम अविशेष कहलाते हैं। पंच महाभूतादि विशेष कहलाते हैं। इससे आगे कहा है—

चराचरव्यपाश्रयस्तु स्यात्तद्व्यपदेशो भाक्तस्तद्भावभावित्वात् ॥

(वे० द०—२-३-१६)

चराचरव्यपाश्रयः—तु—तद्व्यपदेशः-भाक्त-तद्भावभावित्वात्।

चराचर का आश्रय (शरीर) तो गौण है। कहे जाने से कि उसका भाव-अभाव। अर्थात् जन्म-मरण कहे जाने से।

अभिप्राय यह कि चराचर (प्राणियों) का आश्रय शरीर जन्म-मरण के कारण गौण है, अर्थात् वह नष्ट हो जाता है।

नात्माऽश्रुतेर्नित्यत्वाच्च ताभ्यः ॥

(वे० द०—२-३-१७)

न, आत्मा, अश्रुतेः, नित्यत्वात्, च ताभ्यः।

उक्त सूत्र में कहा है कि चराचर प्राणियों का आश्रय शरीर जन्म मरण के विषय में विचार करने पर गौण है।

इस सूत्र में बताया है, परन्तु आत्मा गौण नहीं। वह जन्म-मरण में आता नहीं। इसके जन्म-मरण की बात श्रुति में नहीं कही। ताभ्यः—उनसे (शरीरादि से) मुख्य है। साथ ही लिख दिया है—

ज्ञोऽत एव ।। (वे० द०—२-३-१८)

वही चेतन है । प्राणी में चेतनता इसी के कारण है । एक बात और लिख दी है—

उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् ।।

(वे० द०—२-३-१६)

ऊंच-नीच की योनियों में इस (आत्मा) का आना-जाना होता है । लेख में स्थान सीमित होने के कारण इस विषय के सब सूत्र नहीं दिये जा सकते । केवल एक सूत्र और बताकर लेख समाप्त किया जा रहा है और यह अद्वैतवाद का स्पष्ट खण्डन है । अद्वैतवादी कहते हैं कि यही जीवात्मा जो प्राणी की चेतनता का कारण है, वह सर्वव्यापक परमात्मा है । सूत्रकार इस बात का स्पष्ट खण्डन करता है । सूत्रकार कहता है—

नाणुरतच्छ्रुतेरिति चेन्नेतराधिकारात् ।।

(वे० द०—२-३-२१)

न, अणुः, अतच्छ्रुतेः, इति चेत्, न, इतराधिकारात् ।।

पूर्व पक्ष है यह अणु मात्र नहीं । ऐसा श्रुति कहती है । सूत्रकार उत्तर देता है कि यदि यह कहो तो ठीक नहीं । वहाँ किसी दूसरे का वर्णन है ।

अर्थात् शास्त्र में जहाँ आत्मा को सर्वव्यापक इत्यादि धर्मों वाला माना है, वहाँ परमात्मा के प्रसंग में है, जीवात्मा के प्रसंग में नहीं । जीवात्मा तो अणु मात्र है ।

राजनीतिक दलबंदी

श्री सचदेव

राजनीति में दल तो सदा रहते हैं । इसका कारण यह है कि राजनीति शक्ति, सम्पदा, प्रभुत्व और अमरत्व प्राप्त करने का मार्ग है और इतने बड़े प्रलोभन होते हुए यदि एक से अधिक इनके प्रत्याशी न हों तो विस्मय करने की बात होगी । यह स्वाभाविक ही है कि राजनीति का फल चखने वाले एक से अधिक हों ।

रूस में भी, जहाँ एकदलीय राज्य है, राज्य का स्वाद लेने वाले एक से अधिक हैं । इस कारण वहाँ की उच्च राजकीय संस्था में संयुक्त उत्तरदायित्व का व्यवहार चलाया गया है।

जब एक राजा राज्य करता है तो वह अपने प्रतिद्वन्द्वियों को क्षेत्र से दूर करने के लिए कई उपाय करता है । विष देकर मार डालने से लेकर उसे आजन्म बन्दी बनाए रखने तक सब उपाय क्षम्य माने जाते हैं ।

यद्यपि अब राजाओं का युग नहीं रहा, परन्तु राजनीति तो है । प्रजातन्त्रात्मक पद्धति में भी राजनीति के प्रलोभन और उनको प्राप्त करने के लिए अभिलाषाएं तथा प्रयत्न उसी प्रकार चलते हैं जैसे किसी भी युग में चलते थे ।

भारत में सन् १९४७ से ठीक अर्थों में प्रजातन्त्रीय पद्धति चली है और तब से ही राजनीतिक अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए वैसे ही उपाय किए जा रहे हैं जैसे कि औरंगजेब के काल में अथवा उससे भी पहले अशोक और चन्द्रगुप्त के काल में किये जाते थे ।

लोकपूज्य श्री पण्डित जवाहरलालजी के काल में गांधी की हत्या से लेकर श्री टण्डनजी के कांग्रेस से निकाले जाने तक, सब प्रकार के उपाय विरोधी प्रतिद्वन्द्वियों को क्षेत्र से बाहर करने के लिए किये गए ।

झूठ, दगा, फरेब, चोरी, डाके और जो कुछ भी मानव मस्तिष्क विचार कर सकता है, सब उपाय किये गए हैं जिससे देश में एक दल सत्ताधीश रह सके

और फिर उस दल में एक व्यक्ति प्रधान मन्त्री ही नहीं, वरंच देश का सर्वेसर्वा बना रह सके।

वहाँ स्थानाभाव के कारण उन सब घटनाओं और वक्तव्यों का उल्लेख नहीं किया जा सकता। जो लोग देश में राजनीति की प्रगति को कुछ भी ध्यान से देखते रहे हैं उनके सामने यह सब-कुछ आ चुका है। इस समय भी जब देश में दलों की भरमार है तो यह बात सूर्य के प्रकाश के समान प्रत्यक्ष है कि राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता अति उग्र रूप में यहाँ विद्यमान है।

जो कुछ सन् १९६९ में श्रीमती इन्दिरा गांधी और मोरारजी भाई में हुआ, वह किसी से छिपा नहीं। जो कुछ प्रधानमन्त्री इन्दिराजी ने संजीव रेड्डी से किया, वह भी छिपा नहीं। प्रायः सब राज्यों में जो कुछ हो रहा है, वह प्रत्यक्ष ही है। पंजाब क्या और महाराष्ट्र क्या? तमिलनाड क्या और कश्मीर क्या? कोई भी तो राज्य ऐसा नहीं, जहाँ दलबदलू नहीं अथवा जहाँ प्रतिद्वन्द्वी एक-दूसरे का गला दबाने के लिए तैयार नहीं।

अभी-अभी उत्तर प्रदेश में एक नाटक खेला गया है। इस नाटक की कहानी तो पुरानी ही है। एक जाट नेता त्रिपाठियों और गुप्ताओं के नेतृत्व से ऊबकर बागी हो गया था। उनके नेतृत्व में दोष यही था कि वे एक जाट को राज्य का मुख्य मन्त्री बनने के योग्य नहीं समझते थे और जाट नेता के मन में भी महत्वाकांक्षा थी। वह पण्डित नेहरू, पण्डित पन्त, त्रिपाठी और बहुगुणा के कारण पूरी नहीं हो सकी थी।

संघर्ष का रूप सन् १९६७ में प्रत्यक्ष हुआ। तब वह जनसंघ, जो अधिक संख्या में बनियों का ही दल है, चंगुल में फंस गया और उन बनियों के कन्धों पर बन्दूक रख वह चालीस-पचास से बढ़कर ८९ की शक्ति प्राप्त कर बैठा। परन्तु इससे अधिक के लिए जनसंघ ने इस जाट नेता को अवसर नहीं दिया। अतः विधान सभा भंग हुई और फिर नये निर्वाचन हुए। इस बार इस महानुभाव की महत्वाकांक्षा और भी अधिक हो चुकी थी और इसने जनसंघ को अस्वीकार कर कांग्रेस की ओर दृष्टि दौड़ायी। उसका विचार था कि वह स्वयं कांग्रेस और महात्मा गांधी का चेला है, अतः वहाँ उसकी महत्वाकांक्षा पूर्ण हो सकेगी। उसे भगवान ने अवसर दिया। कांग्रेस में फूट पड़ गयी और दो धड़े हो गए। एक धड़े से जाट महोदय ने संधि कर ली परन्तु राजनीति में सामान्य रूप में उपस्थित प्रलोभनों के भोग पर झगड़ा हो गया उसे इस कांग्रेस ने, जिसे वह प्रयोग करना चाहता था, अपने कन्धे से उतार भूमि पर पटक दिया।

कहते हैं कि जाट नेता को अपना स्थान समझ आ गया है। इसका निश्चय

तो भविष्य बताएगा। अभी भी निजी महत्वाकांक्षाओं का संघर्ष है और राजनीति जलती पर तेल डालने वाली स्थिति है।

यह तो एक उदाहरण है। वास्तविक बात यह है कि इस प्रतिद्वन्द्विता में कष्ट जनसाधारण को है। सरकार का शासन महंगा और महंगा हो रहा है। हड़तालें होती हैं और सरकार का अपना पैदा किया यह भूत उसको ही आंखें दिखाता रहता है। परिणामस्वरूप प्राय: राज्यों और केन्द्रों का भी बजट घाटे में चल रहा है। उस घाटे को पूरा करने के लिए सरकार नोट छाप-छापकर भुगतान करती है अथवा टैक्सों को बढ़ा-बढ़ाकर काम निकाल रही है।

एक बात सरकार और कर रही है। वह यह कि समाज के विचारशील मध्यम श्रेणी के घटकों को विचार करने का अवसर ही नहीं देती। सरकार अपने कार्य-क्षेत्र को विस्तार देकर सरकारी सेवकों की संख्या बढ़ा रही है।

सेवक वर्ग तो विचार करने का अवसर ही नहीं रखता। इस अवसर के अभाव में विचार करने की सामर्थ्य भी शून्य हो जाती है। यह प्रकृति का विधान है कि जिस अंग का प्रयोग छोड़ दिया जाये वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार सेवक वर्ग विचारशील नहीं रहते। सरकार प्रतिद्वन्द्विता को नि:शेष करने के लिए सेवक वर्ग में पूर्ण समाज को ले आना चाहती है। यह है समाजवाद का प्रभाव।

परन्तु इससे भी प्रतिद्वन्द्विता मिटेगी नहीं। हमने बताया है कि रूस जैसे समाजवादी राज्य मे भी प्रतिद्वन्द्विता विद्यमान है। यह सत्ता के राज्यों में और प्रजातन्त्रात्मक राज्यों में एक समान विद्यमान रहती है। इस प्रतिद्वन्द्विता में प्रजा पिसती है। इस प्रतिद्वन्द्विता को दूर करने के लिए एक उपाय प्रतिद्वन्द्वियों को मोल लेना है। उनका दाम चुकाया जाता है राज्य के साधनों से और राज्य के साधन प्रजा के साधन हैं। अत: प्रजा पर बोझ बढ़ता है।

जब यह स्थिति है तो प्रश्न उपस्थित होता है कि इसे दूर किस प्रकार किया जाए? दूर करने का एक ही उपाय है। वह है धर्म-व्यवस्था को बल देना। धर्म-राज्य में अस्वस्थ प्रतिद्वन्द्विता नहीं रहेगी। प्रतिद्वन्द्विता तो तब भी होगी, परन्तु तब उसमें धोखाधड़ी, झूठ, फ़रेब, रिश्वत, डकैती, बन्दीखाने अथवा हत्याएं नहीं होंगी। तब परिश्रम, सत्य एवं न्यायाचरण, धैर्य और सन्तोष से सफलता और असफलता को स्वीकार किया जायेगा।

धर्म के व्यवहार में राजनीति में दो ही दल रह जायेंगे। वर्तमान युग के बहुसंख्यक दल गत राज्यों के स्थान प्रत्येक देश, राज्य, समाज एवं संस्था में दो ही दल रह जायेंगे। दल होंगे धर्म-युक्त अथवा अधर्म-युक्त दल। इनके नाम भले

ही कुछ हों, परन्तु जब दो दल होंगे तो एक धर्म-युक्त व्यवहार वाला राज्य होगा और एक अधर्म-युक्त राज्य होगा।

कुछ धूर्त अथवा मूर्ख लोग कहते हैं कि धर्म तो कई हैं और इसका निर्णय कई प्रकार से किया जाता है। उनको भय है कि धर्म-अधर्म के नाम पर दलों का विभाजन हुआ तो राज्य में जितने लोग होंगे उतने ही दल हो जायेंगे।

ऐसा है नहीं। धर्म एक अति सरल व्यवहार है। इसके पहचानने में और फिर उस पर आचरण करने में इतनी सरलता हो जाती है कि न तो नेताओं को अपनी बात समझाने में छल-कपट की आवश्यकता रहती है और न ही सामान्य नागरिक छला जा सकता है।

यों तो कोई भी विषय लो। उसमें दो ही पक्ष होते हैं। हाँ, अथवा न। जहाँ हाँ और न के बीच का मार्ग ढूँढने का यत्न किया जायेगा वहाँ अनेक मार्ग दिखाई देने लगेंगे और अनेक दल बन जायेंगे।

वैदिक धर्मशास्त्र में यह बात स्वीकार की गई है कि सामाजिक धर्मों में केवल पाँच मुख्य बातें ही हैं और वे इतनी सरल और सीधी हैं कि उनके विषय में धर्म-अधर्म में निर्णय करना अति सुगम है।

ये पाँच सामाजिक धर्म हैं—सत्य बोलना, चोरी न करना, शौच, इन्द्रियों पर नियन्त्रण और क्रोध न करना।

जहाँ तक सामाजिक व्यवहार का सम्बन्ध है, कोई भी ऐसी बात नहीं जो इनमें नहीं आ जाती। यत्न करिए किसी ऐसे व्यवहार की कल्पना की जो सामाजिक हो और फिर इनसे बाहर हो।

हम राजनीति के विषय की चर्चा कर रहे हैं। राजनीति समाज का विषय है, अतः इसमें सामाजिक धर्म-अधर्म का चलन है। हमारा यह सुविचारित मत है कि राजनीति में उक्त पाँच धर्मों के अतिरिक्त अन्य कोई नियम नहीं। अतः हमारा कहना है कि राजनीति में दो दलों की ही आवश्यकता है धर्म के पक्ष में अथवा अधर्म के पक्ष में।

इनके नाम दैवी एवं आसुरी, दक्षिण एवं वामपंथी, नियन्त्रित अथवा स्वतन्त्र (controlled or free) समाज हो सकते हैं। अथवा कुछ अन्य नाम भी रखे जा सकते हैं; इस पर भी दल दो ही हो सकते हैं—धर्मयुक्त अथवा अधर्म युक्त।

शेष जितने भी दल हैं, वे इन दो मार्गों के बीच का मार्ग ढूंढने में बनते हैं और बीच के मार्ग ढूंढे जाते हैं जब या तो आचरण करने वाले नेता अपने को

(शेष पृष्ठ ३९ पर)

माण्डूक्य उपनिषद्

□

श्री प्रभाकर

ग्यारह प्रख्यात उपनिषदों में माण्डूक्य आकार में सबसे छोटा उपनिषद् ग्रन्थ है। अतः उपनिषद् शास्त्रों का अध्ययन करते समय सर्वप्रथम इस पर दृष्टि जानी स्वाभाविक है।

इसमें केवल बारह मन्त्र हैं। इससे बड़ा ईशावास्योपनिषद् है। उसमें १८ मन्त्र हैं।

आकार में छोटा होने पर भी इस उपनिषद् ने भारतवर्ष में एक बहुत बड़े वाद को जन्म दिया है। श्री गौड़पादाचार्य और तदनन्तर इनके पर-शिष्य श्री स्वामी शंकराचार्य ने अपने अद्वैतवाद की भित्ति इसी उपनिषद् पर खड़ी की है।

श्री स्वामी गौड़पादाचार्यजी ने इसी उपनिषद् के आधार पर अपनी २१५ कारिकाएं लिखी हैं और वे कारिकाएँ शंकर के अद्वैतवाद का आधार बताया जाता है।

श्री स्वामी शंकराचार्य के शिष्य श्री सुरेश्वराचार्यजी ने अद्वैत मत के इन दोनों प्रतिपादकों के विषय में इस प्रकार लिखा है—

एवं गौडैर्द्राविडैर्नः पूज्यैरर्थः प्रभाषितः।

अज्ञानमात्रोपाधिः सन्नहमादिदृगीश्वरः॥

अर्थात्—जो परमात्मा अज्ञानोपाधिक होकर अहंकार आदि का साक्षी हुआ है, उस तत्त्व का गौड़ देश और द्रविड़ देश के आचार्यों ने वर्णन किया है।

इस प्रकार जीव को माया से आच्छादित परमात्मा ही सिद्ध करने वाले उक्त द्रविड़ निवासी श्री स्वामी शंकराचार्य और उनके दादा गौड़ देश-निवासी गुरु गौड़पादाचार्य को ही श्रेय दिया है।

हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि माण्डूक्य उपनिषद् सबसे छोटा होते

हुए भी एक ऐसे मत को जन्म देने का श्रेय रखता है जिसने भारत देश में हिन्दू समाज के प्रत्येक घटक पर प्रभाव डाला है।

यह उपनिषद् अथर्ववेद में ब्राह्मण भाग के अन्तर्गत है। अद्वैत विचार तो पहले भी रहा होगा। यह सम्भव प्रतीत होता है। यह तो एक सनातन प्रश्न मानव-मस्तिष्क के समक्ष रहा है कि 'वह क्या है?' इस प्रश्न का उत्तर अनेक प्रकार से दार्शनिक देते रहे हैं और अद्वैत विचार भी इसी प्रश्न का एक उत्तर है।

परन्तु इस विचार को एक वाद के रूप में उपस्थित करने वालों में गुरु गौड़पादाचार्यजी और उनके पर-शिष्य श्री स्वामी शंकराचार्यजी प्रमुख हुए हैं।

अतः माण्डूक्य उपनिषद् के अध्ययन से अद्वैतवाद का भी विस्तृत अध्ययन होगा। अर्थात् परमात्मा ही जीव है, की विवेचना हो जाएगी। हमारा विचार है कि श्री गौड़पादाचार्यजी की कारिकाओं के विषय में भी यत्र-तत्र निरीक्षण किया जाए। तभी इस उपनिषद् का अध्ययन भली भांति हो सकेगा।

उपनिषद् तो सरल भाषा में और सरल भावयुक्त ही है, परन्तु इस पर अद्वैतवाद का भवन बहुत विस्तृत और उलझा हुआ निर्माण किया गया है। इस कारण अध्ययन उपनिषद् के आकार के विचार से बड़ा हो जाना स्वाभाविक ही है।

उपनिषद् का प्रथम मन्त्र है—

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं, भूतं भवद् भविष्यदिति
सर्वमोंकार एव, यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एवं ॥

ओं-इति-एतद् अक्षरं-इदं-सर्वं तस्य उपव्याख्यानं-भूतं-भवत् भविष्यत् इति सर्वं ओंकार एव। यत् च अन्यत् त्रिकालातीतं तदपि ओंकार एव ॥

यह जो कुछ है। ओं (परमात्मा) अविनाशी ही है। सब-कुछ उसी का उपव्याख्यान है। व्यतीत काल, वर्तमान काल और भविष्य काल में यह जो था, है, अथवा होगा; सब ओंकार ही है। जो तीनों कालों से अतिरिक्त है, वह भी ओंकार ही है।

मन्त्र स्पष्ट है। इसकी व्याख्या आगे चलकर करेंगे।

(क्रमशः)

डॉ० खुराना की खोज

□

श्री गुरुदत्त

भारत में उत्पन्न, परन्तु अमेरिकन नागरिक डॉ० हर गोविन्द खुराना ने एक ऐसी वस्तु खोज निकाली है, जिसने नये युग के वैज्ञानिकों में एक विशेष उत्सुकता एवं कल्पना को जन्म दिया है। यह खोज जीवन-रहस्य को ढूंढते हुए की गयी है।

इस खोज ने संसार के, विशेष रूप में भारत के राजनीतिक नास्तिकों के मन में एक विशेष प्रकार की आशा का स्फुरण किया है। एक कम्युनिस्ट ने जब दैनिक समाचारपत्रों में पढ़ा कि 'जीन' का निर्माण एक परीक्षण नली में सम्पन्न किया गया है तो वह कूद पड़ा। वह महाशय समझ गये कि डाक्टर खुराना ने खुदा को दाढ़ी से पकड़ लिया है और अब वे जब, जहाँ, उससे जैसे मनुष्य चाहेंगे, बना लेंगे। कदाचित् यह और इसके परिवार के नास्तिक यह समझे हैं कि वह दिन समीप ही है जबकि वे स्वतन्त्रता की कूक लगाने वाले मानवों के स्थान कम्युनिज्म के शिकंजे में रहने वाले मानव-पशु इच्छानुसार निर्माण कर सकेंगे।

हमारे मन में भी डाक्टर साहब के अन्वेषणों से कौतूहल तो उत्पन्न हुआ है, परन्तु मस्तिष्क पहले से अधिक ही उलझता प्रतीत हुआ है। सृष्टि के आदि काल से प्राणी क्या है, इस बात की खोज चल रही है। यह खोज काल व्यतीत होने के साथ अधिक और अधिक जटिलता की ओर ही जाती प्रतीत हो रही है।

इस खोज में दार्शनिकों ने भी अपना बल लगाया है और वे लोग एक स्थान पर जाकर 'नेति-नेति' कह मौन हो गये हैं।

अब भौतिक विज्ञान के विद्वान इस खोज में काम कर रहे हैं। यह खोज तब से आरम्भ हुई, जब शरीर में उपस्थित पदार्थों तथा शरीर से उत्पन्न पदार्थों का रसायनात्मक विश्लेषण आरम्भ हुआ। यह कहा जा सकता है कि जब से Bio-chemistry में काम होने लगा है।

एक समय एक वैज्ञानिक ने अपनी परख नली (test tube) में (पेशाब में

उपस्थित एक पदार्थ) यूरिया का निर्माण किया तो वह बोल उठा था कि उसने जीवन के रहस्य की प्रथम कड़ी पकड़ ली है।

ख़ैर, यह तो पुरानी बात है। अब तो डाक्टर साहब ने सत्य ही जीवन-तत्त्व की ओर एक लम्बा पग उठाया है। हम अपने पाठकों को इस पग के विषय में यथासम्भव समझाने का यत्न करेंगे। हम यह भी यत्न करेंगे कि भाषा अधिक सरल हो जिससे सामान्य व्यक्ति भी इस समस्या को समझ सके।

भारतीय दार्शनिकों ने प्राणी में दो पदार्थों का समावेश माना है—जड़ शरीर और चेतन आत्मा। वर्तमान भौतिक विज्ञानवेत्ता शरीर को ही सब-कुछ समझ पूर्ण प्राणी की खोज में जा रहे हैं। इन वैज्ञानिकों का यह प्रयास स्तुत्य है। ये शरीर के विश्लेषण में लीन हैं। विश्लेषण से जब ये अन्तिम पदार्थ पा जायेंगे तब संश्लेषणात्मक कार्य आरम्भ होगा। यों तो विश्लेषण से जब जिस भी वस्तु को पा जाते हैं, वहाँ से संश्लेषण आरम्भ करते हैं और अभी तक वैज्ञानिक प्रायः सब विश्लेषणों को पलटकर संश्लेषण करने में सफल होते रहे हैं।

एक सामान्य उदाहरण लें तो बात स्पष्ट हो जायेगी। जल का विश्लेषण किया गया तो इसमें दो प्रकार के वायवी पदार्थ मिले पाये गये। अब संश्लेषण किया गया। इन वायवी पदार्थों को मिलाकर जल का निर्माण कर लिया गया। इसी प्रकार ये विश्लेषण और संश्लेषण करते हुए जड़ पदार्थों के रहस्य को जानने का यत्न करते जा रहे हैं।

जड़ पदार्थों के विश्लेषण में वे चले एक पदार्थ से। पदार्थों से रासायनिक यौगिक (chemical compound), रासायनिक यौगिकों से रासायनिक तत्त्व, रासायनिक तत्त्व से रासायनिक अणु (chemical atom), रासायनिक अणु से इलैक्ट्रोन, प्रोटोन और न्यूट्रोन। इनसे ताप और प्रकाश (ऊर्जा)।

इस प्रकार जड़ की खोज में वे गली के बन्द मुहाने पर पहुँचकर अब जन्तु की खोज में चल पड़े हैं। इस खोज में शरीर से कोषिका (living cell), कोषिका से केन्द्रिका (nucleus), केन्द्रिका से क्रोमोज़ोम्स (chromosomes) और फिर क्रोमोज़ोम्स में डी० एन० ए० (डी-आक्सरिबोन्यूक्लिक एसिड) (deoxyribonucliec acid) तक चले गये हैं।

क्रोमोज़ोम्स सामान्य क्षुद्र बीन में दिखायी नहीं देते। केन्द्रक में क्रोमोज़ोम्स ऐसे भरे रहते हैं जैसे कि चटनी में मिर्च-मसाले। जब कोषिका में विखण्डन (fission) होने लगता है तब ये क्रोमोज़ोम्स लम्बे-लम्बे सूत्रों की भाँति होकर कुण्डलियाँ बना लेते हैं। क्रोमोज़ोम्स में चार प्रकार के यौगिक होते हैं—
(१) histane (२) weight protein (३) deoxyribonucliec acid

(D.N.A.) और (४) ribonucliec acid (R.N.A.)

प्रत्येक क्रोमोज़ोम्स में कई सौ से कई हज़ार तक टुकड़े होते हैं। ये टुकड़े जीन कहलाते हैं। यह देखा गया है कि कोषिका विखण्डन से पूर्व प्रत्येक जीन अपने जैसा एक जीन उत्पन्न कर देता है और कोषिका विखण्डन के समय आधी संख्या में जीन एक ओर हो जाते हैं और आधे दूसरी ओर। तदनन्तर दो कोषिका बन जाती हैं।

कहने का अभिप्राय यह है कि खोज का क्रम इस प्रकार हो गया है।

जीवित प्राणी का शरीर→कोषिका→केन्द्रिका→क्रोमोज़ोम्स→जीन।

एक क्रोमोज़ोम में जीन की संख्या प्रत्येक जन्तु की कोषिका में अपनी-अपनी होती है।

उदाहरण के रूप में एक प्रकार के फलों के कीड़ों के केन्द्रक में तीन हज़ार के लगभग जीन होते हैं और मनुष्य के केन्द्रक में इससे सौ गुणा अधिक होते हैं, अर्थात् लाखों की संख्या में होते हैं।

ये जीन क्रोमोज़ोम्स में एक डाल के साथ लगे फलों की भांति गुच्छों में होते हैं। इन जीन की संख्या और प्रकार पर उस प्राणी के गुणों का विकास होता है।

जिस समय कोषिका में विखण्डन होने लगता है तो उस समय प्रत्येक जीन अपने जैसा जीन बना लेता है। यह कहा जाता है कि जीन अपने चारों ओर के द्रव्य में से अपने जैसे रासायनिक तत्व एकत्रित कर लेता है और इस प्रकार एक केन्द्रिका में कोषिका विखण्डन के समय दुगुने जीन हो जाते हैं। तब केन्द्रिका में विभाजन होता है और तदनन्तर कोषिका में होता है और एक के दो कोषिका बन जाते हैं।

यह कहा गया है कि जीन में ही सामर्थ्य है कि यह अपने जैसा जीन रासायनिक तत्वों से निर्माण कर सकता है।

अतः जब डॉ० खुराना ने यह बताया कि उन्होंने अपनी परीक्षण नली में बिना किसी जीन के जीन-निर्माण किया है तो वैज्ञानिक की यह आशा युक्तियुक्त ही प्रतीत होती है कि जब जीन परीक्षण नली में बनेंगे तो न केवल प्राणी के स्वभाव का निर्माण परीक्षण नली में हो सकेगा, वरंच नये प्राणी भी निर्माण किये जा सकेंगे। अब यह भविष्य के गर्भ में है कि यह सीमा भी भ्रम ही तो नहीं।

डॉ० साहब ने कहा है कि डी० एन० ए० के एक अणु अर्थात् जीन में चार रासायनिक द्रव्य होते हैं—(१) actinin (२) gnanin (३) thiamin (४) cytocin।

इन चारों द्रव्यों के अणुओं के विशेष प्रकार से संश्लेषण करने पर नया जीन बनता है।

डाक्टर साहब ने यीस्ट, एक प्रकार के (enzyme) के कोषिका के जीन का निर्माण किया है। इसमें केवल ७७ न्यूक्लोराइड होते हैं। न्यूक्लोराइड का अभिप्राय है डी० एन० ए० की एक शाखा। यीस्ट में एक न्यूक्लोराइड पर जीन का क्रम विदित था और डाक्टर साहब ने रासायनिक तत्त्वों के अणुओं को इस क्रम में जोड़ दिया और यीस्ट का जीन बन गया।

परन्तु इस क्रिया में यह क्रिया एक दूसरे 'ऐंजाइम लाइगेज़' से कराई गई है। लाइगेज़ भी एक जीवित कोषाणु है और यीस्ट से भिन्न है। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ पर प्रकृति का कुछ रहस्य है।

कुछ भी हो, यह प्राणी के शरीर-निर्माण का एक बहुत ही क्षुद्र-सा अंग है। प्राणी के शरीर के निर्माण के उपरान्त प्राणी-निर्माण हुआ है अथवा नहीं, यह तो अभी देखना है।

हमें भय है कि यह भी कहीं यूरिया निर्माण की भाँति अधूरा कृत्य हो न हो। इस निर्माण के उपरान्त भी यदि शरीर अनात्ममय ही बने तो समस्या ज्यों की त्यों ही रहेगी।

कदाचित् यह तो वही बात सिद्ध होगी जो भगवान् ने गीता में कही है—

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥ (भ० गी०—१५-८)

अर्थात्—जब नया शरीर बन जाता है तो आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर नये में ऐसे आ जाता है जैसे कि वायु के साथ गन्ध एक मकान से दूसरे मकान में आ जाती है। इस नये शरीर में आत्मा आयेगी अथवा नहीं, विचारणीय है।

(पृष्ठ ८ का शेष)

और अन्य प्रलोभनों से सदा अपने अनुकूल रखने में यत्नशील हो रहा है और जनता स्वेच्छा से फाँसी के तख्ते पर चढ़ती हुई फाँसी के फंदे को गले में डालने जा रही है।

हम इसे बिगड़ती हालत मानते हैं और ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो इसे सुधार और प्रगति का नाम देते हैं।

हमें ऐसा अनुभव हो रहा है कि जनता कम्युनिज्म रूपी फाँसी के फंदे में गर्दन डाल जब लटकने लगेगी तो पश्चात्ताप करेगी। किन्तु तब सब-कुछ उसकी सामर्थ्य की सीमा के बाहर होगा; उस फंदे से छूटने के उपाय निरर्थक सिद्ध होंगे।

आत्मावलोकन की आवश्यकता

श्री अनिल कुमार

[संघ अथवा जनसंघ के प्रमुख-पत्र पांचजन्य में गुरदासपुर संसदीय मध्यावधि निर्वाचन में जनसंघ की हार पर सुयोग्य सम्पादक ने आत्मावलोकन की ओर संकेत किया है । आत्मावलोकन का ऐसा अवसर अभी आया हो ऐसी बात नहीं। संघ के पैंतालीस वर्ष के और जनसंघ के बीस वर्ष के जीवन में अनेक अवसर आए हैं। किन्तु क्या कर्णधारों ने कभी इसकी आवश्यकता को अनुभव किया ? अथवा क्या भविष्य में करेंगे ? इन्हीं विचारों को यहाँ विस्तार से लिपिबद्ध किया गया है ।

—सम्पादक]

दीपावली के शुभ अवसर पर अपने घर का लेखा-जोखा करने के साथ-साथ देशवासियों को चाहिए कि वे राष्ट्र की अवस्था का भी मूल्यांकन करें। स्वाधीनता के तेईस वर्ष बाद भी हम देखते हैं कि भारत में शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, चारित्रिक, नैतिक, आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक आदि सभी क्षेत्रों में पतन हुआ है। गद्दारी, दगा, फरेब, अपहरण, चोरी, डाके, आगजनी, खून, कुनबापरवरी, टैक्स चोरी, रिश्वतखोरी, फिरकापरस्ती तो आम बात बन गई है। व्यापार ठप्प है । महंगाई के कारण जीवन-स्तर गिर गया है । दवाखानों में रोगी बढ़ रहे हैं तो बाजार में औषधियों की कीमतें आकाश छू रही हैं। गाँव उजड़ रहे हैं। गरीबों में धर्म-परिवर्तन जोरों पर है। स्वार्थी-अवसरवादी पूंजीपतियों के शोषण व कम्युनिस्टों के प्रचार के कारण श्रमिक वर्ग देशद्रोही बन गया है। इतना सब देखने-सुनने व अनुभव करने के बावजूद भी देश को इस पतन के गर्त में ढकेलने वाले खानदान की विदेशियों व राष्ट्रद्रोहियों द्वारा की जा रही प्रशंसा के प्रवाह में हम बहे जा रहे हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में ऐसी अराजकता विद्यमान है जो कदाचित् कौरवों के राज्य में भी नहीं थी । (कारण यह कि कौरवों का राज्य

केवल अधर्मी था, पर आज का राज्य अधर्मी होने के साथ-साथ निधर्मी व विधर्मी भी है।) लेकिन जिन परिस्थितियों ने अराजकता को बढ़ावा दिया वे महाभारत काल व वर्तमान काल में साँझी हैं। उस समय पांडवों द्वारा पग-पग पर की गई मूर्खता ही कौरवों की वृद्धि में सहायक बनी। पांडवों द्वारा अवसरोचित व्यवहार न रखने के कारण ही भले-बुरे, शक्तिशाली व शक्तिहीन सभी कौरवों के समर्थक बने। परिणामस्वरूप बड़ी ही कठिनाई से कौरवों को परास्त किया जा सका जिसमें कौरव और पांडव दोनों वंशों का पूर्ण विनाश हुआ।

अतीत में यह पक्ष कौरवों और पांडवों के थे। आज राष्ट्रवादियों व अराष्ट्रवादियों के हैं। इस शताब्दी के आरम्भ से ही यहां अराष्ट्रियों को राष्ट्रवादियों पर अधिमान मिला। इसमें कारण थी राष्ट्रवादियों की मानसिक दुर्बलता एवं अंग्रेज़ी शिक्षा से बनी हुई विकृत बुद्धि। जहाँ अराष्ट्रियों को विदेशी शासन का समर्थन व संरक्षण प्राप्त था वहाँ राष्ट्रवादी इस तथ्य को जानते हुए भी उस व्यक्ति के सहायक बने जो हिन्दुओं के छद्मवेष में अराष्ट्रियों का मसीहा था। कांग्रेस के भीतर राष्ट्रीय व अराष्ट्रियों के बीच संघर्ष आरम्भ से ही चला आ रहा है। राष्ट्रवादी बहुसंख्या में होने पर भी उनकी मानसिक दुर्बलता के कारण ही वे गांधीजी के सम्मुख झुकते गये, जिसके परिणामस्वरूप अराष्ट्रीय तत्वों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गयी। जब तक सरदार पटेल जीवित थे, वे ही कांग्रेस के व कांग्रेस में राष्ट्रवादी तत्वों के सर्वेसर्वा थे। लेकिन वे भी गांधी के प्रति दुर्बलता के रोग से ग्रसित थे। १९४६ में अधिकांश सदस्य श्री पटेल को ही कांग्रेस-अध्यक्ष बनाना चाहते थे, लेकिन गांधी द्वारा जवाहरलाल के पक्ष में सम्मति देने के कारण वे मैदान से हट गये। यदि श्री पटेल दृढ़ मन से चुनाव लड़ते तो वे निश्चित रूप से जीत जाते व भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री बनते तथा आज का भारत सर्वथा भिन्न ही होता। भारत में पिछले तेईस वर्ष से चल रहे विनाश में श्री पटेल की अन्ध स्वामी-(गांधी)-भक्ति ही कारण है।

राष्ट्रवादियों को दूसरा मौका सन् १९४८ में मिला जब सरदार पटेल ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघ चालक के नाम पत्र में लिखा कि "राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ वाले अपने देश-प्रेम को कांग्रेस के साथ मिलकर ही निभा सकते हैं, अलग होकर या विरोध करके नहीं।" सरदार की यह अपील कांग्रेस में बढ़ रहे नेहरू-गुट पर अंकुश लगाने के लिए व राष्ट्रवादियों की शक्ति बढ़ाने के लिए थी, उस समय बिना शर्त प्रतिबंध उठाने की मांग पर दृढ रहकर संघ ने भले ही उस अपील को ठुकरा दिया हो लेकिन बाद में जब श्री नेहरू की कांग्रेस कार्यकारणी ने श्री पटेल के प्रस्ताव को बाकायदा पास कर संघ वालों को पार्टी में आमंत्रित किया

तब इस निमन्त्रण को स्वीकार न कर संघ के नेतृत्व ने अपने दिमाग का खोखलापन घोषित कर दिया। हिन्दू सभ्यता व परम्पराओं का आदर करने वाले तथा राष्ट्रवादियों के साथी व राष्ट्रद्रोहियों के शत्रु, सरदार पटेल के व कांग्रेस कमेटी के निमन्त्रण पर यदि उस समय कांग्रेस में घुस जाते (जिस प्रकार इस समय जनसंघ में घुसे हैं व संघ फिर भी अराजनीतिक संस्था ही है) तो एक ओर नेहरू गुट की शक्ति न बढ़ती, दूसरी ओर संघ की मौजूदगी में कम्यूनिस्ट व लीगी तत्व कांग्रेस में व्यापक घुसपैठ का साहस ही न करते (ऐसा नहीं हो सका जिसके फलस्वरूप आज कांग्रेस पार्टी कम्युनिस्टों से भी अधिक लाल तथा लीगियों से भी ज्यादा हरी व खतरनाक बन गई है।) तथा तीसरा लाभ यह होता कि संघ के विषय में कांग्रेस पार्टी व सरकार का मुख सदा के लिए बन्द हो गया होता। लेकिन ऐसा न हो सकने में कारण संघ का अदूरदर्शी नेतृत्व है।

इसके बाद राष्ट्रवादियों के लिए तीसरा व शानदार अवसर १९६९ का राष्ट्रपति चुनाव था। तब देश की सभी पार्टियां राष्ट्रीय व अराष्ट्रीय गुटों में बँटीं। कांग्रेस द्वारा मनोनीत उम्मीदवार कांग्रेस के भीतर प्रधान मन्त्री के नेतृत्व वाले अराष्ट्रीय गुट को पसन्द नहीं था। उस गुट को अपने पार्टी के उम्मीदवार को हराने में सफलता मिली। अपनी सफलता के नशे में चूर व निरंकुश शासन करने के उद्देश्य से प्रधानमंत्री ऐसी-ऐसी उच्छृंखलताएं कर रही हैं जिन्हें और अधिक समय तक सहन किया गया तो मास्को शीघ्र ही देश की राजधानी बनेगी। तब अपने सभी विरोधियों को सरकार खुलेआम मौत के घाट उतारेगी। जनता की जबान काट ली जाएगी, कलम छीन ली जाएगी। व्यक्त व्याम करने वालों को पीपुल्स कोर्ट द्वारा सजा देकर कन्सेन्ट्रेशन कैम्पों में भेजा जाएगा। मुट्ठी भर गुण्डे राज्य करेंगे तथा सेना व पुलिस गांव-गलियों में उन गुण्डों की धाक जमाती फिरेगी।

प्रधानमन्त्री अपने इस घृणित, निहित, स्वार्थी व राष्ट्रद्रोही उद्देश्य की पूर्ति के लिए जनता का ध्यान वास्तविक परिस्थितियों व ज्वलंत समस्याओं से हटाकर व्यर्थ विषयों पर आकृष्ट कर रही हैं। आज राष्ट्र को चीन-पाक के संयुक्त आक्रमण का खतरा है, देश में विदेशी हस्तकों व समाज-विरोधी तत्वों की गतिविधियां बढ़ रही हैं। कर्ज चुकाने के लिए कर्ज लेना पड़ रहा है। विदेशों में नित्य अपमानित होना पड़ रहा है। ऐसे इन सभी प्रश्नों को छोड़ प्रधानमंत्री भूमि-सुधार जैसे फालतू विषय का प्रचार कर रही है। विदेशी आक्रमण होने पर तो नित्य ४०-५० करोड़ रुपये खर्च हो जाते हैं तो इधर महज पांच करोड़ के प्रीवी पर्स खत्म कर प्रगतिशील तत्वों की मसीहा बनी घूमती हैं। एक ओर संघ व जनसंघ जैसे विशुद्ध राष्ट्रीय संगठन को साम्प्रदायिक कहकर कुचलना चाहती हैं तो

दूसरी ओर देश-विभाजन कराने वाली मुस्लिम लीग को सेक्यूलर व लोकतंत्र दल की संज्ञा दे रही हैं।

पिछले एक वर्ष से चल रही इस असाधारण उच्छृंखलता का कारण था कांग्रेस अध्यक्ष द्वारा प्रधानमंत्री को उचित अवसर पर निष्कासित न करना। उनकी ढीली नीति से पार्टी के उम्मीदवार के साथ-साथ राष्ट्रवाद की भी पराजय हुई।

अभी हाल ही में उत्तर प्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया जबकि वहां विधान सभा की बैठक ५ दिन के भीतर ही बहुमत-अल्पमत का फैसला करने के लिए होने वाली थी। राष्ट्रपति ने विपक्षी दलों के सुझाव को ठुकराकर अपनी विदेश यात्रा के दौरान ही प्रदेश का शासन सम्हाल लिया। इससे अनेक पार्टियां क्षुब्ध हो उठीं। और तो और संसोपा ने राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने में पहल करने की घोषणा की है। इस समाचार पर हंसी आती है। इसी संसोपा ने जोर-शोर से श्री गिरि का समर्थन कर, कांग्रेस उम्मीदवार के हारने पर इन्दिरा सरकार के पतन की आशा की थी। आज उसी संसोपा द्वारा अपने ही समर्थित विजयी उम्मीदवार के विरुद्ध महाभियोग की घोषणा करना हास्यास्पद है।

काबा किस मुंह से जाओगे गालिब।
शर्म तुमको मगर नहीं आती।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्रवादियों द्वारा समयोचित नीतिमत्ता व दूरदर्शिता का परिचय न देने के कारण ही सर्वत्र अराजकता व्याप्त है, राष्ट्रद्रोहियों के हौंसले बढ गए हैं व उनकी तथा उनके समर्थकों की संख्या में दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि हो रही है। इस संकट की घड़ी में परिस्थितियों की मांग है कि देश के सभी राष्ट्रवादी या लोकतंत्री दल राजनीतिक व आर्थिक विषयों पर अपने छोटे-बड़े मतभेदों को भुलाकर साहस, बुद्धिमत्ता, निर्भीकता एवं नीतिमत्ता का परिचय देकर कर्मक्षेत्र में अविलम्ब अवतीर्ण हों। एक-एक क्षण भी अत्यन्त मूल्यवान है। एक क्षण की गलती को सुधारने में शताब्दियां भी लग जानी सहज हैं। (Even a moment's error may require centuries to correct.) महाभारत काल में पांडवों के पक्ष में श्रीकृष्ण समान दूरदर्शी राजनीतिज्ञ थे। आज का समय उससे भी विकट है। इस समय राष्ट्रवादी पक्ष में श्री कृष्णजी जैसे दूरदर्शी नीतिज्ञ का अभाव सभी को खटक रहा है। अब एक ही रास्ता सामूहिक नेतृत्व व चिंतन का है। क्या ऐसे समय में राष्ट्रवादी दल अपनी राष्ट्रनिष्ठा का परिचय देंगे। ●●●

भैया दूज

□

श्री यशोदानन्दन भारद्वाज, शास्त्री

[हिन्दुओं के व्रतों एवं पर्वों तथा त्यौहारों की लम्बी शृंखला है। प्रत्येक पर्व, त्यौहार और व्रत किसी उद्देश्य-विशेष को अभिव्यक्त करता है। भातृ-द्वितिया अथवा यम-द्वितिया एवं रक्षा-बन्धन तथा श्रावणी उपाकर्म की वर्तमान प्रचलित पद्धति कुछ विवादास्पद-सी हो चली है। इसके निराकरण की आवश्यकता है, जिससे कि तथ्य प्रकट हो और पर्व को वास्तविक रूप में मनाया जा सके। आशा है अधिकारी विद्वान् इस दिशा में प्रयत्न कर पाठकों को अनुग्रहीत करेंगे।

—सम्पादक]

उत्सव, त्यौहार देश के प्राण होते हैं। महीनों पहले इसकी बाट देखने की चाह सबको लगी रहती है। सब त्यौहार अपनी २ जगह महत्वपूर्ण होते हैं। कई त्यौहार राष्ट्रीय, धार्मिक, सामाजिक तथा मौसमी, क्षेत्र आदि सामूहिक होते हैं, किन्तु कुछ त्यौहार ऐसे भी हैं जिनका रिश्ता पारिवारिक जीवन से होता है। यह एक मानी हुई बात है कि पहले आप अपने को सुधारो, फिर परिवार को, फिर समाज को, फिर देश को। इसलिए फारसी की लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि 'अव्वल खुवेश बाद अज़दर वेश' अस्तु। हिन्दू जाति ऐसे बहुत से त्यौहार मनाती है जिसका सम्बन्ध परिवार से होता है। त्यौहार तो जीते-जी भी परिवार से सम्बन्ध बढ़ाते ही रहते हैं, बल्कि स्वर्गवासी बुजुर्गों के लिए भी खास दिन नियत कर देते हैं। उदाहरण के तौर पर करवा चौथ लीजिए। पत्नी अपने पति के लिए श्रीगणेश से प्रार्थना करती है। यह त्यौहार कार्तिक बदी चौथ के दिन आता है। गुरु पूर्णिमा, आषाढ़ शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को शिष्य गुरु की खास पूजा करते हैं। इसी प्रकार भूत पितरों के लिए आश्विन कृष्णपक्ष के श्राद्ध पक्ष को आता है।

हम अधिक दूर न जाते हुए भैया दूज पर आते हैं। यह यम पंचक में आता है। यम पंचक कार्तिक कृष्णपक्ष की त्रयोदशी से लेकर कृष्ण शुक्ल पक्ष की द्वितीया तक होता है अर्थात् धन तेरस, नरक चर्तुदशी, काल रात्रि (अमावस, दिवाली) गोवर्धन और यम द्वितीया यानी भैया दूज। हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थों में 'निर्णय सिन्धु' सबसे बड़ा प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसकी बात बहुत प्रामाणिक मानी जाती है। इसको विद्वान लोग ही जानते हैं। 'निर्णय सिन्धु' ११-१२ शताब्दी का ग्रन्थ है। इसमें सब ऋषियों तथा पुराणों के प्रमाणों का संग्रह है। इसकी बात प्रायः झुठलाई नहीं जा सकती। इसमें भविष्य पुराण का हवाला देते हुए एक श्लोक है :

प्रथमा श्रावणे मासि तथा भाद्रपदेतरा।
तृतीया श्वयुजे मासि, चतुर्थीकार्तिक भवेत् ॥

अर्थात् यम द्वितीया असल में चार होती हैं। सावन, भादों, आश्विन कार्तिक की शुक्लपक्ष की द्वितीएँ ही यम द्वितीएँ होती हैं।

श्रवणे कलुषा नाम तथा भाद्रे च गीर्मला।
आश्विने प्रेतसञ्चारा कार्तिके याम्यका मता॥

अर्थात् श्रावण में इसका नाम कलुषा, भादों में गीर्मला, आश्विन में प्रेत सञ्चारा और कार्तिक में याम्यका।

पितृव्यभगिनीहस्तात् प्रथमायां युधिष्ठिर।
मातुलस्य सुता हस्ताद् द्वितीयायां तथा नृप॥
पितुर्मातुः स्वसुः कन्ये तृतीयायां तयो करात्।
भोक्तव्यं सहजायाश्च भगिन्या हस्ततः परम्॥
सर्वासु भगिनी हस्ताद् भोक्तव्यं बलवर्धनम्॥

चूंकि यमराज सब कामों को छोड़कर अपनी बहनों को मनाने के लिए इन चारों द्वितीयों में बहनों के घर गए थे। और वहां अपनी बहनों का आदर-सत्कार तथा पूजन करके, उनके हाथ से खाना खाकर एक आदर्श कायम किया था। इसलिए इन द्वितीयों को यम द्वितीयों के नाम से पुकारा जाता है। इस दिन सम्बन्ध को दृढ़तर बनाने के लिए, अगर भाई-बहन के सम्बन्ध बहुत खराब क्यों न हो गए हों, बहन कितनी भी नाराज क्यों न हो; चाहे कितनी रंजीदा क्यों न हो, भाइयों का पहला कर्त्तव्य है कि वे सब बातों को भूलकर अपनी बहनों के घर जाएं और इनसे आशीर्वाद प्राप्त करें। इस दिन की विशेष शर्त है कि बहन के घर में बहन के हाथ का बना हुआ भोजन करें। इसमें बड़ा पुण्य माना गया है।

श्रावण की यम द्वितीया को भ्रवा के घर में, भादों की यम द्वितीया को, आश्वनि की यमद्वितीया को क्रमश: मामा की लड़की के घर में, मौसी की लड़की के घर जाकर आदर-सत्कार करते हुए हम भोजन करें।

नया ज़माना है। हजार डेढ़ हजार साल गुलामी के कारण हम दूसरी बहनों को तो बिल्कुल ही भूल गए हैं। पता नहीं किस तरह से कार्तिक दूज रह गई है। अंग्रेजों ने हिन्दुओं के इतिहास को गलत-मलत करके अर्थात् जैसा टाड ने रानी करुणावती का हुमायूँ को राखी वाला पत्र बताकर सावन की पूर्णमासी, रक्षा-बंधन को बहन-भाई का त्यौहार बना डाला। विदेशी आक्रमणकारियों, खासकर यवनों के समय हमारा शरीर गुलाम था दिमाग नहीं। लेकिन इन दूरदर्शी अंग्रेजों के जमाने से भारतीय लगातार दिमागी गुलामी से ग्रस्त हैं, बल्कि और ज्यादा जकड़े जा रहे हैं।

भैया दूज के दिन तो अधिकतर सगी या चचा आदि की लड़कियां ही पूजी जाती हैं। बाकी इन तीन यम द्वितीयों को न मनाने से हमारे चरित्र का कितना दिवाला निकला है, यह कोई छिपी बात नहीं। जिसको एक बार पूजा जाए उसकी तरफ बुरी दृष्टि कभी नहीं जा सकती। कार्तिक की दूज की तरह शेष द्वितीयों को भी मनाना चाहिए और रिश्तेदारी के संगठन को दृढ़ बनाना चाहिए और एक-दूसरे के सुख-दुःख में शामिल होना चाहिए। यह हमारा एक प्रथम मुख्य कर्त्तव्य है। ●●●

---

१४ नवम्बर : एकमात्र राष्ट्रीय-मुसलमान के जन्म-दिवस पर

हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई

□

कट्टरपंथी

हमारे सम्मुख अंग्रेज़ी के साप्ताहिक पत्र 'दि इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया' की १६ अगस्त १९७० की प्रति है, मुखपृष्ठ पर सिनेपार्श्व गायिका लता मंगेशकर द्वारा अभिनेता दिलीप कुमार (मियाँ यूसुफखान) को राखी बांधते हुए चित्र प्रकाशित है। वही चित्र उसी पत्रिका के मध्य पृष्ठ पर भी है किन्तु कुछ विस्तार से। मध्य पृष्ठ के एक कोने पर प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी का स्वाधीनता दिवस सम्बन्धी सन्देश अंकित है। 'मेकिंग ऑफ दि हिन्दू माइंड' शीर्षक से नयन तारा सहगल (नेहरू की भांजी) का लेख है; बीच-बीच में बम्बई की एक ऐसी बस्ती के भाग का चित्र है जहां मंदिर और मस्जिद बराबर-बराबर हैं, पारसी गायक और उसकी कश्मीरी पंडित पत्नी, सितारवादक हलीम जफर खां और तबलची भास्कर देवास्कर के चित्र अंकित हैं, जो हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई के औचित्य को सिद्ध करते हैं।

किसी मुस्लिम महिला द्वारा हिन्दू को राखी बांधने का दृश्य कदाचित लेखिका एवं सम्पादक को प्राप्त नहीं हुआ होगा। किन्तु प्रख्यात सितारवादक पं० रविशंकर एवं उनकी मुसलमान पत्नी का चित्र तो सुगम हो सकता था। वह कदाचित् इसलिए उपयुक्त नहीं समझा होगा कि इससे लेखिका एवं सम्पादक के मुसलमान भाइयों में आत्महीनता की भावना पनप सकती है। श्रीमती सहगल के इसी लेख के मध्य स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती, राजा राममोहन राय, महात्मा गांधी, वीर सावरकर और 'गुरु' गोलवलकर (वहां इसी प्रकार लिखा है) के चित्र भी हैं। गांधी के चित्र के नीचे उसको दो पीढ़ियों के हिन्दू मस्तिष्क को वर्तमान मोड़ देने वाला (हमारे शब्दों में विकृत करने वाला) बताया है। और कहा है कि कांग्रेस को सैक्यूलरिज्म का विचार देने

पर भी वे स्वयं हिन्दूइज़्म की गहराई में डूबे हुए हिन्दू ही बने रहे। वीर सावरकर को हिन्दुत्व का (हिन्दूइज़्म का नहीं) प्रस्तावक लिखा है और 'गुरु' गोलवलकर के चित्र के नीचे लिखा है—"अपने गुरु की छत्रछाया में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अपने हिन्दू राष्ट्र की चिल्लाहट (Cry) के साथ युद्धप्रवृत्त युवक संगठन की शक्ति के रूप में बढ़ रहा है। आज राजनीतिक दल न होने पर भी वह धर्मनिरपेक्षता के लिए चुनौती के रूप में खड़ा है।"

उसी अंक में रशीदुद्दीन खां (नामांकित संसद सदस्य) का दि मेकिंग ऑफ दि मुस्लिम माइंड शीर्षक से लेख प्रकाशित है और लेख के अंत में लेखक का अपनी हिन्दू पत्नीसहित चित्र भी अंकित है। इस लेख के मध्य में भी शेरशाह सूरी, अकबर दि ग्रेट, औरंगजेब, टीपू सुलतान, सर सैयद अहमद खान, शम्स-उल-उलेमा जमा उल्लाह देहलवी, इकबाल, सैयद अमीर अली और जिन्ना के चित्र दिए गए हैं। सबके चित्रों के नीचे पूर्व की भांति कुछ न कुछ लिखा है। जिन्ना के चित्र के नीचे लिखा है 'वे कांग्रेस के सदस्य और प्रबल राष्ट्रवादी थे।' प्रेमशंकर झा का लेख दि मेकिंग ऑफ दि इंडियन माइंड शीर्षक से भी हैं, जिसके मध्य टैगोर, नेहरू और मौलाना के चित्र हैं। इस परिवेश में उनके लिए जितने प्रशंसात्मक शब्द लेखक अथवा सम्पादक लिख सकते थे उतने उन चित्रों के नीचे अंकित हैं।

अपनी मुस्लिमपरस्ती या दूसरे शब्दों में इंदिरा-भक्ति की उक्त पत्र के सम्पादक ने इतने में भी 'इतिश्री' नहीं की, अपितु ६ सितम्बर को पाकिस्तान पर एक विशेषांक प्रकाशित किया जिसका शीर्षक है "पाकिस्तान—शत्रु नहीं अपितु भाई"। इस अंक के अपने सम्पादकीय में वे लिखते हैं "पाकिस्तान ने हम पर जो आक्रमण किया उसकी प्रतिरक्षा में उस २२ दिन के युद्ध में जो राशि हमारी व्यय हुई उससे लाखों अशिक्षितों की शिक्षा, असहायों को सहायता और भूखों को भोजन दिया जा सकता था। वे कहते हैं कि अब बहुत हो गया। हमें चाहिए कि सर्वप्रथम हम एक-दूसरे को समझें और अपने लघु-प्रयास में (इस अंक एवं इस लेख द्वारा) हमने पहल कर दी है। दूसरा पग इन दोनों सरकारों को उठाना चाहिए कि जिससे लोगों का आवागमन हो सके, साहित्य एवं व्यापार की अदला-बदला हो सके। (जिससे कि इधर का माल उधर हो सके) उन्मुक्त व्यापार हो। उसके बाद सीमारेखा को समाप्त किया जाय (जिससे कि पाकिस्तानी सुविधा से घुसपैठ कर सकें) जो दोनों देशों के लोगों को पृथक् किए हुए है।"

वीकली के पाठकों में से कुछ के प्रतिक्रियात्मक एवं कुछ के प्रशंसात्मक

पत्र भी परवर्ती अंकों में प्रकाशित होते रहे हैं। एक पत्र लेखक ने हमारी ही भांति पूछा है कि क्या कोई मुस्लिम महिला भी है जिसने हिन्दू को भाई बना कर राखी बाँधी हो ? एक मुसलमान महोदय लिखते हैं कि मेरी हिन्दू मां अपने हिन्दू भाई को राखी बांधती है। मेरी हिन्दू मामी अपने हिन्दू भाइयों को राखी बांधती है। इस प्रकार की कुछ क्रिया-प्रतिक्रियाएं प्रकाशित की गई हैं। हम समझते हैं कि प्रतिक्रिया के पत्र केवल संतुलन की दृष्टि से ही प्रकाशित करने पड़े होंगे।

प्रसंगवशात् इस साप्ताहिक की एक और विशेषता की ओर भी संकेत करना हम उपयुक्त समझते हैं। पत्र का कोई भी अंक ऐसा नहीं होता जिसमें एक-दो नग्न चित्र (महिलाओं के) न हों। कभी-कभी तो मुखपृष्ठ पर ही नग्न चित्र होता है।

पाकिस्तान में हिन्दुओं की कैसी दुर्दशा हो रही है इससे कोई भी भारत-वासी अपरिचित हो ऐसी बात नहीं। इस पर भी जब 'वीकली' के सम्पादक खुशवन्तसिंहजी महाराज अपने सम्पादकीय में यह सुझाव दें कि पारपत्र प्रणाली समाप्त कर आवागमन की स्वतन्त्रता प्रदान की जाय तो हमें नई कांग्रेस के नवनिर्वाचित संसद सदस्य श्री प्रबोधचन्द्र के इस कथन में सार प्रतीत होता है कि सिखों के एक समूह का पाकिस्तान के हुक्मरानों से खुल्लमखुल्ला सम्बन्ध है, अथवा सिंह महाशय यह भली-भांति जानते हैं कि पारपत्र प्रणाली समाप्त होने पर भी कोई हिन्दू पाकिस्तान में जाकर नहीं बसेगा। हां, इसके विपरीत पाकिस्तानवासी अबाध गति से भारत में प्रविष्ट होकर यहां की शान्ति को भंग करना आरम्भ कर देंगे। क्या खुशवन्तसिंह महाराज भारत के अन्दर एक और पाकिस्तान बनाने का स्वप्न देख रहे हैं ?

"हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई" तथा "पाकिस्तान—शत्रु नहीं, बल्कि मित्र" का स्वप्न देखने वाले खुशवन्तसिंह से हम पूछते हैं क्या कभी उन्होंने पाकिस्तान रेडियो पर भी कान धरा है ?

हम 'कट्टरपंथी' होने के नाते अपने पाठकों से प्रार्थना करते हैं कि इस प्रकार के राष्ट्रद्रोही प्रचार का प्रसार रोकने के लिए कृतसंकल्प हों।

और कुछ नहीं तो कम से कम इस समय हमारे स्वर में स्वर मिलाकर कहें 'हिन्दू मुस्लिम भाई-भाई, हिन्दू-मुस्लिम एकता जिन्दाबाद"। इससे कदाचित हमारे एकमात्र राष्ट्रीय मुसलमान की (अपने जन्मदिन के अवसर पर) आत्मा को जन्नत में शान्ति अथवा सुकून नसीब हो सके और भारत की निमज्जमान नौका शीघ्र ही तलस्पर्श कर सके। •

वेदों में वृषभ शब्द का प्रयोग

श्री रामशरण वशिष्ठ

वृषभ शब्द के अर्थ हैं बलवान। इसी कारण वेदों में वृषभ कहीं बैल के लिये प्रयुक्त हुआ है और कहीं ईश्वर के लिये तथा कहीं इन्द्र के लिये। सूर्य, बृहस्पति, अग्नि, वरुण के लिये भी वृषभ का प्रयोग हुआ है।

जहाँ वृषभ बैल के लिये आया है, वहाँ यह हल खींचना, गाड़ी खींचना, बोझ लादना इत्यादि कार्यों के लिए है। बैल, जिसके सींग तेज नुकीले हैं, पृथिवी का आधार बैल पर है। इसका अर्थ यह नहीं कि बैल के सींगों पर पृथिवी टिकी है। अभिप्राय है कि बैल से खेती होती है और अन्न से सब जीवित हैं।

बैल को सांड करके छोड़ते हैं जो बहुत लाभदायक है। उसका वर्णन ऋ० ९-४-१ में आता है। इसकी रसम करते हैं। (ऋ० ९-४-११)

वृषभ पति के लिये भी प्रयुक्त हुआ है और मरुतों के लिये भी (ऋ० ७-५६-१८)। ऋ० ७-१०१-१२ में पर्जन्य को वृषभ कहा है और ऋ० ८-२०-१९ तथा ८-७-२६ में वृषभ मेघों के लिए आया है।

वृषभ शब्द के वास्तविक अर्थ न समझकर पाश्चात्य टीकाकारों ने बहुत भ्रान्ति फैलाई है। जहाँ मंत्रों में इन्द्र तथा सूर्यसे वर्षा का वर्णन है वहाँ पर उन टीकाकारों ने 'इन्द्र बैल खाता है' ऐसा अर्थ किया है (ऋ० १०-२८)। वृषभ राजा के लिये भी आता है (ऋ० १०-१८०-२)। एक अन्य स्थान पर उल्लेख है 'बैल से बैल उत्पन्न हुआ।' इसका आभिप्राय है कि बलवान पिता का बलवान पुत्र।

वृषभ एक औषधि का नाम भी है, जिसके सेवन से पुत्र उत्पन्न होता है (अ० ३-२३-४)। यज्ञ कराने वाले ब्रह्मा को भी वृषभ कहा है (अ० ३-२७-१५)। वृषभ सूर्य के लिए तो कई मंत्रों में आया है। (ऋ १०-१८७-३, १०-१८९-१, ७-५५-७, १०-३०-१९, १०-८-१)।

जैसा कि ऊपर लिखा है वृषभ ईश्वर का वाचक भी है (ऋ० ८-६१-१३)।

सोम को भी वृषभ बताया है (ऋ० १-१६४-४३)। वरुण भी वृषभ है (ऋ० १०-११-१) अग्नि भी वृषभ है (ऋ० ८-४६-४१)। वृहस्पति भी वृषभ है (ऋ० १०-९२-१०)।

इन सब उदाहरणों से स्पष्ट है कि वृषभ बलवान को कहते हैं, केवल बैल को नहीं। वेद के पाठकों को यह बात भली-भाँति समझ लेनी चाहिये कि वेद में शब्दों के अर्थ धातु तथा साथ ही जैसा प्रकरण हो, वैसे होते हैं। वेद मंत्रों के अर्थों की शैली न समझकर अर्थ के अनर्थ किये गये हैं। पाश्चात्य टीकाकारों ने इसी नासमझी के कारण वेदों पर वृथा दोष लगाये हैं। और अपने मिथ्या असत्य विचारों के कारण अर्थों को बदला है। यही कारण है जो उन्होंने आर्यों को गोमांसभक्षी लिखा है और यज्ञ में पशु को मारना बताया है। यह मूल वेद मंत्रों के ठीक-ठीक न अर्थ करने से हुई है।

(पृष्ठ २१ का शेष)

धोखा दे रहे होते हैं अथवा जब वे जनसाधारण को धोखा देने का यत्न कर रहे होते हैं।

संसोपा, प्रसोपा, कम्युनिस्ट पार्टी, कम्युनिस्ट मार्क्सिस्ट, द्रमुक इत्यादि ये सब भिन्न-भिन्न नाम कुछ सीमा तक तो अपने को धोखा देने के लिए स्वीकार किये गए हैं और अधिकतर जनता को धोखा देने के लिए स्वीकार किये गए हैं। सिद्धान्त रूप में सब एक ही बात को मानते हैं, परन्तु उस एक बात को वे पूर्ण की पूर्ण प्रकट करना नहीं चाहते। कोई कम प्रकट करना चाहता है और कोई कुछ अधिक। इस कारण भिन्न-भिन्न दल हैं और भिन्न-भिन्न नाम हैं और तब फिर ये परस्पर झगड़ते हैं।

यही बात कांग्रेस इन्दिरा, कांग्रेस निजलिंगप्पा, भारतीय क्रान्ति दल, कांग्रेस क्रान्ति दल और रिपब्लिकन, डेमोक्रेटिक इत्यादि दलों की है। हिन्दू महासभा और जनसंघ में भी हमें यही बात दिखाई देती है।

व्यवहार में दो ही मार्ग हैं। भगवद्गीता में लिखा है कि एक कर्म और दूसरा विकर्म। अकर्म तो वास्तव में कर्म अथवा विकर्म ही होता है। इन दो के अतिरिक्त तीसरा कोई मार्ग नहीं। अन्य सब मार्ग छलना है और मूर्खता है।

संसार के मानव-समाज में दो ही प्रकार के प्राणी हैं। अतः किसी भी देश की राजनीति में दो ही प्रकार के दल होने चाहिएँ।

जब तक कोई देश इस बात को समझकर स्वीकार नहीं करता तब तक मानव-कल्याण की कोई आशा नहीं। दलगत राजनीतिक-कीचड़ में देश फंस जाएगा। जनता दुःख, क्लेश और कष्ट में फंसी हुई पतन की ओर जाएगी।

समाचार समीक्षा

नासिर निधन के प्रसंग में

२९ सितम्बर को समाचार-पत्रों में मुखपृष्ठ पर प्रकाशित सूचना से विदित हुआ कि अरब राष्ट्रपति नासिर की हृदय-गति बन्द होने से मृत्यु हो गई है। किसी की भी मृत्यु पर शोक एवं दुःख होना स्वाभाविक है। और फिर नासिर को तो भारत का मित्र कहा जाता रहा है। भारत के राष्ट्रपति एवं प्रधान मंत्री ने संवेदना सन्देश भेजे। प्रधान मंत्री का कहना था 'वह मेरे पिता के मित्र थे। उन्होंने साथ-साथ काम करके तटस्थता के सिद्धान्तों को अर्थवान् बनाया। जब मैं उनसे मिली; उनकी ध्येयनिष्ठा, सादगी, अपनी जनता के कल्याण के प्रति पूर्ण समर्पण और न्यायपूर्ण व शान्तिपूर्ण विश्व-व्यवस्था के प्रति अगाध चिन्ता से प्रभावित हुई।'

नासिर की मृत्यु के शोक में भारत सरकार ने पहली अक्तूबर को सरकारी छुट्टी की घोषणा की; देश में सार्वजनिक सभाओं का आयोजन कर शोक संवेदना व्यक्त की गई। देश के कम्युनिस्ट एवं वामपंथी इस अवसर पर जार-जार रोये। रोना भी चाहिए। जिस देश में कम्युनिस्ट पार्टी पर प्रतिबन्ध होने पर भी जो रूस का कृपापात्र हो उसके लिए कम्युनिस्ट शोक न करें तो कौन करेगा ? नासिर के नेतृत्व का यही तो रहस्य रहा।

नासिर ने अपने राष्ट्र एवं राष्ट्रवादियों के लिए जो किया वह सराहनीय है इसमें सन्देह नहीं। उसकी प्रशंसा होनी चाहिए। किन्तु भारत के ये कर्णधार जो नासिर के शोक में सन्तप्त हैं उनसे हम सीधा प्रश्न करते हैं कि भारत के लिए नासिर ने क्या किया जो उसके निधन पर अवकाश की घोषणा कर राष्ट्रीय आय की क्षति के साथ-साथ अन्य राष्ट्रीय हितों के कार्यों में भी बाधा पहुँचाई गई ? सार्वजनिक सभाओं का आयोजन कर राष्ट्रीय धन का अपव्यय किया गया। क्या भारत-पाक युद्ध के अवसर पर नासिर की भारत-भक्ति (?) को इतनी शीघ्रता से बिसरा दिया गया है ?

हम समझते हैं कि यह सब नाटक सत्तासीन संस्था की मुस्लिम तुष्टिकरण के देशघातक कृत्य का एक अंग मात्र है अन्य कुछ नहीं।

क्या भारत के राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री, विदेश मन्त्री एवं अन्यान्य अधिकारियों ने कभी इस ओर ध्यान दिया है कि अरब देशों में भारतीयों के प्रति कैसा दुर्व्यवहार किया जा रहा है? वहाँ का वास्तविक शासन 'वाथ' पार्टी के जर-खरीद गुण्डों के हाथ में है। यहूदियों के प्रति अरबों के दुर्व्यवहार की कहानी यदि किसी ने सुनी हो तो हम बताना चाहते हैं कि वहाँ भारतीयों के प्रति भी वैसा ही दुर्व्यवहार किया जा रहा है। नक्सलपंथी प्रक्रिया इस देश में अब नई नहीं रही। बंगाल में संयुक्त मोर्चे की सरकार में जो सत्ता नक्सलपंथियों को प्राप्त थी, वह वहाँ "वाथ" पार्टी को प्राप्त है।

संयोग कहिए अथवा घटनावश, नासिर निधन के इन्हीं दिनों में हमारी भेंट बगदाद के एक भारतीय व्यापारी से हो गई। उन्होंने वहाँ के भारतीयों की जो कष्टकर कथा सुनाई उसे सुनकर खून खौलने लगता है और अपने नपुंसक शासकों को देख लज्जित होना पड़ता है।

यू० एन० के एक भारतीय अधिकारी, जो कुछ दिन पूर्व बगदाद में नियुक्त थे, एक दिन वे 'होटल बगदाद' के डाकखाने में किसी कार्य से गए और वहाँ से लौट रहे थे कि 'वाथ गुण्डों' ने, जिन्हें सुरक्षा-सैनिक की संज्ञा दी जाती है, पकड़ लिया और पीट-पीटकर उनके अर्द्धमृत शरीर को अपने सरदार के समीप ले गए। इस प्रक्रिया में समय लग गया। वहाँ उनकी तलाशी लेने पर उनका पासपोर्ट एवं वीसा आदि देखा तो अधिकारी को लगा कि कुछ गड़बड़ हो गई है। उसने अपने सहयोगियों से उसका स्पष्टीकरण चाहा तो उनका कहना था कि 'होटल बगदाद' में अमरीकी मिशन ठहरा हुआ है। हम समझते हैं कि यह व्यक्ति उनसे मिलने ही गया होगा अन्यथा इसका वहाँ जाने का क्या काम?

उक्त भारतीय अधिकारी श्री गोपाल कृष्ण को इतना मारा कि जब उनको चेतना हुई तो वे अपना वक्तव्य देने की स्थिति में भी नहीं थे। उनकी वाक्शक्ति विलुप्त हो गई थी। दूसरे दिन भारतीय अधिकारी जब उनके वक्तव्य लेने के खयाल से उनके पास पहुँचे तो उन्होंने देखा कि उनकी वाक्शक्ति तो वापस आई नहीं, प्रत्युत उन्होंने अपना त्याग-पत्र लिखकर तैयार रखा है और उसमें प्रबल इच्छा व्यक्त की है कि प्रथम उपलब्ध वायुयान से उन्हें वापस अपने देश भेज दिया जाए। ऐसा प्रबन्ध कर उन्हें भारत भेज दिया गया। हमारे इस कथन की प्रामाणिकता की भारत के विदेश विभाग से पुष्टि की जा सकती है।

उक्त बगदादी भारतीय व्यापारी के प्रति भी कुछ इसी प्रकार का

दुर्व्यवहार हुआ है और उनका कथन है कि न केवल उनके साथ अपितु -अरब निवासी प्रत्येक भारतीय को कुछ-न-कुछ वहाँ भुगतना ही पड़ता है। भारतीय राजदूत का वहाँ अस्तित्व नगण्य है क्योंकि स्वयं अरब मिनिस्टरों का अस्तित्व नगण्य है, वहां के मिनिस्टरों एवं अधिकारियों को "वाथ" सैनिकों के इंगित पर नाचना होता है।

हमें खेद है कि भारत का शासक-मंडल जब नासिर के निधन पर शोक-ग्रस्त है, ऐसे समय में हमने यह दुःखद् प्रसंग उठाया है। स्थिति से अवगत होने पर हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि सरकार को उसके पावन कर्तव्य से अवगत करायें।

विरोध के ये स्वर

इस वर्ष अगस्त के चतुर्थ सप्ताह में अ० भा० हिन्दू महासभा का ५३वां वार्षिक अधिवेशन सम्पन्न हुआ। अध्यक्षीय भाषण की प्रति अत्यन्त विलम्ब से प्राप्त होने के कारण हम यथासमय उस पर समीक्षा नहीं कर सके। ५३वर्षीय प्रौढ़त्व प्राप्त यह संस्था, प्रतीत होता है अपने बाल-स्वभाव को नहीं छोड़ पाई अन्यथा अभी भी प्राथमिक कक्षा के विद्यार्थी की भांति "भारत का अर्थ इंडिया और भारतीय का अर्थ इंडियन" ही रटते रहने के अतिरिक्त कोई ठोस कार्य उसके वश में नहीं। हिन्दू महा सभाइयों का एकमात्र लक्ष्य है येन-केन-प्रकारेण जनसंघ का विरोध करना, भले ही उस विरोध में उन्हें अपने पथ से विचलित होना पड़े।

५३ वर्ष के इस प्रौढ़ संगठन के अध्यक्ष जब अपने अध्यक्षीय भाषण में यह कहते हैं कि "हिन्दुस्थान में हिन्दू महा-सभा ही एक राष्ट्रीय संस्था है। इसकी शाखाएँ ग्राम-ग्राम में गठित होनी चाहिएँ।" तब हँसी आती है, विस्मय होता है और दुःख भी! हम न केवल अध्यक्ष महोदय से अपितु सभी हिन्दू महासभाइयों से प्रश्न करते हैं कि ५३ वर्ष तक आप क्या करते रहे? किस नींद में सोते रहे? समझा कि २० वर्ष से आपकी शक्ति जनसंघ का विरोध करने में व्यय होती रही है, किन्तु इससे पूर्व ३३ वर्ष तक आप क्या करते रहे? क्या इसका यह अर्थ नहीं कि तब भी आप कोई-न-कोई विध्वंसात्मक कार्य ही करते रहे होंगे। क्योंकि यदि विधायक कार्य किया होता तो 'कथावाचकों' को भी शिखंडियों की नहीं अभिमन्युओं और अर्जुनों की कथाएँ स्मरण होतीं।

५३वें अधिवेशन के अध्यक्षीय भाषण में भारत के सभी राजनैतिक दलों का सत्कार करते हुए जनसंघ के प्रसंग में कहा गया है—"भारतीय जनसंघ ने

राजनीतिक शिखण्डी के रूप में जन्म लिया है। यह मुसलमानों के समक्ष नारी के आवरण के रूप में, हिन्दुओं में पुरुष वेश के रूप में तथा शासन के सामने अपने जन्मजात स्वरूप के दिगम्बर दर्शन कराने को उद्यत है। खुले संघर्ष में यह कायरताजन्य नपुंसक शरीर टिक नहीं पा रहा।" २४ पृष्ठों के उस अध्यक्षीय भाषण में, जिसमें गलती करने में मुद्रक ने भी हिन्दू महासभा का साथ दिया है, हिन्दू महासभा की किसी भी उचित उपलब्धि का उल्लेख नहीं है। अन्त में अध्यक्ष महोदय ने भिक्षा-वृत्ति का आश्रय लेकर प्रत्येक घर से एक युवक एवं ५ रुपए माँगे हैं। इस प्रबल प्रार्थना पर हिन्दू सभाइयों में क्या प्रतिक्रिया हुई है और इन दो मासों में कितने युवक और कितना धन एकत्रित हुआ है इसका लेखा-जोखा किसी समाचारपत्र में तो प्रकाशित नहीं हुआ, किन्तु महासभा भवन में अवश्य होगा। उत्सुक बन्धु वहाँ जाकर अपनी उत्कंठा पूर्ण कर सकते हैं।

इसी प्रसंग में हिन्दू महा-सभाइयों की एक और बात की ओर भी संकेत कर देना उपयुक्त होगा। उन्हें 'शाश्वत वाणी' शब्द में सैक्यूलरिज्म की दुर्गन्ध आती है। क्योंकि हमें नहीं किसी को भी इसमें सैक्यूलरिज्म का संकेत कहीं से भी प्राप्त नहीं होता, अतः कहना पड़ेगा कि यह दुर्गन्ध उन्हें अपनी नाक से ही आ रही होगी 'शाश्वत वाणी' शब्द से नहीं। सैक्यूलरिज्म का यह आरोप किसी ऐरे-गैरे ने नहीं अपितु हिन्दू महासभा के वर्तमान अध्यक्ष के अधिकृत दूत ने लगाया है। हिन्दू महासभा में उनका पद क्या है, यह तो हमें विदित नहीं, किन्तु इतना हम जानते हैं कि उनका निवास अथवा जीविकोपार्जन स्थल हिन्दू महासभा भवन है और जिस समय हमारे सम्मुख उन्होंने अपनी यह अशुभ वाणी व्यक्त की, उस समय वे अध्यक्ष का संदेशवाहक बनकर पधारे थे। अतः इसे हम महासभा का अधिकृत आरोप मानते हैं।

विरोध का दूसरा स्वर पिछले मास के 'राजधर्म' में मुखरित हुआ है। अपने सम्पादकीय में उन्होंने जनसंघ एवं स्वतंत्र पार्टी को देशद्रोही की संज्ञा से विभूषित किया है। स्पष्ट है दिवंगत हो-ची-मिन्ह (अर्थात् वियतनाम का कम्युनिस्ट नेता), जिस व्यक्ति के लिए आदर्श रूप हो उसे जनसंघ में देशभक्ति देखने की क्षमता कहाँ से शेष रह पाएगी?

न केवल इतना कि हिन्दुओं की शक्ति को क्षीण करने में राजधर्म के सम्पादक अपनी समस्त शक्ति का उपयोग कर रहे हैं। इनका यह कथन कि भावी-जन-गणना के अवसर पर 'हिन्दू अपने को आर्य घोषित करें' हिन्दू को भारत में प्रभावहीन करने की प्रक्रिया का अंग है। हम इस कृत्य को राष्ट्रद्रोह समझते हैं।

हिन्दू महासभा के साथ-साथ जनसंघ को इन तथाकथित आर्यों (वास्तविक

अनार्यों) से भी सावधान रहना होगा।

तीसरा स्वर उठा है रायपुर से। वहाँ अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य तुलसी को 'अग्नि-परीक्षा' से गुजरना पड़ा है। सुना है आचार्यश्री ने एक दिन अपने भाषण में हिन्दू देवी-देवताओं के प्रति अपनी विशिष्ट भावना व्यक्त की। श्रोताओं को कुछ खटका तो दूसरे दिन का भाषण टेप रिकॉर्ड कर लिया गया। किन्तु इस काण्ड को चतुराई से आचार्यश्री की १० वर्ष पूर्व की रचना 'अग्नि-परीक्षा' की ओर मोड़ दिया गया। परन्तु क्या टेप रिकार्ड किए गए इस भाषण को नकारने का सामर्थ्य अचार्यश्री में है ?

आज जब जनगणना का अवसर समीप है और हम यह देख, सुन तथा पढ़ रहे हैं कि कतिपय जैन बन्धु स्वयं भारत की प्रमुख धारा 'हिन्दू' से पृथक् होने का प्रबल प्रयत्न कर रहे हैं; वे जैन धर्म एवं सम्प्रदाय को हिन्दू की कोई शाखा अथवा उपशाखा मानने के लिए तैयार नहीं; न केवल इतना अपितु मुस्लिम लीग एवं अकालियों की ही भांति पृथक् निर्वाचनाधिकार तक की मांग करने लगे हैं। ऐसे समय में आचार्य तुलसी का विवादास्पद भाषण विघातक कार्य ही करेगा। इस अवसर पर सनातनी सन्त श्री स्वामी करपात्रीजी ने जिस दूरदर्शिता एवं सहिष्णुता का परिचय दिया है—अणुव्रत के १६ अक्टूबर के अंक में स्वामीजी का जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ है—वह सराहनीय है।

समाचार-पत्रों में प्रकाशित यह सूचना यदि सत्य है कि मध्य प्रदेश सरकार ने आचार्य तुलसी रचित 'अग्नि परीक्षा' पर प्रतिबन्ध लगा दिया है तो हम मध्य प्रदेश सरकार के इस कार्य का भर्त्सनायुक्त विरोध करते हैं तथा सभी सहयोगी पत्र-पत्रिकाओं से अनुरोध करते हैं कि वे भी इस दुष्कृत्य के प्रति विरोध प्रकट कर पुस्तक को प्रतिबंध-मुक्त कराने की प्रक्रिया में सहयोग दें।

अन्त में आचार्य तुलसी से हमारी प्रार्थना है कि देश की दुर्दशा के इन दुर्दिनों में वे सम्प्रदाय के दायरे से बाहर निकल विशाल हिन्दू राष्ट्र के रूप में चिन्तन प्रारम्भ करें और अपने अनुयायियों को इसके लिए प्रेरित करें। जैन समाज में उभरते पृथकता के स्वर को समाप्त कर उसे राष्ट्रोत्थान की दिशा दिखावें। अन्यथा यदि जैन बन्धु इतिहास की पुनरावृत्ति में सहायक होकर जयचन्दी स्वर को ही मुखरित करते रहे तो राष्ट्र के साथ-साथ जैन समाज भी काल के कराल गाल में गढ़कर ऐसा विलीन होगा कि सहस्राब्दों तक फिर उठ सकना उसे सम्भव नहीं हो पाएगा।

आगामी जनगणना के लिए सभी भारतीयों को हिन्दुत्व की भावना से प्रेरित होकर सन्नद्ध होना चाहिए जिससे कि संसार को विदित हो कि हिन्दुस्थान

हिन्दुओं का देश है, अन्यथा शाखाएँ यदि तने से पृथक् होने का प्रयास करेंगी तो टूटकर अलग होने से उनका ही अस्तित्व समाप्त होगा। तना तो तना सा खड़ा ही रहेगा और उसमें नई कोपलें फूटकर फिर शाखाओं का रूप धारण कर लेंगी। वृक्ष फिर लहलहायेगा ही, किन्तु टूटी हुई शाखाएँ सूखकर हरीतिमाहीन हो काष्ठ बन जाएँगी।

सभी भारतवासी समवेत स्वर से हिन्दू-हिन्दी-हिन्दुस्थान का घोष कर अपना राष्ट्रीय कर्तव्य निबाहें, यही हमारी सुसम्मति है।

नई कांग्रेस की नई साम्प्रदायिकता

समाचार-पत्र पाठकों को स्मरण होगा कि इन्दिरा कांग्रेस के कर्मठ काँग्रेसी श्री खाडिलकर, जो संसद के उपाध्यक्ष भी रह चुके हैं तथा 'अंकटाड' में जिन्होंने हिन्दुत्व की धज्जियां उड़ाने का घृणित प्रयत्न कर देवी इन्दिरा का कृपापात्र बनने में सफलता प्राप्त की, उन्होंने एक बार मुस्लिम लीग को साम्प्रदायिक नहीं अपितु राष्ट्रीय संगठन की संज्ञा दी थी, तब देवी इन्दिरा ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि वे उनके निजी विचार हो सकते हैं। उन्ही देवी इन्दिरा ने सितम्बर में केरल के निर्वाचनों के उपरान्त अहमदाबाद में पत्रकार सम्मेलन में गर्व के साथ घोषणा की कि केरल की मुस्लिम लीग साम्प्रदायिक नहीं है, अतः उसके साथ निर्वाचन गठबन्धन कर इन्डिकेट काँग्रेस ने कोई भूल नहीं की।

प्रस्तुत विषय से इस बात का सम्बन्ध न होने पर भी प्रसंगवशात् हम यहां पर इस बात का भी उल्लेख कर देते हैं कि उसी पत्रकार सम्मेलन में देवी इन्दिरा ने अपने कनिष्ठ-पुत्र संजय गाँधी को छोटी कार निर्माण के लिए लाइसैंस दिए जाने का औचित्य बताते हुए कहा कि यदि उसको लाइसैंस नहीं दिया गया तो मैं देश के अन्य नवयुवकों को जोखिम उठाने के लिए कैसे उत्साहित कर सकूंगी? उस सम्मेलन में प्रधान मन्त्री ने इसी प्रकार की अनेक अनर्गल बातें कीं। २३-२४ सितम्बर के समाचार पत्र इसके प्रमाण हैं, अस्तु।

साम्प्रदायिकता के प्रसंग में एक और बात का उल्लेख कर दें। इण्डिकेट ने जब तक पंजाब विधान सभा में सत्तारूढ़ अकाली-दल का विरोध किया तब तक वह उसे साम्प्रदायिक घोषित करता रहा। और जब से उसने वहाँ अकाली-दल का समर्थन प्रारम्भ किया है तब से उसकी साम्प्रदायिकता समाप्त हो गई है और जनसंघ पहले की ही भांति साम्प्रदायिक दल है।

इस प्रसंग में भी एक रोचक घटना है। गत मास ही गुरुदासपुर से उपनिर्वाचन में लोक सभा के लिए निर्वाचित नई कांग्रेस के श्री प्रबोधचन्द्र ने अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में पत्रकारों से बातचीत करते हुए कहा कि "नई कांग्रेस को अकाली दल के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए अन्यथा कांग्रेस को इसका परिणाम भुगतना पड़ेगा। उनका कथन था कि कांग्रेस अकाली संयुक्त सरकार का सुझाव बेहूदा है। जनसंघ के कुछ लोगों की बातें साम्प्रायिक कही जा सकती हैं, परन्तु वे राष्ट्रविरोधी नहीं हैं, **जबकि अकाली दल पूर्णतया साम्प्रदायिक संस्था है और इसके एक वर्ग की खुल्लमखुल्ला पाकिस्तान से सांठ-गांठ है। यह वर्ग हिन्दुओं को पंजाब में द्वितीय श्रेणी का नागरिक बनाए रखना चाहता है।** यदि कांग्रेस के नेताओं ने अकालियों के प्रति अपनी वर्तमान नीति में परिवर्तन नहीं किया तो इसके लिए उन्हें दूरगामी परिणाम भुगतने के लिए तैयार रहना चाहिए।

उत्तर प्रदेश की राजनीति

पिछले एक मास से उत्तर प्रदेश में जो उथल-पुथल मची हुई है वह किसी समीक्षा का विषय नहीं रहा। अपनी गद्दी बरकरार रखने के लिए राष्ट्रपति, राज्यपाल और प्रधानमन्त्री ने जो पैंतरेबाजी दिखाई है वह सच्चरित्रता, सज्जनता और सदाशयता की राजनीति को लज्जित करती है, राज्यपाल और राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री की रबड़ की मोहर के अतिरिक्त कुछ नहीं इसमें किसी को सन्देह नहीं रह गया है। अतः उत्तर प्रदेश (जिसे कभी-कभी यू० पी० के नाम पर 'उलटा-प्रदेश' भी कह दिया जाता है।) की उलटी-राजनीति में उलझना इस कुसमय में हम उचित नहीं समझते। उपयुक्त अवसर पर इसकी समीक्षा की जाएगी। संविद एवं मन्त्री-मण्डल की स्थापना के बाद भी समस्या सुलझ गई है ऐसा न कोई समझता है और न किसी को समझना ही चाहिए।

पाकिस्तान को अमरीकी शस्त्रास्त्र

१९६५ में पाक-भारत युद्ध के समय अमरीकी टैंकों की जो दुर्गति भारतीयों ने की थी, उसके उपरान्त अमेरिका ने पाकिस्तान को शस्त्रास्त्र देना स्थगित कर दिया था किन्तु अब पुनः देने की घोषणा की है। भारत को इससे चिन्ता होना स्वाभाविक है।

भारत की विदेश नीति इस समय अपने नग्न रूप में खड़ी है। भारत के

भू० पू० प्रधानमन्त्री नेहरू ने अपने दो मित्र बनाए थे चीन और रूस। चीन का भाईचारा भारत भुगत चुका है। न केवल इतना कि १९६५ के युद्ध के दौरान चीन ने पाकिस्तान को नैतिक बल प्रदान किया अपितु सैनिक सामान भी प्रचुर मात्रा में दिया। रूस ने कब-कब हमारा साथ दिया यह संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्यवाही के रजिस्टर बता सकते हैं। पाकिस्तान युद्ध के समय अवसर से लाभ उठाकर उसने भारत की मैत्री को स्थिर रखते हुए पाकिस्तान की ओर सहायता का हाथ बढ़ाकर उससे भी मैत्री कर ली। पाक-रूस मैत्री का जो स्तर आज विद्यमान है वह किसी से छिपा नहीं। चीन से रूस के सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं तदपि अपने मान-चित्रों में वह अपने मित्र देश भारत का उत्तरी भाग चीन का भाग प्रकाशित करता है। मैत्री की यह कौनसी विधि है ? इस प्रकार अमेरिका, रूस और चीन तीनों से पाकिस्तान की मित्रता है।

हम देशवासियों का आह्वान करते हैं कि वे एक स्वर से भारत सरकार की इस घातक गुटनिरपेक्षता की विदेशनीति और धर्मनिरपेक्षता की, आभ्यान्तरिक नीति का विरोध कर उसे विवश करें जिससे कि समय रहते हम अपना अस्तित्व बचा सकें। अन्यथा अणुआयुधों की भयंकर आंधी में अहिंसा-अस्त्र का धनी (?) भारत विश्व के मान-चित्र से विलुप्त हो जाएगा। भारत स्वयं अणुआयुधों का निर्माण करे और अन्य देशों से जितने अधिकाधिक शास्त्रास्त्र प्राप्त कर सके, करे। इसी में देश और विश्व का भी कल्याण है।

●●●

संरक्षक सदस्य

नं० ५६ जगदीशप्रसाद
संघ कार्यालय,
बडम बाजार
जि+पो हजारी बाग (बिहार)

शाश्वत संस्कृति परिषद् के प्रकाशन

१. इतिहास में भारतीय परम्पराएं   ले० श्री गुरुदत्त

पाश्चात्य इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास को जो गलत-सलत करने का षड्यन्त्र रचा था तथा उनके अनुगामी भारतीय इतिहासकार जो उस गलत इतिहास को लोगों के गले उतार रहे हैं, इसकी व्याख्या इस पुस्तक में है। लेखक ने अत्यन्त ही कुशलता तथा युक्ति से उनकी मान्यताओं का खण्डन कर इतिहास की भारतीय परम्पराओं का दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया है।

मूल्य रु० १०.००

२. श्रीमद्भगवद्गीता का एक अध्ययन   ले० श्री गुरुदत्त

प्रायः प्रत्येक मनीषी ने गीता पर विवेचना लिखने का प्रयास किया है। परन्तु इस विवेचना की अपनी विशेषता है। लेखक की मान्यता है कि गीता में जो ज्ञान का भण्डार है, वह कर्म की प्रेरणा के निमित्त है।

मूल्य रु० १५.००

३. भारत : गांधी नेहरू की छाया में   ले० श्री गुरुदत्त

लगभग २५० उद्धरणों के आधार पर रचा गया यह ग्रन्थ नेहरूजी की राजनैतिक जीवनी है। प्रायः उद्धरण श्री नेहरू की अपनी रचनाओं में से लिये गये हैं। यह पुस्तक चित्र का बिलकुल दूसरा और वास्तविक रूप दर्शाती है।

मूल्य १०.०० (सम्पूर्ण पाकेट संस्करण ४.००)

(शेष सूची पृष्ठ ४९ पर देखें)

प्रचार तथा प्रसार में हमें सहयोग दें   —सम्पादक

१. पाठकों से अनुरोध है कि पत्रिका के लेख पढ़ें और उन पर मनन करें। उन पर अपनी प्रतिक्रिया हमें लिखें।

२. क्या आपको पत्रिका पसन्द आई? पत्रिका के स्थायी ग्राहक बन कर तथा अपने मित्रों को बनाकर—

परिषद् के प्रकाशन

४. धर्म संस्कृति तथा राज्य लें० श्री गुरुदत्त

तीनों की विवेचना, तीनों का परस्पर सम्बन्ध, यह इस पुस्तक का विषय है। अत्यन्त ही सरल भाषा में यह पुस्तक लिखी गयी है, परन्तु विषय अत्यन्त ही गम्भीर है।

मूल्य रु० ८.००

५. धर्म तथा समाजवाद

समाजवाद क्या है तथा धर्मवाद क्या है ? दोनों की विस्तृत विवेचना तथा समाजवाद का युक्तियुक्त खण्डन इस पुस्तक का विषय है। लेखक का मत है कि दोनों विपरीत दिशा में ले जाने वाले तन्त्र हैं।

लेखक हैं श्री गुरुदत्त मूल्य रु० ६.००

कुछ अन्य प्रकाशन

६. भारत में राष्ट्र लें० श्री गुरुदत्त मू० सजिल्द रु० २.५०
पाकेट संस्करण रु० १.००

७. समाजवाद एक विवेचन " मूल्य (केवल पाकेट सं०) १००

८. गान्धी और स्वराज्य " मूल्य (केवल पाकेट सं०) १००

९. भारतीयकरण एक अध्ययन सं० अशोक कौशिक मूल्य ८.००

१०. प्रजातन्त्र अथवा वर्ण व्यवस्था लें० श्री गुरुदत्त
मूल्य सजिल्द रु० ४.००
(पाकेट में) २.००

११. हिन्दू का स्वरूप श्री गुरुदत्त ०.५०

वितरक

भारतीय साहित्य सदन सेल्स

३०।९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे) नई दिल्ली-१

उपर्युक्त सभी पुस्तकों का लाभांश तथा उनकी रायल्टी परिषद् के उद्देश्यों के प्रचार तथा प्रसार पर व्यय की जाती है।

पाकेट संस्करण सम्पूर्ण हैं संक्षिप्त नहीं है। आर्डर देते समय कृपया स्पष्ट लिखें किस संस्करण की पुस्तक भेजी जाये।

संरक्षक सदस्य

१. केवल एक सौ रुपये भेजकर शाश्वत संस्कृति परिषद के संरक्षक सदस्य बनिये। यह रुपया परिषद् के पास आपकी धरोहर बन कर रहेगा।

शाश्वत संस्कृति परिषद् का उद्देश्य

विशुद्ध भारतीय तत्त्व दर्शन पर सम्यक् गवेषणा करना तथा उसका प्रचार करना एवं उनके आधार पर राष्ट्र के सम्मुख सभी समस्याओं का सुलझाव प्रस्तुत करना।

संरक्षक सदस्यों की सुविधाएं

१. परिषद् के नवीनतम प्रकाशन तथा आगामी सभी प्रकाशन आप बिना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। नवीन प्रकाशन हैं—१. भारतीयकरण एक अध्ययन (मूल्य ८ रु०) तथा २. इतिहास में भारतीय परम्पराएँ (मूल्य १० रुपये)। आगामी प्रकाशन हैं—वर्ण-व्यवस्था तथा प्रजातन्त्र (मूल्य ४ रु०); राष्ट्रीयकरण (मूल्य ४ रु०); ब्रह्मसूत्र हिन्दी विवेचना (मूल्य २५ रु०) एवं अन्य।

२. परिषद् की पत्रिका शाश्वत वाणी आप जब तक सदस्य रहेंगे प्राप्त कर सकेंगे।

३. परिषद् के पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ (सूची इसी अंक में अन्यत्र देखें) आप २५ प्र० श० छूट के साथ प्राप्त कर सकेंगे।

४. जब भी आप चाहेंगे एक मास पूर्व सूचना देकर अपनी धरोहर वापस ले सकेंगे। धन मनीआर्डर द्वारा भेज सकते हैं। किन्तु छः मास के भीतर ही धरोहर वापस माँगने वाले महानुभावों को वार्षिक शुल्क के पाँच रुपये तथा निर्मूल्य दिये गए प्रकाशनों का मूल्य काटकर ही राशि वापस की जा सकेगी।

शाश्वत संस्कृति परिषद्

३०।९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे)-नई दिल्ली-१

शाश्वत संस्कृति परिषद् के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं विकास आर्ट प्रिं[ंटर्स]
शाहदरा-दिल्ली-३२ में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशि[त]

संरक्षक सदस्य

१. केवल एक सौ रुपये भेजकर शाश्वत-संस्कृति परिषद के संरक्षक सदस्य बनिये। यह रुपया परिषद् के पास आपकी धरोहर बन कर रहेगा।

शाश्वत संस्कृति परिषद् का उद्देश्य

विशुद्ध भारतीय तत्त्व दर्शन पर सम्यक् गवेषणा करना तथा उसका प्रचार करना एवं उनके आधार पर राष्ट्र के सम्मुख सभी समस्याओं का सुलझाव प्रस्तुत करना।

संरक्षक सदस्यों की सुविधाएं

१. परिषद् के नवीनतम प्रकाशन तथा आगामी सभी प्रकाशन आप बिना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। नवीन प्रकाशन हैं—१. भारतीयकरण एक अध्ययन (मूल्य ८ रु०) तथा २. इतिहास में भारतीय परम्पराएँ (मूल्य १० रुपये)। आगामी प्रकाशन हैं—वर्ण-व्यवस्था तथा प्रजातन्त्र (मूल्य ४ रु०); राष्ट्रीयकरण (मूल्य ४ रु०); ब्रह्मसूत्र हिन्दी विवेचना (मूल्य २५ रु०) एवं अन्य।

२. परिषद् की पत्रिका शाश्वत वाणी आप जब तक सदस्य रहेंगे प्राप्त कर सकेंगे।

३. परिषद् के पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ (सूची इसी अंक में अन्यत्र देखें) आप २५ प्र० श० छूट के साथ प्राप्त कर सकेंगे।

४. जब भी आप चाहेंगे एक मास पूर्व सूचना देकर अपनी धरोहर वापस ले सकेंगे। धन मनीआर्डर द्वारा भेज सकते हैं। किन्तु छः मास के भीतर ही धरोहर वापस माँगने वाले महानुभावों को वार्षिक शुल्क के पाँच रुपये तथा निर्मूल्य दिये गए प्रकाशनों का मूल्य काटकर ही राशि वापस की जा सकेगी।

शाश्वत संस्कृति परिषद्

३०।९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे)-नई दिल्ली-१

शाश्वत संस्कृति परिषद् के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं विकास आर्ट प्रिंटर्स शाहदरा-दिल्ली-३२ में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित

दिसम्बर, १९७०   वर्ष १०—अंक १२   रजि क्र० १६८८/६०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

सम्पादक
अशोक कौशिक

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता
प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

सम्पादक
अशोक कौशिक

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१
फोन : ४७२६७

मूल्य
एक अंक रु० ०.५०
वार्षिक रु० ५.००

सम्पादकीय

आखिर आरम्भ कहाँ से करें ?

समय समय पर हमने अपने लेखों द्वारा यह बताने का यत्न किया है कि इस देश में भारी अव्यवस्था है। शान्ति-व्यवस्था बहुत हीन हो चुकी है। पूर्ण देश में और विशेष रूप से बंगाल में राजनीतिक हत्यायें हो रही हैं। सरकारी कामों में भूलें बहुत होती हैं। इसी का एक परिणाम यह हो रहा है कि रेल-दुर्घटनाओं में वृद्धि हो रही है। कोई भी काम समय पर नहीं होता। किंचितमात्र मतभेद होने पर हड़तालें हो जाती हैं।

देश के भीतर की नीतियों की बात यह है कि जनता प्रत्येक बात में सरकार पर निर्भर करने लगी है। सामान्य प्रातर्कर्म के प्रवन्ध से लेकर जीवन के सभी कामों में जनता सरकार का मुख देखती है।

यदि विद्यालय में छात्र हल्ला करते हैं तो सरकार का मुख देखा जाता है। यदि किसी लड़के की जेब में पैसे नहीं और वह बस में चढ़ नहीं सका तो मामला हड़ताल, लूटमार और सरकारी हस्तक्षेप का बन जाता है।

वस्तुओं के मूल्य अत्यधिक बढ़ चुके हैं और दिन-प्रतिदिन महंगाई बढ़ती जाती है। बेकारी में अपार वृद्धि हो रही है और इसमें भी लोग सरकार से सहायता चाहते हैं। यदि कपड़ा नहीं तो वह सरकार से मांगा जाता है। भोजन नहीं तो सरकार को दोष दिया जाता है। मकान नहीं तो ज़िम्मेदार सरकार मानी जाती है। अभिप्राय यह कि जीवन का कोई भी कार्य ऐसा नहीं जिसमें सरकार की सहायता की आकांक्षा न की जाती हो।

हमारी विदेश नीति सर्वथा असफल रही है। हमारे दूतावास तो प्रायः भूमण्डल के सब देशों में हैं, परन्तु हमारी मित्रता किसी देश से भी नहीं। यदि कुछ देश मित्रता का भाव प्रकट करते हैं तो समय पर हमारी सहायता नहीं करते और किंचित्‌मात्र भी मतभेद होने पर हमारी भर्त्सना करने लगते हैं। मित्रता की परख का अवसर मिलते ही सबके-सब देश भारत का विरोध करने लगते हैं।

हमारी विदेश नीति की असफलता का परिणाम यह है कि भारतीयों को सब देशों से धक्के दे-देकर निकाला जाता है और निकालते समय उनको अपनी चल-सम्पत्ति भी साथ लाने नहीं देते।

यह सब खराबी तो है ही, साथ ही जन-मानस का नैतिक-पतन उत्तरोत्तर अधिकाधिक होता चला जा रहा है।

खराबी तो सब दिशाओं में, सब विषयों में और सब विभागों में है, परन्तु प्रश्न यह है कि इसको दूर करने का उपाय क्या है और उसका आरम्भ कहाँ से किया जाये?

हमारा विचार है कि इस सब अव्यवस्था का मूल कारण है हमारे देश की दोषपूर्ण शिक्षा पद्धति और उसका दोषपूर्ण प्रबन्ध। वर्तमान शिक्षा पद्धति को देश में चलते हुए डेढ़ सौ वर्ष से अधिक हो गये हैं और उस शिक्षा को चलाने वाले, उसमें दोष देखने वाले और फिर उसमें सुधार करने वाले इसी दोषपूर्ण शिक्षा द्वारा शिक्षित लोग ही हैं।

पिछले पचास वर्ष से, जबसे 'मोण्टेग्यू चेम्स्‌फोर्ड सुधार' शासन में लागू हुए हैं, तब से ही सरकार और शिक्षा अधिकारी कूक-कूककर कह रहे हैं कि देश की शिक्षा-पद्धति दोषपूर्ण है। अनेकों आयोग और समितियाँ गठित की गई हैं, परन्तु तथ्य यह है कि 'मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों ज्यों दवा की।' जितने आयोग और समितियाँ नियुक्त होती हैं, उनसे सुधार होने की अपेक्षा बिगाड़ ही होता देखा जाता है।

लोग कहते हैं कि यह उन आयोगों और समितियों का दोष नहीं जो शिक्षा में सुधार के लिए नियुक्त होती रही हैं। वे तो बहुत ही अच्छी बातों का सुझाव

देते रहे हैं, परन्तु उन सुझावों पर व्यवहार ही नहीं होता। राजनीति सदा शिक्षा के सुधार में बाधक होती रही है। किन्तु हमारा विचार इससे भिन्न है। हम समझते हैं कि शिक्षा सुधार के लिए जितनी समितियाँ नियुक्त होती हैं, उनको नियुक्त करने वाले, उन पर काम करने वाले और फिर उन आयोग अथवा समितियों की सिफ़ारिशों को कार्यान्वित करने वाले सबके-सब इस दूषित शिक्षा की उपज हैं और वे जिस दूषित वातावरण और स्रोत की उपज हैं तथा अमृत समझकर जिसका वे पान किये हुए हैं, उसमें वे सुधार नहीं कर सकेंगे।

ऐसा भी कहा जाता है कि यही अथवा लगभग ऐसी ही शिक्षा अन्य देशों में उभी तो दी जाती है, और यदि वहाँ पर उन्नति हो रही है तो फिर यहाँ पर न्नति क्यों नहीं हो सकती? हमारी दृष्टि में यह भी मिथ्या आधार पर आश्रित वक्तव्य है। दूसरे देशों में उन्नति हो रही है, यह निर्विवाद सत्य नहीं। यदि किसी प्रकार की प्रगति हो रही है तो वह झूठ, फ़रेब, चोरी, ठगी अथवा संसार को मूर्ख बना अपना उल्लू सीधा करने की ही कही जा सकती है। वास्तविक उन्नति, जिसमें उन देशवासियों का कल्याण हो सके और वे दूसरों का भी कल्याण कर सकें, कहीं दिखायी नहीं देती।

भरत की जनता की आधारभूत अच्छाइयों का, आज से यदि सौ वर्ष पूर्व और अब की तुलना करें तो यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि उन अच्छाइयों में उन्नति नहीं वरंच अवनति ही हुई है।

एक बात तो स्पष्ट ही है कि पढ़े-लिखे लोग भी अब इस बात को अनुभव करने लगे हैं कि शिक्षा में दोष है। क्योंकि जब वे शिक्षा के दुष्परिणाम अपने पर, अपने बाल-बच्चों पर, पड़ोसियों पर अथवा देशवासियों पर देखते हैं तो वे यह मानने पर विवश हो जाते हैं कि शिक्षा दोषपूर्ण है। यह इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि शिक्षा दोषपूर्ण है।

जैसे कभी अर्ध सुषुप्ति की अवस्था में मनुष्य भोजन करता-करता अपने हाथ को ही काट लेता है। हाथ कटने पर उसे अनुभव होता है कि कुछ खराबी हो गयी है, परन्तु अर्ध चेतनता में मनुष्य समझ नहीं सकता कि वह अचेत क्यों है जो उसने भोजन के ग्रास के स्थान अपना हाथ ही काट लिया है। ठीक यही बात वर्तमान शिक्षा द्वारा शिक्षित व्यक्तियों की है। जब इस दूषित शिक्षा से वे अपना हाथ काट लेते हैं तब वे समझने लगते हैं कि उन्होंने भूल की है। भूल का मूल कारण भी वे समझ जाते हैं कि उनकी शिक्षा में दोष है, परन्तु उस शिक्षा से मन्द मति होने के कारण वे समझ नहीं सकते कि इस दोष को किस प्रकार दूर किया जा सकता है।

देश की विडम्बना कहें या कुछ और, तथ्य यह है कि शिक्षा-व्यवस्था पूर्ण रूप से सरकार के हाथ में है और आज सरकार के सभी अधिकारी इसी दोष-पूर्ण शिक्षा की उपज हैं। जैसे एक अफ़ीमची अफ़ीम छोड़ नहीं सकता वैसे ही राज्याधिकारी जो इस दूषित शिक्षा के शिकार हो रहे हैं, वे समझ नहीं पाते कि इस शिक्षा को कैसे बदला जा सकता है !

मूल रूप में शिक्षा में दोष क्या है ? बहुत ही संक्षेप में और मुख्य-मुख्य दोषों का ही उल्लेख करें तो वे निम्न प्रकार हैं—

(१) शिक्षा भौतिकवादी है अर्थात् इस शिक्षा द्वारा शिक्षित व्यक्ति भौतिक संसार के अतिरिक्त किसी वस्तु के अस्तित्व को मानता ही नहीं।

(२) शिक्षा राजनीति की दास है। राजनीति शिक्षा पर अपना अधिकार जमाये हुए है। वर्तमान लोकतन्त्री प्रपंच में राजनीति के सिद्धान्त नित्य बदलते रहते हैं। इसका शिक्षा पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है।

(३) शिक्षा के उद्देश्य के विषय में भ्रम उत्पन्न कर दिया गया है। वर्तमान युग के शिक्षा-शास्त्री शिक्षा को समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मानते हैं। यह ग़लत है। शिक्षा छात्र के शरीर, मन एवं बुद्धि के विकास का साधन है। समाज तो इन सुपुष्ट शरीर, स्वस्थ मन एवं विकसित बुद्धि वालों के पीछे चलने के लिए बना है।

मूल रूप में ये तीन धारणायें हैं जो शिक्षा को कुशिक्षा बनाये हुए हैं और जब तक इनमें सुधार नहीं होता, शिक्षा में सुधार नहीं किया जा सकता और समाज में व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकती।

हम अपने अगले लेख में, इन तीन मूल बातों में दोष क्या है और उसका सुधार कैसे हो सकता है, यह लिखेंगे।

हमारा मत है कि समाज व्यक्तियों का समूह है। जब तक समाज के घटक बुद्धिमान, संवेदनात्मक और संस्कारित मन वाले तथा सुदृढ़ एवं दीर्घजीवी शरीर वाले नहीं हो जाते, तब तक समाज में सुव्यवस्था नहीं हो सकती। और व्यक्ति का निर्माण होता है शिक्षा से।

अतः समाज के रोग का मूल निदान शिक्षा है। आज की मानव की सर्वोपरि आवश्यकता है शिक्षा में सुधार।

अन्तर्राष्ट्रीय हलचल

श्री आदित्य

मध्य पूर्व में स्थिति पूर्ववत् ही रही। अरब गणराज्य और इस्राईल में नब्बे दिन के लिये युद्ध विराम और बढ़ा दिया गया है। अर्थात् युद्ध फूट पड़ने की सम्भावना अभी कुछ काल के लिए और टल गयी है।

इस्राईल के प्रधान मन्त्री श्रीमती गोल्डा मायर का अन्तिम वक्तव्य अभी भी अस्तित्ववान् है कि इस्राईल शान्तिवार्ता के लिए तब तक नहीं जायेगा जब तक मिस्र उन प्रक्षेपणास्त्र अड्डे को युद्ध-विराम आरम्भ की तिथि से पूर्व के स्थान पर नहीं ले जाता। इस्राईल का यह आरोप है कि युद्ध विराम घोषणा के उपरान्त प्रक्षेपणास्त्र अड्डे खिसका कर स्वेज नहर के समीप लाये गये हैं। युद्ध विराम से पूर्व इस्राइलियों की बम्ब-बाजी के कारण वे अड्डे उस क्षेत्र में नहीं लगाये जा सकते थे।

मिस्र ने तो ऐसा करने से इन्कार किया है, परन्तु वह इन्कार ऐसी भाषा में है जिससे यह प्रकट होता है कि वे अड्डे खिसकाये तो गये हैं; परन्तु यह कार्य युद्ध-विराम आरम्भ होने से कुछ घण्टे पूर्व ही किया जा चुका था।

इस्राईल और अमेरिका का यह कहना है कि वे युद्ध-विराम के एक दिन बाद खिसकाये गये हैं। अमेरिका ने तो वे चित्र भी समाचार पत्रों में छपवा दिये हैं जिनमें युद्ध-विराम से पूर्व और उपरान्त के अड्डे के चिह्न हैं और उन चित्रों के अनुसार अमेरिका का यह कहना है कि दस पन्द्रह प्रतिशत नये अड्डे स्वेज नहर में निर्माण किये गये हैं।

रूस का कहना है कि अड्डों का यह खिसकाना रूसी सरकार के ज्ञान में नहीं। उसका यह भी कहना है कि यदि ये अड्डे खिसकाये गये हैं तो रूसी सरकार इस विषय में कुछ नहीं जानती।

खैर, यह तो एक ऐसी बात है जिस विषय में यू० एन० ओ० हस्तक्षेप कर जाँच कर सकता था, परन्तु यू० एन० ओ० का व्यवहार कुछ वर्षों से ऐसा हो रहा

है कि वह आक्रमण करने वालों का पक्ष लेता है। सन् १९६७ के मध्य-पूर्व में हुए पाँच दिन के युद्ध में इस संस्था के व्यवहार से यही प्रतीत हो रहा है। यदि इस्राईल भी भारत की भाँति मूर्खों के अधिकार में होता तो अब तक वह उस पूर्ण क्षेत्र को जो इसने युद्ध में विजय किया था, बिना शर्त के वापिस कर चुका होता।

भारत ने पाकिस्तान के युद्ध में न केवल वह सब पाकिस्तानी क्षेत्र वापिस कर दिया जो इसने सन् १९६५ में जीता था, वरंच वह सब-कुछ साज़ो-सामान भी वापिस कर दिया था जो इसके हाथ में आया था, बिना किसी प्रकार के भविष्य के विषय में आश्वासन के अथवा बिना अपने पाकिस्तान में बन्दी सैनिक वापिस कराये। बहुत-सा भारत का ऐसा सामान है जो पाकिस्तान सरकार ने युद्ध के दिनों में हाथ में ले लिया था और अभी तक लौटाया नहीं। पाकिस्तान ने सन् १९४७ के समझौते के अनुसार भारत का बहुत-सा रुपया देना है और वह नहीं दिया। कश्मीर के लगभग एक तिहाई भाग पर पाकिस्तान ने बलपूर्वक अधिकार किया हुआ है, वह अभी तक नहीं लौटाया। इस पर भी भारत सरकार के बुद्धू नीतिज्ञ गये और सन्धि पर हस्ताक्षर कर आये।

सन् १९६७ के युद्ध को तीन वर्ष हो चुके हैं और स्वेज नहर बन्द पड़ी है। इस नहर के बन्द होने से अनेक देशों को अपार हानि हो रही है और इनमें भारत भी हानि उठा रहा है। साथ ही यू० एन० ओ० का आदेश कि स्वेज का क्षेत्र इस्राईल खाली कर दें, अभी तक प्रभावहीन रहा है। इस्राईल यह तो मानता है कि वह इस क्षेत्र को खाली कर देगा, परन्तु पहले यह आश्वासन चाहता है कि अरब के राज्य इस्राईल राज्य के अस्तित्व को स्वीकार करें।

और हमारे राज्य वाले तो भारत के भू-भाग बिना युद्ध के भी विदेशियों को देने के लिए तैयार रहे हैं। कच्छ का क्षेत्र दे दिया, काश्मीर, लद्दाख और नेफ़ा का क्षेत्र दे दिया और बेरूबारी देने के लिए तुरन्त तैयार हो गये।

भारत सरकार के इस व्यवहार से एक बात सिद्ध होती है कि भारत सरकार युद्ध करने की सामर्थ्य नहीं रखती। पाकिस्तान भारत से प्रत्येक प्रकार से बहुत छोटा है, परन्तु पाकिस्तान अपनी विदेश नीति के बल पर भारत से बहुत प्रबल है।

इसके विपरीत ऐसा सिद्ध हो रहा है कि इस्राईल जो मिस्र और सब अरब राज्यों से बहुत छोटा देश है, रेगिस्तान प्रदेश में केवल पच्चीस लाख आबादी का देश, अपने को संयुक्त अरब मोर्चे से भी बलवान् सिद्ध कर चुका है और विदेश नीति के निर्धारण में भी अधिक योग्य है।

भविष्य में क्या होगा ? इसकी भविष्यवाणी करनी अति कठिन है। इस पर

भी लक्षणों से यह प्रतीत हो रहा है कि यह युद्ध-विराम अब कुछ वर्ष तक चलेगा और जब भी दोनों पक्षों में सन्धि होगी, उसमें स्वेज नहर के स्वामित्व के विषय में स्थिति पूर्ववत् (१९५६ के उपरान्त की) नहीं रह सकती। इस स्थिति में कम-से-कम यह हो सकता है कि इस्राईल इसके मुकाबले में एक दूसरा जल मार्ग निर्माण कर ले और उसके लिए उसे सुविधायें प्राप्त हों। साथ ही इस्राईल का राज्य अब अरबों को स्वीकार करना होगा। इस्राईल की सीमायें भी पुनः निश्चय होंगी।

यदि ऐसा हुआ तो रूस का अभिमान कि वह संसार को जिस प्रकार चाहे मोड़ सकता है, विलीन हो जाएगा। अब वह बात नहीं रही जो द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त थी। उस समय कुछ तो रूज़वेल्ट के सलाहकारों की विकृत मन-स्थिति के कारण और कुछ अमेरिका के सैनिकों की मृत्यु संख्या से भयभीत हो अमेरिका ने कम्युनिस्टों को युद्ध जीतने का श्रेय दे दिया था जो एक दुर्भाग्यपूर्ण भ्रम था।

इन मानसिक दुर्बलताओं के कारण अमेरिका ने चीन कम्युनिस्टों के हाथ में दे दिया और रूस को पूर्वी यूरोप पर अधिकार जमाने की स्वीकृति दे दी।

समय व्यतीत होने के साथ-साथ उन लोगों की संख्या बढ़ रही है जो दुनिया को अब दूसरे ढंग से देखने लगे हैं। प्रायः सबके सब स्वतन्त्र देश कम्युनिस्टों से सतर्क हो रहे हैं और इस प्रक्रिया में चीन का अभिनय आँखें खोलने वाला सिद्ध हो रहा है।

इस पर भी अभी स्वतन्त्र देशों की स्वतन्त्र जनता को यह समझ नहीं आ रहा कि झगड़ा क्या है और इसका मुकाबला कैसे करना चाहिये? यह युद्ध कम्युनिस्ट और नौन-कम्युनिस्ट विचारधाराओं का युद्ध है। यह न तो राज-नीतिक प्रभुत्व प्राप्त करने का है और न ही प्रजातन्त्र के पक्ष-विपक्ष का झगड़ा है। यह भूमण्डल के असुर प्रवृत्ति और दैवी प्रवृत्ति वालों में झगड़ा है।

असुर प्रवृत्ति वालों ने कहीं तो इसको निर्धन और धनियों के झगड़े का नाम दिया है। कहीं प्रजातन्त्र और अप्रजातन्त्र में विवाद का नाम दिया है। कहीं इसको सम्पत्तिविहीन और सम्पत्तिधारियों का झगड़ा कहा है। इसको प्रगति और विगति का नाम भी दिया जाता है। पुराना और नया नाम देकर युवकों को भड़काया जाता है। इस प्रकार इस दैवी और आसुरी विवाद को अनेक नाम दिये जा रहे हैं।

वास्तव में इस झगड़े का मूल कारण है दैवी मनोवृत्ति और आसुरी मनो-

वृत्ति। दोनों में अन्तर जानना हो तो भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय को पढ़ लें। उस अध्याय का संक्षेप में यह अर्थ है कि जो इन्द्रिय सुखों के लिए सब-कुछ बलि चढ़ा सकते हैं, वे असुर हैं और दैवी प्रवृत्ति के लोग इन्द्रिय सुखों से ऊपर सत्य, न्याय, समानता और शम, दम को समझते हैं।

यह सब इस बात से सिद्ध हो रहा है कि भूमण्डल में जहाँ भी विषय-वासना, सुख-भोग, बल-प्रयोग और बुद्धिविहीनता है, वहाँ कम्युनिस्ट अग्रणी हैं।

यही बात इस्राइलियों और अरबों की है। कम्युनिज़्म और इस्लाम में सुगमता से गठजोड़ हो सकेगा। इस्राइली आस्तिक हैं। उनसे कम्युनिज़्म का समन्वय असम्भव है।

यह ठीक है कि जो स्वरूप परमात्मा का जुड़ाइज़्म में स्वीकार किया जाता है, वह अन्य आस्तिक मतों में स्वीकार न किया जाता हो, परन्तु इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि जो परमात्मा को मानते ही नहीं, उससे तो परमात्मा के अस्तित्व को मानने वाले अधिक अच्छे हैं।

हमारा यह मत है कि प्रजातन्त्र अनीश्वरवाद है और यह जन-मन को कम्युनिज़्म के पथ पर ले जाता है। ईश्वरवाद और अनीश्वरवाद में सबसे बड़ा अन्तर विद्वान और अविद्वान की मान्यता का है। जहाँ प्रजातन्त्र में अविद्वान् को विद्वान के बराबर माना जाता है, वहाँ परमात्मा को मानने वाले विद्वानों को सदा श्रेष्ठ मानेंगे। इस बात पर मतभेद हो सकता है कि विद्वान कौन है, परन्तु यह नहीं स्वीकार किया जा सकता कि विद्वत्ता की परीक्षा मत प्राप्त करना हो।

हम यह नहीं कह सकते कि इस्राईल की ही अन्तिम विजय होगी। विजय का सम्बन्ध ईश्वरवाद और अनीश्वरवाद से नहीं। इसका सम्बन्ध शक्ति संचय से है। ईश्वरवादी कभी भूल से शक्ति संचय नहीं करते, जैसे गांधी ने किया था। तब ईश्वरवादियों की पराजय होती है।

इस स्थान पर एक उपयुक्त प्रश्न पूछा जा सकता है कि इस्राईली तो ईश्वर-वादी मान लिए गये हैं, भला अरबों को ऐसा क्यों नहीं माना जाता? इसका उत्तर हम नहीं देंगे। इसका उत्तर देना भारत सरकार ने कानून से बन्द कर रखा है।

नये संरक्षक सदस्य

५७. अमृतलाल प्रेमचन्दानी
३८, पागनिस पारा
इन्दौर-२

वेदान्त दर्शन में कर्म और ज्ञान

श्री गुरुदत्त

कर्म और ज्ञान का विवाद नवीन वेदान्तियों का खड़ा किया हुआ है। वास्तव में शास्त्र में तो ऐसा कोई का विवाद है ही नहीं।

इस विवाद को उत्पन्न करने वाले नवीन वेदान्त के प्रवर्त्तक श्री स्वामी शंकराचार्यजी ही हैं। उनसे पूर्व किसी ने कर्म और ज्ञान को परस्पर विरोधी नहीं बताया।

स्वामी शंकराचार्य अपने गीता भाष्य में तीसरे अध्याय के पूर्व-कथन में कर्म-निष्ठा और ज्ञान-निष्ठा का काल्पनिक विवाद खड़ा करके लिखते हैं—

अस्मात् च भिन्नपुरुषानुष्ठेयत्वेन ज्ञानकर्मनिष्ठयोः भगवतः प्रतिवचन-दर्शनात्, ज्ञानकर्मणोः समुच्चयानुपपत्तिः ॥

अर्थात्—अतएव भगवान् के इस उत्तर को कि ज्ञान-निष्ठा और कर्म-निष्ठा का अनुष्ठान करने वाले अधिकारी भिन्न-भिन्न हैं, देखने से यह सिद्ध होता है कि ज्ञान तथा कर्म का समुच्चय सम्भव नहीं।

मोक्षस्य च अकार्यत्वाद् मुमुक्षोः कर्मानर्थक्यम्।

अर्थ है—मोक्ष अकार्य है (किसी क्रिया से प्राप्त होने वाला नहीं)। इसलिये मुमुक्ष के लिए कर्म व्यर्थ है।

स्वामीजी यही मानते हैं कि कर्म करना छोड़ दिया जाये। अन्यथा मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी।

स्वामी शंकराचार्य ने जो यह लिखा है कि भगवान् ने गीता में लिखा है कि ज्ञान-निष्ठा और कर्म-निष्ठा का अनुष्ठान करने वाले अधिकारी भिन्न-भिन्न हैं और ज्ञान तथा कर्म का समुच्चय (एक स्थान पर होना) सम्भव नहीं; यह सब अपने मन से अथवा गीता को न समझते हुए लिखा है। गीता का अभिप्राय ऐसा नहीं है। परन्तु यह लेख गीता के विषय में न होने से हम इसको किसी दूसरे लेख के लिए छोड़ते हैं। यहाँ इसका उल्लेख तो स्वामी

शंकाराचार्य का मत लिखने के लिए दिया है। यह मत है कि मोक्ष-प्राप्ति में कर्म की न केवल ग्रावश्यकता ही नहीं है, वरंच कर्म मोक्ष प्राप्ति में बाधक भी है।

हम इस लेख में यह सिद्ध कर रहे हैं कि वेदान्त दर्शन के प्रवक्ता ऐसा नहीं मानते जिस प्रकार स्वामी शंकराचार्य मानते हैं। स्वामीजी ने पूर्वग्रहों से प्रेरित ग्रपने पक्ष को सिद्ध करने के लिये ग्रर्थों का ग्रनर्थ करने का यत्न किया है।

दर्शनाचार्य ने वेदान्त दर्शन के तीसरे ग्रध्याय के दूसरे पाद में मनुष्य में शरीर, जीवात्मा ग्रौर परमात्सा के सम्बन्ध की बातें लिखकर तीसरे पाद में यह लिखा है कि पापों के नाश से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। (वे० द०—३-३-२६) तदनन्तर लिखा है कि ऐसा व्यक्ति जिसके पाप नाश हो चुके हों, वह ज्ञानवान योगी है। जैसे वह इस लोक को पार कर सकता है वैसे ही स्वर्ग लोक को पार कर ब्रह्म लोक को जा सकता है। ग्रर्थात् ज्ञानी जीवात्मा जैसे इस लोक को पार कर सकता है वैसे परलोक को भी पार करने में समर्थ है। (वे० द०-३-३-२७) तदनन्तर लिखा है कि मनुष्य स्वर्ग लोक से ब्रह्म लोक में जाये ग्रथवा न, इसमें उसे स्वतन्त्रता है।

इस प्रकार मोक्ष प्राप्ति में ज्ञान के ग्राश्रय की बात लिखी है, परन्तु इसी ग्रध्याय के चौथे पाद के ग्रारम्भ में ही लिखा है :

पुरुषार्थोऽतः शब्दादिति बादरायणः ॥ (वे० द०—३-४-१)

ग्रतः पुरुषार्थ भी है। यह वेद में कहा है ग्रौर महर्षि बादरायण भी कहते हैं।

पुरुषार्थ के दो ग्रर्थ हैं। एक तो मनुष्य के प्रयत्न का फल। इसके ग्रर्थ संस्कृत शब्द कोष में लिखे हैं—object of human persuit। इसके दूसरे ग्रर्थ प्रयत्न के हैं effort, exrtion।

यदि पहले ग्रर्थ लें तो इस सूत्र के ग्रर्थ बन जाते हैं कि मोक्ष भी है। इसके लिखने की ग्रावश्यकता नहीं थी। कारण यह कि मोक्ष का उल्लेख पहले ग्रा चुका है। ग्रतः हमारा मत है कि यहाँ पुरुषार्थ, परिश्रम ग्रर्थात् कर्म के ग्रर्थों में ही ग्राया है ग्रौर इस पाद में ज्ञान ग्रौर कर्म के परस्पर सम्बन्ध की बात लिखी जाने वाली है। साथ ज्ञान से मोक्ष की बात पहले पाद में ग्रा चुकी है। ग्रतः पुरुषार्थ के दूसरे ग्रर्थ ही ठीक हैं ग्रौर सूत्र के ग्रर्थ बनते हैं। 'पुरुषार्थ (कर्म) भी है' ऐसा बादरायणजी का मत है। मत यह है कि मोक्ष प्राप्ति में ज्ञान के साथ कर्म भी सहायक होता है।

वास्तव में श्री स्वामी शंकराचार्यजी कर्म का ग्रर्थ ग्रग्निहोत्रादि यज्ञ लेते हैं, परन्तु सूत्रकार कर्म के ग्रर्थ सत्कार्य लेता है।

बात एक ही है। यज्ञ तो एक व्यापक शब्द है। सब सत्कार्य जो निष्काम भाव से किये जायें, यज्ञ ही कहलाते हैं।

विवाद यह है कि इस लोक में किये सत्कार्य मोक्ष प्राप्ति में सहायक होते हैं अथवा नहीं। इस (वे० द०—३-४-१) से तो यह पता चलता है कि पुरुषार्थ अर्थात् कर्म भी है जो मोक्ष प्राप्ति में सहायक होता है।

इसी पाद के दूसरे से सातवें सूत्रों के अर्थ इस प्रकार हैं।

(२) शेषत्वात्पुरुषार्थवादो यथान्येष्विति जैमिनिः ॥

पुरुषार्थवाद के शेष होने से अन्य विषयों की भाँति मानो।

अन्य विषय का अर्थ है मोक्ष प्राप्ति से अन्य, जो कुछ भी है। उनमें पुरुषार्थ को सहायक माना जाता है। शेष कर्म का अभिप्राय प्रत्येक काम का उपसंहार है।

(३) आचारदर्शनात् ॥

आचरण देखा जाने से भी यही सिद्ध होता है। क्या ? कि कर्म भी सिद्धि में सहायक होता है।

(४) तच्छ्रुतेः ॥

तत् विषय में श्रुति में भी यही लिखा है।

(५) समन्वारम्भणात् ॥

समान आरम्भ से। अर्थात् ज्ञान और कर्म साथ-साथ आरम्भ होते हैं।

(६) तद्वतो विधानात् ॥

उस वाले के विधान से। उस वाले का अभिप्राय है साथ आरम्भ होने वाले साथ-साथ चलते हैं। ऐसा विधान (नियम) है।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ् समाः। (यजु०—४०-२)

(७) नियमाच्च ॥

नियम से भी यही होना चाहिये ज्ञान और कर्म साथ-साथ चलने चाहियें।

यह स्पष्ट है कि सूत्र क्रमांक दो से सात तक प्रथम सूत्र कि पुरुषार्थ भी है, की व्याख्या में है। परन्तु श्री स्वामी शंकराचार्यजी इन छः सूत्रों को पूर्व पक्ष के बताकर कहते हैं कि ये जैमिनि ऋषि का मत है। बादरायण का मत अगले अर्थात् आठवें सूत्र में दिया है।

सूत्रकार ने दूसरे सूत्र में यह लिखा अवश्य है कि यह जैमिनि का मत है, परन्तु यह वेदान्त दर्शन के वक्ता के विरुद्ध है, यह न तो स्पष्ट है और न ही संकेत रूप में कहा गया है। वेदान्त दर्शन में स्थान-स्थान पर सूत्रकार अपने मत के समर्थन में अन्य ऋषियों, विद्वानों और वेद शास्त्रों का संकेत करते आये हैं।

यहाँ भी जैमिनि ऋषि का मत बादरायण के समर्थन में ही है। कोई कारण नहीं कि इसे सूत्रकार अथवा बादरायण के विरुद्ध समझा जाये।

जब हम अगला सूत्र देखते हैं, जिसे स्वामीजी सूत्रकार का मत कहते हैं तो वह भी जैमिनि के समर्थन में ही प्रतीत होता है। अगला सूत्र इस प्रकार है—

(८) **अधिकोपदेशात्तु बादरायणस्यैवं तद्दर्शनात्** ॥ (वे० द०—३-४-८)

इसका अन्वय इस प्रकार है।

अधिकोपदेशात्-तु-बादरायणस्य-एवं-तद्दर्शनात् ॥

अधिक कहने से तो बादरायणस्य का भी (यही मत है) कि उसके देखे जाने से।

सूत्र के शब्दार्थ से तो स्वामी शंकराचार्यजी का पूर्ण मत खण्डित हो जाता है। इसी कारण श्री स्वामी शंकराचार्यजी अपने पूर्वग्रहों से ग्रस्त उक्त सूत्र के अर्थों में हेरा-फेरी कर गये हैं। आप इस सूत्र में 'तु' शब्द के विषय में लिखते हैं—

'तु शब्दात्पक्षो विपरिवर्तते। अर्थात् तु शब्द से पूर्व पक्ष की व्यावृत्ति होती है।

वाह ! यह कैसे ? 'तु' शब्द सदा व्यावृत्ति प्रकट नहीं करता। हम उदाहरण देते हैं। यदि सोम बम्बई गया तो पूना भी जाएगा। यह (तु) तो शब्द से व्यावृत्ति नहीं, वरंच कुछ अधिक के अर्थ हैं। और लीजिए यदि मेरी नींद प्रातः खुल गयी तो तालकटोरा बाग में घूमने जाऊँगा। यहाँ भी अर्थों में वृद्धि हुई है, व्यावृत्ति नहीं।

उक्त (३-४-८) में 'तु' शब्द भी अधिक के लिए आया है। यह सूत्र में ही लिखा है कि अधिकोपदेशात् अधिक कहने से। हमारा सुनिश्चित मत है कि यह 'तु' शब्द व्यावृत्ति का सूचक नहीं, वरंच जैमिनिजी के कहे के समर्थन में और बल देने के लिये है।

इसके आगे के सूत्रों के पढ़ने से यह स्पष्ट हो जायेगा कि स्वामीजी ने जो महर्षि जैमिनि को पूर्व पक्ष बताया, यह भूल है। जैमिनि भी वेदानुगामी थे। इस कारण इस मूल विषय पर मतभेद होगा, सम्भव प्रतीत नहीं होता।

इस बात का और स्पष्ट कथन और उसमें युक्तियाँ भी इस पाद के अगले सूत्रों में दी हैं। उनको हम अगले लेख में लिखेंगे।

⚜

भारतीय इतिहास का एक पक्ष

श्री सचदेव

भारत के इतिहास को अज्ञात, अस्पष्ट और प्राचीन भारतीयों को असभ्य एवं अशिक्षित सिद्ध करने के लिए शासक वर्ग लाखों और करोड़ों रुपये व्यय कर रहा है।

मुसलमान शासकों के काल से भी पहले से यह प्रयास जारी है। बौद्धकाल में भी इसको दूषित करने के प्रयास किये गये। मुसलमानी काल में तो भारत के इतिहास और साहित्य को जलाकर भस्म करने का भरसक प्रयास किया गया। अंग्रेज़ी काल में इसे विकृत करने के लिए ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय में एक इण्डोलॉजी का विभाग खोला गया और उसका एक सार्वजनिक अंग 'रायल ऐशियाटिक सोसायटी' को सौंपा गया तथा इस पर लाखों पौण्ड वार्षिक व्यय किया जाने लगा।

बौद्धकाल में इस प्रयास को ब्राह्मण षड्यन्त्रकारी का भण्डाफोड़ नाम दिया गया। मुसलमानी काल में इसे कुफ्र को तहेतेग करने की घोषणा कहा गया और अंग्रेजी काल में इसे सच्चाई की खोज का नाम दिया गया।

अब भी साम्प्रदायिकता का विष निकालने के लिए भारतीय इतिहास और साहित्य को मिटा कर नया मनगढ़न्त इतिहास लिखने के लिए स्थान रिक्त किया जा रहा है।

प्रश्न उपस्थित होता है कि ऐसा क्यों किया जा रहा है? बौद्धों की बात छोड़िए। इसे बहुत काल व्यतीत हो चुका है और मुसलमानों के काल की बात इस समय कोई हिन्दू कह नहीं सकता। वर्तमान सरकार ने सत्य कहने का, कानून से निषेध कर दिया है।

अंग्रेज़ी काल की बात बताने की अभी स्वीकृति है। उसका किस्सा ही अभी बताने का विचार है।

प्लासी के युद्ध से पूर्व अंग्रेज का हिन्दुस्तान में राज्य स्थापित करने का विचार

कितना सुदृढ़ था, कहा नहीं जा सकता। इतना निश्चय है कि हिन्दुस्तान को इंग्लैण्ड से व्यापार चलाया गया। अधिक से अधिक मात्रा में और इंग्लैण्ड के अधिक से अधिक लाभ के लिए। व्यापार को उन्नत और लाभप्रद करने के लिए ही यत्र-तत्र राजनीति में हस्तक्षेप किया जाता था।

परन्तु प्लासी विजय के उपरान्त तो इंग्लैण्ड की सरकार और ईस्ट इण्डिया कम्पनी, दोनों ही सत्ता हथियाने के स्वप्न देखने लगे थे। इससे पूर्व जो अंग्रेज़ तथा अन्य यूरोपियन विद्वान् भारत में आये अथवा भारत के विषय में लिखते रहे, वे यहाँ के आचार-विचार, यहाँ के इतिहास और वाङ्मय के विषय में प्रशंसात्मक भाव में लिखते रहे।

सन् १७८३ में विलियम जोन्स, कलकत्ता के अंग्रेज़ी क्षेत्र में न्यायाधीश नियुक्त हुए और उन्होंने कालिदास के शकुन्तला नाटक का अनुवाद किया और छपवाया। तदनन्तर सन् १७९६ में इसी लेखक ने मनुस्मृति का अंग्रेज़ी अनुवाद किया।

इन दो प्रकाशनों ने हिन्दू सभ्यता और साहित्य की चर्चा इंग्लैण्ड और अन्य यूरोपियन देशों में चला दी। यूरोप के अन्य उपनिवेशों से भिन्न भारत की महिमा सर्वोपरि हो गयी।

सन् १८१८ में 'बौन-बौन' (जर्मन) विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर आगस्ट विलहैल्म और फ़ान श्लैगल ने संस्कृत भाषा और साहित्य में बहुत रूचि प्रकट की। इन्हीं प्रोफ़ेसर के एक शिष्य हैम्बोल्ट ने सन् १८३३ में भगवद्गीता की प्रशंसा पर लिखा। सन् १९०५ में कोलब्रुक ने वेदों पर एक प्रशंसात्मक ग्रन्थ लिखा।

इन और इसी प्रकार के अन्य लेखकों के प्रशंसात्मक लेखों ने ब्रिटिश सरकार के राजनीतिक अधिकारियों के मस्तिष्क में खलबली उत्पन्न कर दी। वे समझने लगे कि इतना अच्छा, सुन्दर और श्रेष्ठ साहित्य के रचने वालों पर चिरकाल तक राज्य नहीं किया जा सकता। अतः राज्य के भूखे इंग्लैण्ड के शासकों के मस्तिष्क यह विचार करने लगे कि किस प्रकार अंग्रेज़ी राज्य को, जो कुछ ही वर्ष पूर्व स्थापित हुआ था, सुदृढ़ आधार पर खड़ा किया जाये ?

इसके लिए दो उपाय किए गये। एक तो यह कि प्राचीन हिन्दुस्तान की संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान पर पर्दा डालकर उसे मिटाने का यत्न किया जाये और दूसरी बात यह विचार की गयी कि भारतवासियों को ऐसी शिक्षा दी जाए कि ब्रिटिश सरकार की भारत-निन्दा पर विश्वास करने लगें।

उक्त और भारतीय प्राचीन साहित्य की अनेकों अन्य प्रशस्तियाँ पढ़कर

विन्टर्निट्ज़ नामक एक अंग्रेज़ लेखक घबरा उठा। इंग्लैण्ड में एक ट्रस्ट बनाया गया जिसमें संस्कृत साहित्य को विकृत कर छपवाने का आयोजन किया गया। इस ट्रस्ट के निर्माता कर्नल बोडन थे और उन्होंने इस ट्रस्ट के उद्देश्यों में लिखा था कि संस्कृत के अध्ययन से हिन्दू ब्राह्मणों में ईसाई धर्म के प्रचार के लिए धन व्यय किया जायेगा।

तदनन्तर तत्कालीन वायसराय की कौन्सिल के सदस्य बैबिंगटन मैकॉले ने भारतीय युवकों की शिक्षा को अपने हाथ में लेकर उन्हें अपने पूर्वजों को अनपढ़ और मूर्ख मानने वाला बनाने का यत्न किया। उसने भारत की शिक्षा को अंग्रेज़ी माध्यम में और आक्सफ़ोर्ड के ढंग की करने के लिए ब्रिटिश पार्लियामैण्ट से स्वीकार करवाया और यहाँ की वर्तमान शिक्षा पद्धति को जन्म दिया।

इस शिक्षा का वर्णन करते हुए मैकॉले ने कहा :—

It is my belief that, if our plans of education are followed up, there will not be a single idolator among the respectable class in bengal, thirty years hence .

मैकाले का विचार था कि बीस-तीस वर्ष में हिन्दू धर्म और पूजा-पाठ का नाम लेने वाला कोई नहीं रहेगा। मैकाले की आशा तो पूर्ण हुई है, यद्यपि बीस-तीस वर्ष में नहीं। इसमें डेढ़ सौ वर्ष लग गये हैं।

केवल शिक्षा की भाषा ही नहीं बदली गयी, वरंच प्राचीन साहित्य को बद-नाम किया गया और इतिहास को विकृत करने का यत्न किया गया।

इतिहास को विकृत करने के लिये सबसे पहला प्रयास यह किया गया कि भारत का पूर्ण इतिहास बाइबल की पूर्ववर्ती तिथियों से बदलकर परवर्ती तिथियों की ओर कर दिया गया।

बाईबल के इतिहास से तो आदि मानव आज से पाँच से सात सहस्र वर्ष पूर्व हुआ पता चलता है और ईसाई लेखकों का यह यत्न है कि किसी भी देश में पाँच सहस्र वर्ष पूर्व के लक्षण दिखाई न दें।

भारत का इतिहास बहुत पुराना है। उसको भी संकुचित कर बाईबल के आदि सृष्टि काल से इधर लाने का यत्न किया गया है।

इस प्रयत्न में चन्द्रगुप्त मौर्य के काल की गणना को किस प्रकार बदला गया है यह हम देखेंगे।

भारतीय स्रोतों से चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण काल ईसा पूर्व १४२१ वर्ष है। इस गणना का आधार एक तो पुराणों में वर्णित वंशावलियाँ हैं। महाभारत युद्ध में मगध के एक बृहद्रथ के नाम के राजा ने भाग लिया था और वह युद्ध में मारा

गया था। उसका पुत्र सोमाधि राज्यगद्दी पर बैठा था। वंश बृहद्रथ के नाम पर ही चला। इस वंश में २२ राजाओं का उल्लेख पुराणों में मिलता है और इस वंश का राज्य काल ९५१ वर्ष था।

बृहद्रथ वंश के उपरान्त प्रदोत्त वंश हुआ। इसके पांच राजा हुए और इनका राज्य काल १३८ वर्ष लिखा है।

तदनन्तर शिशु नाक वंश के दस राजाओं का राज्य काल ३६८ वर्ष है। इस वंश के उपरान्त महापद्म नन्द वंश हुआ। इसके ९ राजाओं का राज्य काल १३७ वर्ष माना जाता है। महापद्म नन्द के उपरान्त मौर्य वंश हुआ, जिसका प्रथम राजा चन्द्रगुप्त मोर्य था। यह काल ९५१+१३८+२६२+१३७= १४८८ वर्ष बनता है। अन्य प्रमाणों से (महाभारत युद्ध के तुरन्त उपरान्त) युधिष्ठिर का राज्य-आरम्भ आज से ५०७९ वर्ष पूर्व माना जाता है। अतएव चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण आज से ५०७९—१४८८ अर्थात् ३५९१ वर्ष बनता है। इसका अभिप्राय है कि चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण काल ३५९१—१९७०= १६२१ वर्ष ईसा पूर्व होता है।

यह मैकॉले के चेले इतिहास के कथित विद्वान मानने के लिए तैयार नहीं। वे इसका खण्डन इस प्रकार करते हैं। वे कहते हैं कि एक यूनानी मैगस्थनीज़ भारत-वर्ष में आया था और उसने अपने देश में जाकर भारत पर एक पुस्तक लिखी थी। वह पुस्तक तो अब मिलती नहीं, परन्तु उस पुस्तक के कुछ छितरे हुए अंश उदाहरणों के रूप में अन्य पुस्तकों में लिखे मिले हैं। उनका संकलन एक जर्मन लेखक स्वान बैंक ने किया है।

इस संकलन को पढ़कर 'रायल ऐयशिाटिक सोसायटी' की कलकत्ता शाखा के प्रथम सैक्रेटरी सर जोन्स ने यह अनुमान लगाया कि मैगस्थनीज़ के उपलब्ध लेखों में चन्द्रगुप्त का उल्लेख है। मैगस्थनीज़ सैल्युकस का राजदूत बन भारत में आया। और सैल्युकस का काल ईसा सम्वत् से विदित है। अतः चन्द्रगुप्त के काल की ईसा सम्वत् से ३२३ वर्ष पूर्व गणना की गयी है। भारतीय गणना और जोन्स की गणना में लगभग १२०० वर्ष का अन्तर पड़ जाता है।

यूरोपियन इतिहास के ज्ञाता तथा उनकी परिपाटी पर कार्य करने वाले यह मानते हैं कि जोन्स साहब की कल्पना ठीक है और पुराण से पता किया गया तिथि-काल ग़लत है। हम अपने अगले लेख में इस मतभेद पर विवेचन लिखेंगे।

माण्डूक्य उपनिषद्

□

श्री प्रभाकर

(गतांक से आगे)

ऊपर हम लिख आये हैं कि इस उपनिषद् के प्रथम मन्त्र में लिखा है कि इस जगत् में जो कुछ है वह 'ओं' अक्षर, अविनाशी ही है—इत्यादि।

अक्षर अर्थात् अविनाशी के साथ 'ओं' दो बातों की ओर संकेत करता है। एक तो यह कि 'ओं' नाम का पदार्थ अक्षर (अविनाशी) है। दूसरी बात यह लिखी है कि (इदं सर्वं) यह सब कुछ (तस्योपव्याख्यानं) उसका ही व्याख्यान है। (भूत, भवद्, भविष्यदिति) भूत काल, भविष्य और वर्तमान जो कुछ भी है। (सर्वमोंकार एव) सब ओंकार ही है। (यत् च अन्यत्) और जो कुछ दूसरा है, (त्रिकालातीतं) तीनों काल (भूत, वर्तमान और भविष्य) के बाहर, (तदपि ओंकार एव) वह भी ओंकार ही है।

हमने पदच्छेद कर अनुवाद इस कारण किया है कि जिससे संशय न रहे कि कुछ भी भाव इस मन्त्र का रह गया है। कारण यह कि वेदान्त का पूर्ण प्रासाद (माण्डूक्य) उपनिषद् के इस मन्त्र पर ही खड़ा किया गया है।

इस मन्त्र में यह तो लिखा है कि पूर्ण जगत् जो कुछ अब दिखायी देता है, जो कुछ किसी भूत काल में रहा है अथवा जो कभी भविष्य में यह होगा, वह अक्षर ओंकार ही है।

ओंकार की महिमा का वर्णन है। यह हिन्दू जीवन-मीमांसा की धुरी है। यह सब जगत् और जो कुछ जगत् से भी परे है, सब ईश्वर से ही है।

इस पर भी इसमें यह नहीं लिखा कि ईश्वर के अतिरिक्त कुछ नहीं है। (इदं सर्वं) का अर्थ यह कार्य जगत् है। कार्य जगत् से हम रूप नाम वाले पदार्थों को मानते हैं।

जगत् (जो गतिशील है) को अंग्रेज़ी में 'universe' कहते हैं। यह बहुत बड़ा है, परन्तु गतिशील जगत् से भी एक बड़ा है। उसे व्योम अथवा अम्बर

कहते हैं। यह अनन्त विस्तार वाला है। इसकी लम्बाई-चौड़ाई की कुछ भी गणना नहीं। इस अनन्त अम्बर में परमात्मा व्याप्त है। इस विषय में वेदान्त दर्शन में लिखा है—

अक्षरमम्बरान्तधृतेः ॥ (वे० द०—१-३-१०)

अर्थात्—वह अक्षर (ओंकार) अम्बर के अन्त तक (के स्थान) को घेरे हुए है।

जगत् (चलायमान सृष्टि) तो अम्बर के अन्त तक नहीं है। साथ ही चलायमान पदार्थों के भीतर बहुत बड़ा लम्बा-चौड़ा स्थान प्रत्यक्ष रूप में रिक्त दिखायी देता है। उक्त वेदान्त सूत्र के भावानुसार उस अन्य स्थान भी जो रिक्त दिखायी देते हैं, वहाँ सबमें ओंकार व्याप्त है।

इसी वेदान्त दर्शन का एक अन्य सूत्र है।

द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात् ॥ (वे० द०—१-३-१)

(द्यु, भू आदि आयतनं) अम्बर, भू आदि (सब ग्रह नक्षत्रादि) का आश्रय है, वह परमात्मा (ओंकार) है। और भी लिखा है—

मुक्तोव्यपसृप्यव्यपदेशात् ॥ (वे० द०—१-३-२)

मुक्त जीव भी उसी में विचरते हैं।

इस प्रकार परमात्मा (ओंकार) की सर्वव्यापकता दिखायी है, परन्तु इन सब उदाहरणों में और उक्त माण्डूक्योपनिषद् के मन्त्र में भी यह उल्लेख नहीं कि इस अक्षर 'ओं' के अतिरिक्त कुछ नहीं।

जो कुछ उपनिषद् मन्त्र में लिखा है उसका यह अर्थ भी तो हो सकता है कि जैसे किसी परिवार में महान् यज्ञ हो रहा हो और कोई पूछे कि यह यज्ञ कौन कर रहा है तो बताने वाला बताये कि यह सब कुछ सेठ जी ही हैं। सब कुछ उनका ही किया हुआ है। इसी प्रकार सम्भव है कि इस मन्त्र का अर्थ यही है कि यह जगत् रूपी यज्ञ परमात्मा का ही व्याख्यान है।

यह ठीक है कि इससे यह सिद्ध नहीं हो जाता कि ओंकार के अतिरिक्त कुछ है ही। न ही इससे यह सिद्ध होता है कि इसके अतिरिक्त कुछ नहीं।

दर्शनाचार्य इस प्रकार के वाक्यों के लिए यह लिख गए हैं—

स्मृत्यनवकाशदोषप्रसंग इति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसंगात् ॥

(वे० द०—२-१-१)

इसका अभिप्राय है कि यदि किसी स्मृति ग्रन्थ में अनवकाश हो तो वह दोष का सूचक नहीं होता। किसी अन्य स्मृति में उस विषय का अनवकाश हो सकता है, जिसका प्रथम स्मृति में उल्लेख है।

अभिप्राय यह है कि किसी ग्रन्थ अथवा लेख में किसी विषय का उल्लेख न होना यह प्रकट नहीं करता कि स्मृति में दोष है। दूसरे शब्दों में वह विषय विचारणीय है ही नहीं।

यही अवस्था माण्डूक्य उपनिषद् में है। इसके प्रथम मन्त्र में यह है कि यह कार्य जगत् ओंकार जो अक्षर है, उसी की महिमा है। इसका यह अर्थ नहीं निकलता कि उसके अतिरिक्त किसी अन्य का इस जगत् में सहयोग है ही नहीं।

इतना मात्र ही यहाँ कहा जा सकता है कि इस उपनिषद् में इस जगत् के करने में (ओंकार) परमात्मा को ही माना है।

अगले मन्त्र में कुछ अन्य लिखा है। वह विचारणीय है। अगला मन्त्र है—

सर्वं ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म, सोऽयमात्मा चतुष्पात् ॥

(माण्डूक्य—२)

सर्वं हि एतद् ब्रह्म अयम् आत्मा ब्रह्म सो अयम् आत्मा गतुष्पात् ।

(सर्वं) सब (हि) क्योंकि (एतद्) यह। ब्रह्म (ब्रह्म) है।

(अयम् आत्मा) यह आत्मा। (ब्रह्म) ब्रह्म है। सो (वह) (अयमात्मा) यह आत्मा (चतुष्पात्) चार पांव वाला है।

इसका अभिप्राय है कि क्योंकि वह सब ब्रह्म है। इसकी आत्मा ब्रह्म है और वह (ब्रह्म) आत्मा चार पाद वाला है।

सबसे प्रथम बात जो समझ में आती है वह यह है कि यह नहीं लिखा कि वह सब ओंकार है। इसे ब्रह्म कहा है। इसकी आत्मा अर्थात् सार अर्थात् मूल कारण को भी ब्रह्म कहा है और इस ब्रह्म के चार पाद माने हैं।

पाद का अर्थ है कि इसकी पूर्ण जीवनयात्रा चार भागों में समाप्त होती है। अर्थात् इसके जीवन काल में चार अवस्थायें (phases) हैं।

यदि ब्रह्म और ओंकार के अर्थों में अन्तर न होता तो दूसरा शब्द लिखने की आवश्यकता न होती। वास्तव में ओंकार ब्रह्म नहीं। ब्रह्म के अर्थ दूसरे हैं।

ब्रह्म के अर्थ श्वेताश्वतर उपनिषद् में इस प्रकार लिखे हैं :

एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं, नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित् ।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा, सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत् ॥ (१-१२)

एतद् ज्ञेयं नित्यं एव आत्म संस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किंचित्। भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म एतत्।

अभिप्राय है कि उस नित्य को जो परमात्मा में स्थित है, जानना चाहिये। जिसके उपरान्त कुछ भी जानने योग्य नहीं रह जाता। भोग करने वाला, भोग्य पदार्थ और सबका संचालन करने वाला। यह तीन प्रकार का ब्रह्म कहा है।

इससे यह पता चलता है कि ब्रह्म तीन प्रकार का है और परमात्मा जो सबका संचालन करनेवाला है, एक है। अतः ओंकार जो परमात्मा का नाम है, वह ब्रह्म तो है, परन्तु ब्रह्म में कुछ अन्य भी सम्मिलित हैं। वह अन्य है (भोक्ता) जीवात्मा। (भोग्य) प्रकृति। इसी बात की अधिक व्याख्या में इसी उपनिषद् के एक अन्य मन्त्र में लिखा है—

ज्ञाज्ञो द्वावजावीशनीशावजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता, त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्॥ (१-९)

अर्थात्—ज्ञानवान और अज्ञानी दो अजन्मा जिनमें से एक शक्तिमान् और दूसरा अल्प शक्ति वाला है। एक अन्य है जो भोग करने योग्य है। जो अनन्त आत्मा है वह तो विश्व को रूप देने वाला है और स्वयं अकर्त्ता (भोग न करने वाला) है। ये तीनों इस प्रकार ब्रह्म कहे जाते हैं।

अतः मण्डूक्य उपनिषद् के प्रथम मन्त्र में जो ओंकार शब्द प्रयुक्त हुआ है वह ब्रह्म शब्द के एक अंश को ही प्रकट करता है। ब्रह्म में उस परमात्मा के अतिरिक्त भी दो पदार्थ हैं वे हैं जीवात्मा और प्रकृति।

इन सबको मिलाकर परम ब्रह्म माना जाता है। इसमें प्रमाण इस प्रकार है।

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते, अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा, जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति॥
उद्गीतमेतत्परमं तु ब्रह्म, तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठाक्षरं च।
अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदत्वा, लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः॥

(श्वे०—१-६, ७)

इसका अभिप्राय है। यह महान् ब्रह्म चक्र (भँवर) जो सब प्राणियों का आश्रय-स्थान है, घूम रहा है और जीव उसमें हंस की तरह फँसे हुए हैं। उनसे पृथक् एक सबका संचालन करने वाला आत्मा है जिससे संयुक्त होकर (जीवात्मा) अमर हो जाता है।

ऊपर जो (ब्रह्म चक्र) परम तथ्य कहा गया है, उसमें तीन अक्षर (परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति) प्रतिष्ठित हैं। उसी में ही ब्रह्म को जानने वाले विद्वान जो परमात्मा में लीन होते हैं और योनि मुक्त होते हैं, रहते हैं।

यह ब्रह्म जिसका उल्लेख माण्डूक्य उपनिषद के दूसरे मन्त्र में आया है की व्याख्या में ही लिखा है कि इस परमब्रह्म के तीन पाद (phases) हैं।

'मेघालय' निर्माण के प्रसंग में

श्री अनिल कुमार

संसद में तुमुल हर्षनाद के बीच ९५ प्रतिशत जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रधानमंत्री ने मेघालय को पूर्ण राज्य का दर्जा देने की घोषणा की जिसकी राजधानी शिलांग होगी तथा असम को नई राजधानी बनाने के लिए कुछ करोड़ रुपये देने का एलान किया। इस समाचार पर सरकार समर्थक सभी दलों ने प्रसन्नता व्यक्त की है तथा राष्ट्रवादी दलों ने इस निर्णय की आलोचना की है। श्री वाजपेयी ने एक नये राज्य पुनर्गठन आयोग के स्थापना की मांग की है। नई कांँग्रेस की असम शाखा ने इस फैसले का विरोध किया है।

इस समाचार ने राष्ट्र को यह सोचने के लिए बाध्य किया है कि राज्यों का गठन भाषाई, क्षेत्रफल, जनसंख्या, वार्षिक आय व प्रशासनिक सुगमता को छोड़ अन्य किस आधार पर किया जाता है ? जहाँ तक हमारा विचार है केवल एक पार्टी की निरंकुश शासन की भूख ही मेघालय का दर्जा बढ़ाने के निर्णय में कारण बनी। जब-जब राष्ट्रीय हितों का विचार छोड़ दलगत, व्यक्तिगत, भाषायी, सांप्रदायिक या प्रादेशिक भावनाओं को मूर्तरूप देने के लिए कोई कार्य किये जाते हैं तो वे कार्य राष्ट्रघाती ही होते हैं। भाषायी आधार पर देश का विभाजन राष्ट्रीय हितों के सर्वथा विपरीत था। मेघालय के एक मंत्री ने कहा है कि अब वह राज्य (सारे भारत की नहीं केवल) **पूर्वोत्तर भारत** की एकता, अखंडता व खुशहाली के लिए प्रयत्नशील बनेगा। इस बयान ने नयी शंकाओं को जन्म दिया है।

व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि के लिए नये राज्यों की स्थापना तथा दिल्ली के उचित दावे के बावजूद भी उसका दर्जा बढ़ाने से इन्कार करना—इन सभी बातों से यह दीखता है कि यदि नये राज्य पुनर्गठन आयोग की स्थापना भी की गई तो भी परिणाम कुछ नहीं निकलेगा। कारण यह है कि अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए कमीशनों व आयोगों की रिपोर्ट रद्दी की टोकरी में फेंकना ही कांँग्रेस सरकार की खासियत है।

जून १९४८ में गठित जस्टिस धर आयोग ने निर्णय दिया कि भाषा के आधार पर राज्यों का निर्माण भारत के व्यापक हितों में नहीं है। दिसम्बर १९४८ में J.V.P. (जवाहरलाल, वल्लभ भाई, पट्टाभि) कमेटी ने रिपोर्ट दी कि नये (भाषायी) राज्य अभी कुछ समय तक न बनाये जाएँ और हम अपना ध्यान दूसरी अधिक आवश्यक समस्याओं पर लगायें। इसके बाद फ़ज़ल अली कमीशन ने भी कहा कि भाषायी या सांस्कृतिक आधार पर राज्यों का निर्माण अवांछनीय एवं असंभव है।

इन सब रिपोटों को ठुकराकर नेहरू ने अपने मन की ही चलाई। यह सब जानने, समझने व अनुभव करने के बाद भी इसी कांग्रेसी सरकार से नये पुनर्गठन आयोग की माँग कर श्री वाजपेयी राष्ट्र का कौनसा हित करने वाले हैं यह समझ में नहीं आ रहा है।

कश्मीर, बंगाल तथा असम, त्रिपुरा, मणिपुर, नागालैण्ड आदि में चीनी-पाकिस्तानियों की घुसपैठ बढ़ गयी है। बंगाल व कश्मीर का शासन सुप्त है। असम में अभी नया मंत्रिमंडल बना है। त्रिपुरा, नागालैंड, मणिपुर की सरकारें तो केन्द्र या असम सरकार की सहायता के बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकतीं। इस कचरे में मेघालय रूपी गोबर उँडेलने से दुर्गन्धि ही बढ़ेगी। पाकिस्तानी व चीनी तत्वों की गतिविधियाँ बढ़ेंगी, बंगाल के समान कश्मीर, असम, मणिपुर, नेफा, मेघालय, त्रिपुरा भी नक्सली अराजकता के ज्वार में बह जाएँगे तथा कानून-व्यवस्था की समस्या विकराल रूप धारण कर लेंगी। प्रशासन ठप्प हो जाएगा, राज्य सरकारें हाथ पर हाथ धरे बैठेंगी व जनता में असंतोष व्यापक रूप से फैलेगा। ऐसे समय में यदि चीन-पाक द्वारा आक्रमण हुआ तो चीनी व नक्सली मिलकर बंगाल, असम, मणिपुर, त्रिपुरा, नागालैंड, मेघालय आदि को "मुक्त" करेंगे तथा पाकिस्तान कश्मीर आदि क्षेत्रों को "आज़ाद" करेगा। केन्द्र सरकार ये इलाके संबद्ध देशों को भूदान में दे देगी व सुप्रीम कोर्ट में झूठा हलफ़नामा दाखिल कर स्वयं को इन क्षेत्रों से बेदखल कर लेगी।

इसीलिए समस्या का सुझाव यही है कि कश्मीर तथा बंगाल आदि पूर्वोत्तर भारत में छोटे-छोटे राज्यों व राज्य सरकारों को बरखास्त कर वहाँ सैनिक प्रशासन लागू किया जाय। इससे एक ओर तो प्रांतीयता का विष देश के अन्य भागों में नहीं फैलेगा तथा दूसरी ओर सेना नक्सली व पाक तत्वों का निर्बाध रूप से उन्मूलन कर सकेगी तथा उनके हौंसले पस्त होंगे। तीसरी ओर इन प्रदेशों की जनता में सुरक्षा की भावना फैलेगी व राष्ट्रवाद बल पकड़ेगा। चौथा लाभ

(शेष पृष्ठ २६ पर)

वेद में अश्विनौ का स्वरूप

श्री रामशरण वशिष्ठ

अश्विनौ का शब्द बड़ा विचित्र है। इसके विषय में यास्काचार्य ने भी निरुक्त में लिखा है कि अश्विनौ एक अद्भुत शब्द है और इसके अर्थ भी आश्चर्यजनक हैं। (१२—१)

यह शब्द चारों वेदों में कई स्थान पर आया है और केवल ऋग् वेद में ही यह इन सूक्तों में वर्णित है। म: ३४, ४६, ४७, ११२, ११६, १२०, १५७, १५८, १८०—१८४, म: २ में ३६, म: ३ में ५८, म: ४ में ४३—४५, म: ५ में ७३—७७, म: ६ में ६७—७४, म: ८ में ५, ८, १०, २२, २६, ३५ ६२, ७४, ७६, म: १० में ३६, ४१, १००, १४३।

इसके स्वरूप का वर्णन करते हुए ऋ०—२-३९ में बताया है कि यह जोड़ों का वाचक है। जैसे दो हाथ, दो पैर इत्यादि। भिन्न-भिन्न मन्त्रों में इसके अर्थ भिन्न-भिन्न होते हैं। जैसे सूर्य-पृथिवी, आकाश-पृथिवी, दिन-रात, पति-पत्नी, राजा-प्रजा' इत्यादि।

अश्विनौ उन दो तारों का भी नाम है जो उषाकाल से पहले आकाश में दिखाई देते हैं और दिन-रात में तीन चक्र लगाते हैं। (ऋ०—१-३४-२, ७) यह शब्द दो दिव्य वैद्य (भिषज) का भी द्योतक है जो रोगों का इलाज करते हैं। (ऋ०—८-१८-८)।

अश्विनौ का वर्णन वेद में अलंकारक रूप से है। इनका रथ सुनहरी है जो आकाश में चलता है। उसके तीन चक्र हैं और तीन ही बैठने के स्थान हैं (१०—४१—-१) इसमें १००० रत्न जड़े हैं। इसके घोड़े श्वेत और लाल रंग के हैं। यह आकाश में दूर-दूर तक जाता है। (७--६९-२)

इनको कई मन्त्रों में प्रातःकाल आवाहान किया गया है और उनकी कीर्ति का गायन है। इनके घोड़े शीघ्रगामी हैं और सबसे आगे रहते हैं और इसीलिये उषा उनके रथ में बैठ जाती है। यह प्रातःकाल का दृश्य है।

वेद में इनके कई कारनामे विस्तार से वर्णित हैं। भिषज् के रूप में च्यवन को फिर से युवक बनाया जो बल रहित हो गया था (१०-३९-४) ये दिव्य वैद्य हैं जो रोगों का नाश करते हैं (१०-३९-५)।

इनके अर्थों की लीला देखिये कितनी विशाल है! यजुं० ७-११ में यह सूर्य और पृथिवी के बाचक हैं। यजु० १०—३३, ३४ में यह नर-नारी के अर्थ देते हैं। यजु० १२—७४, अ० २—३०—२ में यह पति-पत्नी का रूप हैं। ऋ० ८—८—१०, ११ में यह सूर्य और चन्द्र का जोड़ा है। यजु० १९—१ से ५ तक यह राजा-प्रजा के लिए आये हैं। यजु० ३४—२९ में तथा कई अन्य जगह ये दिन-रात का अर्थ देते हैं।

ऋ० ८-२२-६ में यह हल के दो बैल हैं। यजु० ३८—६ में यह प्राण-अपान के अर्थ देते हैं। यजु० ३४—२८ में यह गुरू-शिष्य में अर्थ देते हैं। ऐसे और बहुत से मन्त्र हैं, परन्तु हमने यह दिग्दर्शन मात्र थोड़े से यहां पर दिये हैं। इसी प्रकार यजु० ६—९ में भी सूर्य और चन्द्र के लिए आते हैं।

अश्विनौ की दिव्य शक्ति का वर्णन पं० भगवद्दत्तजी ने अपनी पुस्तक The Story of Creation में किया है। इनकी शक्ति से उत्पत्ति काल में कई अर्थ हुए। ऋ०—७-६९-१ का हवाला देते हुए वह बताते हैं कि अश्विनौ ने पृथिवी और आकाश को फैलाने का कार्य किया। अश्विनौ को ईश्वर का वाचक भी कई मन्त्रों में पाते हैं। जैसे ऋ०—१०-३९-४ में। वेद मन्त्रों का ठीक अर्थ करने के लिए इनका जानना आवश्यक है।

(पृष्ठ २४ का शेष)

यह होगा कि चीन-पाक भी बदली हालात में दुम दबाकर बैठ जाएँगे।

समस्या का यह सुझाव न तो सत्तारूढ़ दल स्वीकार करेगा और न ही उसे पसंद आयेगा। अत: सर्व प्राथमिकता पृथकतावादी, सांप्रदायिक व राष्ट्र-विरोधी तत्वों द्वारा समर्थित व उनका समर्थन, पालन, पोषण व रक्षण करने वाली अल्पमतीय सरकार को पदच्युति को दी जाय। इसके पश्चात् ही राष्ट्र के सम्मुख मुँह बाये खड़ी समस्याओं का निपटारा किया जा सकता है।

संस्कृति, संस्कार और आस्था के प्रहरी

□

डॉ० विजयेन्द्र स्नातक

८ दिसम्बर : श्री गुरुदत्तजी के जन्म दिवस के अवसर पर :

श्री गुरुदत्तजी से मेरा परिचय आज से लगभग दस वर्ष पूर्व एक साहित्यिक समारोह में हुआ। श्री गुरुदत्तजी इस समारोह के अध्यक्ष थे और मुझे उसका उद्घाटन करना था। मैंने अपने उद्घाटन भाषण में भारतीय साहित्य की पृष्ठ-भूमि को स्पष्ट करते हुए उसकी मौलिक देन पर विस्तार से प्रकाश डाला था और साहित्य के मूल्य और मान के सम्बन्ध में मैंने नैतिक और सामाजिक दायित्वों का उल्लेख किया था। श्री गुरुदत्तजी ने बड़े मनोयोगपूर्वक मेरा भाषण सुना और जब उनके अध्यक्षीय भाषण का समय आया तो उन्होंने बड़ी उदारता पूर्वक मेरे भाषण की सराहना की और कहा कि मैं अब अपने लिखित भाषण को पढ़ने की आवश्यकता नहीं समझता क्योंकि मुझे जो कुछ कहना था वह उद्घाटनकर्त्ता ने कह दिया है। मैं वयोवृद्ध साहित्यकार की इस स्पष्टवादिता और उदारता पर स्तब्ध रह गया। मैंने बड़े अनुनय-विनयपूर्वक वैद्यजी से प्रार्थना की कि वे अपना भाषण अवश्य पढ़ें, क्योंकि उसमें अनेक प्रेरणाप्रद निर्देश हैं। वैद्यजी ने भाषण को काट-छाँटकर थोड़ा-सा पढ़ा और अंत में इतना कहकर समाप्त किया कि "मैं समझता था कि विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों में मूल्य-विघटन और आस्था-विखण्डन की प्रवृत्ति के अतिरिक्त कुछ शेष नहीं रह गया है। न तो इन्हें भारतीय परम्परा का बोध है और न ये लोग सांस्कृतिक धरोहर में विश्वास ही करते हैं। मुझे हर्ष है कि आज के इस भाषण को सुनकर मैं आश्वस्त हुआ कि अभी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक विचारधारा निर्मूल नहीं हुई है।"

इस घटना का उल्लेख मैंने आत्मश्लाघा के लिये नहीं किया है—मैं यह संकेतित करना चाहता हूँ कि गुरुदत्तजी के मन में, लेखन में, कर्म में, चिन्तन और मनन में भारतीय जीवन-दर्शन, भारतीय सांस्कृतिक दृष्टि, राष्ट्रीय स्वाभिमान बहुत गहरा पैठा हुआ है। मैं समझता हूँ कि उनके लेखन का मूल बिन्दु यही

है। भारत को उन्होंने केवल भोगौलिक या ऐतिहासिक दृष्टि से नहीं देखा है वरन् उनकी व्यापक दृष्टि में संस्कृति, धर्म, साहित्य और चिन्तन की आधारशिला ही भारतीय है।

गुरुदत्तजी से पिछले दस वर्षों में मैं अनेक बार मिला हूँ। यद्यपि मेरा मिलना समारोहों तक ही सीमित रहा है किन्तु विचारों का आदान-प्रदान तो इन संक्षप्ति अवसरों पर भी हुआ ही है। मैंने सदा यह अनुभव किया है कि इनकी चिन्तन-पद्धति एक विशिष्ट दिशा की सूचक है। वह दिशा एक ओर जहाँ भारतीय है वहाँ उसमें प्रगति और परम्परा का विचित्र संयोग है। विज्ञान की उच्च शिक्षा प्राप्त करने का प्रभाव उनके चिन्तन पर पड़ा है और उनके लेखन में व्याप्त विश्लेषण पद्धति इसका सुन्दर निदर्शन है। वैद्य गुरुदत्तजी भारत-विभाजन से असन्तुष्ट ही नहीं व्यथित और पीड़ित हैं। उनकी कल्पना का विशाल भारत इस विभाजन से चूर-चूर हो गया है और वे आज तक इस विभाजन काण्ड को दुष्कृत्य ही मानते हैं। अपने देश को किसी दबाव या स्वार्थ के कारण विभक्त कर लेना उनकी दृष्टि में घृणित कायरता है। मैं समझता हूँ कि स्वदेश, स्वभाषा और स्वधर्म में आस्था रखने वाला प्रत्येक मानव स्वराष्ट्र के खण्डित होने की कल्पना को भी स्वीकार नहीं करेगा, किन्तु हमारे नेताओं ने यह विभाजन स्वीकार किया इसे वैद्यजी क्षमा कैसे कर सकते हैं ?

गुरुदत्तजी उपन्यासकार हैं। पिछले लगभग २५ वर्षों से वे इस क्षेत्र में सक्रिय रहे हैं। अपने उपन्यासों में उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, पारिवारिक धार्मिक तथा आर्थिक समस्याओं को स्थान दिया है। प्रारम्भ में उन्हें साहित्यिक स्तर पर स्वीकृति नहीं मिली किन्तु शनैः-शनैः उनकी रचनाओं से जनमानस की अभिव्यक्ति का स्वर मुखर होने पर पाठक का ध्यान उनकी कृतियों की ओर गया। पाठक ने अनुभव किया कि राष्ट्रीय समस्याओं पर जिस तीखे रूप में गुरुदत्तजी ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है वैसी ही उनकी अपनी अनुभूति है। फलतः इस समभूमि ने गुरुदत्तजी के असंख्य पाठक पैदा कर दिये। मैं गुरुदत्तजी की लेखनी की सार्थकता केवल कथारस में नहीं मानता, कथारस के साथ उनके उपन्यास मर्म को स्पर्श करते हैं, उन समस्याओं से जूझते हैं जो साधारण पाठक की समस्यायें हैं। फलतः कथा-व्याज से गुरुदत्तजी वह सब कह जाते हैं जो राजनीति, राष्ट्रनीति, अर्थनीति, धर्म और कर्म में कथनीय है।

मुझे स्मरण है कि पिछले दिनों दिल्ली के एक दैनिक समाचार-पत्र में गुरुदत्तजी के साहित्यिक कृतित्व का आकलन करते हुए लेखक ने लिखा था कि स्वतन्त्रता से पूर्व किसी समीक्षक ने गुरुदत्तजी को लेखक स्वीकार नहीं किया,

उनके कृतित्व की समालोचना किसी ने नहीं लिखी। उनका तात्पर्य था कि लेखक का जो धर्म समीक्षक स्वीकार करते हैं वह गुरुदत्तजी की रचनाओं में नहीं है। किन्तु आज उनके पाठकों की विशाल संख्या ने यह प्रमाणित कर दिया है कि गुरुदत्तजी की सशक्त लेखनी में समस्याओं को उद्घाटित करने, उनसे जूझने और पाठक को झंकृत करने की अद्भुत क्षमता है। समालोचक यदि आज भी उदासीन रहना चाहता है, वह रह सकता है किन्तु उसे याद रखना चाहिये कि किसी कृति का सबसे प्रबल समीक्षक उसका पाठक होता है। गुरुदत्त ने कथारस के नाम पर ही पाठकों का जमघट नहीं किया, उनके पाठकों में से ऐसे भी हैं जो कथा नहीं कथ्य अर्थात् विचार चाहते हैं। गुरुदत्तजी के पास एक ऐसी वैचारिक भूमि है जो अनेक पाठकों को केवल झंकृत ही नहीं करती वरन् राष्ट्रीय-सांस्कृतिक प्रश्नों पर एक विशिष्ट दृष्टि से सोचने को विवश करती है। किसी भौंड़ी-भद्दी कहानी के सहारे उपन्यास लिखकर सामान्य बुद्धि वाले पाठक को कथारस में उलझा लेना और बात है किन्तु किसी ज्वलन्त समस्या या व्यापक प्रश्न को लेकर कथा का जाल बुनना सर्वथा भिन्न है। गुरुदत्तजी के मस्तिष्क में सांस्कृतिक चेतना और राष्ट्रीय जागरण की स्पृहा होने से वे अश्लील या भौंडी-भद्दी कथावस्तु को कभी स्वीकार नहीं करते। उनकी दृष्टि एक विशेष लक्ष्य पर सधी रहती है। वह लक्ष्य उनकी नज़र से कभी ओझल नहीं होता, फलतः सोद्देश्य रचना का दोष तो उन पर लगाया जा सकता है किन्तु अनर्गल, अश्लील या अयथार्थ से वे बहुत दूर रहते हैं।

गुरुदतजी ने उपन्यासों के अतिरिक्त कुछ पुस्तकें राष्ट्रीय समस्याओं पर भी लिखी हैं। जवाहरलाल नेहरू के सम्बन्ध में लिखी उनकी पुस्तक ने अनेक पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। नेहरूजी के राष्ट्र-निर्माण-सम्बन्धी कार्यों और उद्देश्यों पर गुरुदत्तजी ने जिस दृष्टि-विन्दु से विचार किया है वह उनके अपने चिन्तन की पद्धति है। गुरुदत्तजी राष्ट्रीय उत्थान को सबसे पहले स्थान देते हैं, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की लिप्सा का उनकी दृष्टि में नगण्य स्थान है। नेहरूजी के अनेक कार्य लेखक की दृष्टि से सफलता के द्योतक नहीं हैं। उनके व्यक्तित्व के प्रति सम्मान रखते हुए भी उनके कार्यों की कटु-तिक्त समीक्षा करने में लेखक को तनिक भी संकोच नहीं है। नेहरूजी के कार्यों की सराहना करने वाला वर्ग भी आज उनके कार्यों की त्रुटि को उजागर कर रहा है। एक दर्जन पुस्तकें नेहरू के निधन के बाद प्रकाशित हुई हैं जिनमें नेहरूजी की राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों पर कठोर प्रहार किये गए हैं। वैद्य गुरुदत्त की शैली भी प्रहारपूर्ण है किन्तु उनमें प्रामाणिकता का ध्यान लेखक ने सर्वत्र रखा है। राजनीति से दूर

रहने के कारण मैं अपना मत किसी पक्ष में देने का अधिकारी नहीं हूँ किन्तु मेरे जैसे तटस्थ व्यक्ति को भी पुस्तक पढ़ने पर लगा कि नेहरूजी की नीतियों में कहीं न कहीं खामियाँ थीं। नेहरू-विषयक विवेचन में गुरुदत्तजी की दृष्टि उसी मूल विन्दु पर सतत केन्द्रित रही है कि भारतवर्ष एक महान् देश है और अपनी सांस्कृतिक-धार्मिक थाती पर ही उसे भविष्य-निर्माण का अवसर मिलना चाहिये। देश-विदेश की थोथी नकल से इस महान् राष्ट्र का कल्याण होने वाला नहीं है।

भारतवर्ष की मूलभूत एकता के लिये गुरुदत्तजी ने अपने समस्त लेखन में आस्था व्यक्त की है। उनकी मान्यता है कि भारत में ऊपर से जो विविधता लक्षित होती है वही इस देश की मूलभूत एकता का प्रमाण है। भारत द्वारा प्रदर्शित विविधता उन फूलों, पत्तों, कलियों और फलों के पारस्परिक स्वरूपभेद के समान है जो एक ही वस्तु का अंग हैं जिसे वृक्ष कहते हैं। हम सब भारत-वासी एक विशाल वटवृक्ष की शाखा-प्रशाखा, फूल-पत्ती और फल के समान हैं। शताब्दियों से भारतीय मनीषा इसी मूलभूत एकता का जयगान करती आई है। 'आसेतु हिमाचल' में देश का यही विशाल स्वरूप प्रतिबिम्बित हो रहा है। हमारे देश के धर्म और दर्शन में भी विविधता व्याप्त है किन्तु एकता के सिद्धान्त में विश्वास रखने के कारण हमने जैन और बौद्ध-दर्शन को भी भारतीय दर्शन स्वीकार किया है। हमने गौतम बुद्ध को अवतार का स्थान दिया। अहिंसा के क्षेत्र में महावीर स्वामी को वरेण्य ठहराया और उसकी पूजा की। यह सब करने का मूल उद्देश्य यही था कि भारतीय संस्कृति के सूत्र में हमारा समस्त देश अनुस्यूत है, यह सिद्धान्त स्वीकार किया जाय। इतना ही नहीं भौगोलिक दृष्टि से भी लेखक भारतवर्ष को एक महान् देश स्वीकार करता है। इस देश की उत्तुंग पर्वतमालायें, गहरी नदियाँ, उर्वरा भूमि, चमकीले मरुस्थल, कोसों तक फैली हुई दुर्लंध्य वनराशि और सुन्दर सपाट मैदान जब लेखक की कल्पना में आते हैं तब वह अपनी राष्ट्र-भावना से विभोर हो उठता है, उसे लगता है कि भारत-विभाजन से जैसे उसकी राष्ट्र-कल्पना ही खण्डित हो गई है। उसके सामने भारत का मानचित्र एक सांस्कृतिक परम्परा में उपस्थित है जिसे विभा-जन द्वारा टूक-टूक कर दिया गया है। वह भारत के मानचित्र को अपने शैशव से जिस रूप में देखता रहा है वह इस प्रकार है—

> "उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
> वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र संततिः ॥"

लेखक यह स्वीकार करने को उद्यत नहीं कि भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म ब्रिटिश शासन-काल में हुआ है। उसकी मान्यता है कि हम विभिन्न भाषाएँ बोलते हुए, भिन्न-भिन्न धर्म-सम्प्रदायों में विभक्त होने पर भी सहस्राब्दियों से एक राष्ट्र के अंग रहे हैं। मुगल-शासन काल में भी हमने अपनी राष्ट्रीय विचारधारा का परित्याग नहीं किया था। राणा प्रताप और शिवाजी जैसे नरपुंगव इसी राष्ट्रीय जागरण के अग्रदूत थे। ब्रिटिश-शासन काल में महर्षि दयानन्द और विवेकानन्द इसी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना के प्रमुख प्रहरी थे। यह सांस्कृतिक चेतना स्वतंत्रता के बाद खण्डित होना प्रारम्भ हुई और आज हम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने निजी स्वरूप को भूलने का प्रयत्न कर रहे हैं। हमारे क्रिया-व्यापार पर मानसिक दासता की गहरी छाप सर्वत्र देखी जा सकती है।

गुरुदत्तजी ने अपने विचार-प्रधान लेखों तथा पुस्तकों में इस तथ्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि जिसे हम कम्पोजिट कल्चर (समवेत संस्कृति) कहते हैं वह भारतीय सम्प्रदायवाद का मिथ्या पोषण है। पिछले कुछ वर्षों से देश में जातिवाद, प्रान्तवाद, सम्प्रदायवाद और भाषावाद का जो घातक विष व्याप्त हो गया है उसका मूल कारण राष्ट्रीय दृष्टि का अभाव है। गुरुदत्तजी के अनुसार राष्ट्रीय दृष्टि मूलतः सांस्कृतिक दृष्टि है और सांस्कृतिक दृष्टि धर्म-प्रधान आस्थामयी दृष्टि है। ऐसी स्वस्थ दृष्टि के अभाव में संकीर्ण प्रान्तीयता और जातिवाद पनपता है। भाषावाद तो हमारे वर्तमान स्वदेशी शासकों की देन है। मुसलमान और अंग्रेज अपनी-अपनी भाषाओं की जड़ें जमाने में तो सफल हुए किन्तु उन्होंने भारतीय भाषाओं को युद्ध के प्रांगण में नहीं घसीटा था। आज हमारी प्रशासकीय असफल नीतियों के कारण भाषावाद का ज़हर सारे देश में व्याप्त हो गया है। संविधान के १७वें भाग में अंग्रेज़ी का उत्तराधिकार हिन्दी और ८वीं अनुसूची में निर्दिष्ट अन्य भाषाओं में बाँटा गया है। अखिल भारतीय प्रयोजन के लिये हिन्दी को अंग्रेज़ी के स्थान पर प्रतिष्ठित किया गया है तथा राज्यों के व्यवहार के लिये प्रान्तीय प्रादेशिक भाषाओं को मान्यता दी गई है। किन्तु न तो केन्द्र में हिन्दी को स्थान मिला है और न प्रान्तों में प्रादेशिक भाषायें ही स्वीकृत हुई हैं। इस दुरवस्था को लेखक प्रहार के योग्य समझता है। इसका मूल कारण राष्ट्रीय-चिन्तन पद्धति में भारतीय एकता की भावना ही है।

लेखक की धारणा है कि सम्पूर्ण भारत का मानचित्र हमारे नेताओं की दृष्टि में पूजार्ह होता तो इस देश का स्वातंत्र्य इतना गौरवपूर्ण होता कि विश्व के सभी देश इसका सम्मान करते। इसकी विदेश नीति में सबका विश्वास होता और देश का सर्वांगीण विकास होता, लेकिन एकांगी एवं संकीर्ण स्वार्थ-नीति ने राष्ट्र का

मानचित्र ही खण्डित नहीं किया वरन् अन्य देशों में इसके परम्परागत सम्मान को भी गहरी चोट पहुँचाई है। गुरुदत्तजी इन कटु-सत्यों के उद्घाटन में कठोर होकर कलम उठाते हैं। उनकी दृष्टि में जो अपराध है वह अपराध ही है, उसे क्षमा करना उचित नहीं है।

गुरुदत्तजी अपनी धुन के पक्के, अपने विचारों के धनी और अपनी राह के एकाकी पथिक हैं। उपन्यास क्षेत्र में उनका समर्थन समीक्षक नहीं करता तो भले ही न करे, असंख्य पाठक उनके साथ हैं। शैली और शिल्प की साज-सज्जा उनका अभिप्रेत नहीं। कथा के माध्यम से उन्हें अपनी सही-सच्ची बात कहनी है और वे उसे दृढ़तापूर्वक कहते चले आ रहे हैं। उनके उपन्यासों के बीस-बीस संस्करण हो चुके हैं। उनके प्रशंसकों की भीड़ बढ़ रही है। प्रचार का साधन वे नहीं अपनाते, लिखते हैं और मुद्रित होने पर पाठकों तक उनकी कृतियाँ पहूँच जाती हैं। अभी हिन्दी साहित्य के इतिहास में उनका स्थान नहीं बना है। लेकिन कथारस, कथ्य, विचारोत्तेजन और प्रभविष्णुता के द्वारा वह समय दूर नहीं जब उन्हें हिन्दी-साहित्य में श्रेष्ठ उपन्यासकार के रूप में स्वीकृति प्राप्त होगी।

(पृष्ठ ४१ का शेष)

लगे कि इसका क्या राज़ है? क्योंकि न तुम इतने उच्च शिक्षित और न ही इतने सम्पन्न घराने के, फिर यह सब कैसे? प्रत्युत्तर में मित्र ने चुपके से उत्तर दिया "मैं कश्मीरी जो हूँ।" यह बात है नेहरू के युग की। आज भी इसी प्रकार देवी इंदिरा ने एक ऐसे व्यक्ति को अपना आर्थिक सलाहकार नियुक्त किया है जिसकी सबसे बड़ी योग्यता यह है कि वह 'कश्मीरी जो है।' अन्यथा उससे कहीं उत्कृष्ट अर्थ-शास्त्री इस देश में विद्यमान हैं।

देवी इन्दिरा के जिस भाषण का हमने इन्हीं पृष्ठों में पहले उल्लेख किया है उसमें उन्होंने सम्प्रदायवाद अथवा जातिवाद का तो नाम लिया है किन्तु 'भाई भतीजावाद' का नाम लेना शायद उन्होंने उपयुक्त नहीं समझा होगा।

❧

साहित्य समीक्षा

प्राचीन भारत में गौमांस : एक समीक्षा
गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रसारित,
पृ० सं० २२८, मूल्य २ रुपया मात्र ।

भारत में ही नहीं अपितु विश्व भर में करोड़ों की संख्या में ऐसे लोग हैं जो गीता प्रेस गोरखपुर के कार्यों की अर्थात् उनके द्वारा प्रकाशित, प्रचारित एवं प्रसारित साहित्य की मुक्त कंठ से भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। किन्तु ऐसे लोग भी विश्व में विद्यमान हैं जिनको उसके कार्य की आलोचना में आनन्द आता है। और जब ऐसे ही आलोचकों के मुख से गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित किसी कृति की प्रशंसा सुनने में आये तो मानना पड़ जाता है कि वह कृति उत्कृष्टतम होगी। प्रस्तुत पुस्तक के विषय में भी ऐसा ही कुछ हुआ है।

इसमें सन्देह नहीं कि शुद्धिपत्र सहित २३० पृष्ठों की इस पुस्तिका के १६ अध्यायों में प्राचीन भारत में गौमांस भक्षण से सम्बन्धित वाद-विवाद एवं प्रमाद की विदश विवेचना की गई है। पुस्तक में "पाश्चात्य संस्कृतज्ञों की नीयत" शीर्षक से एक अध्याय ऐसा भी है कि जिसमें गौहत्या, गौमांस आदि से निकट तो क्या दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। किन्तु इससे न तो पुस्तक के आकार में वृद्धि की गई है और न ही कोई यह कह सकेगा कि यह अध्याय अप्रासंगिक है। वास्तव में हम समझते हैं कि प्रस्तुत प्रकरण में इसे चर्चित विषय ही समालोच्य पुस्तक का मूलाधार मानना चहिये। पाश्चात्य संस्कृतज्ञ जिन्हें कुछ लोग विद्वान की संज्ञा से विभूषित करते हैं, हमारी दृष्टि में तो वे धूर्त ही हैं और उनके प्रशंसक मूर्ख, उन्होंने इस देश के जनमानस को विकृत करने का जो जघन्य कृत्य किया है उसके लिये उनकी जितनी भी भर्त्सना की जाय वह कम है। उन धूर्तों के कुप्रचार के प्रसार का परिणाम ही भारत में गौहत्या एवं गौमांस भक्षण की वृद्धि है। यह अध्याय गौलोकवासी पं० भगवद्दत्तजी के 'वैस्टर्न इण्डोलौजिस्ट्स : ए स्टडी इन

मौटिव्स' का हिन्दी अनुवाद है। इसमें उन सभी पाश्चात्य संस्कृत अध्येताओं के दौर्मनस्य का उल्लेख है जिनके शिष्यत्व में अथवा जिनसे प्रेरणा पाकर राजा राजेन्द्रलाल मित्र, पाण्डुरंग वामन काणे, राहुल सांस्कृत्यायन प्रभृति देशघाती कापुरुषों ने संस्कृत वाङ्मय एवं संस्कृति का सत्यानाश करने में किसी प्रकार की कोर कसर नहीं छोड़ी।

हिस्ट्री ऑफ दि धर्मशास्त्राज़ के लेखक पाण्डुरंग वामन काणे की महान साधना की प्रशंसा करने वालों की आज कमी नहीं है। किन्तु शास्त्रों की जो छीछालेदर उन्होंने पाश्चात्यों के लकीर के फकीर बनकर की है उसमें उन्होंने अपने पाण्डुत्व, वामनत्व एवं काणत्व को चरितार्थ कर दिखाया है। यथानाम तथा गुणः। वास्तव में इस दिशा में वे काणे ही रहे। पाश्चात्य संस्कृतज्ञों की अपेक्षा उनके इन मानस पुत्रों की आज भर्त्सना करने की आवश्यकता है। संस्कृति एवं संस्कृत के अर्थों का अनर्थ करने वाले महापण्डित किन्तु वास्तव में महामूर्ख राहुल सांस्कृत्यायन की दुष्कृति 'वोलगा से गंगा' तक का सामाजिक बहिष्कार ही नहीं अपितु सरकार की ओर से उस पर प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिये। विचार स्वातन्त्र्य का यह अभिप्राय नहीं कि किसी को अनर्गल प्रलाप का अवसर प्रदान किया जाय।

गौमांस भक्षण की पुष्टि के लिये ये अनर्थकारी महामूर्ख उपाधिधारी जन राजा रन्तिदेव के महाभारत के उपाख्यान का और भवभूति के उत्तर रामचरित का हवाला देते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में इसका भली भाँति प्रतिवाद किया गया है।

समालोच्य पुस्तक में गांधी के प्रति और भारतीय विद्याभवन के प्रति सदाशयता व्यक्त की गई है, जो बड़ी विचित्र प्रतीत होती है। पुस्तक के प्रारम्भ में ही यंग इंडिया के ७-७-१९२७ के अंक में प्रकाशित गौरक्षा के सम्बन्ध में गांधी के विचार उद्धृत हैं। किन्तु १९२७ के गांधी के विचारों में और उसके दस वर्ष के बाद के गांधी के विचारों में क्या उसी प्रकार परिवर्तन नहीं होता रहा है जिस प्रकार की उनकी बदलती राजनीति के विचारों में हुआ है। अन्यथा यदि गौरक्षा से गांधी का तनिक भी सम्बन्ध होता तो भारत स्वतन्त्र होने के डेढ़ वर्ष तक जीवित रहने पर भी उन्होंने इस विषय में कभी अपना मुख नहीं खोला। अपनी सरकार से अनशन करके भी जो व्यक्ति पाकिस्तान को ५५ करोड़ रुपया भारत का दिलवा सकता था वह क्या भारत में सदा सर्वदा के लिये गौहत्या बन्द नहीं करा सकता था? पाश्चात्य संस्कृतज्ञों की भांति ही इस विषय में हमें गांधी की नीयत पर भी सन्देह होता है।

यही स्थिति भारतीय विद्या भवन की है। हम समझते हैं कि हांडी का एक

चावल देखना पर्याप्त होता है। भवन से प्रकाशित होने वाली हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इंडियन पीपुल सीरीज उन्हीं पाश्चात्य इतिहासकारों का अनुकरण एवं मात्र है अतः अनुसरण वह न सराहनीय है और न ही प्रशंसनीय।

भारत में गौमांस भक्षण के बारे में जिन्हें तनिक भी सन्देह हो वे प्रस्तुत पुस्तक का अवश्य ही अध्ययन करें। इससे उन्हें सबकी नीयत का ज्ञान हो जाएगा। इस महत्वपूर्ण प्रयास के लिये गीता प्रेस वधाई का पात्र है।

हिन्दू का स्वरूप

शाश्वत वाणी में समय-समय पर हिन्दू एवं हिन्दुत्व के विषय में विभिन्न विद्वानों के लेख प्रकाशित करने का प्रयास होता रहा है। इस विषय पर हमारे संरक्षक एवं उत्कृष्ट उपन्यासकार तथा विज्ञ विचारक श्री गुरुदत्तजी का जो सहयोग हमें प्राप्त होता रहा है उसके लिये न केवल हम अपितु समस्त हिन्दू जगत उनका आभारी रहेगा। प्रस्तुत पुस्तिका के लेखक किंवा व्याख्याकार भी वही हैं और इसकी आवश्यकता क्यों पड़ी, यह हम उन्हीं के शब्दों में यहाँ उद्धृत कर रहे हैं।

"आज हमारे देश में हिन्दू समुदाय, पूर्ण जनसंख्या का अस्सी प्रतिशत के लगभग होने पर भी उसका अधिकांश भाग स्वयं को हिन्दू कहने में लज्जा एवं संकोच अनुभव करने लगा है। इस संकोच अथवा लज्जा का कारण यह है कि हिन्दू के वास्तविक स्वरूप को भूलकर वह स्वयं ही अपने को कुछ वैसा समझने लगा है जैसा कि अहिन्दू उसका वर्णन करते हैं। यह पुस्तिका हिन्दू का स्वरूप समझाने का एक प्रयास है।"

विवेचनापूर्ण एवं व्याख्यायुक्त २४ पृष्ठ की इस लघु-पुस्तिका का लागत मात्र मूल्य है ५० पैसे।

अपने स्वरूप को अर्थात् हिन्दू के स्वरूप को जानने के लिये प्रत्येक हिन्दू को इसका पठन-पाठन एवं मनन करना हम अनिवार्य समझते हैं।

⚜

समाचार-समीक्षा

□

धधकता बंगाल और सिसकती मानवता

विगत मास पश्चिमी बंगाल पर संसदीय सलाहकार समिति की बैठक में यह रहस्योद्‌घाटन किया गया था कि इस वर्ष अप्रैल से अक्टूबर तक वहाँ कानून-विरोधी और हिंसा की १३७३ घटनायें हुई हैं। ये सरकारी आंकड़े हैं जो सदा वास्तविकता से बहुत कम होते हैं, निश्चित ही यह संख्या इससे कई गुणा अधिक होगी। कोई दिन भी तो ऐसा नहीं जाता जबकि हत्या, तोड़-फोड़ और आगजनी के दुःखद काण्ड न होते हों। नक्सली धमकियाँ देते हैं कि वे स्कूल-कालेजों में परीक्षायें नहीं होने देंगे इतना ही क्यों वे तो स्कूल-कालेजों को नष्ट-भ्रष्ट करने पर तुले हैं।

कम्युनिज़म चाहे वह मार्क्स का हो, एंजिल का हो अथवा स्टालिन का, वह लोकतंत्र, विधि-व्यवस्था, राष्ट्रीय-एकता तथा भारतीयता का शत्रु है। हत्या, क्रूरता तथा विध्वंस पर ही इसके सिद्धान्त आधारित हैं। यह प्लेग, हैजे तथा चेचक की भाँति ही ऐसा संक्रामक रोग है जिसका उन्मूलन करने में तनिक भी विलम्ब नहीं होना चाहिये।

प्रसन्नता का विषय है कि विलम्ब से ही सही भारत सरकार ने एक पग उठाया है और इन पंक्तियों के लिखे जाने तक सूचना प्राप्त हुई है कि राष्ट्रपति ने पश्चिमी बंगाल हिंसक गतिविधि-निरोध विधेयक पर हस्ताक्षर कर दिये हैं। इसके अन्तर्गत राज्य सरकार को उग्रपंथियों की गतिविधि पर नियन्त्रण पाने के लिये विशेषाधिकार दिये गए हैं। राष्ट्रपति की स्वीकृति के बाद यह अधिनियम बन गया है और इसे तत्काल अमल में लाने का विधान है। हम समझते हैं कि पाठकों तक इन पंक्तियों के पहुँचने से पूर्व ही बंगाल की स्थिति में कुछ परिवर्तन हो जायेगा।

यह विधेयक पुराने निरोधक-नजरबन्दी कानून का ही सुधारा हुआ रूप है। इस विधेयक के विरोध के लिए कुख्यात कम्युनिस्ट पार्टी के आठ संसद सदस्यों

का एक शिष्टमण्डल राष्ट्रपति से मिलने गया और उनसे निवेदन किया कि वे इस पर अपनी स्वीकृति प्रदान न करें। इनमें वे दल अथवा सदस्य भी थे जिन्होंने अभी हाल ही में संसद में इस बात पर हंगामा मचाया था कि कलकत्ता में उनके दल की एक कर्मठ कार्यकर्त्री की हत्या कर दी गई है। उनका आरोप है कि ये विधेयक क्रूरतापूर्ण हैं और इससे राज्य की पुलिस को असीमित अधिकार मिल जाएँगे। अन्धाधुंध हत्यायें करने की पुलिस की कार्यवाही को इन विधेयकों द्वारा वैध बना दिया जायेगा।

उक्त संसद सदस्यों ने राष्ट्रपति का ध्यान बंगाल में हो रहे नक्सली अथवा मार्क्सिस्ट उपद्रवों एवं हत्याओं की ओर आकृष्ट न कर पुलिस के जुल्मों की ओर किया है। सभी जानते हैं कि इसमें कितना तथ्य है। इससे ही इन कम्युनिस्ट संसद सदस्यों तथा उनके दलों की नीयत का ज्ञान हो जाता है। यदि राष्ट्रवादी राजनैतिक दल इन देशद्रोही दलों पर प्रतिबन्ध की माँग करते हैं तो वे उचित ही करते हैं।

जो भी हो सरकार को इस समय बंगाल में अपनी दृढ़ता एवं स्थिरता का परिचय देकर त्राहि-त्राहि करती हुई जनता का त्राण करना चाहिये, इसी में उसका अपना त्राण भी निहित है।

कम्युनिस्टों का विरोध देश की तरक्की में बाधक

ये शब्द हमारे नहीं, किसी अन्य इस-उस तथा यह-वह व्यक्ति के भी नहीं अपितु भारतीय गणतन्त्र की प्रधानमन्त्री श्रीमती इंदिरा गांधी के हैं। न केवल इतना ही राष्ट्रवाद का नारा लगाने वाले उनकी दृष्टि में साम्प्रदायिक, प्रतिक्रियावादी और संकुचित दृष्टिकोणी दिखाई देते हैं। ये उत्कृष्ट (?) विचार देवी इंदिरा ने गतवर्ष कांग्रेस के दिल्ली अधिवेशन की वर्षगाँठ पर दिल्ली प्रदेश काँग्रेस कमेटी, नगर निगम, महानगर परिषद, जिला तथा ब्लाक काँग्रेस कमेटी के सदस्यों तथा अन्य कार्यकर्ताओं की एक सभा में भाषण करते हुए, जो उनके ही राजमहल में आयोजित की गई थी, व्यक्त किये हैं।

जनसंघ, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ व समान विचारधारा वाले संगठनों का नाम लेते हुए देवीजी ने कहा कि ये प्रतिक्रियावादी ताकतें जान-बूझकर देश की तरक्की में रुकावटें डाल रही हैं। इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि देवीजी ने इस बार हिन्दू महासभा का नाम नहीं लिया। क्योंकि हिन्दू महासभा के वर्तमान अध्यक्ष की दृष्टि में देवीजी गरीबों की रहनुमा बन गई हैं तो स्पष्ट है कि देवीजी की दृष्टि में भी हिन्दू महासभा अब संकीर्णता से ऊपर उठ गई होगी। समाचार-पत्रों

के नियमित पाठकों ने अनुभव किया होगा कि हिन्दू महासभा के जोधपुर अधि-वेशन के बाद उसके अध्यक्ष महोदय इंदिरा गांधी की चापलूसी में ही अपना अधिकांश समय बरबाद कर रहे हैं। जिनको हमारे कथन पर विश्वास न हो वे २३-२४ अक्टूबर के समाचार-पत्रों को उठा कर देख लें।

देवीजी की दृष्टि में ये दल अथवा संगठन कम्युनिस्टों के विरोध और धर्म की रक्षा के नाम पर लोकतन्त्र और समाज की जड़ें काट रहे हैं और देश को कमजोर कर रहे हैं। ये ताकतें भारत को शक्तिशाली बनने के मार्ग में बाधायें खड़ी कर रही हैं। बड़े जोश के साथ देवीजी ने कहा कि हमें इस अन्याय के विरुद्ध लड़ाई लड़नी है। यह लड़ाई किसी व्यक्ति या दल विशेष के विरुद्ध नहीं बल्कि जातीयता, साम्प्रदायिकता और ऊँच-नीच की उन बुराइयों के विरुद्ध है जो वर्षों से देश में विषवमन कर रही हैं और देश को कमज़ोर कर रही हैं। इन्हीं बुराइयों ने देश को दुर्बल बनाया, दास बनाया और आगे बढ़ने से रोका। ये ताकतें नारों से जनता को बरगलाना चाहती हैं। किन्तु उनकी कथनी और करनी में अन्तर है। देवीजी का कहना था कि हमारे विरोधी समाजवाद और विदेश नीति आदि को लेकर हमारी आलोचना करते हैं, किन्तु हम जानते हैं कि हमारा रास्ता सही है और इस रास्ते पर हमने जो कदम बढ़ाये हैं, उनसे हम पीछे नहीं हट सकते।

वास्तविकता यह है कि दिल्ली में शीघ्र ही नगर निगम के, यदि इंदिराजी की इच्छा हुई तो, निर्वाचन होने वाले हैं। देवीजी को दिखाई दे रहा है कि इस बार तो केवल जनसंघ का वहाँ बहुमत ही है किन्तु उनको भय है कि आगामी निर्वाचन में कहीं काँग्रेस का पूर्णतया पत्ता ही न कट जाय। इसीलिए वे इतना अनर्गल प्रलाप कर रही हैं और जनसंघ-विरोधी दलों से साँठगाँठ कर रही हैं।

शान्ति और अहिंसा के ये विचित्र व्याख्याता

गतमास इसी स्तम्भ में 'विरोध के ये स्वर' शीर्षक से हमने तीन स्वरों में रायपुर से उठने वाले एक स्वर की ओर संकेत किया था। इस बीच हमें इस विषय में इतनी सामग्री प्राप्त हुई है कि उस पर लेख तो क्या एक पुस्तिका तैयार की जा सकती है। 'अग्नि परीक्षा' पर लगे प्रतिबन्ध के प्रतिवाद के लिए हमने प्रार्थना की थी। किन्तु हम समझते हैं कि मध्य प्रदेश सरकार ने अवांछनीय अंशों से ओतप्रोत उस पुस्तक पर प्रतिबन्ध लगाकर सूझ-बूझ का ही परिचय दिया है। साहित्य के नाम पर इस प्रकार की अनर्गलता को पनपने देना उचित नहीं। अपने परित्राण के लिये तुलसी मुनि रामचरित मानस अथवा वाल्मीकि रामायण का

हवाला देते है। उन्होंने दोनों के कोई उद्धरण तो दिये नहीं केवल इतना ही कहा कि उनमें भी तो ऐसा ही है। हमारी दृष्टि में उनका यह कथन भी मिथ्या है। वाल्मीकि रामायण के सर्ग ११७ के १७ से २४ श्लोकों को पढ़ जाइये आपको कहीं भी सीता के प्रति अवांछनीय शब्दों का प्रयोग नहीं मिलेगा। यही स्थिति रामचरितमानस की भी है। तुलसी मुनि ने तो इस विषय में षड्यन्त्र नाम से एक सर्ग ही रच डाला है।

इसी बीच तुलसी मुनिजी के मुख पत्र अणुव्रत का १ नवम्बर को 'अग्नि परीक्षा' अंक प्रकाशित हुआ है। उसे हम विरोधाभासों से परिपूर्ण देखते हैं। एक ओर उनमें ओर्गनाइजर और पांचजन्य के उद्धरणों द्वारा यह दिखाया है कि रायपुर के श्री मुन्नालाल शुक्ल इस आंदोलन के अगुआ रहे हैं और दूसरी ओर आगे के पृष्ठों में श्री मुन्नालाल का स्वयं का वक्तव्य प्रकाशित किया है जिसमें इस प्रकार की कोई बात नहीं कि उन्होंने किसी आन्दोलन को जन्म दिया था और अब उनको उसका खेद है।

इस प्रसंग में राजनाद गाँव के डा० बलदेव प्रसाद मिश्र जिन्होंने रामचरित मानस पर डी० लिट् की उपाधि प्राप्त की है उनकी सम्मति का दुरुपयोग किया जा रहा है। इस विशेषांक में भी डाक्टर साहब का वक्तव्य प्रकाशित है। किन्तु उनका वह वक्तव्य वहाँ प्रकाशित है जो उन्होंने सरसरी तौर पर पुस्तक को देखने के बाद दिया था। तब उनको समीक्षा के लिए पुस्तक दी गई और पुस्तक पढ़ने के बाद जो विचार उन्होंने व्यक्त किए हैं उनको प्रकाशित नहीं किया जा रहा है। डा० मिश्र ने २२ नवम्बर के दिनमान में एक पत्र द्वारा सूचित किया है कि उनकी दृष्टि में पुस्तक के अनेक अंश अवांछनीय हैं। उनका कहना है "मेरा निश्चित मत है कि पुस्तक सनातनी विचारधारा को ठेस पहुँचाने वाली है अतएव अवांछनीय है और यदि आचार्यश्री ने मेरे सुझाव के अनुसार आरम्भ में ही स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा कर दी होती कि वह ग्रन्थ को समुचित संशोधन कर देने को तैयार हैं तो कदाचित प्रकरण उग्र होने ही न पाता।"

गत मास के इसी अणुव्रत में स्वामी करपात्रीजी महाराज का वक्तव्य प्रकाशित हुआ था किन्तु वही करपात्रीजी महाराज जब रायपुर गये तो तुलसी मुनि जी ने उनसे भेंट करने से ही इनकार कर दिया। न केवल इतना उनके अन्धानुयायियों ने सनातन धर्मावलम्बियों की जो अवहेलना एवं अपमान किया है वह किसी भी प्रकार सहनीय नहीं माना जा सकता। रायपुर में हुए सभी काण्डों की यदि निष्पक्ष न्यायिक जाँच कराई जाय तो अनेक तथ्यों का रहस्योद्घाटन होने की सम्भावना है। इससे सनातनियों के प्रति किये गए षड्यन्त्र का भण्डाफोड़

होगा। जिस 'अग्नि परीक्षा' से सनातनी वहाँ गुजरे हैं वह विचित्र कथा है।

एकता के नाम पर जो दल हिन्दुओं को दबाने का प्रयत्न कर रहे हैं हम उनके इस कुप्रयास की सराहना नहीं कर सकते। सनातन धर्म की अवहेलना कर यदि कोई यह चाहे कि हिन्दुओं के विभिन्न सम्प्रदायों में एकता स्थापित हो सकती है तो वह भ्रम में है। जो सनातन हैं उसे उजागर करना होगा उसी के आधार पर हिन्दुओं में एकता कायम हो सकती है, थोथे पन्थवाद अथवा सम्प्रदायवाद को भड़काने से विघटन होगा यह बात नहीं भुलानी चाहिये। जो पन्थ अथवा समुदाय मुस्लिम लीग की भाँति पृथक् मताधिकार का प्रश्न उठा रहे हैं उससे निवटने का ढंग वह नहीं है जिस प्रकार मुस्लिम लीग के साथ किया गया था। तुष्टीकरण की यह विनाशकारी प्रक्रिया भारतवासियों को जड़-मूल से विनष्ट करनी होगी।

पयः पानं भुजंगानां केवलं विषवर्धनम्

एक दिन सहसा कानों में आकाशवाणी से ध्वनि आई "पाकिस्तान शिकायत कर रहा है कि पूर्वी पाकिस्तान में तूफ़ान से हुए विनाश पीड़ितों की सहायता के लिये भेजे जाने वाले हवाई जहाजों को भारत अपने देश पर से जाने की स्वीकृति नहीं दे रहा है।"

न केवल भारतवासी अपितु सारा संसार जानता है कि भारत ही वह देश है जिसने तूफान से हुई क्षति का समाचार सुनकर सर्वप्रथम सहायता की घोषणा की थी। इतना ही नहीं वरन् ज्यों-ज्यों विनाश की वीभत्सता का समाचार मिलता गया त्यों-त्यों सहायता की राशि में भी भारत सरकार बढ़ोत्तरी करती गई। और लाख से बढ़कर वह राशि करोड़ पर पहुँच गई।

ऐसी उदारता के बावजूद यदि पाकिस्तान भारत पर यह आरोप लगाये कि भारत अपने देश पर से पाकिस्तानी सहायक वायुयानों की उड़ान नहीं करने दे रहा है तो हमें इस लोकोक्ति की चरितार्थता दृष्टिगोचर होती है कि "साँप को पिलाया गया दूध केवल उसमें विष की ही वृद्धि करेगा।"

मुस्लिम तुष्टीकरण का एक नमूना

दिल्ली विश्वविद्यालय के अन्तर्गत सालवान महाविद्यालय के एक लैक्चरार को उसके समाज-विरोधी कार्यों के लिये, महाविद्यालय की प्रबन्ध समिति ने उसे महाविद्यालय के अध्यापकवर्ग से पृथक् कर दिया है। इस घटना को इतना तूल दिया जा रहा है कि विश्वविद्यालय के वे सब अध्यापक-प्राध्यापक जिनकी निष्ठा

भारत से बाहर है इसको प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर विश्वविद्यालय के साथ-साथ नगर के वातावरण को भी दूषित कर रहे हैं। केवल इतना ही नहीं वल्कि संसद में भी इस प्रश्न को उठाया गया है।

इस प्रसंग में हमें एक अन्य घटना का स्मरण हो आता है। कुछ वर्ष पूर्व इण्डियन स्कूल ऑफ इण्टरनेशनल स्टडीज़ के शोध छात्र श्री वेदप्रताप वैदिक को स्कूल से पृथक् किया गया, उनके थीसिस को अस्वीकार किया गया। अपने प्रति किए गये इस अन्याय के विरुद्ध उन्होंने अनेक गुहार-पुकार की किन्तु किसी के कानों में जूं नहीं रेंगी। श्री वैदिक का जघन्य (?) कृत्य यह था कि उन्होंने हिन्दी के प्रचलन की माँग की और उनका थीसिस हिन्दी में होने के कारण उसको स्वीकार नहीं किया जा सकता।

इस अत्याचार एवं अनाचार के विरोध के लिये श्री वैदिक ने समाचार-पत्रों की शरण गही, संसद् सदस्यों से पुकार की, जो भी अपनी सामर्थ्य से वे कर सकते थे उन्होंने किया। किन्तु तब इन आज के आन्दोलनकारियों को उसमें प्रतिक्रियावादिता की गंध आती थी। यहाँ तक कि हिन्दी के प्रबल समर्थक दल के संसद् सदस्यों, हिन्दी के नाम पर फलने-फूलने वाली संस्थाओं और उन संस्थाओं के सहारे चर्बी बढ़ाने वाले साहित्यकारों एवं नेताओं ने भी घुटने टेक दिये थे अथवा हाथ जोड़ लिये थे।

हमारी दृष्टि में श्री वैदिक के प्रति किया गया दुर्व्यवहार न केवल अन्यायपूर्ण था अपितु वह देशघातक भी था जबकि समीक्षाधीन व्यवहार विद्यालय की अपनी सुव्यवस्था एवं प्रतिष्ठा का प्रश्न है। इसको इतना तूल देने का अभिप्राय है कि देश में फैल रहे व्यभिचार एवं अनाचार को प्रोत्साहन देना और शिक्षा-संस्थाओं को उसका गढ़ बनने देने में इस प्रवृत्ति का विरोध होना चाहिये और जो संस्थायें, संसद् सदस्य, प्राध्यापकगण अथवा यह-वह जो भी इस दुष्प्रवृत्ति के प्रसार में सहायक हो रहे हैं उनकी निन्दा की जानी चाहिये।

क्योंकि सालवान महाविद्यालय के उक्त लेक्चरार जावेद आलम साहब अल्प-संख्यक समुदाय के हैं इस कारण उनका संरक्षण होना ही चाहिये। यह नीति घातक है और इसका प्रतिकार करने वालों को सभी राष्ट्रवादी तत्त्वों द्वारा समर्थन मिलना चाहिये।

और अन्त में

कलकत्ता में साधारण क्लर्क की हैसियत से रहने वाले अपने एक मित्र को जब दिल्ली में आकर शानो-शौकत एवं ठाठ-बाट से रहते देखा तो उनके मित्र अचंभे में पूछने

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्यकार
श्री गुरुदत्त
के ७७वें जन्म दिवस के उपलक्ष्य में
अनुपम भेंट एवं अनुपम उपहार

केवल १०० रुपये मूल्य की पुस्तकें एक साथ

मंगवाने पर

यह अभिनन्दन ग्रंथ

बिना मूल्य भेंट में दिया जायगा।

तथा

इसके साथ एक अन्य

उपहार

श्री गुरुदत्त
अभिनन्दन ग्रंथ
मूल्य ४५)
फ्री

आर्डर के साथ कम से कम १० रुपये अग्रिम अवश्य भेजें। पुस्तकें रेल पार्सल से भेजी जाएंगी तथा रेलवे रसीद शेष राशि के लिये वी० पी० एल० से भेजी जाएगी। पूरा धन १०० रुपया अग्रिम भेजकर पुस्तकें रजिस्ट्री द्वारा भी मँगवा सकते हैं। मार्ग-भाड़ा तथा डाक व्यय हम देंगे। अपना पता तथा रेलवे स्टेशन स्पष्ट शब्दों में लिखें। नीचे दी गई सूची में से अपने पसन्द की १०० रुपये की पुस्तकें चुनिये।

अन्धकार	३.००	गंगा की धारा (२ भाग)	६.००
अवतरण	३.००	गांधी और स्वराज्य	१.००
असमंजस	३.००	गृह संसद	३.००
आकाश पाताल	३.००	घर की बात	३.००
अनदेखे बन्धन	३.००	चंचरीक	२.००
एक मुंह दो हाथ	३.००	ज़माना बदल गया (६ भाग)	२०.००
कामना	३.००	जीवन ज्वार	३.००

(शेष कवर पृष्ठ ३ पर देखें)→

देश की हत्या	४.००	विकार	२.००
दो भद्र पुरुष	२.००	विकृत छाया	३.००
द्रष्टा	३.००	विडम्बना	३.००
नगर परिमोहन	३.००	विद्यादान	२.००
नये विचार नई बातें	३.००	विनाशाय च दुष्कृताम्	४.००
निर्मल	२.००	विश्वास	२.००
निष्णात	२.००	सफलता के चरण	३.००
पंकज	२.००	सभ्यता की ओर	२.००
परदे के पीछे	३.००	सम्भवामि युगे-युगे (२ भाग)	४.००
परिभव	२.००	साहित्यकार	२.००
पाणिग्रहण	४.००	सुमति	२.००
प्रेरणा	३.००	सुख की खोज	३.००
पुकार	२.००	**केवल सजिल्द संस्करण में उपलब्ध**	
पुष्यमित्र	३.००		
प्रगतिशील	२.००	खण्डहर बोल रहे हैं (२ भाग)	१७.५०
बहती रेता	३.००	एक और अनेक	७.५०
बिखरे चित्र	३.५०	गुण्ठन	७.००
बीती बात	२.००	दिग्विजय	७.००
भगवान भरोसे	४.००	नयी दृष्टि	७.००
भग्नाश	३.००	न्यायाधिकरण	७.००
भाग्य का सम्बल	२.००	पूर्वग्रह	७.००
भाग्य रेखा	२.००	अन्तिम यात्रा	१.००
मनीषा	२.००	इतिहास में भारतीय परम्पराएँ	१०.००
मानव	३.००		
मायाजाल	३.००	धर्म तथा समाजवाद	६.००
मेरी पसन्द (नाटक)	२.००	धर्म संस्कृति और राज्य	८.००
यह सब झूठ है	३.००	भारत गांधी नेहरू की छाया में	४.००
यह संसार	३.००		
युद्ध और शान्ति (२ भाग)	६.००	भारत में राष्ट्र	२.००
लालसा	३.००	श्रीमद्भगवद्गीता एक अध्ययन	१५.००
लुढ़कते पत्थर	४.००		
वन्दे मातरम् (नाटक)	२.००	समाजवाद एक विवेचन	१.००

भारतीय साहित्य सदन सेल्स

३०/९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे) नई दिल्ली-१

संरक्षक सदस्य

१. केवल एक सौ रुपये भेजकर शाश्वत-संस्कृति परिषद् के संरक्षक सदस्य बनिये। यह रुपया परिषद् के पास आपकी धरोहर बन कर रहेगा।

शाश्वत संस्कृति परिषद् का उद्देश्य

विशुद्ध भारतीय तत्त्व दर्शन पर सम्यक् गवेषरणा करना तथा उसका प्रचार करना एवं उनके आधार पर राष्ट्र के सम्मुख सभी समस्याओं का सुलझाव प्रस्तुत करना।

संरक्षक सदस्यों की सुविधाएं

१. परिषद् के नवीनतम प्रकाशन तथा आगामी सभी प्रकाशन आप बिना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। नवीन प्रकाशन हैं—१. भारतीयकरण एक अध्ययन (मूल्य ८ रु०) २. वर्ण-व्यवस्था तथा प्रजातन्त्र (मूल्य ४ रु०); ३. हिन्दू का स्वरूप (मूल्य ०.५०) आगामी प्रकाशन हैं—ब्रह्मसूत्र हिन्दी विवेचना (मूल्य २५ रु०) एवं अन्य।

२. परिषद् की पत्रिका शाश्वत वाणी आप जब तक सदस्य रहेंगे प्राप्त कर सकेंगे।

३. परिषद् के पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ (सूची इसी अंक में अन्यत्र देखें) आप २५ प्र० श० छूट के साथ प्राप्त कर सकेंगे।

४. जब भी आप चाहेंगे एक मास पूर्व सूचना देकर अपनी धरोहर वापस ले सकेंगे। धन मनीआर्डर द्वारा भेज सकते हैं। किन्तु छः मास के भीतर ही धरोहर वापस माँगने वाले महानुभावों को वार्षिक शुल्क के पाँच रुपये तथा निर्मूल्य दिये गए प्रकाशनों का मूल्य काटकर ही राशि वापस की जा सकेगी।

शाश्वत संस्कृति परिषद

३०।९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे)-नई दिल्ली-१

शाश्वत संस्कृति परिषद् के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं विकास आर्ट प्रिंटर्स शाहदरा-दिल्ली-३२ में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से ...